रहीम का नीति-काव्य

सागर विश्वविद्यालय द्वारा पी एच डी की उपाधि के लिए
स्वीकृत शोध प्रबन्ध का रहीम सम्बन्धी भाग



देवार्चन निरत अब्दुर्रहीम खानखाना

(भारत सरकार, पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के सौजन्य से)

भूमिका – डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

रहीम का नीति-काव्य

डॉ० बालकृष्ण 'अकिंचन'

१९७२

प्रकाशक
अलंकार प्रकाशन
१९९ ... दिल्ली ५१

तीस रुपये मात्र

मुद्रक
अजय प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा दिल्ली ३२

RAHEEM KA NITI KAVYA
By
Dr BALKRISHAN AKINCHAN
LISHER ALANKAR PRAKASHAN DELHI 51

स्व० आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

की

पुण्य स्मृति मे

सश्रद्ध।

प्राक्कथन

'तुलसी के वचनो के समान रहीम के वचन भी, हिंदी भाषी भू भाग म सवसाधारण के मुह पर रहते है। इसका कारण है जीवन की सच्ची परिस्थितियो का मार्मिक अनुभव।' —आचाय प० रामचन्द्र शुक्ल के य शब्द मैंने बहुत पहले पढे थे, किन्तु तब इनकी सच्चाई और गहराई को उतना न आंक सका था। लगभग दस वर्षों तक काय करने के पश्चात, अब मैं निस्सकोच रूप से कह सकता हू कि हिंदी साहित्य के मध्यकाल मे ही नही अपितु समग्र हिंदी जगत म, रहीमतर एसा कोई अन्य व्यक्तित्व उत्पन्न नही हुआ जो सफल सेनापति प्रकृष्ट प्रशासनाधिकारी कुशल-कला पारखी गुणी जन-कल्प तरु तथा रससिद्ध कवि आदि, सभी कुछ एक साथ हो। वस्तुत रहीम व्यक्ति नही सस्था थ, इकाई नही समान थे हिंदी नीति काव्य के तो मन्दिर मस्जिद, पुजारी और भक्त सब कुछ थे ही। हिंदी और हिन्दुस्तान से बाहर भी उनकी प्रतिभा समादत थी, मान्य थी। सच पूछिए तो विविध भाषा ज्ञान उदार काव्याश्रय तथा मुक्तहस्त दान म, व अपने युग की सावभौमिक विभूति थे। उस युग की बात न कर यदि आज की परिस्थितियो को देखा जाए तो धमनिरपेक्षता के वतमान परिवेश मे, रहीम हमार राष्ट्र के आदश कवि सिद्ध होते हैं। भारतीय नतिक मूल्यो सास्कृतिक जीवनादर्शों तथा धार्मिक नीति सदर्भो की जसी निष्ठापूण लोकोपयोगी अभिव्यक्ति इस मुसलमान के काव्य मे हुई है वैसी सस्कार शून्य कोटि कोटि हिंदुओ मे मिलना दुलभ है। यही कारण है कि उनका काव्य विगत तीन चार शताब्दियो से हिंदी भाषा भाषी जनता का कण्ठहार बना हुआ है। अनुभवसिद्ध तथ्यो की भावानुभूत मार्मिकता ने उनकी काव्याभिव्यक्ति को कुछ ऐसी समथ भाषा प्रदान की है जिसे न विद्वान भुला सके है और न सामान्य जन। समसामयिक एव परवर्ती कवि ही नही आधुनिक युग के साहित्यकार भी उनकी प्रभाव छाया से अछूते नही हैं। इसीलिए आचाय नन्ददुलारे वाजपयी ने एक साहित्य गोष्ठी म रहीम के अध्ययन अध्यापन पर बल देते हुए उर्दू फारसी के जानकार अनुसधित्सुओ को रहीम काव्य के उच्च स्तरीय अनुशीलन परिशीलन शोध एव अनुसधान की ओर प्रेरित किया था। मेरे विषय चयन का मूल, आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी की वही प्रेरणा है।

रहीम सम्बन्धी अध्ययन म मेरा स्थानीय एव पारिवारिक सस्कार भी सहायक सिद्ध हुआ है। मेरे पितामह, प० कन्हैयालाल जी, यूनानी हकीम होने के कारण सस्कृत हिंदी से भी अधिक रुचि उर्दू फारसी काव्य मे रखते थे। हमारे ब्राह्मण परिवार म रामायण। भागवत के साथ उर्दू फारसी की भी

खूब चर्चा रहती थी। मेरा जन्म-स्थल 'धामपुर' (बिजनौर) हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियां एवं उर्दू हिन्दी भाषाओं का समन्वय-स्थल है। आचार्य जी ने भी इस विरासत की जानकारी पाकर, मेरे रहीम सम्बन्धी विषय को सहर्ष स्वीकृति प्रदान की थी। हां साथ ही 'नीति काव्य परम्परा' को और जोड लेने का आदेश दिया था। 'आज्ञा गुरूणाह्यविचारणीया' के अनुसार शोध-कार्य सम्पन्न होता रहा। किन्तु टंकित प्रबन्ध के सम्पूर्ण आकार प्रकार को देखकर उन्होंने रहीम सम्बन्धी भाग को पृथक् से प्रकाशित कराने का परामर्श दिया। मेरे शोध प्रबन्ध के रहीम सम्बन्धी भाग का प्रस्तुत प्रकाशन उसी सत्परामर्श का शुभ परिणाम है।

प्रस्तुत कृति में रहीम के मूल पाठ के लिए मैंने पं० मायाशंकर याज्ञिक की 'रहीम रत्नावली' (१९२८) को अपना आधार बनाया है। कहीं-कहीं पर बाबू ब्रजरत्नदास जी के 'रहिमन विलास' (१९४६) से भी छंद लिए गए हैं। पुस्तकान्त में उद्धृत रहीम काव्य के अन्य छोटे छोटे संग्रहों को भी देखने का अवसर मिला है। रहीम के जीवन क्रम के लिए मूल फारसी ग्रन्थों के अतिरिक्त मु० देवीप्रसाद के दुष्प्राप्य 'खानखानानामे' तथा डा० समर बहादुरसिंह के (इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत) शोधप्रबन्ध के 'रहीम खानखाना' शीर्षक से प्रकाशित हिन्दी रूपान्तर की सहायता ली गई है। यद्यपि इस पुस्तक में डा० सिंह ने रहीम के व्यक्तित्व और कृतियों पर भी कुछ पृष्ठ जोड दिए हैं किन्तु रहीम की जीवनी के ऐतिहासिक व्यवस्था क्रम में ही उसकी सफलता सन्निहित है।

शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने के पश्चात् 'राष्ट्रीय जीवन चरित्र माला प्रकाशन योजना' के अन्तर्गत डा० सिंह के ही सुमंगलप्रकाश कृत अनुवाद रूप में ,लगभग सवा सौ पृष्ठों की एक अन्य जीवनी देखने में आई है। तभी श्रीयुत देवेन्द्रप्रताप सोलंकी द्वारा लिखित 'रहीम की राष्ट्रीयता' पुस्तक पढने का अवसर मिला जिसका उद्देश्य साहित्य समीक्षा न होकर प्रवृत्ति विशेष का उद्घाटन मात्र है। कहीं-कहीं तो लेखक ने स्वरचित दोहे भी बीच में विन्यस्त कर दिए हैं। अतः पुस्तक पढ़ते समय बडी सावधानी बरतने की आवश्यकता पडी है। साहित्य समीक्षा की दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहासों एवं विविध शोध प्रबन्धों की लघु टिप्पणियों के अतिरिक्त कोई कृति हमारे देखने में नहीं आई। स्थिति यह है कि रहीम-काव्य की समीक्षा पर समग्र हिन्दी जगत में एक साथ चालीस पचास पृष्ठ भी प्राप्त नहीं होते। प्रस्तुत प्रयास उसी साहित्यिक अभाव की अकिंचन पूर्ति है।

इस ग्रन्थ में रहीम के जीवन पक्ष को उतनी प्रधानता नहीं दी गई जितनी कि उनके सर्जक रूप को। जीवन सम्बन्धी प्रथम तथा द्वितीय अध्यायों में केवल उन्हीं घटनाओं अथवा उपलब्धियों का वर्णन है, जिनसे रहीम के व्यक्तित्व का कोई विशेष अंग उभरकर सामने आता है। साथ ही हमने ऐसे अन्तरालों को खोज निकाला है जिनकी परिस्थितियां साहित्य रचना के अनुकूल थीं। फलतः इस भ्रान्त धारणा का सप्रमाण खंडन हो गया है कि रहीम को काव्य प्रणयन के लिए अवकाश नहीं था। तृतीय अध्याय में रहीम की सभी प्राप्त रचनाओं को

भाषा प्रौढता के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। इस वर्गीकरण को पूर्व निर्दिष्ट अवकाशान्तरालों से मिलाकर तथा बाह्याभ्यन्तर संकेतों का आधार लेकर रहीम की कृतियों का काल निर्धारण किया है जो रहीम-काव्य के क्षेत्र में अपने प्रकार का प्रथम प्रयास है। चतुर्थ अध्याय से १०वें अध्याय तक रहीम काव्य का साहित्य शास्त्रीय निकष पर कसने का प्रयत्न भी इस शोध प्रबन्ध में सम्भवतः पहली बार हो रहा है। ११वें तथा १२वें अध्याय में पूर्वापर प्रभाव तथा उपसंहार देने के पश्चात् हमने फारसी नीति-काव्य के इतिहास क्रम को परिशिष्ट में प्रस्तुत किया है। इस अध्ययन से प्रमाणित हो जाता है कि रहीम के नीति-काव्य का फारसी से रंच मात्र भी सम्बन्ध नहीं है। यह संस्कृत से प्रभावित भारतीय नीति काव्य परम्परा की एक विशुद्ध एवं अविच्छिन्न कड़ी है।

इस अध्ययन में मुझे जिन पुस्तकालयों एवं संस्थाओं का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में सहयोग प्राप्त हुआ है मैं उन सभी का अनुगृहीत हूँ। व्यक्तिगत कृतज्ञता प्रकाशन की दृष्टि से मेरा ध्यान सर्वप्रथम अपने परिवार पर जा रहा है। प्रिय अनुज विनोद पाल का सौहार्द तथा सहधर्मिणी शारदा जी का सहयोग मुझे विस्मृत नहीं हो सकता। इन्होंने परिवार के विभिन्न उत्तरदायित्वों को अपने उदाराशय में समेटकर मुझे अनुसंधान कार्य में प्रवृत्त रहने की परिस्थितियाँ प्रदान कीं। मित्र श्री सुरेशचन्द्र भट्ट (केन्द्रीय सरकार प्रशासक, नई दिल्ली) तथा आदरणीय डा० अजहर साहिब (नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली) ने हिन्दी एवं फारसी के अनेक दुर्लभ ग्रंथों को जुटाने में मुझे अनन्य सहयोग दिया है। मैं इनका हृदय से आभारी हूँ। अध्ययन काल में समादरणीय डा० रामलाल सिंह (इलाहाबाद), डा० राममूर्ति त्रिपाठी (उज्जैन) डा० शिवकुमार मिश्र (सागर) तथा डा० ओमप्रकाश शास्त्री (दिल्ली) आदि अपने विद्वान प्राध्यापकों से मैं प्रेरित, ज्ञानवर्धित एवं अनुशासित होता रहा हूँ। अतः छात्रसुलभ श्रद्धा से उनका साधुवाद करना मेरा पुनीत कर्तव्य है। आचार्य प्रवर डॉ० नगेन्द्र ने अनेक शास्त्रीय शंकाओं का समाधान कर मुझे अपने वर्चस्व से इस विषय में गहरी पैठ करने की सामर्थ्य प्रदान की है। मैं उनके प्रति परम विनम्र रूप से श्रद्धावनत हूँ।

अध्ययन एवं अनुसंधान से भी अधिक कठिन कार्य प्रकाशन का है। लेखक को चूसने की प्रवृत्ति तथा आकाश को छूते हुए पुस्तकों के मूल्य राष्ट्रव्यापी समस्या बन गए हैं। मेरे प्रकाशकों ने इस कृति को प्रकाशित कर उचित मूल्य में पाठकों को सुलभ करने का प्रयास किया है। अतः वे निश्चित ही धन्यवाद के पात्र हैं। इस कार्य में मुझे आदरणीय डॉ० चन्द्रहंस पाठक सुहृद डा० रमेश मिश्र, स्नेही महेशचन्द्र जैन आदि अनेक विद्वानों एवं मित्रों का सहयोग प्राप्त हुआ है, किन्तु उनका धन्यवाद अपना ही धन्यवाद होगा। बिना जिल्द बँधे ग्रंथ पर ही हिन्दी जगत के शीर्षस्थ विद्वानों ने अपनी शुभाशंसाएँ प्रदान करने की महती अनुकम्पा की है। स्थानाभाव से उन सबका प्रकाशन सम्भव नहीं हो सका है। उन सभी विपश्चितों

और विशेषत परम श्रद्धेय आचाय विश्वनाथप्रसाद मिश्र, आचाय भगीरथ मिश्र, आचाय विनयमोहन शर्मा, डा० सरनामसिंह डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा, डा० अमीर हसन अबिदी तथा डा० यूनस जाफरी आदि महान विद्वानो को मैं अपनी विनम्र प्रणाति प्रस्तुत करता हू। वकारुलहसन सिद्दीकी न देवाचन निरत रहीम के दुलभ चित्र की सूचना दी थी। इसक लिए मैं उनका भी आभारी हूँ।

श्रद्धय डा० विजयेन्द्र स्नातक जसे गम्भीर विद्वान न अपनी अमूल्य भूमिका लिखकर इस कृति को गौरवान्वित किया है। वस्तुत वे आशुतोष एव अवढर दानी प्रोफेसर है। उनका यत्किंचित प्रसाद पाकर मैं भी धन्य हो गया हू। उनका कृतज्ञता ज्ञापन निश्चित ही छोटे मुह बडी बात होगी। अन्त म मुझे इस शोध प्रबन्ध के निर्देशक (विक्रम विश्वविद्यालय के उपकुलपति) अपने कीर्तिशेष गुरु, आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी का स्मरण हो रहा है। उस शिष्यवत्सल ऋषि क स्नेह पाथेय वरदहस्त एव माग दशन के बिना मुझ अकिंचन का विद्या वारिधि म सतरण असम्भव ही था। उनकी दिवगत आत्मा क प्रति मेरी करुणार्द्र वाणी अपने मौन ही म मुखर है। इस श्रद्धा सुमन का समपण उनके अतिरिक्त और करूँ भी किसे—

दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहं जांय।

—बालकृष्ण अकिंचन

हस्तिनापुर कालिज
मोती बाग नई दिल्ली २३

डॉ० बालकृष्ण अकिंचन का यह कार्य सर्वथा मौलिक और महत्त्वपूर्ण दृष्टि मूलक है। इस विषय में इससे पहले इतना गम्भीर एवं सर्वांगपूर्ण अध्ययन देखने में नहीं आया। अकिंचन जी इसके लिए सर्वथा बधाई के पात्र हैं।

राजनीति और दरबारी वातावरण में जीवन का अधिकांश समय बिताने वाले इस मौलिक प्रतिभा के कवि के मानस का विश्लेषण डॉ० बालकृष्ण ने बड़ी योग्यता और क्षमता के साथ करके मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष का उद्घाटन करते हुए वास्तव में एक विस्मृत और उपेक्षित अध्याय को प्रस्तुत किया है। एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें अध्येता ने अपनी विवेचना शक्ति का ही परिचय नहीं दिया बल्कि यथार्थ शोध दृष्टि का भी एक प्रशस्त उदाहरण प्रस्तुत किया है।

मुझे विश्वास है कि इस शोध-कार्य के द्वारा हिन्दी के अन्य उपेक्षित पक्षों का उद्घाटन करने की प्रेरणा मिलेगी।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा
प्रोफेसर केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा

डॉ० बालकृष्ण शर्मा अकिंचन ने रहीम के नीति-काव्य पर ग्रंथ लिखकर बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उनके विचारों में मौलिक उद्भावनाओं के साथ संचयन भी है किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि डा० अकिंचन ने अपनी विचार-सम्पदा को बड़े श्रम से प्रस्तुत किया है। उनका प्रस्तुतीकरण सतर्कतापूर्ण तथा शैली बड़ी दीप्तिमयी है।

अकिंचन जी मेरे साधुवाद के पात्र हैं।

डा० सरनामसिंह शर्मा अरुण
आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर

अकिंचन साहिब ने अब्दुर्रहीम खानखाना पर तहकीकी काम करके सिर्फ हिन्दी ही को मालामाल नहीं किया बल्कि फारसी अदब के मुतायला करने वालों की मालूमात में भी इजाफा किया है। आखिर में फारसी के मुताल्लिक जो कुछ लिखा गया है वह भी निहायत पुरमग्ज और काबिल कद्र है। हिन्दी के लिए यह हिस्सा माखज (रेफ़ेंस) का काम करेगा। मैं डा० अकिंचन को इस आला किताब के लिए दिली मुबारिकबाद देता हूँ।

डा० अमीर हसन आबिदी
प्रोफसर एवं अध्यक्ष अरबी फारसी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

भूमिका

नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना अपने समय के वीर-बहादुर योद्धा, कुशल राजनीतिवेत्ता और भारतीय सांस्कृतिक समन्वय का आदर्श प्रस्तुत करने वाले मर्मी कवि थे। युद्ध-कला का ज्ञान उन्हें अपने पिता बैरमखाँ से विरासत के रूप में मिला था और राजनीति का पाठ उन्होंने सम्राट अकबर की पाठशाला में पढ़ा था। काव्य-कला उनकी निसर्ग सिद्ध प्रतिभा का पुण्य फल था, जिसका उपयोग उन्होंने स्वान्तः सुखाय तक ही सीमित न रखकर जन-जीवन की सामूहिक चेतना को प्रबुद्ध करने में किया।

रहीम का जीवन-वृत्त एक सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक महापुरुष के रूप में अकबर और जहाँगीर के शासन-काल में लिखे गये अनेक ग्रंथों में विस्तार के साथ उपलब्ध होता है। अब्दुल बाकी ने 'मआसिरे रहीमी' नाम से रहीम की विस्तृत फ़ारसी जीवनी लिखी है। इस जीवनी में रहीम के लौकिक एवं साहित्यिक जीवन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। अकबरी दरबार के इतिहास लेखक अबुल फज़ल और अब्दुल क़ादिर बदायूनी ने भी अपने इतिहास ग्रंथों में रहीम का एक वीर बहादुर योद्धा के रूप में वर्णन किया है और साथ ही उनकी साहित्यिक प्रतिभा की भूरि भूरि प्रशंसा की है। जहाँगीर ने अपने 'तुज़ुक जहाँगीरी' में उन प्रसंगों की भी चर्चा की है जिनको लेकर जहाँगीर और रहीम के बीच कुछ समय तक मनोमालिन्य चलता रहा था। अन्य इतिहास लेखकों की दृष्टि भी रहीम की विलक्षण प्रतिभा पर पड़ी और प्रायः सभी ने उन्हें उदार योद्धा के रूप में चित्रित किया। आधुनिक युग में स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद ने हिन्दी में 'खानखाना नामा' लिखकर रहीम के जीवन-वृत्त को सब प्रकार से परिपूर्ण बना दिया है। रहीम के जीवन पर इतनी व्यापक दृष्टि से किसी अन्य भाषा में कोई पुस्तक नहीं है। इस सुंदर जीवनी के अतिरिक्त रहीम की काव्य-साधना और कला पर प्रकाश डालने वाली छोटी-छोटी लगभग दो दर्जन से ऊपर पुस्तकें हिन्दी में यथा विधि प्रकाशित हो चुकी हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि रहीम का स्मरण विगत चार शताब्दियों से केवल ऐतिहासिक पुरुष के रूप में ही नहीं वरन् भारतमाता के सच्चे सपूत के रूप में होता आ रहा है।

अब्दुर्रहीम खानखाना का जन्म संवत् १६१३ (ई० सन् १५५६) में इतिहास-प्रसिद्ध बैरमखाँ के घर लाहौर में हुआ था। सम्राट अकबर उस समय सिकन्दर सूर के आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए सैन्य सहित लाहौर में उपस्थित थे। बैरमखाँ के यहाँ पुत्रोत्पत्ति का समाचार पाकर वे स्वयं वहाँ पहुँचे और उन्होंने नवजात शिशु का नाम 'रहीम' रखा। रहीम का जीवन-वृत्त प्रस्तुत करने वाले सभी ग्रंथों में उपर्युक्त तिथि को ही जन्म-संवत् के रूप में स्वीकार किया गया है। रहीम के पिता बैरमखाँ का हुमायूँ के समय से ही मुग़ल दरबार में बड़ा सम्मान था। बहादुरी एवं बुद्धिमत्तापूर्ण अनेक कार्यों से बैरमखाँ ने हुमायूँ पर गहरा प्रभाव जमाया हुआ था।

इसी कारण हुमायूँ ने युवराज अकबर की शिक्षा-दीक्षा का भार उन्हें सौंपा था और अपने जीवन के अंतिम समय में राज्य प्रबन्ध भी बैरमखाँ को देकर अकबर का अभिभावक नियुक्त किया था। बैरमखाँ ने अपनी कुशल नीति से अकबर के राज्य को सुदृढ़ बनाने में पूरा योग दिया किन्तु दुर्भाग्य से अकबर के सिंहासनारूढ़ होने के बाद दोनों में मतभेद हो गया और बैरमखाँ ने विद्रोह करना चाहा। बैरमखाँ के विद्रोह को दबाकर अकबर ने अपने उस्ताद का मान रखा करते हुए यही चाहा कि वे अपने जीवन को शान्तिपूर्ण बनाने के लिए हज्ज करने चले जायें। फलतः बैरमखाँ ने यही किया किन्तु मार्ग में एक पठान ने अपने किसी पुराने वैर का प्रतिशोध लेने के फलस्वरूप उनका वध कर दिया। उस समय रहीम की आयु केवल चार वर्ष की थी। रहीम की माँ अपार कष्टों को भोगते हुए उसे अहमदाबाद ले गईं जहाँ वे लोग चार मास तक रहे। अकबर को जब रहीम की स्थिति का पता चला तो उसने तत्काल उसे आगरा बुला भेजा। उसने अपनी देख रेख में रहीम की शिक्षा का पूरा प्रबन्ध किया और उसे शाही खानदान के अनुरूप मिर्ज़ाखाँ का खिताब दिया। अकबर के यहाँ रहकर विद्याभ्यास करते समय रहीम ने तुर्की अरबी फारसी उर्दू हिन्दी और संस्कृत भाषाओं का अध्ययन किया। अपने बचपन में ही ग्यारह वर्ष की आयु में आपने बिना किसी गुरु से छन्द और काव्य की शिक्षा लिए कविता करना आरम्भ कर दिया। मआसिरे रहीमी में यह स्पष्ट लिखा है कि कविता की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति होने से रहीम ने किसी उस्ताद की शरण नहीं ली और अपनी नैसर्गिक प्रतिभा को ही अपना गुरु समझा। शिक्षा समाप्त होने पर अकबर ने अपनी धाय की बेटी माहबानो से रहीम का विवाह कर उसी परम्परा का निर्वाह किया जो इनके पिता ने बैरमखाँ के विवाह से आरम्भ की थी।

सोलह सत्तरह वर्ष की आयु में ही रहीम को गुजरात में आरम्भ हुए उपद्रव को शान्त करने जाना पड़ा और उसमें विजयी होने के उपलक्ष में अकबर ने इन्हें गुजरात की सूबेदारी प्रदान की। इसके बाद कुंभलमेर और उदयपुर को विजय करने के कारण आप अकबर की दृष्टि में बहुत ऊँचे उठ गये। अकबर ने रहीम की कार्य कुशलता योग्यता और विश्वासपात्रता से प्रसन्न होकर इन्हें उस समय का बहुत ऊँचा पद मीर अर्ज प्रदान किया। इसके बाद अजमेर की सूबेदारी और रणथम्भौर का किला भी इन्हें उपहार स्वरूप शाही दरबार से प्राप्त हुआ। अकबर को रहीम पर वैसा ही विश्वास था जैसा कि हुमायूँ को बैरमखाँ पर था। फलतः अकबर ने सलीम की शिक्षा के लिए रहीम को वैसे ही नियुक्त किया जैसे उसके पिता हुमायूँ ने अकबर के लिए बैरमखाँ को किया था। इसी बीच गुजरात में पुनः उत्पात आरम्भ हुआ और रहीम को इसके लिए उपयुक्त सेनापति समझकर गुजरात भेजा गया। इस बार का युद्ध विकट था क्योंकि प्रतिपक्षी मुजफ्फर के पास अहमदाबाद का इलाका था जिसे जीतना रहीम ही क्या किसी भी सरदार के लिए सरल काम न था। किन्तु रहीम इस मोर्चे पर स्वयं तलवार लेकर मैदान में आये और अपने प्राणों को संकट में डालकर इस अद्भुत पराक्रम से लड़े कि मुजफ्फर को जंगलों में भागने के सिवाय कोई और

ठिकाना न रहा। इस विजय ने रहीम की ख्याति म चार चाँद लगा दिए। उन्हें अकबर के दरबार म वही पद प्राप्त हुआ जो कभी उनके पिता बरमखाँ को प्राप्त था। किन्तु रहीम ने इस विजय को अपने अहकार और दप का विषय नहीं बनाया, उसने निश्चय किया कि इस विजय के उपलक्ष मे वे अपना सब कुछ दीन-दुखियो की सहायता के लिए अर्पित कर देंगे। कहते हैं कि अपनी सम्पत्ति का अन्तिम प्रतीक 'कलमदान' भी आपने एक याचक को देकर अपार शान्ति एव सुख का अनुभव किया था। अकबर ने इनकी अद्भुत योग्यता और उदारता को देख, इन्हे जौनपुर का इलाका तथा मुगल दरबार का सर्वोच्च 'वकील' का पद, जो राजा टोडरमल की मृत्यु से खाली हुआ था प्रदान किया।

अकबर की मृत्यु के बाद जहाँगीर के शासनकाल के प्रारम्भिक पन्द्रह वर्षों तक रहीम का वसा ही सम्मान रहा जसा अकबर के समय मे था। किन्तु नूरजहाँ के पक्षपातपूर्ण रवय से असन्तुष्ट होकर रहीम ने बादशाह के विरुद्ध शाहजहाँ के उपद्रव मे साथ दिया, जिसके परिणाम स्वरूप उन्हे अपने पद, सम्मान, धन वभव सभी से हाथ धोना पडा। रहीम स्वभाव के भोले और उदार हृदय व्यक्ति थे। कभी-कभी धूर्त और धोखेबाज व्यक्तियो पर भी अपनी सहज उदारता के कारण विश्वास कर लेते थे। और उनके विश्वासघात करने पर इन्हे भयकर कष्ट सहने पड़ते थे। जहाँगीर की नाराजगी म भी इसी प्रकार की भूल आपसे बन पडी थी। रहीम को अपने बुढापे म इस प्रकार के भीषण आघातो से कडी चोट पहुँची और वे जीवन से विरक्त होकर चित्रकूट मे तपस्वी की भाँति रहने लगे। शाहशाह ने कुछ समय बाद उन्हे फिर से कन्नौज की सूबेदारी और अजमेर की जागीर देकर अपने दरबार म सम्मानपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित किया। रहीम अपने जीवन के अन्तिम दिन तक युद्ध और सघष के कोलाहल पूर्ण वातावरण से मुक्ति नही पा सके थे। अन्तिम समय म भी महावतखा पर चढाई करने की तैयारी के दौरान आपकी मृत्यु हो गई। उस समय आपकी आयु ७१ वष की थी।

युद्ध और सघष के कोलाहल पूर्ण जीवन के साथ रहीम का पारिवारिक जीवन भी कष्ट और मानसिक यातनाओ म कटा। पिता की हत्या तो उनकी चार वष की आयु म ही हो गई थी। प्रौढावस्था म बगम भी परलोक सिधार गई। सन्तान म तीन पुत्र और एक पुत्री थी। इन चारो की मृत्यु भी रहीम को अपने जीवन काल म ही देखनी पडी। बेटी का वधव्य भी आपने अपनी आखो से देखा। चचल लक्ष्मी की अपार कृपा और भीषण अट्टहास, दोनो इनके जीवन म अपनी चरम सीमा पर पहुँचे। जो रहीम सवस्व दान करते समय याचक को मुह मागा दान देकर सुख लाभ करते थे, उन्ही को अपनी जीवन-यात्रा के लिए दूसरो पर निभर होना पडा। रहीम ने बिना किसी घटना विशेष का सकेत किये इस स्थिति का अपने दोहो म मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। मृत्यु और विनाश के इस भीषण ताडव को देखते हुए भी रहीम ने कभी धैर्य नहीं छोडा और न कभी मर्यादा का उल्लघन ही किया। वे कष्टो से कभी परास्त नहीं हुए और दुखो की घडियो मे यही कहते रहे—

रहिमन विपदा हूँ भली, जो थोडे दिन होय।
हित अनहित या जगत मे जानि पडत सब कोय॥
रहिमन चुप ह्वै बैठिये देखि दिनन के फेर।
जब नीके दिन आइहैं बनत न लगिहै देर॥

रहीम का घटना सकुल जीवन ही उनके व्यक्तित्व के विकास म योग देने वाला सिद्ध हुआ। या तो प्रत्येक व्यक्ति म कतिपय विशिष्ट जन्मजात गुण होने हैं किन्तु परिस्थितिजन्य घात प्रतिघाता को सहकर भी मानवात्मा का विकास होता है। रहीम न अनेक भाषाओ का उच्चकोटि का ज्ञान उपार्जित किया था। किताबी ज्ञान के सिवा जीवन की पाठशाला म जो कुछ पठनीय एव सग्रहणीय था वह सब रहीम ने एकत्र किया। फलत उनका व्यक्तित्व उन सब गुणो का निधान बन गया जो ससार के महापुरुषो म देखे जाते है। प्रजा का अनुरजन करने वाला राज सेवक प्राय राजा द्वारा परित्यक्त होता है तथा राजाओ म रहकर प्रजा की उपेक्षा करने वाले राज-सेवक जनता म लोकप्रिय नही हो पाता। विरल ही ऐसे लोकप्रिय व्यक्ति उत्पन्न होते है जो राजा और प्रजा के इस विरोध के रहने पर भी दोनो के प्रिय पात्र बनकर समाज और शासन दोनो का हित साधन कर अक्षय कीर्ति प्राप्त करते है। रहीम खानखाना निश्चय ही इसी कोटि के सौभाग्यशाली व्यक्ति थे जो अपनी उभयविध लोकप्रियता के कारण इतिहास मे ही नही अपितु भारतीय जनजीवन के अमिट पृष्ठो पर यश शरीर स जीवित हैं।

रहीम अपने युग के सबसे बडे गुणग्राही व्यक्ति माने जाते थे। सम्राट अकबर और जहाँगीर दोनो ने ही रहीम की गुणग्राहिता की समान भाव स प्रशसा की है और उनकी दानप्रियता की सराहना करते हुए उनके अपरिग्रह पर आश्चय प्रकट किया है। कवि तथा गुणी का सम्मान करते समय जाति धम आयु का भेद न करना महानता का लक्षण है। रहीम न ऐसा भेदभाव कभी स्वप्न म भी नहीं सोचा। अरबी और फारसी के शायरो को जितना दान सम्मान दिया उसका दस गुना हिन्दी के कवियो को देकर अपनी उदारता का परिचय दिया। रहीम की दानशीलता की जितनी प्रशसा की जाय थोडी है। उनकी थैली का मुख प्रत्येक दीन-दुखी याचक के लिए सदा खुला रहता था। उनके दरबार स कभी कोई याचक खाली हाथ वापस नहा गया। उनकी वदान्यता की प्रशसा करन वाले हिन्दी कवियो की सख्या एक दजन स ऊपर है। गग केशवदास सत मण्डन जड़ा प्रसिद्ध हरिनाथ तारा अलाकुली तथा मुकुन्द आदि अनेक ऐसे कवि थ जो उनके शौय पराक्रम और दानवीरता की प्रशसा म काव्य रचना करके अपने को धन्य समझते रहे थ। गग ने इनकी वदान्यता की प्रशसा म यह दोहा लिख भेजा—

सीखे कहाँ नवाब जू ऐसी देनी दैन।
ज्यो ज्यों कर ऊचो करो त्यों त्यों नाचे नैन।

रहीम न सहज शालीनता के साथ नम्रता उत्तर यो दिया—

देन हार कोउ और है भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पर कर याते नीचे नैन।

जहाँगीर के कोप के कारण जागीर छिन जाने पर जब आप चित्रकूट में वैभव हीन दशा में थे तब भी याचक आपके पास निरन्तर आते रहते थे। तभी एकबार धन की आकांक्षा से आए हुए एक ब्राह्मण याचक को रहीम ने रीवां नरेश के नाम यह दोहा लिखकर दिया—

चित्रकूट [redacted] रमि रहे रहिमन अवध नरेस।
जा पर विपदा परत है सो आवत यहि देस।

कहते हैं कि इस दोहे पर मुग्ध होकर तत्कालीन रीवां नरेश ने याचक को एक लाख रुपया देकर सन्तुष्ट किया था।

रहीम की काव्य-भावना के स्पष्टतः दो आयाम हैं। एक का आधार सामाजिक चेतना को प्रबुद्ध करने वाला लौकिक जीवन-व्यवहार का पक्ष है जिसमें नीति, धर्म और लोक व्यवहार का पुट है। सहानुभूति की व्यापकता ने उनके इस प्रथम कोटि के काव्य को जीवन-स्पन्दन का रूप दे दिया है। दूसरी कोटि की काव्य रचना जीवन के रागात्मक एवं मार्मिक पक्ष का स्पर्श करती है। भारतीय प्रेम जीवन की सच्ची झलक प्रस्तुत करने वाला यह काव्य रहीम के कोमल एवं द्रवीभूत होने वाले रसिक हृदय की झांकी कहा जा सकता है। लोक मंगल की साधनावस्था और सिद्धावस्था दोनों को हृदयंगम कर रहीम ने काव्य रचना की है। अतः जीवन की समग्रता उनके काव्य में प्रतिबिम्बित होती हुई स्पष्ट परिलक्षित होती है।

अब तक रहीम विरचित छोटे-बड़े आठ काव्य-ग्रंथों का पता चला है। फारसी में भी उनकी काव्य रचना प्रसिद्ध है। रहीम ने कुछ ग्रंथों का तुर्की से फारसी में भी अनुवाद किया था। ग्रंथ विवरण इस प्रकार है—

(१) रहीम दोहावली (२) बरवै नायिका भेद
(३) बरवै संग्रह (४) नगर शोभा
(५) मदनाष्टक (६) शृंगार सोरठा
(७) रहीम काव्य (८) खेटकौतुकम्

इन आठ ग्रंथों में से वस्तुतः प्रथम चार ही ग्रंथ कोटि में आते हैं। शेष चार तो स्फुट पदों का विषयानुसार संकलन मात्र हैं। अतः उन्हें ग्रंथ संज्ञा नहीं दी जा सकती। रहीम रचित स्फुट पद भी यत्र तत्र बिखरे हुए उपलब्ध होते हैं। रहीम की समस्त कृतियों का विषय मानव जीवन ही था। संसार के विविध अनुभवों के मार्मिक पक्ष को ग्रहण करके पूरी भावुकता के साथ प्रस्तुत करना ही उनकी कला का मूल उद्देश्य था।

रहीम दोहावली खानखाना की सबसे बड़ी उपलब्ध रचना है। इसमें लगभग तीन सौ दोहे संगृहीत हैं। कहा जाता है कि रहीम ने पूरी सतसई लिखी थी किन्तु उनके अभिमानी के संघर्षमय जीवन के कारण भिन्न भिन्न काल में लिखे गये दोहों का विधिवत् संकलन नहीं हो सका। जो दोहे जनता में प्रचार पाकर टकसाली बना गये थे ही वर्तमान दोहावली में हैं शेष काल-कवलित हो गये।

जीवन की पाठशाला में पढ़े हुए पाठों को ही रहीम ने दोहों के सांचे में ढाल-कर प्रस्तुत किया है। उपदेश और नीति को जितने सरस और आकर्षक रूप में रहीम

रता सका है कबीर के सिवा और कोई कवि नहीं रच सका। दृष्टान्त और उदाहरण से परिपुष्ट भारतीय संस्कृति की परम्परा में गूंथे हुए रहीम के दोहे किस गृहस्थ को मुग्ध नहीं करते ? रहीम के दोहों का जनता में इतना प्रचार और प्रसार हुआ कि छाप की इधर उधर से ये दोहे कबीर तथा अन्य आदि कवियों की वाणी में मिला दिये गये। निम्नलिखित दोहों में उदाहरण, अर्थान्तरन्यास और दृष्टान्त की छटा से रहीम की कला की प्रासादिकता देखने योग्य है—

कहि रहीम इक दीपतें प्रगट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै दृग दीपक जरु दोय।
रहिमन असुवा नयन ढरि जिय दुख प्रगट करेय।
जाहि निकारो गेह तें कस न भेद कहि देय॥
रहिमन यों सुख होत है बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि आँखिन को सुख होत।

मुसलमान होते हुए भी हिन्दू जीवन के अन्तरतम में बैठकर रहीम ने जो मार्मिक तथ्य अंकित किये वे उनकी विशाल हृदयता का परिचय देते हैं। हिन्दू देवी-देवताओं पर्वों धार्मिक मान्यताओं और परम्पराओं का जहाँ कहीं रहीम ने उल्लेख किया है पूरी जानकारी और ईमानदारी के साथ किया है। हिन्दू जीवन को रहीम भारतीय जीवन का यथार्थ रूप मानते थे। अतः उनके काव्य में आद्योपान्त यही रूप प्रतिबिम्बित हुआ है। पौराणिक आख्यान की सूक्ष्म बातें भी रहीम की पहुँच से बाहर रही हैं। रामायण महाभारत पुराण गीता सभी ग्रन्थों के कथानकों को रहीम ने उदाहरण के लिए चुना है और लौकिक जीवन के व्यवहार पक्ष को उसके द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है।

नगर शोभा रहीम का दूसरा दोहा ग्रन्थ है जिसमें उन्होंने अपनी रागात्मकता का परिचय देते हुए रूप और सौन्दर्य के चित्र अंकित किए हैं। उत्तरी भारत में निवास करने वाली विभिन्न जातियों की महिलाओं की सौन्दर्य झाँकी प्रस्तुत करना ही इन दोहों का वर्ण्य विषय है। शृंगार रस की पीठिका पर इन दोहों में जो भाव व्यंजना हुई है उसका प्रभाव रीतिकालीन शृंगारी कवियों पर भी पड़ा। कुछ दोहे तो बिहारी और मतिराम के दोहों में थोड़े से परिवर्तन के साथ उपलब्ध होते हैं।

बरवै नायिका भेद रहीम के भाव प्रवण अन्तस्तल की मार्मिकता का उद्घाटन करने वाली सुप्रसिद्ध शृंगार परक रचना है जिसमें भारतीय प्रेम-जीवन की पूरी अभिव्यक्ति हुई है। जीवन के रागात्मक सम्बन्धों को जिस संवेदना के साथ रहीम ने ग्रहण किया उसी की इस काव्य में व्यंजना की गई है। महत् सौन्दर्य से परिपूर्ण विदग्ध विलास ही बरवै नायिका भेद का आधार है। नायिका भेद की परम्परा हिन्दी में संस्कृत साहित्य से आई है किन्तु रहीम ने अपने नायिका भेद में जो उदाहरण दिये हैं वे अनुवाद न होकर भारतीय प्रेम जीवन पर आधृत होने से एकदम नूतन और उनके अपने हैं। दो एक उदाहरणों से यह तथ्य स्पष्ट हो जायेगा—

लहरत लहर लहरिया लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार॥

पीतम इक सुमरिनियाँ, मोहि देहि जाव।
जेइ बिधि तोर विरहवा, करव निभाव॥

रहीम के बरवै नायिका भेद का हिन्दी साहित्य में इसलिए और भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान है कि हिन्दी के नायिका भेद विषयक ग्रंथों में यह ग्रंथ आदि ग्रंथों में है। केशव दास की 'रसिकप्रिया' को छोड़कर कोई और रीति ग्रंथ रहीम के बरवै से पुराना नहीं है। 'रसिक प्रिया' समसामयिक है। मतिराम ने अपने लक्षणग्रंथ में रहीम रचित बरवै को उदाहरण रूप में रखकर इस ग्रंथ का महत्त्व और अधिक बढ़ा दिया है। रहीम का 'बरवै संग्रह' नामक ग्रंथ इस नायिका भेद से प्रौढ़ रचना है।

'मदनाष्टक' को रहीम ने हिन्दी संस्कृत मिश्रित इस विलक्षण शैली से संयुक्त किया है कि आधुनिक युगीन खड़ी बोली के कवि हरिऔधजी का स्मरण हो आता है। संस्कृत के मालिनी छन्द में रचित शृंगार रसपूर्ण आठ पदों को 'मदनाष्टक' नाम दिया गया है। यह काव्य रहीम की विनोदी वृत्ति और जिन्दादिली का सुन्दर निदर्शन है—

विमल घन निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन वन निकुंजे कान्ह बंसी बजाई॥
रतिपति सुत निद्रा साइयां छोड़ भागी।
मदन सिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

रहीम ने पौराणिक आख्यानों के आधार पर शुद्ध संस्कृत के कुछ श्लोकों का भी निर्माण किया है। उनमें जिस निष्ठा की स्थापना हुई है वह भारतीय परम्परा के सर्वथा अनुकूल है। खेट कौतुकम् रहीम की ज्योतिष शास्त्र विषयक फुटकर संस्कृत मिश्रित पदों की रचना का नाम है। राजा बनने के लिए कौन से नक्षत्रों का योग होना है, इसका वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—

यदा मुश्तरी केन्द्रखाने त्रिकोणे यदा वक्तखाने रिपौ आफताप।
अतारिद विलग्नो नरो वख्तपूर्णस्तदा दौलतवारो ऽथवा बादशाह॥

अर्थात् जिसके जन्म समय वृहस्पति केन्द्र में अथवा त्रिकोण में, सूर्य छठे घर में और बुध लग्न में हो तो वह मनुष्य अपने समय का बड़ा आदमी या बादशाह होता है।

रहीम के संस्कृत ज्ञान का एक प्रमाण यह भी है कि उन्होंने अपने दोहों तथा बरवों में अनेक स्थलों पर संस्कृत के कवियों की सूक्तियों को ग्रहण किया है और उनका भावानुवाद प्रस्तुत करके उन्हें टकसाली बना दिया है। कवित्त, सवैया और गेय पद रचना में भी रहीम ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। यद्यपि इनकी संख्या अधिक नहीं है किन्तु भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से उनके कवित्त सवैये रीतिकालीन कवियों से किसी प्रकार हलके नहीं ठहरते। कवित्त सवैये ब्रजभाषा माधुर्य के चरमोत्कर्ष के द्योतक माने जाते हैं। सूर और तुलसी की पद रचना के बाद रीतिकालीन कवियों ने इन छन्दों में शृंगार भावना की जमी चमत्कारपूर्ण व्यंजना की उसका पूर्वाभास रहीम की रचना में लक्षित होता है।

रहीम के काव्य में भाव वैविध्य और शैली वैविध्य द्रष्टव्य है। आश्चर्य का विषय है कि युवावस्था के अरुणोदय से लेकर जीवन के अन्तिम दिन तक जो व्यक्ति

सतत युद्ध और संघर्ष के वातावरण में पला हो, रणभेरी और तलवारों की झनझना-हट हो जिसका जीवन संगीत रहा हो वह धर्म, नीति, भक्ति और जीवन के माधुर्य को लेकर ऐसी सरस सुन्दर रचना कर और कैसे कर सका ? काव्य के माधुर्य और जीवन के व्यावहारिक रूप को साथ लेकर चलने वाले कवि ही लोक-संग्रह और लोक रंजन का समन्वय करके लोक-मानस को प्रबुद्ध करने में सफल होते हैं। रहीम इसी कोटि के महान् कवि और महामानव थे।

संक्षेप में, रहीम के उदात्त व्यक्तित्व में हम उस सच्चे भारतीय का उज्ज्वल और निखरा हुआ रूप देख सकते हैं जो जाति, धर्म और वर्ग के भेदभाव को भूलकर मानव मात्र को बंधुत्व के स्तर पर आलिंगन करके मानवता का महान पुजारी है, परदुःखकातर होकर जो अपना सर्वस्व अर्पित करने को सदैव उद्यत रहता है, कला और कलाकार की पूजा के लिए जो सहज भाव से भुका रहता है, जिसका काव्य कल्पना का भूठा मेल न होकर धर्म और नीति का ज्ञान कराता हुआ राग और प्रेम के शाश्वत सम्बन्धों का परिचायक है। मर्मस्पर्शिता रहीम के काव्य का प्राण है, भारतीय संस्कृति उसका शरीर है, मानव मानव के बीच प्रेम और सौहार्द के स्नेह सम्बन्ध की स्थापना उसका उद्देश्य है। भारतीय संस्कृति, साहित्यकला और आचार मर्यादा के गायक कवि रहीम सांस्कृतिक समन्वय के प्रतीक के रूप में विगत चार सौ वर्षों से वन्दनीय रहे हैं और भविष्य में भी भारतीय जनता उनकी वन्दना इसी प्रकार करती रहेगी।

रहीम की विलक्षण काव्य प्रतिभा के सम्बन्ध में अभी तक हिन्दी विद्वानों ने जो कुछ लिखा पढ़ा है, वह उनकी रचनाओं के साथ पूर्ण न्याय करने वाला नहीं है। रहीम केवल नीतिवादी या यथार्थवादी कवि ही नहीं अपितु परम भावुक और सहृदय व्यक्ति थे। काव्य के माध्यम से उन्होंने मानव मन के भीतर गहराई से भाँका था और मानवीय संवेदनाओं को काव्य प्रतिभा से विविध रूपों में उजागर किया था। हिन्दी प्रेमी पाठक रहीम को जानते और मानते तो हैं किन्तु उनके काव्य का सही मूल्यांकन अभी तक नहीं कर सके हैं। इस दिशा में डा० बालकृष्ण अकिंचन का यह प्रयास प्रथम होने के साथ श्लाघ्य भी है। डा० अकिंचन ने रहीम के व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के साथ उनके काव्य का सर्वांगीण विवेचन विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इस विवेचन में काव्य शास्त्रीय पक्ष के साथ रहीम के बहुमुखी व्यक्तित्व में सन्निविष्ट मानवीय तत्वों को भी परिश्रमी लेखक ने सोदाहरण उद्घाटित किया है।

कुछ शोध प्रबन्धों में प्रासंगिक रूप से रहीम के काव्य की चर्चा अवश्य हुई है किन्तु उस विवेचन को सर्वांगपूर्ण नहीं कहा जा सकता। प्रस्तुत समीक्षात्मक कृति का विशद फलक, गंभीर विवेचन शैली, विश्लेषण एवं प्रांजल अभिव्यंजना सौष्ठव इसकी सार्थकता के प्रमाण हैं। इस ग्रंथ की एक उल्लेख्य विशेषता है इसका परिशिष्ट जिसमें विद्वान लेखक ने फारसी नीति काव्य के साथ रहीम के कृतित्व को एक विशेष दृष्टिकोण से देखा है। यह दृष्टिकोण इस तथ्य के लिए स्वीकार किया गया है कि अब्दुर्रहीम को सामान्य पाठक फारसी प्रभाव का कवि समझता है और उनके नैतिक

दृष्टिकोण को अभारतीय भी समझने लगता है। इस तुलना से यह स्पष्ट है कि इस्लाम से अनुप्राणित होते हुए भी, नैतिकता के लिए रहीम ने भारतीय जीवन दर्शन को ही प्रमाण माना है। अपने पूर्ववर्ती अरब और फारस के कवियों से न तो उन्होंने कोई प्रभाव ग्रहण किया और न अपने काव्य में ही फारसी शायरी की झलक आने दी है।

आशा है इस ग्रंथ के अनुशीलन से रहीम-काव्य के अध्ययन को नई दिशा मिलेगी। मैं डा० अकिंचन का इस स्तुत्य कार्य के लिए साधुवाद देता हूँ। मुझे आशा है कि वे अपने अध्ययन को इसी प्रकार सतत बनाए रहेंगे और भविष्य में अन्य उपेक्षित कवियों के कृतित्व को भी आलोकित करेंगे।

—डॉ० विजयेन्द्र स्नातक
प्रोफेसर हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

विषयानुक्रमणिका

क्रम ख

४ रहीम दोहावली—एक विषयपरक विवेचन

५ रहीम क का य मे भावानुभूति तथा रस

६ नैतिक अनुभूति के तीन स्रोत—लोकतत्त्व भक्ति एव प्रकृति

क्रम | पृष्ठ

१

रहीम का जीवन

मा भारती के प्राचीन कवियों म प्राय अधिकाश का जीवन परिचय आज भी अधूरा है । सबस बडा कारण कदाचित् यह है कि वे अपने सम्बन्ध में कुछ भी लिखना आत्मश्लाघा सममत थे । समसामयिक अथवा परवर्ती विद्वाना के कथन भी जहा प्राप्त नही वहाँ समस्या और उग्र है । सौभाग्य स हमार चरित नायक के सम्बन्ध म इस प्रकार की कठिनाइयाँ उतनी नही हैं । इसके चार कारण हैं—

१ रहीम द्वारा लिखे गय कतिपय पत्र तथा उनके लिए लिख गये प्रत्युत्तर एव शाही फरमान प्राप्त हैं ।

२ आश्रित तथा अन्यान्य कविया द्वारा, उनके सम्बन्ध म लिखित फुटकर कविताएँ एव पूर्ण काव्य-कृतियाँ इधर उधर बिखरी मिल जाती हैं ।

३ उनक साथ युद्धादि म भाग लेन वाले व्यक्तिया, सम्राट अकबर क मुंशियो तथा विभिन्न प्रान्ता के समसामयिक लेखका के इतिहास सुरक्षित हैं ।

४ समसामयिक विद्वानो के अतिरिक्त परवर्ती लेखका क इतिहास भी विद्यमान हैं ।

इन चारा प्रकार की कृतिया मे रहीम के जीवन स सम्बन्धित उल्लेख यत्र-तत्र हुए हैं । किसी मे एक घटना का विवरण है किसी म दूसरी का । कभी कभी एक ही घटना को उनके सहयोगी एव विरोधी इतिहासकारा ने विभिन्न मूल्या के आधार पर भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से वर्णित किया है । अत   उनके द्वारा दी गई सामग्री मे स सत्य का वास्तविक अश खोज निकालना तथा इतस्तत बिखरी सामग्री का एक सूत्र म पिरो देना ही हमारी प्रमुख समस्या है । उसी के निराकरण स्वरूप रहीम की जो जीवनी तयार होती है, उसका सक्षिप्त परिचय यहा प्रस्तुत है—

नाम

हिन्दी जगत रहीम के नाम स चिर-परिचित है । उन्होने कविता म अपने लिए रहीम या रहिमन का प्रयोग किया है । यह उनके पिता द्वारा दिए गए 'अब्दुल रहीम नाम का लघु रूप है । फारसी भाषा के अनुसार अब्दुल रहीम कहने की अपेक्षा अब्दुर्रहीम कहना अधिक शुद्ध है । खानखाना जिसका अर्थ राजाओ का राजा या राजाधिराज होता है उनकी तथा उनके पिता की उपाधि थी, जो दोना को पृथक पृथक काल में, शौय प्रदर्शनादि के कारण प्राप्त हुई थी । आज यह उपाधि

उनके नाम का अविभाज्य अंग बन गई है। यही कारण है कि वे इतिहास एवं काव्य जगत में अब्दुर्रहीम खानखाना नाम से प्रख्यात हैं। खानखाना की उपाधि प्राप्त होने से पूर्व उनके नाम के पहले मिर्जा शब्द जोड़ा जाता था। यह भी उनके नाम का पूर्वांश था। चार वर्ष की अवस्था में जब रहीम को सम्राट अकबर के दरबार में लाया गया तब अकबर ने उनका नाम मिर्जा खाँ रख दिया था।[1] इतिहासकार इसी मिर्जा शब्द को बाद तक भी उनके नाम के साथ जोड़कर उन्हें मिर्जा अब्दुर्रहीम खानखाना कहकर पुकारते रहे।[2] अपने युग के सर्वाधिक धनी मानी सामंतों में से होने तथा दानादि में अपेक्षाकृत अधिक उदारता बनाये रखने के कारण लोग इन्हें नवाब या नव्वाब कहकर भी पुकारा करते थे। हिंदी के विद्वान प्रारम्भिक इतिहासों में रहीम के साथ नवाब शब्द जोड़ते रहे हैं।[3]

कुछ स्थानों पर ऐतिहासिकों ने मिर्जा अब्दुर्रहीम बैरम अथवा मिर्जा अब्दुर्रहीम इब्ने बैरम नाम का भी उल्लेख किया है। वस्तुतः यह टर्कोपर्शियन परिपाटी का अनुसरण है। इसके अनुसार नाम के साथ पिता का नाम भी इब्न (=पुत्र) लगाने के पश्चात् जोड़ दिया जाता है।[4] इस प्रकार रहीम के नाम के साथ पूर्वापर शब्दों को जोड़कर एक लम्बा नाम—नवाब मिर्जा अब्दुर्रहीम खानखाना बैरम (या इब्ने बैरम) बनता है। हिंदी साहित्य के विद्यार्थी होने के कारण हमें उनका छोटा सा नाम रहीम ही अधिक प्रिय है। इसी का प्रयोग हम अपनी पुस्तक में करेंगे।

रहीम के माता पिता

हुमायूं बादशाह की मृत्यु के समय जलालुद्दीन अकबर की आयु केवल तेरह वर्ष चार माह के लगभग थी। राज्य की सुरक्षा के लिए अकबर का राज्यारोहण तो अनिवार्य था किन्तु सवा तेरह वर्ष के कुमार के लिए राज्य संचालन एक प्रकार से असम्भव ही था। इसीलिए दिल्ली के अधिकारियों ने १४ फरवरी १५५६ को अकबर के नाम का खुतबा पढ़ने पर अतालीकी शासन की व्यवस्था कर दी थी।[5] इतिहास साक्षी है कि अतालीकी शासनकाल की भयंकर राजनैतिक परिस्थितियों के

१ अकबरनामा—अबुलफ़ज़्ल अल्लामी (अंग्रेजी अनुवाद १९०७) जिल्द २ पृ० २०४
२ आइने अकबरी—अबुल फज्ल अल्लामी (एच० ब्लाकमन कृत अंग्रेजी अनुवाद १९२७) पृ० ३५४
३ हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास—डा० सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन (अनुवाद किशोरीलाल गुप्त १९५७ वाराणसी) पृ० १०८
४ मुगलकालीन भारत—बाबर (अनु० सय्यद अतहर अब्बास रिजवी, अलीगढ़ १९६०) पृ० १८
५ अतालीक का अर्थ है राजकुमार का शिक्षक

बावजूद भी मुगल साम्राज्य ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी[1] और इसका श्रेय था अतालीक बैरमखां[2] खानखाना को। बैरम खां पहले से ही साम्राज्य के भक्त तथा हुमायूं के अंतरंग सखा थे।[3] वे युद्ध में अद्वितीय योद्धा, सभा में दूरदर्शी मन्त्री तथा सैर सपाटा आदि के समय कविता आदि द्वारा हुमायूं का मनोरंजन करने वाले मित्र थे। यह सत्य है कि भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डालने वाला बाबर था किन्तु उस राज्य को विस्तृत करने एवं दृढ बनाने का श्रेय बैरम खां को ही प्राप्त है। सच पूछिये तो हुमायूं की मृत्यु के पश्चात् कुछ काल तक भारत में उन्हीं का शासन चला। अकबर तो नाम मात्र का बादशाह था।

यही बैरम खां खानखाना रहीम के पिता थे। बैरम की रानियां तो कई थीं किन्तु सन्तान किसी से भी न थी। साठ वर्ष की बड़ी आयु में हुमायूं की इच्छा से बैरम ने अपना विवाह आधुनिक हरियाणा प्रान्त के (राजपूत कुटुम्ब से सद्य परिवर्तित) जमालखां मेवाती की सुन्दरी एवं गुणवती कन्या सुल्ताना बेगम से किया था। रहीम जैसे महान व्यक्ति को जन्म देने का श्रेय इसी महिला को प्राप्त है। यह उल्लेखनीय है कि रहीम की मां की सगी बड़ी बहन का विवाह सम्राट हुमायूं से हुआ था। इस रिश्ते ने हुमायूं तथा बैरम को एक दूसरे का साढू बना दिया था।

रहीम का जन्म— एक शुभ शकुन

हिजरी सन् ९६४ में बैरमखां का प्रताप अपने पूर्ण यौवन पर था। उन्होंने हेमू को पानीपत के द्वितीय युद्ध में पराजित करके समाप्त कर डाला था। अब वे इस ओर से निश्चिन्त थे। पारिवारिक निश्चिन्तता प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपनी गर्भवती बेगम तथा परिवार के अन्य सदस्यों को पहले ही लाहौर भेज दिया था। हेमू-दमन के पश्चात् वे राज्य के उत्तरी भाग में शान्ति स्थापित करने तथा सिकन्दर सूर के उत्पात को दबाने के लिए पंजाब की ओर चल पड़े थे। तभी लाहौर से आया हुआ यह शुभ समाचार प्राप्त हुआ कि खानखाना की पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया है। उनकी यह पत्नी मेवात के खान परिवार में से थी।

१ 'चार वर्ष तक बैरम खां अल्पवयस्क मुगल बादशाह का अतालीक रहा। इस समय के भीतर भीषण परिस्थितियों पर विजय ही प्राप्त नहीं हुई अपितु मुगल सेनाएं यथेष्ट आगे भी बढ़ सकीं। काबुल से जौनपुर तक उत्तरी पंजाब की पहाड़ियों से अजमेर तक, अकबर का प्रभुत्व मान्य हुआ। ग्वालियर जीत लिया गया और रणथम्भौर तथा मालवा जीतने के अनवरत् प्रयत्न किए गए। गक्कर भी मुगल बादशाह का प्रभुत्व मानने को विवश हुए। प्रकट है कि बैरम की शक्ति और शौर्य को सर्वोपरि पद प्राप्त था।" —मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन—डा० रामप्रसाद त्रिपाठी (अनुवाद कालिदास कपूर) पृ० १४३

२ बैरम का तुर्की भाषा में अर्थ है 'उत्सव'।

३ आइने अकबरी—पृ० ३३०

बालक का जन्म गुरुवार १७ दिसम्बर सन् १५५६ ई० को हुआ था। इस शिशु का नाम रखा गया अब्दुर्रहीम।[1] कृष्ण भट्ट ने खानखाना जन्म के अन्य सम्वत भी दिए हैं।[2] जन्म लग्न[3] देखकर बालक के अद्भुत उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएं प्रकट की गई थीं। अतः इस समाचार को बैरम की सेना ने एक महान शुभ शकुन के रूप मे ग्रहण किया। वृद्धावस्था मे पुत्र प्राप्त कर बैरम खां को कितना आनन्द हुआ होगा इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। अतः शाही दावतों के साथ हो मुक्त हस्त द्रव्य भी लुटाया गया था।

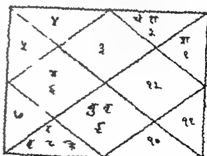
---

१ अकबर नामा भाग २, पृ० ७६

२ एक कृष्ण पण्डित का नाम आइने अकबरी मे भी आता है। ये रहीम खानखाना के आश्रित मालूम पड़ते हैं। उनके दिए सम्वत—
 (क) श्रीश्वेत वाराह कल्प प्रहृत यातान्द १६७२६४८६९७
 (ख) सृष्टितो गताब्दगण १८५५८८४६९७
 (ग) गत कलि ४६९७
 (घ) विक्रमस्य राज्याहताब्दगण १६१३
 (ङ) शालिवाहन शकाब्दा १४७८
 (च) प्रभु तुला गताब्द ३७२
 (छ) कन्या हगण ७२०६३६१४३६५६
 (ज) सृष्ट्यहगण ७१४४०९१२७८६६
 (झ) कलेरहगण १७०१२४२
 (ञ) प्रभुतुलाऽहगण १३५६०४
 खानखाना नामा—मुन्शी देवीप्रसाद (कलकत्ता, स० १९६६) पृ० १९०

३ मुंशी देवी प्रसाद जी ने अपनी खोज मे प्राप्त तीन जन्म कुण्डलियों को उद्धृत किया इनमे से पहली और तीसरी मे चार पहर का अन्तर है। कदाचित् यह अन्तर दिल्ली के पंचांग के कारण उपस्थित हुआ क्योंकि मुंशी जी के पास स० १६०५ से अद्यावधि पंचांग एकत्रित थे। ये पंचांग गुजरातादि में प्रचलित चण्डू ज्योतिषी (स० १५४० से १६२२ वि०) द्वारा प्रचारित पंचांग थे। उनकी गणना से अन्तर शुद्ध हो जाता है—

संवत् १६१३ शा० १४७८ मार्गशीर्ष शुक्ल १४ चन्द्रघ० १५ पल ३७ परतः पूर्णिमा कृत्तिका नक्षत्रे घ० २६/४६ शिव योगे घ० २४/२० इह दिवसे सूर्योदय गत घटी २८/१६ रात्रि गत घ० २/५५ मिथुन लग्ने लाभ पुरे खानखाना महाशया नाम जनिरभूता।
—वही, पृ० १२६



अनाथ रहीम और अकबरी दरबार

रहीम के जीवन मे चढाव उतार विधाता ने आरम्भ से ही लिख दिये थ। वे केवल चार वष के थे कि जीवन नभ पर विपत्ति की काली घटा घिर आई। राजनतिक उखाड पछाड के पश्चात, पूववन सम्मान प्राप्त करके बैरम खा हज करने के लिए मक्का जाते हुए गुजरात की राजधानी पाटन मे ठहरे और एक दिन महाराज जयसिंह द्वारा निर्मित प्रसिद्ध सहस्रलिंग सरोवर म नौका विहार के पश्चात् तट पर उतरे। तभी भेंट करने के बहाने आये हुए अफगान सरदार मुबारक खा लोहानी ने वृद्ध बैरम का वध कर दिया। यह घटना ३१ जनवरी, १५७१ की सध्या की है।[१] कहते है कि मुबारक ने, माछीवाडे के युद्ध म मरे[२] अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए ऐसा किया था।

बरम का सारा परिवार अनाथ हो गया। हत्यारो ने अत्यधिक लूट पाट की। किन्तु विधवा सुलताना बेगम, बडी कठिनाई से बाबा जम्बूर आदि कुछ स्वामिभक्त सेवको के साथ बचकर अहमदाबाद आ गइ। माग म अकबर का सदेश मिला और वह दरबार म आ गई। अकबर ने बडी उदारता से इन को शरण दी और रहीम के लिए कहा इसे सब प्रकार स प्रम न रखो। इसे यह पता न लगे कि खान बाबा सिर पर नही हैं। बाबा जम्बूर! यह हमारा बेटा है। इसे हमारी दृष्टि के सामने रखा करो।[३] आजाद साहिब ने अपने ग्रथ दरबारे अकबरी म इस घटना का बडा कारुणिक वणन किया है। आग तुक परिवार को अकबर ने सब प्रकार का सम्मान और सुख सुविधा प्रदान की। रहीम का पालन पोषण तो एकदम धम पुत्र की भाँति किया गया थोडे समय के पश्चात ही अकबर ने रहीम की युवती माता विधवा सुलताना बेगम से विवाह कर लिया था।[४] शीघ्र ही सम्राट ने रहीम को मिर्जा खा का खिताब देकर सम्मानित किया था।[५] उसकी शिक्षा दीक्षा भी अकबर की उदार धम निरपेक्ष नीति के अनुकूल ही हुई थी। कदाचित इसीलिए रहीम का काव्य आज भी हिन्दू जनता के गले का कण्ठ हार है। दिनकर जी ने उचित ही कहा है— अकबर ने दीन इलाही म हिन्दुत्व को जो स्थान दिया होगा, रहीम ने कविताओ म उसे उससे भी बडा स्थान दिया। प्रत्युत यह समझना अधिक उपयुक्त है कि रहीम ऐसे मुसलमान हुए हैं जो धम से मुसलमान और संस्कृति से शुद्ध

---

१ तारीखे फरिश्ता के अनुसार दुघटना का समय प्रात काल का था जबकि बदायूनी के अनुसार घटना साय को घटी। यही अधिक समीचीन ज्ञात होता है।

२ इसी युद्ध मे अफगानो को हराकर बैरम ने हुमायू से खानखाना का खिताब पाया था। —अकबर राहुल साकृत्यायन पृ० १७६

३ अकबरी दरबार—मो० आजाद (अनु० रामचन्द्र वर्मा, स० १९६३) पृ० २२५

४ कम्ब्रिज हिस्टी आफ इण्डिया खण्ड ६, स० रिचाड बन, पृ० ७८

५ अकबरनामा भाग २, पृ० २०४

भारतीय थे।"[1]

दुर्भाग्य से यह तथ्य स्पष्ट नहीं कि वह कौन स्वनाम धन्य व्यक्ति था जिसने रहीम को ऐसी शिक्षा दी कि वे अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत तथा हिन्दी आदि भाषाओं के जानकार ही नहीं, समर्थ कवि बन गये और साथ ही ज्योतिष, काव्य शास्त्र आदि पर भी अधिकार प्राप्त कर सके। रहीम की ऐतिहासिक जीवनी पर प्रामाणिक ग्रंथ प्रस्तुतकर्त्ता डा० समर बहादुर अलबरूनी तथा अमीर खुसरो के पश्चात भारतीय शास्त्रों तथा संस्कृत का विशद एवं सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन करने वाले मुसलमानों में मध्ययुग में तृतीय पण्डित रहीम को ही मानते हैं।[2] वैसे रहीम की माता भी विदुषी महिला थी। राजपूतों से परिवर्तित परिवार की होने के कारण वे उदार भी कम न थी। अतः रहीम की शिक्षा में उनका योगदान भी कम न रहा होगा किन्तु इतनी उच्च शिक्षा दीक्षा का प्रधान श्रेय, अकबर की उदार नीति का ही अधिक है चाहे वह कितनी ही राजनीति प्रेरित रही हो।

विवाह

राजनीतिक दृष्टि से, अकबर, उसके पिता तथा पितामह विवाह सम्बन्धों को विशेष महत्त्व देते थे। विवाह सम्बन्धों के कारण वे विरोधियों में मेल करा दिया करते थे। रहीम के विवाह के सम्बन्ध में भी यही चाल खेली गई। उनका विवाह, बैरम के विरोधी, मिर्जा अजीज कोका की बहन माहबानो से सम्पन्न कराकर अकबर ने भयंकर विरोध एवं विद्रूप को सदैव के लिए समाप्त कर दिया। विवाह प्रयत्न सफल रहा। विवाह कितनी आयु में हुआ यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता किन्तु १६ वर्ष की अवस्था तक रहीम का विवाह हो चुका था।[3]

प्रथम शौर्य

रहीम जन्म से ही कुशाग्र बुद्धि थे। अकबर उन्हें बड़े से बड़े काम सौंपता था तथा लोग यह देखकर आश्चर्यचकित रह जाते थे कि रहीम अपनी आयु और अनुभव की अपेक्षा कहीं अधिक कुशलता से उन कार्यों को सम्पन्न कर लेते थे। अगस्त १५७३ ई० में गुजरातियों ने जब सर उठाया तो अकबर ६०० मील की दूरी वायु वेग से पार करके केवल नौ दिन में वहाँ पहुँचा। इस अवसर पर उसने सेना के मध्य भाग का कमान देकर रहीम को गौरवान्वित किया। युद्ध संचालन का प्रथम क्रियात्मक अनुभव रहीम को यहाँ प्राप्त हुआ। विजयश्री मुगलों के हाथ रही और २ सितम्बर १५७३ को वह विद्रोह प्रबल पराक्रम के साथ दबा दिया गया। ५ अक्तूबर १५७३ को जब विजयी अकबर सीकरी (जिसका नाम इसी उपलक्ष्य में

---

१ भारतीय संस्कृति के चार अध्याय—डा० रामधारी सिंह दिनकर पृ० ३५९

२ अब्दुर्रहीम खानखाना—डा० समर बहादुरसिंह (प्र० सं०), पृ० १४

३ मआसिर उल उमरा—शाहनवाज खाँ—भाग २ (अनु० ब्रजरत्नदास, सम्वत १९९५), पृ० १८३

फतहपुर सीकरी कर दिया गया था) लौटा तो रहीम को बहुत बड़ा सम्मान प्राप्त हुआ। सम्मान के साथ ही रहीम को पर्याप्त धन और यश की प्राप्ति भी हो चुकी थी। बड़ी बात यह थी कि अल्हड़ तरुणाई में भी वे किसी दुर्व्यसन के शिकार न थे, जोकि इस युग के अमीरज़ादों का एक अनिवार्य दुर्भाग्य था। अकबर धन देकर लोगों की हरकतों का अध्ययन किया करता था।[1] रहीम इस अग्नि परीक्षा में भी खरे उतरे।

द्वितीय गौरव—गुजरात की सूबेदारी

गुजरात विजय के पश्चात रहीम ने तीन वर्ष, सरस्वती एवं लक्ष्मी की आराधना में एक साथ व्यतीत किये। सुख सम्मान एवं ऐश्वर्य का तो कहना ही क्या था। किन्तु समय आगे बढ़ा। गुजरात के प्रशासक खान आज़म को दरबार में बुला लिया गया। अतः वहाँ का स्थान रिक्त हो गया। धन जन की दृष्टि से यह प्रान्त अकबर के लिए कामधेनु था। राजा टोडरमल की १५७५ ई० की नवीन कर व्यवस्था के अनुसार इस राज्य से शाही खजाने में पचास लाख रुपये की वार्षिक रकम आया करती थी। अतः इस राज्य के प्रशासन के लिए सर्वाधिक योग्य और सब प्रकार से विश्वासपात्र व्यक्ति की आवश्यकता थी। अकबर ने खूब सोच विचार कर अपने प्रिय मिर्ज़ा खाँ का ही गुजरात की सूबेदारी के लिए चुना।

हल्दीघाटी के ऐतिहासिक युद्ध में

रहीम बहुत दिनों सूबेदारी न कर पाये क्योंकि सम्राट ने उसी वर्ष वीर केसरी राणा प्रताप को पराजित करने की योजना बनाकर अपने योग्यतम सरदारों को उसमें झोंक दिया था। वह रहीम को कुशल शासक से अधिक कुशल सेनापति बनाना चाहता था। अतः राणा के साथ जून १५७६ ई० के हल्दी के समान पीली मिट्टी की उस भयंकर घाटी में होने वाले ऐतिहासिक युद्ध के लिए रहीम को भी बुला लिया गया। कर्नल टाड के अनुसार केवल २२ हज़ार वीर राजपूत हल्दीघाटी की रक्षा करने के लिए उपस्थित थे किन्तु विशाल तोपखाना और बेशुमार शाही लश्कर भी उन पर नियन्त्रण न पा सका। हाँ बचे केवल आठ हज़ार रणबाँकुरे। इतने भीषण युद्ध का भी निर्णायक न देख, ४ अप्रैल, १५७८ को शाहबाज़खाँ के नेतृत्व में कोमलमेर के राजपूती दुर्ग पर भयंकर आक्रमण हुआ। किन्तु वीर राणा ने तब भी आत्म समर्पण न किया। रहीम सब य इस आक्रमण में थे। यहाँ 'कपी सुराही बरकी' इत्यादि जयशंकर प्रसाद की पंक्तियाँ बरबस याद आ जाती हैं। किन्तु इतना निश्चित है कि रहीम २१-२२ वर्ष की अवस्था में लगभग २ वर्ष उस वीर भूमि में रहे और उन्होंने अनुभवी मुगल सेनापतियों तथा अजेय राजपूतों से बहुत कुछ सीखते हुए, शाही सेना की विलक्षण सेवाएँ कीं। कहते हैं कि उदयपुर का इन्होंने ही जीता था।[2]

---

१ अकबरनामा भाग २ पृ० १६६

२ रहीम रत्नावली—प० मायाशंकर याज्ञिक, भूमिका भाग पृ० ५

मीरअर्ज का पद

अकबरी दरबार में कुछ ऐसे पद थे जो विशिष्ट अमीरों को ही दिये जाते थे। मीरअर्ज का पद भी उन्हीं में से था। मीरअर्ज के लिए आवश्यक था कि वह सम्राट तथा जनता दोनों का ही विश्वासपात्र हो। कारण उसे जनता की शिकायतें तथा अर्जियाँ सम्राट तक पहुँचा कर शाही निर्णय से जनता को अवगत कराना होता था। सम्राट बारी बारी से एक दो दिन के लिए किसी बड़े मीर को नियुक्त करते रहते थे किन्तु एक दो दिन में ही वह इतनी रिश्वत प्राप्त कर लेता था जिसका कुछ हिसाब नहीं। अतः इस पद का कार्य सुचारु रूप से न चलता देख सम्राट ने विश्वासपात्र एवं सच्चे अमीर रहीम को मुस्तकिल (स्थायी) मीरअर्ज नियुक्त कर दिया। दरबारी कुढ़ कुढ़कर रह गए किन्तु सम्राट की कृपा और योग्य रहीम की ईमानदारी, कोई कर ही क्या सकता था? यह घटना १५८० की है।

अजमेर की सूबेदारी

यह पद आराम का था किन्तु रहीम के भाग्य में—प्रत्येक कर्मठ व्यक्ति की भाँति—आराम था ही नहीं। तभी अजमेर के उपद्रव का समाचार आया। रहीम का नाम अकबर की जबान पर तथा काम उसके मन पर चढ़ा हुआ था। अकबर ने रहीम को ही अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया और रणथम्भौर का किला जागीर में देकर उन्हें अजमेर भेज दिया।[1] रणथम्भौर का किला बड़ी ऐतिहासिक किला है जिसे अकबर युद्ध में जय न होते देख राजा मानसिंह के साथ साटी उठाने वाले का वेश बदलकर गया था। इस तथ्य का विवरण मुसलमान इतिहासकारों ने तो नहीं कर्नल टाड तथा विन्सेंट स्मिथ महोदय ने विस्तृत रूप से दिया है।[2] उन्होंने बताया है कि बड़ी ही महंगी तथा नाममात्र की संधि की शर्तों में अकबर ने लगभग दस वर्ष पूर्व यह किला प्राप्त किया था। विद्रोह भयानक हो सकता था। अतः अकबर ने अपने सबसे योग्य सरदार रहीम को इस कार्य के लिए चुना। रहीम विश्वास के अनुकूल सिद्ध हुए उन्होंने एक वर्ष ही में स्थिति पर प्रायः पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त कर लिया।

शहजादा सलीम के अतालीक

शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से प्राप्त संतान का न केवल नाम सलीम रखा गया था अपितु उसे प्यार में शेखू बाबा भी कहा जाता था।[3] सुलताना सलीमा बेगम हमीदा बानो तथा स्वयं सम्राट के अतिशय दुलार के कारण सलीम शिक्षा के प्रति उदासीन तथा ढीठ हो गया था। मीरकलां शेर अहमद कुतुबुद्दीन अतगा यहाँ तक कि अबुलफजल जैसे विद्वान भी राजकुमार के प्रशिक्षण में असफल सिद्ध हुये थे। अकबर का यह स्वभाव बन गया था कि जो कार्य किसी से न सुलझता उसे रहीम को सौंपा करता था। अतः बारह वर्षीय राजकुमार के प्रशिक्षण

१ अकबरनामा, भाग ३ पृ० ४८०

२ अकबर द ग्रेट मुगल—विन्सेन्ट स्मिथ (१९५८) पृ० ७० ३१

३ आईने अकबरी पृ० ३२२ है

के लिए भी उसकी दृष्टि रहीम पर पड़ी। निश्चित ही उस समय तक रहीम ने अपनी योग्यता, शास्त्र ज्ञान तथा कतिपय रचनाओं से सम्राट को प्रभावित कर लिया होगा। सत्ताइस वर्षीय नवयुवक रहीम यह गौरव प्राप्त कर, कृतकृत्य हो गए।[1] अकबर ने रहीम ही नहीं उनकी बेगम तक को कीमती पोशाक उपहार के रूप में दी। रहीम की रक्षा करने वाले बैरम के वफादार मवका को भी इस अवसर पर विशेष रूप से पुरस्कृत किया गया।[2] रहीम ने भी सम्राट के सम्मान में एक अभूतपूर्व भोज का आयोजन किया।

दरबारे अकबरी में लिखा है कि बादशाह भी वहाँ पधारे। पानी को घर सना, नदी का बहना और करम के लड़के का उभरता कौन सिखावे। उसने किले से लेकर अपने घर तक चाँदी सोने के फूल लुटाये। जब घर पास आया तब मोती बरसाये। पर पोंछने की जगह मखमल और जरी के काम के कपड़े बिछाये। घर में सवा लाख रुपये का चबूतरा बनाया। उस पर बादशाह को बैठाकर भेंट दी। वह चबूतरा लुटवा दिया। अमीरों को भी उनके पद और मर्यादा के अनुसार अनेक विलक्षण पदार्थ भेंट करके प्रसन्न किया और सब काम करके स्वयं प्रसन्न हुआ।[3]

अतावेग का पद

अतालीक (राजकुमार के शिक्षक) का कार्य उत्तरदायित्वपूर्ण होते हुए भी, आराम का था। सम्राट भी यह जानते थे। अतः अकबर ने एक अन्य उच्च पद का भार रहीम को सौंप दिया। इसका अधिकारी उस समय अतावेग कहलाता था। लोग अतावेगी को बहुत बड़े गौरव का पद मानते थे। इस पद पर नियुक्त व्यक्ति को शाही घोड़ों की व्यवस्था तथा अस्तबल की देख रेख करनी होती थी।[4] दोनों पदों पर कार्य करते हुए भी रहीम आराम से रह सकते थे किन्तु वह समय आराम का न था। उदार धर्म भावना तथा सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण अकबर ने कट्टर हिन्दू तथा कट्टर मुसलमान दोनों को फटकारें बताई थी।[5] साथ ही फिरंगी मिशन भी असंतुष्ट हो गया था।[6] इस कारण जनता में एक अनभिवाञ्छित धार्मिक विक्षोभ उत्पन्न हो गया था। अतः अधिकारी वर्ग को बड़ी सावधानी से कार्य करना पड़ रहा था। तभी जेल से भागे हुए मुजफ्फर द्वारा ४ अप्रैल १५८३ को गुजरात जीतकर, वहाँ की राजधानी अहमदाबाद को अपने अधिकार में कर लेने का दुखद समाचार मिला। अकबर की दृष्टि पुनः रहीम पर गई और उसे २२ सितम्बर १५८३ के दिन सेनापति बनाकर गुजरात विजय के लिए रवाना कर दिया गया।

---

१ आइने अकबरी पृ० ३५८ तथा मआसिर उल उमरा प० १८३
२ अकबरनामा, भाग ३ प० ५८३
३ अकबरीदरबार भाग ३ प० २४५
४ अकबरनामा भाग ३ प० ५८५
५ मुंतखबुत्तवारीख—नूरुल हक (इलियट भाग ६) पृ० १८२
६ अकबर द ग्रेट मुगल—वि सेन्ट स्मिथ, प० १४८

खानखाना की उपाधि

रहीम ने मार्ग में अनेक अशुभ समाचार सुने। वह सब का सामना करता रहा। ३१ दिसम्बर को पाटन पहुँचने पर सरदारों ने उसे बहुत अधिक हतोत्साहित किया किन्तु वह उत्साही नवयुवक बिना किसी की चिन्ता किए, १६ जनवरी १५८३ को अहमदाबाद के निकट सरखेज के मैदान में आ डटा। उस समय शाही सेना कुल दस सहस्र थी जबकि मुजफ्फर के पास चालीस सहस्र सवार थे।[1] और दाम र दौलत खाँ लोदी आदि से मन्त्रणा करके उसने प्रधान काम जो करना था। [illegible] अवसर समझा और जिस रण-कौशल का परिचय दिया[2] वह परम वीर रहीम के ही योग्य था। चौगुनी सेना रखते हुए भी मुजफ्फर बुरी तरह से हार कर खम्भात की ओर भाग गया। विजय पर अहमदाबाद निवासियों ने दीपावली मनाई तथा रहीम ने युद्ध के स्थान पर एक बहुत बड़ा उद्यान लगवाया जिसका नाम रखा 'फतहबाग'। इसी विजय के उपलक्ष में, रहीम ने अपनी जितनी भी सम्पत्ति थी यहाँ तक अपना उसके मूल्य का द्रव्य दीन दुखियों को दान कर दिया[3]—जाकर गहन खजाना कौन? तलवार के पानी के साथ उसकी उदारता का गुण भी चारों ओर फैल गया। खड्ग से आग बरसाने वाली रहीम की भुजा को कल्पवृक्ष बनाने वाली मुकुन्द कवि की पंक्तियों का उल्लेख यहाँ अप्रासंगिक न होगा—

> कमल पीठ पर कोस कोस पर फन फनिंद फन।
> फन पति फन पर पहुमि पहुमि पर दिगज दीप गन॥
> सप्त द्वीप पर दीप एक जम्बु जग सिरिदय।
> कवि मुकुन्द तह भरत खण्ड उप्परहि विसिसिदय॥
> खानखाना बैरम तनय तिहि पर सुभ भुम कल्पतरु।
> जगमगहिं खग्ग भुज अग्ग पर, खग्ग अग्ग स्वामित्त वरु॥[4]

मुजफ्फर हार तो गया किन्तु उसने हिम्मत न छोड़ी और लूट के धन के बल पर फिर प्रायः उतनी ही सेना एकत्रित कर ली। नादौत में दोनों दलों में पुनः भयंकर मुठभेड़ हुई—एकहि एक सकहि नहिं जीता।— किन्तु रहीम के भाग्य ने उस का साथ दिया। उसकी दूरदर्शिता तथा विजय में हाथियों की पीठ पर लदी बन्दूकों ने मुजफ्फर को भागने पर विवश कर दिया।[5] उसके लगभग ५०० सैनिक[6] पकड़े गए। अधिकांश ने क्षमा माँग कर रहीम की सेना में स्थान प्राप्त किया। अकबर

---

१ आइने अकबरी पृ० ३५४

२ विशेष विवरण के लिए देखिए—अब्दुर्रहीम खानखाना—डा० समर बहादुरसिंह पृ० ४१ से ४७ तक

३ मआसिर उल उमरा पृ० १८४

४ रहीम रत्नावली—पं० मायाशंकर याज्ञिक पृ० ८७ से उद्धृत।

५ विस्तार के लिए देखिए अकबरनामा भाग ३, पृ० ६४२ ६४३

६ खानखाना नामा—मुन्शी देवीप्रसाद भाग २ पृ० १५

ने फतहपुर सीकरी में जब पहली के पश्चात् दूसरी विजय का समाचार सुना तो प्रसन्नता से नाच उठा। उसने अनेक वीरों की पदोन्नति के फरमान जारी किए। रहीम का मनसब पचहजारी कर दिया गया। यही मुगल सरदारों की उन्नति की चरमसीमा थी। केवल अट्ठाइस वर्ष की कम आयु में पचहजारी बनने वाला कदाचित यह सबसे पहला सरदार था। इतना ही नहीं अकबर ने रहीम को वही उपाधि दी जो उसके पिता को वृद्धावस्था में प्राप्त हुई थी। अब रहीम खानखाना हो गये।[1] बेटा बाप से आगे निकल गया।

शत्रु का जोश ठण्डा पड़ गया था। किन्तु युद्धों के कारण गुजरात प्रांत की दशा खराब हो चुकी थी। अतः रहीम गुजरात की शासन-व्यवस्था में व्यस्त हो गये। किन्तु खजाना प्राप्त होने पर वे अगस्त १५८५ में अकबर के दरबार में उपस्थित हुए जहां उनका विशेष सम्मान स्वाभाविक था। दोनों ओर से उपहारों का भारी आदान-प्रदान हुआ। किन्तु मुजफ्फर छुट-पुट शरारत करता रहता था। अतः खानखाना को पुनः गुजरात भेज दिया गया जहां उसने शान्तिपूर्वक शासन-व्यवस्था ठीक की। इसी बीच उसे अपने दरबारी कलाकारों के सम्पर्क में आने का अच्छा अवसर मिला। इस समय उसने स्वयं भी साहित्य सृजन किया होगा और साहित्यिक क्रिया-कलापों में अपने अवकाश को लगाया होगा।

सम्राट के साथ काश्मीर परिभ्रमण

अकबर के हृदय में काश्मीर भ्रमण की ललक बहुत पहले से थी। अनुकूल अवसर पाकर योजना बनाई गई। रहीम को साथ लेने का निश्चय हुआ। अकबर का परिवार भी साथ रहना था। सलीम स्वयं तो सम्राट से जा मिला किन्तु हरम की बेगमें इतनी शीघ्रता से न पहुँच सकीं। उन्हें प्राप्त करने के लिए अकबर उतावला था। किन्तु उन तंग पहाड़ी रास्तों पर डोलियां का आगे बढ़ना आसान कार्य न था। यह कार्य भी रहीम ही ने पूरा कराया। उस सुरम्य घाटी में अपने हरम की सुन्दरियों को पाकर अकबर रहीम का बड़ा उपकृत हुआ। इस कार्य के लिए रहीम ने सम्राट से सराहना ही नहीं पुरस्कार भी प्राप्त किये। लगभग एक मास तक प्रकृति की इस सुन्दर लीला भूमि का आनन्द लेकर अकबर काबुल की ओर बढ़ गया। इस यात्रा में उसके दो हीरे टूट गये। इनमें पहले स्वर्ग सिधारने वाला था टोडरमल और दूसरा था भगवानदास।[2]

रहीम जैसे सहृदय व्यक्ति ने शाह के इस अवसर पर कुछ अवश्य लिखा होगा साथ ही काश्मीर सुषमा पर भी वे कुछ न कुछ लिखते रहे होंगे। दुर्भाग्य है कि उनमें से आज कुछ भी प्राप्त नहीं। वैसे कोई बड़ा ग्रन्थ तो उन दिनों रहीम नहीं

---

१ आइने अकबरी पृ० ३५८

२ कम्ब्रिज शार्टर हिस्ट्री आफ इण्डिया— जे० एलन, पृ० २६०

लिख सकते थे क्योंकि सिद्धहस्त साहित्यकार[१] संगीतकार[२] तथा मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर ने तुर्की ग्रंथ तुज्के बाबरी के फारसी अनुवाद में व्यस्त थे। पूरा होने पर ग्रंथ को भेंट करने के लिए उन्होंने बाबर के जीवन से सम्बन्धित एक ऐतिहासिक स्थान बारीक ग्राम को चुना। १५२५ ई० में हिन्दुस्तान आते समय बाबर इस स्थान पर ही ठहरा था।[३] खानखाना ने तुज्के बाबरी का यह अनुवाद अबुल फज्ल के अकबर नामा के लिए सम्राट अकबर की आज्ञा से बड़ी सावधानी योग्यता एवं परिश्रमपूर्वक तैयार किया था।[४] मुंशी देवीप्रसाद ने अकबर के काबुल से लौटने तथा अनुवाद स्वीकार करने की तिथि मगसिर बदी १३ सम्वत् १६४६ दी है।[५] कहने की आवश्यकता नहीं अकबर इस अनुवाद को प्राप्त कर असीम प्रसन्न हुआ था और इस दुष्कर कार्य के लिए उसे सभी ओर से प्रशंसा प्राप्त हुई थी।

मुगल दरबार का उच्चतम पद

वकील मुतलक' मुगल दरबार का उच्चतम पद था। 'साम्राज्य के सर्वप्रथम वकाल हान का गौरव खानखाना के पिता बैरम खाँ को प्राप्त था।[६] टोडरमल के स्वर्गवास के कारण वह पद रिक्त था। रहीम का भाग्य उस समय जोरों पर था। सम्राट ने उस पर भी रहीम को ही नियुक्त किया और अहमदाबाद के बजाय जौनपुर की जागीर दी। रहीम को इस उच्चतम आसन पर लगभग एक वर्ष तक बैठने का सुअवसर मिला। १५९० ई० के अन्त में परिस्थितियों का लाभ उठाकर अकबर ने कंधार को अधिकार में करना चाहा। इस योजना का नायक भी उसने रहीम को ही बनाने का निश्चय किया।

---

१ बाबर प्राकृतिक दृश्यों का बड़ा प्रेमी था। उसकी कवित्व शक्ति बहुत कुछ इसी प्रकृति प्रेम के कारण थी। उसकी बुद्धि प्रखर तथा कल्पना शक्ति उच्च थी। उसने तुर्की भाषा का एक दीवान भी लिखा था। उसकी कविताएं उच्च और भावपूर्ण हैं। वह तुर्की फारसी दोनों भाषाएं अच्छी तरह और बड़ी सरलता से लिख सकता था। एक बार उसने हुमायूं को असावधानी से लिखने पर डांटा भी था। —मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास—डा० ईश्वरी प्रसाद (प्रयाग १९५७) पृ० २८०

२ बाबर संगीत प्रेमी था वह थोड़ा बहुत गा भी लेता था। परंतु गीत लिखना तथा उपयुक्त ताल स्वर में बैठाना उसे अधिक रुचिकर था। वह स्वीकार करता है कि कभी कभी गीत लिखने को उतावला हो जाता था।
—मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन डा० रामप्रसाद त्रिपाठी पृ० ४६

३ मुगलकालीन भारत—बाबर (अनु० सय्यद अतहर अब्बास रिज़वी) पृ० १८

४ वही पृ० १९

५ खानखाना नामा—मुंशी देवीप्रसाद भाग २ पृ० २१

६ अब्दुर्रहीम खानखाना डा० समर बहादुरसिंह पृ० ७९

इस प्रकार मार्च १५८७ से दिसम्बर १५९० तक का लगभग पौने तीन वर्ष का समय, खानखाना के लिए मान सम्मान, शान्ति एवं सुख की दृष्टि से अद्वितीय था। इस बीच उन्होंने तुज्के बाबरी का अनुवाद तो किया ही, हिन्दी के अन्य ग्रंथों की रचना भी की। अकबर के राज्य का शान्ति काल, अनेक भाषाविदों का निकट सम्पर्क, कवियों लेखकों तथा संगीतज्ञों की संगति आदि एवं सुखी जीवन और सबसे बढ़कर उनकी काव्य प्रतिभा—ये सब ऐसी परिस्थितियाँ थीं कि जिनमें रहीम क्या कोई भी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति अच्छी कृति समाज को दे सकता है। रहीम के साहित्यिक जीवन में भी यह समय अद्वितीय सिद्ध हुआ।

सिन्ध विजय

मआसिर उल उमरा के यशस्वी लेखक ने रहीम के वकील होने के साथ ही, उससे अगली घटनाओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि, "छत्तीसवें वर्ष में इसे मुलतान जागीर में मिला और ठट्टा तथा सिन्ध के प्रान्त विजय करने का इसने निश्चय किया। शेख फैजी ने कस्द ठट्टा से इसकी तारीख निकाली।"[1] इस उद्धरण में अंतिम शब्द बड़े महत्व के हैं। यहां सिन्ध विजय के रहीम के निश्चय का वर्णन है अकबर की आज्ञा का नहीं। वस्तुतः अकबर की आज्ञा कंधार विजय करने की थी। और इसी के लिए रहीम के सेनापतित्व में लश्कर ने लाहौर से कंधार को ४ जनवरी, १५९० को कूच भी कर दिया था। किन्तु खानखाना अकबर की इच्छा के विपरीत कंधार से पूर्व ठट्टा लेना चाहते थे। ऐसा क्यों? यह एक ऐतिहासिक गुत्थी है जिसका रहस्य अबुलफज्ल और खानखाना के बीच हुए पत्र-व्यवहार को देखने से समझ में आता है।

अबुलफज्ल सम्राट अकबर के हिज मास्टर्स वायस थे। अतः वे शाही फरमानों में ही नहीं अपितु अपने व्यक्तिगत पत्रों में भी खानखाना को कंधार विजय के लिए प्रेरित कर रहे थे। बार बार वही बात कह जाने पर रहीम ने स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखा था— कंधार का केवल नाम ही मीठा है। वह भूखा देश है। वहाँ लाभ कुछ भी नहीं पर हां, खर्च बहुत है। इतना खर्च है कि जिसका कोई हिसाब नहीं है। मैं भूखा हूँ। मेरे सिपाही भूखे हैं। यदि मैं वहाँ खाली जेब लेकर जाऊँगा तो करूँगा क्या? हां, जब मुलतान, सक्खर और ठट्टा तक सारे सिंध देश में अकबर के नाम का नगाड़ा बजेगा और समुद्र का किनारा अकबर के अधिकार में आजायेगा तब कंधार भी आप से आप हाथ में आजाएगा।[2]

खानखाना की बात बड़ी पुष्ट थी। अतः सम्राट ने भी बाद को ठट्टा पर अधिकार करने की आज्ञा दे दी थी। स्वामी के अनुकूल होते ही रहीम ने इस फुर्ती और दक्षता से कार्य किया कि शत्रु को मौका न मिल पाया और उनकी जम सामरिक महत्व के स्थान पर बिना किसी रक्तपात के तुरन्त अधिकार हो गया। लकड़ी इस

१ मआसिर उल उमरा भाग २, पृ० १८५

२ अकबरी दरबार भाग ३, पृ० २९७

लिख सकते थे क्योंकि सिद्धहस्त साहित्यकार,[1] संगीतकार[2] तथा मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर के तुर्की ग्रंथ तुजुक बाबरी के फारसी अनुवाद में व्यस्त थे। पूरा होने पर ग्रंथ को भेंट करने के लिए उन्होंने बाबर के जीवन में महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक स्थान बारीक ग्राम को चुना। १५२८ ई० में हिन्दुस्तान आते समय बाबर इस स्थान पर ही ठहरा था।[3] खानखाना ने तुजुक बाबरी का यह अनुवाद अबुल फज्ल के अकबर नामा के लिए सम्राट अकबर की आज्ञा से बड़ी सावधानी, गम्भीरता एवं परिश्रमपूर्वक तैयार किया था।[4] मुंशी देवीप्रसाद ने अकबर के काबुल से लौटने तथा अनुवाद स्वीकार करने की तिथि मगसिर बदी १३ संवत् १६४६ दी है।[5] कहने की आवश्यकता नहीं, अकबर इस अनुवाद को प्राप्त कर अतीव प्रसन्न हुआ था और इस दुस्तर कार्य के लिए उसे सभी ओर से प्रशंसा प्राप्त हुई थी।

मुगल दरबार का उच्चतम पद

वकील मुतलक मुगल दरबार का उच्चतम पद था। साम्राज्य के सर्वप्रथम वकील होने का गौरव खानखाना के पिता बैरम खाँ को प्राप्त था।[1] टोडरमल के स्वर्गवास के कारण यह पद रिक्त था। रहीम का भाग्य उस समय जोरों पर था। सम्राट ने उस पद पर भी रहीम को ही नियुक्त किया और शहाबुद्दीन के बजाय जौनपुर की जागीर दी। रहीम को इस उच्चतम आसन पर लगभग एक वर्ष तक बैठने का सुअवसर मिला। १५९० ई० के अन्त में परिस्थितियों का लाभ उठाकर अकबर ने वकील पद का अधिकार अपने में करना चाहा। इस योजना का नायक भी उसने रहीम को ही बनाने का निश्चय किया।

---

१ बाबर प्राकृतिक दृश्यों का बड़ा प्रेमी था। उसकी कवित्व शक्ति बहुत कुछ इसी प्रकृति प्रेम के कारण थी। उसकी बुद्धि प्रखर तथा कल्पना शक्ति उच्च थी। उसने तुर्की भाषा का एक दीवान भी लिखा था। उसकी कविताएं उच्च और भावपूर्ण हैं। वह तुर्की, फारसी दोनों भाषाएं अच्छी तरह और बड़ी सरलता से लिख सकता था। एक बार उसने हुमायूं को असावधानी से लिखने पर डांटा भी था। —मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास—डा० ईश्वरी प्रसाद (प्रयाग १९५७) पृ० २८०

२ बाबर संगीत प्रेमी था वह थोड़ा बहुत गा भी लेता था। परन्तु गीत लिखना तथा उपयुक्त ताल स्वर में बैठाना उसे अधिक रुचिकर था। वह स्वीकार करता है कि कभी कभी गीत लिखने को उतावला हो जाता था। —मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन डा० रामप्रसाद त्रिपाठी पृ० ४६

३ मुगलकालीन भारत—बाबर (अनु० सय्यद अतहर अब्बास रिजवी) पृ० १८

४ वही पृ० १९

५ खानखाना नामा—मुंशी देवीप्रसाद भाग २ पृ० २१

६ अब्दुर्रहीम खानखाना डा० समर बहादुरसिंह पृ० ७९

इस प्रकार मार्च १५८७ से दिसम्बर १५९० तक का लगभग पौने तीन वर्ष का समय, खानखाना के लिए मान सम्मान, शांति एवं सुख की दृष्टि से अद्वितीय था। इस बीच उन्होंने तुज्के बाबरी का अनुवाद तो किया ही, हिंदी के ग्रंथ ग्रंथों की रचना भी की। अकबर के राज्य का शांति काल, अनेक भाषाविदों का निकट सम्पर्क, कवियों लेखकों तथा संगीतज्ञों की संगति, शांत एवं सुखी जीवन और सबसे बढ़कर उनकी काव्य प्रतिभा—ये सब ऐसी परिस्थितियाँ थी कि जिनमें रहीम क्या, कोई भी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति अच्छी कृति समाज को दे सकता है। रहीम के साहित्यिक जीवन में भी यह समय अद्वितीय सिद्ध हुआ।

सिन्ध विजय

मआसिर उल उमरा के यशस्वी लेखक ने रहीम के वकील होने के साथ ही, उसमें मुगली पन्नाओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि, "छत्तीसवें वर्ष में इसे मुलतान जागीर में मिला और ठट्टा तथा सिंध के प्रांत विजय करने का इसने निश्चय किया। शेख फैजी ने कस्द ठट्टा में इसकी तारीख निकाली।"[1] इस उद्धरण में अंतिम शब्द बड़े महत्व के हैं। यहाँ सिंध विजय के, रहीम के निश्चय का वर्णन है, अकबर की आज्ञा का नहीं। वस्तुतः अकबर की आज्ञा कंधार विजय करने की थी। और इसी के लिए रहीम के सेनापतित्व में लश्कर ने लाहौर से कंधार को ८ जनवरी, १५९० को कूच भी कर दिया था। किंतु खानखाना अकबर की इच्छा के विपरीत कंधार से पूर्व ठट्टा लेना चाहते थे। ऐसा क्यों? यह एक ऐतिहासिक गुत्थी है, जिसका रहस्य अबुलफज्ल और खानखाना के बीच हुए पत्र व्यवहार को देखने से समझ में आता है।

अबुलफज्ल सम्राट अकबर के हिज मास्टर्स वायस थे। अतः वे शाही फरमानों में ही नहीं अपितु अपने व्यक्तिगत पत्रों में भी खानखाना को कंधार विजय के लिए प्रेरित कर रहे थे। बार बार यही बात कहे जाने पर रहीम ने स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखा था— कंधार का केवल नाम ही मीठा है। वह भूखा देश है। वहाँ लाभ कुछ भी नहीं, पर हाँ खर्च बहुत है। इतना खर्च है कि, जिसका कोई हिसाब नहीं है। मैं भूखा हूँ। मेरे सिपाही भूखे हैं। यदि मैं वहाँ खाली जब लेकर आऊँगा तो करूँगा क्या? हाँ, जब मुलतान, सक्खर और ठट्टा तक सारे सिंध देश में अकबर के नाम का नगाड़ा बजेगा और समुद्र का किनारा अकबर के अधिकार में आ जायगा, तब कंधार भी आप से आप हाथ में आ जाएगा।[2]

खानखाना की बात बड़ी पुष्ट थी। अन्त सम्राट ने भी बाद को ठट्टा पर अधिकार करने की आज्ञा दे दी थी। स्वामी के अनुकूल होते ही रहीम ने इस फुर्ती और दक्षता से कार्य किया कि शत्रु को मौका न मिल पाया और लक्की जैसे सामरिक महत्व के स्थान पर बिना किसी रक्त पात के तुरंत अधिकार हो गया। लक्की इस

१ मआसिर उल उमरा, भाग २, पृ० १८५

२ अकबरी दरबार भाग ३, पृ० २६७

प्रान्त की कुंजी उसी प्रकार समझी जाती थी जिस प्रकार कंधार को गांधार और काश्मीर की बारहमूला। ... पर ठट्टा के शासक मिर्जा जानी बेग से जबरदस्त युद्ध हुआ और ... पार घमासान युद्ध में उतरा। उसने शक्ति का ... भी रसद की कमी के कारण परेशान थे। ... शक्ति में ... प्रकार ... कर लिया।[1]

दोनों पक्षों के सम्मिलित उत्सव पर खानखाना के दरबारी कवि मुल्ला शकेबी ने मसनवी लिखी जिसकी दो पंक्तियाँ यह उद्धृत हैं—

हुमाए कि बर चर्ख कर्द ई खिराम।
गिरफ्तो वो आजाद कर्द ई मुदाम॥

अर्थात् हुमा पक्षी (मि० जानी) जो आकाश में अमन्त्रणापूर्वक विहार कर रहा था उसे (रहीम ने) पकड़ा और फिर जाल से मुक्त कर दिया। खानखाना ने मुल्ला शकेबी की काव्य रचना तथा उसके शौर्य पर रीझ कर उसे एक हजार अशर्फियाँ दी ही यहीं उपस्थित स्वयं मिर्जा जानी ने भी उसको हजार अशर्फियाँ कवि को पुरस्कार में दीं। मिर्जा जानी ने पुरस्कार प्रदान करते हुए कहा— शुक्र का कुछ है कि तुमने मुझे हुमा बनाया यदि उल्लू कहते तो मैं कौन तुम्हें रोक सकता था।[2]

३७वीं राज्यवर्षी दरबार लाहौर में ११ मार्च १५९० को हुआ था। अतः खानखाना की सिंध विजय का यही अंत समझना चाहिए। ठट्टा की विजय मुगल साम्राज्य की प्रसिद्ध विजय थी।[3] इतिहासकारों के साथ ही कवियों ने भी ठट्टा विजय का उल्लेख गौरवपूर्ण ढंग से किया है—

नगर ठट्टा की राजधानी धूरि धानी कीन्ही
धरक्यो खधारो खानखानो ना हलक में।
छाड़े हैं तुखार औ तुखार न उपार भरे
उजबक उजर के गयो है पलक में।
पौरि पौरि पैर सेर ठौरि ठौरि दई
खानखाना ध्याये तो अवाज है खलक में।
पिय भाजे तिय छाडि तिया करें पीउ पीउ
बाबा बाबा बिल्लात बालक बलक में।

रहीम रत्नावली

१ आइने अकबरी पृ० ३५६

२ मआसिर उल उमरा भाग २ पृ० १८५

३ युद्ध के विस्तृत वर्णन तथा उसके आधार ग्रंथों के लिए देखिए—अब्दुर्रहीम खानखाना—डॉ० समर बहादुरसिंह अध्याय तीन तथा पृ० ९७ की पाद टिप्पणी

उत्तर के पश्चात दक्षिण

तृष्णा का कभी अंत नहीं होता। यद्यपि बंगाल, उड़ीसा, पंजाब सिंध तथा गुजरात आदि उत्तर पूर्व तथा पश्चिम के सभी भाग अकबर के अधिकार में आ गए थे परन्तु अभी दक्षिण शेष था। इस प्रदेश की स्वतन्त्रता सम्राट की आंखों में पहले से ही खटकती थी। इसके अतिरिक्त बरार, बीदर अहमदनगर, बीजापुर तथा गोलकुण्डा इत्यादि रियासतों[1] वाला दक्षिण प्रदेश आर्थिक दृष्टि से भी पर्याप्त लाभ का क्षेत्र था। अतः सिंध इत्यादि से अवकाश प्राप्त कर उसने अपना समूचा ध्यान दक्षिण की ओर केन्द्रित किया। राजकुमार दानियाल को विशाल सेना लेकर दक्षिण की ओर जाने की आज्ञा दी गई।

स्पष्ट हो चुका है कि अकबर का हार्दिक विश्वास रहीम पर था। राजकुमार यम भी अनुभवहीन था। अतः कुछ ही दिन पश्चात् उसने आज्ञा दी कि दक्षिण का कूच करने निमित्त अग्रसर शाही सेना रहीम के आधीन समझी जाय और रहीम तुरन्त आवश्यक सामग्री के साथ दक्षिण की ओर अग्रसर हो। सम्राट ने यहां तक आज्ञा दे दी कि दक्षिण विजय के लिए रहीम जितना चाहे उतना धन आगरे के राजकोष से निकलवा लें।[2]

रहीम मालवा होते हुए खान देश पहुँचे और वहां के राजा अलीखां को बड़ी कूटनीति से साम्राज्य के अधीन बना लिया और बाद को अहमदनगर के गढ़ का घेरा डाल दिया। इस गढ़ की शासिका अनुपम वीरांगना तथा सदाचारिणी महिला चांद बीबी थी जो नादिरत उल जमानी अर्थात् संसार में अपने जमाने की अद्वितीय स्त्री कहलाती थी। सारा दक्षिण उसकी सहायता के लिए प्रस्तुत था। खानखाना इस स्थिति से भयभीत न हुए और भरपूर हमले बोलकर किले की लगभग पचास गज लम्बी दीवार बारूद से उड़ा दी। किन्तु कमाल का था सुलताना का साहस और शौर्य। उसने रात ही रात में किले की प्राचीर के टूटे भाग को कंकड़ पत्थर यहां तक कि मुर्दों की लाशों से पूरा करा लिया। मुगल इस असाधारण वीरता से चकित रह गये।[3] निरन्तर दो महीने तक घेरा पड़ा रहा। दोनों पक्ष भीषण मारकाट तथा खाद्यान्न के अत्यधिक अभाव से परेशान हो चुके थे। अतः सन्धि हो गई जिसके फलस्वरूप बरार का प्रान्त साम्राज्य को मिल गया।

आष्टी का अविस्मरणीय युद्ध

मातमिदुद्दौला दक्षिण की अविजेय शक्ति बन चुका था। उसने शक्तिशाली तोपखाना तथा विशाल लश्कर एकत्रित कर लिया था। क्योंकि मुगलों की विजय

१ ये रियासतें १५वीं शताब्दी के अन्त तथा १६वीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में हिन्दू धर्म से परिवर्तित हुए मुसलमानों तथा उनकी सन्तानों द्वारा शासित रहीं। विशेष अध्ययन के लिए देखिए इलियट का इतिहास खण्ड २ (लन्दन १८७३), पृ० १८४

२ मआसिरे रहीमी—इलियट भाग ६ पृ० २४०

३ तारीखे फरिश्ता, भाग २ पृ० १६१ तथा अकबरनामा, भाग ३, पृ० १०४७-४८

का अथ था दक्षिणियों के स्वत्व की समाप्ति। अत वे निर्णायक युद्ध के लिए विकल थे। केवल गोदावरी की धार बीच म थी। आष्टी के मदान म २६ जनवरी १५९७ ई० को खानखाना के नदी पार करते ही रणचण्डी का भरव नतन प्रारम्भ हो गया। अ ततोगत्वा विजय रहीम की हुई। २५ ००० सवारो की विशाल दक्षिणी सेना को केवल ७००० की सेना से हराना रहीम जसे योग्य एव साहसी सेना नायक का ही काय था। यह युद्ध सामा य लडाई न थी रणचण्डी का भरव नतन था। शत्रु की चौगुनी के लगभग शक्ति मुगलो की सत्ता का सदव के लिए दक्षिण स मिटा देने का उत्साह दक्षिण की समस्त राजसत्ताओं के प्रतिनिधि वीर सुहलखा का मुकाबला और उस पर भी बीजापुरी उत्कृष्ट तोपखाने की मार सभी परिस्थितियां हृदय कपा देने वाली थी। पर तु ध य है वीरवर रहीम जो इस युद्ध मे बरमखा के खानदान का नाम ऊचा कर गया। वह मुर्दों के नीचे दबकर मर जाने को तो उद्यत था पर तु प्रबल शत्रु को पीठ दिखाकर भागने के लिए नही।

ऐसे भीषण नर सहार मे आग उगलती तोपो के बीच घण्टे भर टकना दूभर होता है पर तु रहीम ३६ घण्टे तक साहसपूवक लडते रहे—बिना खाये पीये। इस अवसर पर राजा सूरजसिंह जग नाथ दुर्गासिंह इत्यादि ने जो वीरता दिखाई उसक लिए मुगल साम्राज्य सदव उनका ऋणी रहेगा। रहीम के लिए तो कहा ही क्या जाय? यदि वे जीवन भर कोई अ य युद्ध न करते तथा केवल यही युद्ध जीत पाते तब भी मुगल सेनापति के रूप मे उनका नाम अमर रहता। यही कारण है कि अब्दुलबाकी, फरिश्ता खफीखाँ, अबुल फजल इत्यादि सभी इतिहासकारो ने इस युद्ध के विस्तृत वणन प्रस्तुत करते हुए रहीम के रण कौशल एव शौय की मुक्त कठ से सराहना की है। स्मरण रहे कि इस युद्ध विजय के उपरा त भी रहीम ने पचहत्तर लाख रुपये बाँटे थे। इतिहासकारो ने ही नही कवियो ने भी इस प्रसग को अपनी का य रचना का विषय बनाकर रहीम का गुण गान किया है—

दक्खिन को जूम खानखानाजू तिहारो सुनि
होत है अचम्भौ राजा राय उमराइ के।
एक दिन एक रात और दिन अथए लौं
आए जो मुकाबिले को गए ना विराइ क।
बासर के जूमे ते सुमार ह्वै ह्वै गिरत हैं
भेरें भेरें बिवडल ते मारे हैं, लराइ के।
जामनी क जूने सूर सूरज को पडो देखें
मोर राहगीर दरवाजे ज्यो सराइ के।[1]

अनात

दक्षिण से वापसी

आष्टी की महान पराजय ने बीजापुर तथा गोलकुण्डा दोना की कमर तोड दी थी। मामूली सा आक्रमण उन राज्या को आधीन करने क लिए पर्याप्त था। अत

१ रहीम रत्नावली—प० मायाशकर याज्ञिक पृ० ८७ ८८

रहीम ने शाहजादे मुराद से योजना के लिए सहायता की प्रार्थना की परन्तु खुशामदियों ने मुराद के कान भर रखे थे।[1] अत उसने इस लाभान्वित योजना को स्वीकृत करके भी बाद में अस्वीकृत कर दिया—

> रौल बिगाडे राजकू मोल बिगाडे माल।
> सन सनै सरदार की चुगल बिगाडे चाल। —रहीम रत्नावली, पृ० २४

दोनो मे मेल कराने के प्रयत्न किए गए परन्तु व्यर्थ। अत सम्राट ने रहीम को दक्षिण से वापस बुला लिया। दरबार मे उपस्थित होकर रहीम ने अपनी निर्दोषता सिद्ध कर दी और अपनी जागीर की व्यवस्था करने के लिए मालवा चले गए। तभी रहीम के पुत्र हैदरी का देहान्त हो गया। वह अत्यधिक मद्यपान के पश्चात् बेहोश पडा था कि भवन मे आग लग गई और हैदरी भुन गया। पुत्र के शोक से रुग्णा मॉ भी तीन दिन के भीतर ही चल बसी। पत्नी और पुत्र की एक साथ मृत्यु से खानखाना पर क्या बीती होगी इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। उधर दक्षिण मे मदिरा-व्यसनी मुराद भी बिना कोई मुराद पूरी किये ही अत्यधिक मदिरापान के कारण परलोकगामी हो गया।

दक्षिण कमान में पुन नियुक्ति

इसी वर्ष दक्षिण की बागडोर शहज़ादा दानियाल को सौंपी गई। सम्राट स्वय भी दक्षिण गया और दक्षिण कमान मे ही रहीम पुन नियुक्त हुए। उन्होंने इसी वर्ष अर्थात् १६०० ई० के मई मास मे अहमदनगर के किले पर पुन घेरा डाल दिया। बहादुर चादबीबी अपने ही सरदार द्वारा कत्ल कर दी गयी और चार महीने चार दिन के घेरे के पश्चात् खानखाना ने किले पर अधिकार कर लिया। अकबर को इस सहयोग और सफलता से बहुत अधिक प्रसन्नता हुई और वह अप्रैल मई १६०१ में सीकरी लौट आया। राजधानी लौटते समय बादशाह ने खानदेश का नाम दानदेश रखकर उसे सुल्तान दानियाल को ही दे दिया और उसकी शादी खानखाना की लडकी जान बेगम से कर दी।[2] हिंदी कवि तथा काव्य प्रेमी होने के कारण वैसे भी दानियाल रहीम का स्नेह पात्र था। रहीम वास्तुकला से भी प्रेम रखते थे। अकबर ने अहमदनगर के किले की मरम्मत का भार भी रहीम को सौंपा था।[3]

दानियाल तथा अकबर की मृत्यु

दक्षिण कार्य की प्रगति प्रारम्भ ही हुई थी कि अप्रैल १६०४ मे दानियाल की जान भी शराब ने ले ली। दानियाल के बल पर ही रहीम दक्षिण मे अबुल

---

१ चाटुकारिता के अवगुणो तथा दुष्परिणामो का बडा ओजमय एव चित्रात्मक वर्णन अबुलफज्ल ने करमखा के अत से सम्बन्धित प्रसग मे किया है जो पठनीय है। देखें अकबरनामा खण्ड २, पृ० २००

२ मआ० उमरा० भाग २, प० १६०

३ आइन अकबरी प० ३५७

का अथ था दक्षिणिया के स्वत्व की समाप्ति । अत वे निर्णायक युद्ध के लिए विकल थे । केवल गोदावरी की धार बीच म थी । आष्टी के मदान म २६ जनवरी १५९७ ई० को खानखाना के नदी पार करते ही रणचण्डी का भरव नतन प्रारम्भ हो गया । अततोगत्वा विजय रहीम की हुई । २५ ००० सवारो की विशाल दक्षिणी सेना को केवल ७००० की सेना स हराना रहीम जसे योग्य एव साहसी सेना नायक का ही काय था । यह युद्ध सामा य लडाई न थी रणचण्डी का भरव नतन था । शत्रु की चौगुनी के लगभग शक्ति मुगलो की सत्ता को सदव के लिए दक्षिण से मिटा देन का उत्साह दक्षिण की समस्त राजसत्ताओ के प्रतिनिधि वीर सुहेलखा का मुकाबला और उस पर भी बीजापुरी उत्कृष्ट तोपखाने की मार सभी परिस्थितिया हृदय कपा दने वाली थी । पर तु धन्य है वीरवर रहीम जो इस युद्ध मे बरमतो के खानदान का नाम ऊचा कर गया । वह मुर्दों के नीचे दबकर मर जाने को तो उद्यत था परन्तु प्रबल शत्रु को पीठ दिखाकर भागने के लिए नही ।

ऐसे भीषण नर सहार म आग उगलती तोपो क बीच घण्टे भर रुकना दूभर होता है पर तु रहीम ३६ घण्टे तक साहसपूवक लडते रहे—बिना सोये बिना खाये पीये । इस अवसर पर राजा सूरजसिह जग नाथ, दुर्गासिह इत्यादि ने जो वीरता दिखाई उसके लिए मुगल साम्राज्य सदव उनका ऋणी रहेगा । रहीम के लिए तो कहा ही क्या जाय ? यदि वे जीवन भर कोई अन्य युद्ध न करत तथा केवल यही युद्ध जीत पाते तब भी कुशल सेनापति के रूप म उनका नाम अमर रहता । यही कारण है कि अब्दुलबाकी फरिश्ता खफीखा, अबुल फज्ल इत्यादि सभी इतिहासकारो ने इस युद्ध के विस्तृत वणन प्रस्तुत करते हुए रहीम के रण कौशल एव शौय की मुक्त कठ से सराहना की है । स्मरण रहे कि इस युद्ध विजय के उपरान्त भी रहीम ने पचहत्तर लाख रुपय बाट थे । इतिहासकारो ने ही नही कवियो ने भी इस प्रसग को अपनी काव्य रचना का विषय बनाकर रहीम का गुण गान किया है—

दक्खिन को जूम खानखानाजू तिहारो सुनि
होत है अचम्भो राजा राय उमराइ के ।
एक दिन एक रात और दिन अपए लौ
आए जो मुकाबिले को गए ना बिराइ के ।
बासर के जूझे ते सुमार ह्वै ह्वै गिरत हैं
भेदें भेदें बिवडल ते मारे हैं सराइ के ।
जामनी क जूने सूर सूरज को पहो दसें
भोर राठोर दरवाजे ज्यों सराइ के ।[1]

दक्षिण से वापसी

आष्टी का महान पराजय न बीजापुर तथा गोलकुण्डा सेना की कमर तोड दी थी । मामूली सा आक्रमण उन राज्यो को आधीन करन क लिए पर्याप्त था । अत अणात

1 रहीम रत्नावली—प० मायाशंकर याज्ञिक पृ० ८७ ८८

हीम ने शाहजादे मुराद से योजना के लिए सहायता की प्रार्थना की परन्तु खुशा-
मियों ने मुराद के कान भर रखे थे।[1] अन्त उसने इस लाभान्वित योजना को स्वीकृत
रके भी बाद में अस्वीकृत कर दिया—

> रीत बिगाड़े राजकू मोल बिगाड़े माल।
> सन सन सरदार की, चुगल बिगाड़े चाल। —रहीम रत्नावली, पृ० २४

दोनों में मेल कराने के प्रयत्न किए गए परन्तु व्यर्थ। अत सम्राट ने रहीम
ो दक्षिण से वापस बुला लिया। दरबार में उपस्थित होकर रहीम ने अपनी निर्दो
ता सिद्ध कर दी और अपनी जागीर की व्यवस्था करने के लिए मालवा चले गए।
भी रहीम के पुत्र हैदरी का देहान्त हो गया। वह अत्यधिक मद्यपान के पश्चात्
हा पड़ा था कि भवन में आग लग गई और हैदरी भुन गया। पुत्र के शोक से
गा माँ भी तीन दिन के भीतर ही चल बसी। पत्नी और पुत्र की एक साथ मृत्यु
खानखाना पर क्या बीती होगी इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।
धर दक्षिण में मदिरा-व्यसनी मुराद भी बिना कोई मुराद पूरी किये ही अत्यधिक
दिरापान के कारण परलोकगामी हो गया।

क्षिण कमान में पुन नियुक्ति

इसी वर्ष दक्षिण की बागडोर शहज़ादा दानियाल को सौंपी गई। सम्राट स्वयं
ो दक्षिण गया और दक्षिण कमान में ही रहीम पुन नियुक्त हुए। उन्होंने इसी
र्ष अर्थात् १६०० ई० के मई मास में अहमदनगर के किले पर पुन घेरा डाल दिया।
हादुर चाँदबीबी अपने ही सरदार द्वारा कत्ल कर दी गयी और चार महीने चार
िन के घेरे के पश्चात् खानखाना ने किले पर अधिकार कर लिया। अकबर को इस
हयोग और सफलता से बहुत अधिक प्रसन्नता हुई और वह अप्रैल मई १६०१ में
ीकरी लौट आया। राजधानी लौटते समय बादशाह ने खानदेश का नाम दानदेश
रखकर उसे सुल्तान दानियाल को ही दे दिया और उसकी शादी खानखाना की
लड़की जान बेगम से कर दी।[2] हिन्दी कवि तथा काव्य प्रेमी होने के कारण वसे
भी दानियाल रहीम का स्नेह पात्र था। रहीम वास्तुकला से भी प्रेम रखते थे।
अकबर ने अहमदनगर के किले की मरम्मत का भार भी रहीम को सौंपा था।[3]

दानियाल तथा अकबर की मृत्यु

दक्षिण कार्य की प्रगति प्रारम्भ ही हुई थी कि अप्रैल १६०४ में दानियाल
की जान भी शराब ने ले ली। दानियाल के बल पर ही, रहीम दक्षिण में अबुल

१ चाटुकारिता के अवगुणों तथा दुष्परिणामों का बड़ा ओजमय एवं चित्रात्मक
वर्णन अबुलफज़्ल ने करमसी के अन्त से सम्बन्धित प्रसंग में किया है जो
पठनीय है। देखें अकबरनामा खण्ड २, पृ० २००

२ मआ० उमरा० भाग २ पृ० १६०

३ आइने अकबरी पृ० ३५७

का अथ था दक्षिणियो के स्वत्व की समाप्ति । अत वे निर्णायक युद्ध के लिए विकल थे । केवल गोदावरी की धार बीच मे थी । आष्टी के मदान म २६ जनवरी १५९७ ई० को खानखाना के नदी पार करते ही रणचण्डी का भरव नतन प्रारम्भ हो गया । अ ततोगत्वा विजय रहीम की हुई । २५ ००० सवारो की विशाल दक्षिणी सेना को केवल ७००० की सेना स हराना रहीम जसे योग्य एव साहसी सेना नायक का ही काय था । यह युद्ध सामान्य लडाई न थी रणचण्डी का भरव नतन था । शत्रु की चौगुनी के लगभग शक्ति मुगलो की सत्ता को सदव के लिए दक्षिण स मिटा देने का उत्साह दक्षिण की समस्त राजसत्ताओ के प्रतिनिधि वीर सुहेलखा का मुकाबला और उस पर भी बीजापुरी उत्कृष्ट तोपखाने की मार सभी परिस्थितियाँ हृदय कपा देने वाली थी । पर तु धन्य है वीरवर रहीम जो इस युद्ध म बरमखा के खानदान का नाम ऊचा कर गया । वह मुर्दों के नीचे दबकर मर जाने को तो उद्यत था परन्तु प्रबल शत्रु को पीठ दिखाकर भागने के लिए नही ।

ऐसे भीषण नर सहार मे आग उगलती तोपो के बीच घण्टे भर रुकना दूभर होता है पर तु रहीम ३६ घण्टे तक साहसपूवक लडते रहे—बिना सोये बिना खाये-पीये । इस अवसर पर राजा सूरजसिंह जगन्नाथ दुर्गासिंह इत्यादि ने जो वीरता दिखाई उसके लिए मुगल साम्राज्य सदव उनका ऋणी रहेगा । रहीम के लिए तो कहा ही क्या जाय ? यदि वे जीवन भर कोई अन्य युद्ध न करते तथा केवल यही युद्ध जीत पाते तब भी कुशल सेनापति के रूप म उनका नाम अमर रहता । यही कारण है कि अब्दुलबाकी, फरिश्ता सफीखाँ, अबुल फज्ल इत्यादि सभी इतिहासकारो ने इस युद्ध का विस्तृत वणन प्रस्तुत करते हुए रहीम के रण कौशल एव शौय की मुक्त कण्ठ स सराहना की है । स्मरण रहे कि इस युद्ध विजय के उपरान्त भी रहीम ने पचहत्तर लाख रुपये बाँटे थे । इतिहासकारो ने ही नही कवियो ने भी इस प्रसग को अपनी काव्य रचना का विषय बनाकर रहीम का गुण गान किया है—

कविन को अम खानखानाजू तिहारो सुनि
होत है अचम्भो राजा राय उमराइ क ।
एक दिन एक रात और दिन अथए लौ
आए जो मुकाबिले को गए ना बिराइ के ।
बासर क जूझे ते सुमार ह्वै ह्वै गिरत है
भेडं भेडं बिवडल ते मारे है लराइ क ।
सामनो क जूझे भूर सूरज को पडो दखें
मोर राहगीर दरवाजे ज्यो सराइ क ।[1]

दक्षिण से वापसी

दक्षिण की महान पराजय ने बीजापुर तथा गोलकुण्डा शासको की कमर तोड दी थी । मामूली सा आक्रमण उन राज्यो को अधीन करने के लिए पर्याप्त था । अत मनान

१ रहीम रत्नावली—प० मायाशंकर याज्ञिक पृ० ८७ ८८

रहीम ने शाहजादे मुराद से योजना के लिए सहायता की प्रार्थना की परन्तु खुशामदी मन्त्रियों ने मुराद के कान भर रखे थे।[1] अतः उसने इस लाभान्वित योजना को स्वीकृत करके भी बाद में अस्वीकृत कर दिया—

रौल बिगाड़े राजकूं मोल बिगाड़े माल।
सन सन सरदार को, चुगल बिगाड़े चाल। —रहीम रत्नावली, पृ० २४

दोनों में मेल कराने के प्रयत्न किए गए परन्तु व्यर्थ। अतः सम्राट ने रहीम को दक्षिण से वापस बुला लिया। दरबार में उपस्थित होकर रहीम ने अपनी निर्दोषता सिद्ध कर दी और अपनी जागीर की व्यवस्था करने के लिए मालवा चले गए। तभी रहीम के पुत्र हैदरी का देहान्त हो गया। वह अत्यधिक मद्यपान के पश्चात् बेहोश पड़ा था कि भवन में आग लग गई और हैदरी भुन गया। पुत्र के शोक से हरणा माँ भी तीन दिन के भीतर ही चल बसी। पत्नी और पुत्र की एक साथ मृत्यु से खानखाना पर क्या बीती होगी इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। उधर दक्षिण में मदिरा व्यसनी मुराद भी, बिना कोई मुराद पूरी किये ही अत्यधिक मदिरापान के कारण परलोकगामी हो गया।

दक्षिण कमान में पुनः नियुक्ति

इसी वर्ष दक्षिण की बागडोर शाहजादा दानियाल को सौंपी गई। सम्राट स्वयं भी दक्षिण गया और दक्षिण कमान में ही रहीम पुनः नियुक्त हुए। उन्होंने इसी वर्ष अर्थात् १६०० ई० के मई मास में अहमदनगर के किले पर पुनः घेरा डाल दिया। बहादुर चाँदबीबी अपने ही सरदार द्वारा कत्ल कर दी गयी और चार महीने चार दिन के घेरे के पश्चात् खानखाना ने किले पर अधिकार कर लिया। अकबर को इस सहयोग और सफलता से बहुत अधिक प्रसन्नता हुई और वह अप्रैल, मई १६०१ में सीकरी लौट आया। राजधानी लौटते समय बादशाह ने खानदेश का नाम दानदेश रखकर उसे सुलतान दानियाल को ही दे दिया और उसकी शादी खानखाना की लड़की जानबेगम से कर दी।[2] हिन्दी कवि तथा काव्य प्रेमी होने के कारण वैसे भी दानियाल रहीम का स्नेह पात्र था। रहीम वास्तुकला से भी प्रेम रखते थे। अकबर ने अहमदनगर के किले की मरम्मत का भार भी रहीम को सौंपा था।[3]

दानियाल तथा अकबर की मृत्यु

दक्षिण कार्य की प्रगति प्रारम्भ ही हुई थी कि अप्रैल १६०४ में दानियाल की जान भी शराब ने ले ली। दानियाल के बल पर ही, रहीम दक्षिण में अबुल

---

१ चाटुकारिता के अवगुणों तथा दुष्परिणामों का बड़ा ओजमय एवं चित्रात्मक वर्णन अबुलफज्ल ने करमखाँ के प्रसंग से सम्बन्धित प्रसंग में किया है जो पठनीय है। देखें अकबरनामा खण्ड २, पृ० २००

२ मआ० उमरा०, भाग २ पृ० १६०

३ आइने अकबरी पृ० ३२७

प[illegible]न जगा को नचाता रहा था। अत उनकी मृत्यु से रहीम पर न केवल दाम्पत्य की मृत्यु का आघात हुआ अपितु प्रतिष्ठा को भी अवश्य धक्का लगा। इस बीच रहीम तथा उनके पुत्र मिर्ज़ा इरीच बहादुर दक्षिण के दो दुर्दमनीय सरदारों मलिक अम्बर[1] तथा राजू दक्खिनी[2] से उलझते रहे थे। कई बार उन्हें पराजय भी दिया किन्तु उनका पूर्ण दमन न हो पाया था। तभी १७.१०.१६०५ में वह विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न विश्व विख्यात सम्राट अकबर, संसार से उठ गया।

जहाँगीर का राज्य-काल और रहीम

यद्यपि सलीम ने कई बार विद्रोह करके पिता[3] के हृदय को भारी कष्ट दिया था किन्तु अन्त में उसने पिता का आत्म-समर्पण कर हृदय जीत लिया था। अकबर ने भी मृत्यु से पूर्व सलीम (जहाँगीर) को स्पष्ट रूप से अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था। एक सप्ताह तक पिता की मृत्यु का शोक मनाने के पश्चात् २४ अक्तूबर १६०५ ई० को जहाँगीर (जन्म ३०.८.१५६९) ३६ वर्ष की अवस्था में सिंहासनारूढ़ हुआ। साथियों के असहयोग के कारण खानखाना बहुत चिन्तित थे। अत उन्होंने भारी भेंट भेजी तथा दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा माँगी। तब तो नहीं हाँ (जहाँगीर के) तृतीय जलूसी वर्ष में खानखाना दरबार में बुलाये गये। अपने ही शिष्य को सिंहासनासीन देख खानखाना भाव विभोर हो गए। जहाँगीर-नामा में इस घटना का उल्लेख करते हुए स्वयं सम्राट ने लिखा है—

'एक पहर दिन चढ़ चुका था, जबकि खानखाना जो हमारे अभिभावक होने के उच्च पद पर चुना गया था बुरहानपुर से आकर सेवा में उपस्थित हुआ। प्रसन्नता तथा आनन्द ने उसे ऐसा दबोच रखा था कि वह यह नहीं समझ सका कि सर के बल आया है कि पैरों पर। वह घबराकर हमारे पैरों पर गिर पड़ा। हमने दया तथा कृपा कर उसके सिर को उठाया और प्रेम के साथ आलिंगन करके उसके मुख का चुम्बन लिया। वह हमारे लिए मोतियों की दो माला कुछ लाल तथा पन्ने लाया था। उन सब रत्नों का मूल्य तीन लाख रुपए था।'[4]

---

१ २ मलिक अम्बर का जन्म एबीसीनिया की हब्शी जाति में हुआ था किन्तु वह दक्षिणभारत को अपना वास्तविक देश मानता था। वह स्वयं सुलतान निजामशाह के प्रधानमन्त्री का काम करता था। उसने अपनी पुत्री का विवाह भी उससे कर दिया था। दूसरा प्रमुख निजामशाही अमीर था राजू दक्खिनी। उसका भी जीवन बड़ी साधारण स्थिति से आरम्भ हुआ था। विशेष अध्ययनार्थ देखिए अब्दुर्रहीम खानखाना पृ० १६०-१६१

३ सलीम के आत्म समर्पण पर अकबर की बेटे के लिए गाली घाटि, फटकार रोष खीज आत्म सन्तोष तथा स्नेह के प्रभावी चित्रण के लिए देखिए— अकबर लारेंस बिन्यन (अनुवादक, राजेन्द्र यादव) दिल्ली १९६३, पृ० १००-१०७)

४ जहाँगीर का आत्मचरित (अनुवादक बाबू ब्रजरत्नदास) पृ० २१७-१८

खानखाना नीतिमान व्यक्ति थे। उनके व्यक्तित्व में अन्यों को प्रभावित करने की अद्भुत शक्ति थी। जहांगीर भी प्रभाव में आये बिना न रहा। जहांगीर ने रहीम को मुंह मांगी दस लाख रुपए की राशि तथा बारह हजार सवार तथा अपनी ओर से शाह अब्बास का भेजा सर्वोत्तम घोड़ा देकर दक्षिण को पुनः सम्मान वापस भेज दिया।[1] इसके अतिरिक्त शहज़ादा परवेज को भी दो लाख रुपये तथा अन्य सामान देकर सैयद सैफ खां बारहा के संरक्षण में रहीम की सहायतार्थ विदा किया।[2] बालक और बूढ़े का साथ कैसे निभता? खानखाना को ६३ वर्ष की अवस्था में अपयश भाजन होना पड़ा और अहमदनगर का जीता जिताया दुर्ग उनके हाथ से निकल गया। यद्यपि इस हार का उत्तरदायित्व रहीम पर न था परन्तु फिर भी विरोधियों ने सम्राट के कान भर दिये तथा उन्हें अपनी जागीर अर्थात् कालपी तथा कन्नौज जाकर वहां की अशांति का दमन करने की आज्ञा मिली।[3] यह घटना जहांगीर के पांचवें जलूसी वर्ष की है।

सदा से सम्मानित रहीम को अकारण जिस अपयश तथा अनादर का सामना करना पड़ा उसे वृद्ध सेनापति भाग्य की प्रतिकूलता समझ कर पी गया। कदाचित् तभी उसने लिखा होगा—

रहिमन चुप ह्वै बैठिये देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइ हैं बनत न लगि है बेर॥

रहीम रत्नावली, पृ० १८

अवकाश के दो वर्ष

पदच्युत सिंह अपना समय शांति से बिता रहा था। उस समय रहीम का दरबार संगीतज्ञों, कवियों तथा कलाकारों से आपूरित था। उसने साहित्य रचना को प्रोत्साहन दिया और स्वयं भी साहित्य सृजन किया। २० मार्च, १६१० को प्रारम्भ होने वाले पाँचवें जलूसी वर्ष में रहीम दरबार में पहुँचे थे और १६ मार्च १६१२ को प्रारम्भ होने वाले जलूसी वर्ष तक अपनी जागीर में रहे।

दक्षिण में पुनः नियुक्ति

विरोधी लोग दरबार में बढ़कर बात कह लेते हों किन्तु रहीम के अतिरिक्त दक्षिण का कार्य किसी अन्य के बस का न था। मलिक अम्बर की रग केवल रहीम ही पहचानते थे। अतः उनके लौटते ही, दक्षिण से नित्य प्रति बुरे-बुरे समाचार प्राप्त होने लगे थे। जहांगीर को बहुत चिंता हुई। सभा में गम्भीर रीति से विचार करके रहीम को पुनः दक्षिण भेजने का निश्चय हुआ। फलस्वरूप दरबार में बुलाकर

१ जहांगीर का आत्मचरित्र (अनुवादक, ब्रजरत्नदास) पृ० २२०
२ अकबरी दरबार, भाग ३, पृ० ३४६
३ मआ० उमरा, भाग २ पृ० १६१

उन्हें विशेष रूप से सम्मानित किया गया। उनका ही नहीं उनके पुत्रों के भी मसब बढा दिए। जहाँगीर ने उस सब का पृथक पृथक वर्णन किया है।[1] दक्षिण पहुँचने पर रहीम ने अभूतपूर्व सतर्कतापूर्वक कार्य आरम्भ किया। कूटनीति द्वारा खानखाना के बडे पुत्र शाहनवाजखाँ ने अम्बर के बहुत से सरदारों को अपनी ओर मिला लिया और पुन उन्हीं की सहायता से अम्बर की टुकडियों पर विजय प्राप्त की। छोटे पुत्र दाराब ने तो अम्बर को और भी कडी पराजय दी थी। इस सबका जहाँगीर ने बडा सराहनापूर्ण वर्णन किया है।[2] इतना ही नहीं उसने शाहनवाजखाँ की पुत्री से शहजादा खुरम (शाहजहाँ) का विवाह २३ अगस्त १६१७ को सम्पन्न कराने के पश्चात उसे भी दक्षिण कमान पर नियुक्त कर दिया और स्वय भी विशाल सेना के साथ मांडू म आ डटा तथा वहा से चारों ओर को शांति दूत भेजे।

शक्ति क भय से बीजापुर के आदिलशाह तथा गोलकुंडा के कुतुबशाह ने पद्रह पद्रह लाख रुपए की भेंट देकर अनुकूल सधियाँ कर ली। दुर्जेय अम्बर ने भी अहमदनगर तथा अन्य दुर्गों की कुजियाँ सौंप दी। इस प्रकार छ सात मास म ही अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हो गई। इसका बहुत बडा श्रेय रहीम के साथ ही शहजादे को भी था। अत उसे तीस हजारी २०००० सवार का मसब 'शाहजहाँ' की पदवी तथा तख्त क पास की कुर्सी पर बठने का स्वत्व प्रदान किया गया। यह अन्तिम खास कृपा थी जो तमूर के समय से कभी किसी को प्राप्त नहीं हुई थी। इस सम्मान स विभूषित शाहजादे शाहजहा ने अपने अधिकार का समुचित उपयोग करक विजित प्रदेशों की सुन्दर व्यवस्था स्थापित की तथा खानखाना को उस व्यवस्था का सिपहसालार नियुक्त किया। उसने शाहनवाजखा को भी उच्च पद प्रदान किया। उसी क छोटे भाई अर्थात खानखाना के चौथे पुत्र अमरुल्ला[3] ने, हीरा की सुप्रसिद्ध गोडवाना की हीरे की कान पर अधिकार प्राप्त किया। हीरा के शौकीन जहाँगीर ने बडी प्रसन्नता से इस तथ्य का उल्लेख किया है— यहाँ क हीरे पानी तथा सुन्दरता म बढ चढकर होते है और जौहरीगण इनको आदर से देखते है।'[4] गोंडवाना इतना प्रसिद्ध था कि आगे चलकर एक पद म भूषण ने शिव प्रशसा म दक्षिण के अन्य प्रसिद्ध क्षत्रों के साथ इसका भी उल्लेख किया है—

मालवा उज्जन भनि भूखन भलास ऐन
सहर सिराज लौं परखने परत हैं।
गोंडवानो तिलगानो, फिरगानो करनार
खलिलानो, रुहिलाने हिये हहरत है।

---

१ जहाँगीर चरित पृ० २९१
२ वही पृ० ३७६
३ जहाँगीर चरित पृ० ५३१
४ अमरुल्ला रहीम का दासी पुत्र था। अकबरी दरबार, भाग ३ पृ० ३८५

शाहनवाजखाँ तथा रहमानदाद की मृत्यु

खानखाना अपने पुत्रों की सहायता से दक्षिण के प्रबन्ध का सुचारु रूप दे ही रहे थे कि वीरता के कारण छोटे खानखाना के नाम से पुकारे जाने वाले उसके वीर किन्तु पियक्कड़ पुत्र शाहनवाजखाँ की तैतीस वर्ष की अल्पायु में शराब ने जान ले ली। मुसीबत कभी अकेली नहीं आती। खानखाना की पलकें सूखने भी न पाई थीं कि तभी अर्ध स्वस्थ अवस्था में मार्इदाराव की सफल सहायता से लौटकर घोगा उतारते हुए ठन् लगन के तीसरे दिन ही रहमानदाद की मृत्यु हो गई। सम्पूर्ण शाही सेना तथा स्वयं जहाँगीर शोक सागर में डूब गया, वृद्ध खानखाना के शोक का तो कहना ही क्या। जहाँगीर ने स्वर्गीय शाहनवाज के छोटे भाई दाराव के मसब को पचहज़ारी तक बढ़ाकर, जड़ाऊ खिलअत तथा अहमदनगर के अध्यक्ष पद से सुशोभित कर पिता के पास भेज दिया।[1] इसके अतिरिक्त शाहनवाज के दो पुत्रों मनोचहर तथा तुगरल को क्रमशः दो हज़ारी, १००० सवार तथा एक हज़ारी चार सौ सवार का मसब प्रदान किया।

इन सब से स्वर्गीय वीरों की क्षतिपूर्ति कैसे होती? मलिक अम्बर की चढ़ बनी। दुःखी खानखाना की एक भी न चल सकी और उसने बुरहानपुर में घिरे परिवार के साथ जौहर करने का निश्चय जहाँगीर को लिख भेजा। वह उस समय काश्मीर विहार में निमग्न था। आँख खुलने पर उसने तुरन्त शाहज़ादा खुर्रम (जहाँगीर) को आज्ञा दी 'जिस प्रकार अकबर ने फुर्ती से कूच करके, खानेआजम की गुजरातियों से रक्षा की थी, उसी प्रकार तुम खानखाना की रक्षा करो।'[2] जहाँगीर ने दिसम्बर १६२० में दक्षिण पहुँच कर शत्रुओं से निपटने में कमाल की सफलता प्राप्त की। जहाँगीर ने विजय की सराहना करते हुए, ईरान के शाह की भेजी हुई एक लाल कलगी शाहजहाँ के लिए उपहार स्वरूप भेजी।

रहीम विद्रोही शाहजहाँ के साथ

शाहजहाँ की सफलताओं तथा उसके व्यक्तिगत गुणों के कारण साम्राज्ञी नूरजहाँ उससे सशंक थी। विशेषतः उस समय जबकि जहाँगीर का स्वास्थ्य नित्य प्रति चौपट होता चला जा रहा हो। उसने अपनी कपटपूर्ण चालों से जहाँगीर को शाहजहाँ के विरुद्ध कर दिया। शाहजहाँ ने अनेक बार और अनेक प्रकार से अपनी सफ़ाई प्रस्तुत की किन्तु *मर्ज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की।* यहाँ तक कि उसके दल के लिए सीकरी के मुख्य द्वार बन्द कर दिए गये। अतः उसका विद्रोही बनना स्वाभाविक था। साम्राज्य के राज्य विस्तार का सारा श्रेय शाहजहाँ का ही था। धौलपुर काण्ड को लेकर भी उसके साथ अन्याय हुआ था। प्रायः सभी निष्पक्ष लोग यह मानते थे कि साम्राज्य के उत्तराधिकार के सर्वाधिक योग्य वही था फिर खानखाना की तो नातिन भी उससे ब्याही थी। अतः उसने

१ जहाँगीर चरित पृ० १६६

२ मआ० उमरा० भाग २ पृ० १६३

शाहजहाँ का साथ दिया। सम्राट जहाँगीर को जब यह सूचना मिली तो बहुत बरोया। उसने अपने पुत्र को तो जो कुछ कहा सो कहा ही, अपने सत्तर वर्षीय अभिभावक रहीम को राजद्रोही कृतघ्न तथा भेड़िया इत्यादि कहकर खूब कोसा।[1]

इस स्थल पर आकर विद्वानों तथा ऐतिहासिकों ने रहीम के चरित्र के सम्बन्ध में भिन्न धारणायें व्यक्त की हैं। कुछ इतिहासकार तो सम्राट के कथन पर अधिक स्थान महत्त्व देकर उन्हें लालची व राज्यद्रोही इत्यादि बताते हैं जबकि कुछ उनके कृत्य को देशभक्ति समझते हैं। हम अपना मत तो यहाँ प्रकट नहीं करेंगे परन्तु प्रसंग वश मुगलकालीन इतिहास के पंडित तथा अनेक फारसी इतिहास ग्रन्थों के अनुवादक बाबू ब्रजरत्नदास का मत उद्धृत करना चाहेंगे। रहिमन विलास की भूमिका में उन्होंने लिखा है—

नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना दो पीढ़ियों का समय देख चुके थे। वे ऐसे नादान नहीं थे कि थोड़े लाभ के लिए किसी ओर फिसल पड़ते। उन्होंने बहुत कुछ सोच समझकर किसी मार्ग पर अग्रसर होने का निश्चय किया होगा। शराब और नूरजहाँ[2] के प्रेम में पड़कर बादशाह अपने योग्य पुत्र का नाश किया चाहता था। इस समय शाहजहाँ का पक्ष लेना स्वामिभक्त सेवकों के लिए भी राज विद्रोह नहीं कहला सकता। उस बेगम विद्रोह की पदवी ही दी जा सकती है। दोनों ओर से निश्चिन्त होकर चुपचाप बैठ रहना और साम्राज्य का नाश देखना अवश्य स्वामी द्रोह या देश द्रोह था।[3] जो भी हो सम्राट ने रहीम को राजद्रोही की संज्ञा प्रदान की ही थी।

खानखाना के पुराने विरोधी महावतखाँ को विद्रोहियों का पीछा करने की आज्ञा हुई। जहाँ अपने पथ के रोड़े शाहजहाँ से बदला लेने का नूरजहाँ के लिए यह स्वर्ण अवसर था वहीं रहीम के चिर विरोधी महावत के लिए भी अपने वर शोधन का इसमें उपयुक्त अवसर और क्या हो सकता था? अतः उसने अत्यन्त द्रुत गति से विद्रोहियों का पीछा किया किन्तु दक्षिण पहुँचने पर नर्मदा के तट को शाहजहाँ की सेना द्वारा सर्वथा अवरुद्ध पाया।

रहीम के माथे का कलंक

महावतखाँ जानता था कि यदि शाहजहाँ तथा अनुभवी सेनापति रहीम से पार पाना सरल नहीं। इस उसने शत्रु को धोखा कूटनीति का मार्ग पकड़ा। वह भी जानता था कि रहीम को ... उसका स्थान बड़ा गौरवपूर्ण था ... का नाम-नाश निकाल ... और सबको नाश पहचानता था। अन ... ... विद्रोहियों मना के सेना ... अपना अपना ओर मिला लिया। ... अपना ओर

१ जहाँगीरनामा पृ० ७२
२ जहाँगीर ने स्वयं स्वीकार किया है कि उसे १ सेर शराब १/२ सेर कबाब तथा नूरजहाँ के अतिरिक्त राज्य का किसी बात से कोई वास्ता नहीं।
३ रहिमन विलास—ब्रजरत्नदास पृ० ३

तोड लेना। 'वह शाह जहाँगीर की जय, शाह जहाँगीर की जय चिल्लाता हुआ शाही सेना में जा मिला।'[1]

तभी शाहजहाँ के जासूस तकी ने खानखाना के दूत को पकड़ लिया। यह दूत खानखाना का पत्र लेकर महाबतखाँ के पास जा रहा था। उस पत्र के आरम्भ में ही एक शेर लिखा हुआ था जिसका अर्थ था—

सौ मनुष्य हमें अपनी दृष्टि में रखे [illegible] हैं
नहीं हम इस कष्ट से उडकर चले आते।

तकी से यह पत्र प्राप्त करके शाहजहाँ अवाक् और आश्चर्यचकित रह गया। किसी को यह आशा स्वप्न में भी न थी कि खानखाना ऐसा पत्र लिखेंगे। शाहजहाँ की आँखें प्रत्यक्ष को भी सत्य नहीं मान रही थीं। आश्चर्य, क्रोध और ग्लानि से भरे शाहजादे ने खानखाना को बुला भेजा। जब उन्हें पत्र दिखाया गया तो बगलें झाँकने के अतिरिक्त उत्तर ही क्या था। पता नहीं शाहजहाँ क्या कर डालता परन्तु परिस्थिति उसके अनुकूल न थी। अत केवल इतना ही किया कि शेर के अनुसार उन पर कड़ी नजरें रखने का प्रबन्ध कर दिया और हुक्म दिया कि उनके परिवार का डेरा उसके स्वय के डेरे के पास रहा करे, जिससे कि खानखाना के क्रिया कलापों पर व्यक्तिगत रूप से दृष्टि रखी जा सके।

शाहजहाँ की स्थिति अच्छी न थी। अत उसने राय भोज हाडा के पुत्र बुलन्दराय को मध्यस्थ बनाकर महाबतखाँ से सन्धि का प्रस्ताव किया। अंधे को क्या चाहिए दो आँखें। परन्तु वह चाहता था कि किसी प्रकार खानखाना शाहजहाँ से अलग हो जाए। अत कहला भेजा कि जब तक खानखाना स्वय ही आकर बात न करें तब तक कोई सधि नहीं हो सकती। मरता क्या न करता। शाहजहाँ ने यह भी स्वीकार कर लिया। जहाँगीर ने इससे आगे के वृत्तान्त को विस्तार से लिखा है। उसने बताया है कि 'शाहजहाँ' ने अपने स्त्री बच्चों को खानखाना के सामने लाकर पवित्र कुरान की शपथ खिलाई और अपनी प्रतिष्ठा को उसके हाथ सौंप दिया। खानखाना सधि की बातचीत निश्चित करने के लिए बेदौलत (शाहजहाँ) से अलग होकर शाही सेना की ओर बढा। यह निश्चित हुआ था कि खानखाना नदी के इसी पार रहकर पत्र व्यवहार द्वारा सधि की बातचीत करें।'[2]

दुर्भाग्य से शाहजहाँ की यह योजना पूरी न हो सकी। शाही सैनिक किसी प्रकार नदी पार करने में समर्थ हो गये और बरमवेग की देख रेख में तनात शाहजहाँ के सैनिक तितर बितर हो गये। खानखाना धर्म सकट में थे। नदी के दोनों तट शाही सेना के अधिकार में थे। अत पीछे शाहजहाँ के पास लौट कर जाना न तो आसान था और न ही खतरे से खाली। खानखाना का चित्त दोलायमान था। तभी उसे शाहज़ादा परवेज के पत्र मिले जिनमें खुशामद धमकी और भय आदि सभी

१ जहाँगीर चरित पृ० ७६४
२ जहाँगीर चरित पृ० ७६६

क्रुद्ध था। अत खानखाना महावतखाँ की अध्यक्षता मे परवेज की सेवा मे उपस्थित हो गये। फिर तो परवेज की बन आई। वह शाही हुक्म के अनुसार शाहजहाँ को मुगल राज्य की सीमा से बाहर कुतुबुलमुल्क के राज्य की ओर खदेड कर बुरहानपुर लौट आया। यह घटना १६२३ ई० के अतिम चतुर्थांश की है।

शाहजादे परवेज के शिविर मे रहीम की मानसिक स्थिति बडी विचित्र थी। उनका हृदय शाहजहाँ के दल म पडा था। शाहजहाँ का साथ सत्य का साथ था। कुरान की शपथ के द्वारा भी व शाहजहाँ से बध थे और लौकिक दृष्टि से उनके पुत्र पौत्रादि सभी शाहजहाँ की अध्यक्षता मे थ। और शाही पक्ष से मिल जाने के कारण उन पर क्रुद्ध भी था। बात सकती है इस खानखाना जसा चतुर व्यक्ति एव सम भता था। किन्तु परवेज के सनिको ने नदी पार करते ही खानखाना तथा शाहजहाँ के शिविर के मध्य का मार्ग कुछ इस प्रकार अवरुद्ध किया होगा कि वे शाही शिविर म जाने को विवश हो गये थे। यह सोचना कि दुनियादारी के विचार से वह महावत खाँ के पास चला गया था[1]—गलत है।

आगे चलकर हुआ भी वही जिसकी आशका थी। स्थिति कुछ इस प्रकार बिगडी कि शाहजहाँ की राय लिय बिना ही उसके एक सरदार अब्दुला खाँ ने दाराब के निरपराध परिवार अर्थात् स्त्री पुत्र पुत्री को स्वर्गीय शाहनवाज खाँ के एक बच्चे सहित मौत के घाट उतार दिया। इतिहास म वे पृष्ठ आज भी मासूम और बेगुनाह खून के छीटो से लाल ह। अपराध दाराब का था कि वह वचनबद्ध होते हुए भी समय पडने पर शाहजहाँ की सहायता के लिए न आया था परन्तु भुगतना पडा स्त्री और बच्चो को। अद्भुत है विधि का विधान और विचित्र है राजनीति—किया किसी न मरा किसी ने।

अमानुषीय व्यवहार

महावतखाँ से स्वय दाराब भी न बच सका। शाही सना न बगाल पर अधिकार कर लिया। शाहजहाँ न बगाल का जाने पर उस समय दाराब को सौंप दिया था। शाही सना का पकड म आने पर जहाँगीर का इशारा पाते ही महावतखाँ ने उस वीर युवक का सिर काट डाला। इस नगस सनापति की दानवता यहीं शान्त न हुई अपितु उसने कटे मुड को रुमाल म लपेटकर और एक थाला म रखकर अभागे पिता के पास भेज दिया और कहलवाया कि यह तरबूज भेजा गया है। अश्रुपूर्ण नेत्रा से जब वृद्ध न थाल पर से ढकना उठाया नौनिहाल के कटे सिर को देखा उसकी सहनशीलता बाधा न सहकर निकल पडा था—तरबूज शहीदी अस्त।[2] तब आजाद साहिब न इस दृश्य पर बडा मार्मिक टिप्पणियाँ की ह।[3]

1 म०आ० उमरा भाग पृ० १६२

2 तरबूज शहीदी है। यहाँ शहीद के प्रचलित अर्थ के अतिरिक्त तरबूज का एक किस्म का भी नाम शहीद कहते थ।

3 आइने अकबरी दरबार पृ० २३७

खानखाना की दरबार में वापसी

खानखाना के दुख और दुर्भाग्य की सीमा न थी। इधर परिस्थितियां भी बदल रही थीं। अपने राज्य के बीसवें वर्ष में जहांगीर ने खानखाना को मुक्त कराने के पश्चात् दरबार में बुला लिया था। चलते समय महाबतखां ने उन्हें अत्यधिक आदर तथा शाही ठाठ बाट के साथ विदा किया। महाबत चाहता था कि वृद्ध रहीम का हृदय अपनी ओर से साफ कर दे। दरबार में पहुँचने पर रहीम का बहुत अधिक सम्मान किया गया। दोनों पक्ष लज्जित थे। इधर खानखाना जमीन से आँखें ऊपर न उठाते थे उधर जहांगीर स्वयं को अपराधी अनुभव कर रहा था। खीज पश्चात्ताप, क्षमा तथा सौजन्यता के उन क्षणों का वर्णन करते हुए सम्राट जहांगीर लिखते हैं— मैंने कहा कि जो जो बातें घटित हुई हैं वे सब भाग्य की बातें हैं। न तुम्हारे अधिकार की हैं, न हमारे अधिकार की। इस कारण अब तुम अपने मन में स्वयं लज्जित और दुखी मत हो। हम अपने आप को तुमसे अधिक लज्जित और दुखी पाते हैं। जो कुछ हुआ सब भाग्य से ही हुआ। हमारे अधिकार की बात नहीं है।[1]

दोबारा खानखानानी

जहांगीर ने विविध प्रकार से रहीम का मनोमालिन्य दूर करने का प्रयत्न किया। स्थिति सुधारने के लिए उन्हें एक लाख रुपये तथा कन्नौज की जागीर दी गई। साथ ही पूर्व अर्जित खानखाना की उपाधि भी लौटा दी गई। उपकृत रहीम ने निम्नलिखित शेर अपनी अंगूठी पर खुदवाया—

मरा लुत्फ जहांगीरी जे ताई दोत रब्बानी।
दोबार जिंदगी दाद दोबार खानखानानी॥[2]

अर्थात जहांगीर की कृपा और ईश्वरीय समर्थन ने मुझे पुनः जीवन तथा खानखानानी प्रदान की। अब रहीम पर नूरजहां की भी कृपा दृष्टि हो रही थी। मुंशी देवीप्रसाद जी ने उन्हें नूरजहां द्वारा १२ लाख रुपये अपनी सरकार देने का उल्लेख किया है।[3] क्योंकि महाबतखां परवेज के उत्तराधिकार का समर्थन कर रहा था[4] जबकि वह अपने दामाद शहरयार को उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी। चालाक मलका ने शक्तिशाली राजकुमार शाहजहां को अशक्त कर दिया था। अब वह

१ अकबरी दरबार भाग २ पृ० १७३
२ म०आ० उमरा भाग २ पृ० १६६
३ खानखानानामा, भाग २ पृ० ६६
४ 'परवेज बादशाह का प्यारा बेटा था। परन्तु नूरजहां ने उसको नहीं बढ़ने दिया और खुर्रम को बढ़ाया क्योंकि उसके भाई आसिफ खाँ की बेटी ताजबीबी खुर्रम को ब्याही थी। परन्तु जब अपने पेट की बेटी (शेर अफगन से) का विवाह शहरयार से हो गया तो शाहजहां का बल घटाने लगी।
वही, पृ० ८२

सेनापति महावत से पथक करके शाहजादा परवेज को शक्तिहीन करना चाहती थी जिससे कि जामाता शहरयार को राजगद्दी प्राप्त करने की अधिक कठिनाई न हो। अत उसने महावत खाँ का दरबार म बुला भेजा। पुराना सेनापति यह सब समझता था। दूरदर्शिता से उसने अपने साथ ७००० विश्वास पात्र वीर ले लिए। इनम से अधिकाश प्राण न्योछावर करने वाले राजपूत थे।

महावत खा का विद्रोह

यह घटना १०३६ हिजरी की है। इसी सन मे समाप्त होने वाली पुस्तक मनफोले अकबर के लेखक मोहम्मद अमीन लिखते हैं—'जब महावत खा राजाना पाकर दक्षिण से लौटा तब सम्राट काश्मीर मे थे। माग म नूरजहा के भाई आसफ खा से उसका (महावतखाँ का) झगडा हो गया। यह झगडा इतना बढा कि युद्ध ठन गया।[1] इसम विजय महावत खा की हुई। उसने न केवल आसफ खा को कद मे डाल दिया अपितु शाही दरबार को भी अधिकारपूवक घेरे म बाध लिया। उसकी आज्ञा के बिना न तो सम्राट से कोई मिल ही सकता था और न उन तक पत्र ही सीधे पहुँचते थ। सब ओर महावत के विश्वस्त राजपूत बठे हुए थे। यह स्थिति छ मास तक रही। बाद मे नूरजहाँ की सतकता कूटनीति तथा साहसपूर्ण प्रयत्नो स इस स्थिति पर काबू पाया गया। मुन्शी देवीप्रसाद ने इस स्थिति का बडा नाटकीय विवरण दिया है और लिखा है इस प्रयत्न म वह एक बार नदी म गोते खाते हुए डूबते डूबत बची।[2] स्थिति के नियन्त्रण मे आने तक महावत खाँ तो भाग गया कि तु उसके ३००० साथी तलवार के घाट उतरवा दिये गये।

रहीम पुन सेनापति

यद्यपि महावत खा ने रहीम क प्रति आदर और उदारता दिखाई थी। किन्तु वह उन्हे दिल्ली भजने तथा वहा से पुन लाहौर की ओर कूच कराने म सफल हो गया था।[3] अत महावत के भागने के समय रहीम सम्राट के आस पास ही थे। शत्रुता तो पुरानी थी ही। अपने प्रति किये गय अत्याचारो तथा दाराब की हत्या को भी वे न भूले थे। वे उस दुष्ट से प्रतिशोध लेना चाहते थे। अत रहीम ने बहुत ही नम्रतापूवक हार्दिक कामना व्यक्त करते हुए सम्राट की सेवा म निवेदन पत्र भजा कि इस नमकहराम का दड देने की सेवा मुझे प्रदान की जाए।[4]

अन्धे को क्या चाहिए—दो आख। नूरजहा उस सप का सर कुचलना चाहती ही थी। महावत जसे रण कुशल तथा वीर का सफलतापूवक मुकाबला कर सकने वाले एकमात्र रहीम ही थे। अत उसने प्राथना को सहष स्वीकार कर लिया और दिल्ली के भागा छीका टूटन के लिए भगवान को हजार बार ध यवाद दिया।

---

१ इलियट खण्ड ६ पृ० २४९
२ खानखानानामा भाग २ पृ० ६४
३ अकबरी दरबार भाग ३ पृ० ३७५
४ वही पृ० ३७५

बेगम ने उसकी (महावत खाँ की) जागीर खानखाना को वतन (रूप) में प्रदान कर दी। सात हजारी सवार का मसब, दो व तीन घोड़ों वाली खिलअत, जड़ाऊ तलवार, जड़ाऊ जीन सहित घोड़ा, खासे का हाथी नक्द बारह लाख रुपये, घोड़े ऊँट और बहुत सी सामग्री प्रदान की। साथ ही अजमेर का सूबा भी प्रदान किया गया। सेनाओं सहित अमीर भी साथ कर दिये गए।[1]

रहीम का प्राणान्त

रहीम के वृद्ध शरीर में अब इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि इन महान शाही सेवाओं के भार का सहन कर पाते। सारा जीवन दौड़ धूप में बीता था। प्राण प्रिया पत्नी के वियोग का कष्ट सहा और सही थी अपने चारों वीर पुत्रों के मृत्यु की वेदना। इतना ही क्या अन्तिम समय के तिरस्कार, अनादर, मासूम पौत्रों की निर्मम हत्या और सबसे ऊपर हृदय कँपा देने वाले उस शहीदी तरबूज के दर्शन इत्यादि अनेकानेक हृदय विदारक घटनाओं ने उस वृद्ध के शरीर को और भी जर्जर कर दिया था। वे अन्तिम विजय यात्रा का श्रीगणेश भी ठीक से न कर पाये थे कि लाहौर में ही बीमार पड़ गये। उन्हें दिल्ली बहुत प्रिय थी। वे दिल्ली में ही मरना भी चाहते थे। यहीं हुमायूं के मकबरे के समीप उन्होंने अपनी बीवी का मकबरा बनवाया था। दिल्ली आकर उन्होंने अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर दी। अतः उन्हें उसी मकबरे में दफनाया गया।

जहाँगीर के अतिशय रोग-ग्रस्त हो जाने के कारण घटनाओं तथा तिथियों का उल्लेख ठीक प्रकार से नहीं हो पा रहा था। अन्तिम तीन वर्ष के लेखक मुंशी मोहम्मद हादी की कोताह कलमी के कारण खानखाना जैसे महान् व्यक्ति की मृत्यु तिथि अंकित न हो पाई। मोतमिदखाँ के 'इकबालनामे जहाँगीरी' में भी तिथि अंकित नहीं है। वैसे कहने वाले ने तारीख कही थी—'खाने सिपहसालार का।' इससे १०३६ हि० के मध्यवर्ती महीना अर्थात् जमादि उलसानी या रजब का भान होता है। मुन्शी देवी प्रसाद की पचांग गणना के अनुसार, ये मास फाल्गुन स० १६८३ या चैत्र सम्वत् १६८४ में बैठते हैं।[2] अतः हम समझते हैं कि खानखाना की मृत्यु मार्च या अप्रैल १६२७ में हुई होगी। क्या उनकी जन्मतिथि आरम्भ में दी हुई कुण्डली के अनुसार माघशीर्ष १४ स० १६१३ (१७ १२ १५५६) है। अतः मृत्यु के समय उनकी आयु ७० वर्ष और तीन चार मास की होगी। निष्कर्ष यह है कि खानखाना की मृत्यु आयु के इकहत्तरवें वर्ष के प्रारम्भ में हुई।[3] डा० समरबहादुरसिंह का यह कथन "१६२७ ई० में वह बहत्तर वर्ष की जीवन-यात्रा समाप्त कर इस संसार से चल बसा"[4]—बहुत शुद्ध प्रतीत नहीं होता। उन्होंने भी खानखाना का जन्म दिनांक बृहस्पतिवार १७ दिसम्बर

---

१ अकबरी दरबार भाग ३ पृ० ३७५
२ खानखानानामा भाग २, पृ० ६६
३ अब्दुर्रहीम खानखाना पृ० २३१
४ वही पृ० ५

१५५६ ई० माना है ।[1] ७२ वष की जीवन यात्रा समाप्त करने का श्रय होगा १७ दिसम्बर, १६२८ ई० के बाद का समय जबकि ७ नवम्बर १६२७ को जहाँगीर भी स्वग सिधार चुका था ।[2] और खानखाना की मत्यु उनके जीवन काल म अर्थात् १६२७ ई० म निश्चित है और चूंकि वह वसन्त ऋतु के प्रारम्भिक दिनो म काश्मीर गया था । रहीम की मत्यु से सम्बन्धित सारा पत्र-व्यवहार इन्ही दिनो के आस-पास माच अप्रैल का है ।

एक भ्रम और उसका निराकरण

रहीम की जीवनी का सिंहावलोकन करने पर हृदय म यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि उनका सारा जीवन राजनीति की गुत्थियो सुलझाने तथा युद्धो की मुसीबतो म व्यतीत हुआ, फिर उन्होंने काव्य रचना कब की ? परन्तु यह प्रश्न कोरा भ्रम है । प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति चाहे किसी परिस्थिति म रह काव्य कर ही डालते हैं । बाबर ने समर प्रांगण म वर्षा और तूफान म बैठ कर साहित्य रचना करने का स्वत उल्लेख किया है ।[3] रहीम के समसामयिक बीरबल[4] टोडरमल[5] इत्यादि भी बड़े व्यस्त जीव थे परन्तु वे भी काव्य रचना करते थे । यहा तक कि स्वय अकबर भी यथा रुचि छन्द बनाया करता था । आज भी हम सर जार्ज ग्रियर्सन जैसे प्रशासन-व्यस्त पाश्चात्य मनीषियो तथा स्वनामधन्य जवाहरलाल नेहरू जैसे भारतीयो का विपुल साहित्य सम्प्राप्त है ।

अकबर के राजत्व काल म हिन्दी दीपक लेस थे आचाय महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी इस प्रश्न पर विचार किया था । उनका कथन है— आपत्ति का सामना साहित्य को नही बन्द कर सकता । शेख सादी के समय फारस म कौन बड़ी शान्ति थी । फिर वे किस तरह गुलिस्ताँ और बोस्ताँ जैसी महान् कृतियाँ लिख सके ? अरब मे कितने ही कवि ऐसे हो गये हैं जिन्हे बहुत कम समय शान्ति और सुख नसीब हुआ । पर इससे उनके कविता कलाप म कुछ भी बाधा नही आई । केशव के बुन्देलखण्ड म अशान्ति थी भूषण के काव्य काल म बराबर युद्ध होते रहते थे । कवियो को कविता की जिस समय स्फूर्ति होती है उस समय देश की अशान्ति

---

१ वही प० १७७
२ कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया सर रिचार्ड बर्न (१९५७) प० १७७
३ मुगलकालीन भारत बाबर अनु० स० अतहर अब्बास रिजवी भूमिका
४ राजा बीरबल उर्फ बीरबर उर्फ महेसदास उर्फ ब्रह्म कवि उर्फ कविराय— इति सुन्दरी तिलक —सर जार्ज ग्रियर्सन हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास (अनु० किशोरीलाल—वाराणसी १९५७) प० ११५
५ बीरबल तथा टोडरमल की रचनाओं के लिए देखिए डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल का ग्रन्थ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि (स० २००७ लखनऊ) क्रमश प० ३४५—४६ तथा ४५०—५२

का उन पर बहुत कम असर होता है।[१]

अतः रहीम जैसे जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति के साहित्य को देखकर भी किसी प्रकार के भ्रम की गुंजायश नहीं है।

व्यस्त जीवन में अवकाश के क्षण

रहीम के जीवन का अध्ययन कर लेने के उपरांत यह आसानी से ज्ञात किया जा सकता है कि उन्हें अपने कार्यकाल में कई कई महीनों और कभी कभी तो कई कई वर्षों तक अवकाश तथा शान्ति के ऐसे अवसर प्राप्त होते रहे हैं जो साहित्य रचना के सर्वथा अनुकूल थे। यहां संक्षेप में उनकी सूची उपस्थित की जाती है—

१ चार वर्ष की अवस्था से आगे का विद्याजन तथा बाल्यकाल का समस्त समय जो अकबर की व्यक्तिगत देख रेख में व्यतीत हुआ। सोलह वर्ष तक की अवस्था का यह समय एकदम शांति सुख तथा कलापूर्ण दरबारी वातावरण में व्यतीत हुआ था।

२ सत्तरहवें वर्ष में रहीम को सम्राट अकबर के साथ गुजरात में विजय प्राप्त हुई। इसके पश्चात वे लगभग तीन वर्ष दरबार में रहे। गुजरात के प्रांतपति इस अवधि के पश्चात नियुक्त हुए थे। इन वर्षों का उपयोग भी रहीम ने साहित्य सेवा में किया।

३ गुजरात की सूबेदारी के पश्चात रहीम दो वर्ष महाराणा प्रताप के साथ उलझे रहे। वहाँ से लौटने के पश्चात सन् १५८० अर्थात आयु के चौबीसवें वर्ष में उनकी नियुक्ति मीर अर्ज के सम्मानपूर्ण पद पर हो गई थी। इस पद पर कार्य करने का अवसर तो उन्हें थोड़े ही दिन मिला किन्तु जितने भी दिन दरबार में रहे मौज से रहे। मीर अर्ज का कार्य न तो परिश्रम का था और न किसी बड़ी सिरदर्दी का। अतः इस समय के शान्त एवं भार मुक्त मस्तिष्क को रहीम ने अवश्य ही साहित्य रचना में लगाया होगा। स्मरणीय है कि यह अवकाश अत्यन्त अल्प था।

४ गुजरात से मुक्त होने के पश्चात रहीम १६ मार्च १५८७ को दरबार में उपस्थित हुए। तब से लेकर सिंध के लिए रवाना होने की तिथि ४ जनवरी, १५९० तक, रहीम को पुनः स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। इस बार इन्होंने शाही परिवार के साथ काश्मीर की सुरम्य घाटियों का भ्रमण किया था। लगभग पौने तीन वर्ष का यह समय रहीम ने मस्ती के साथ व्यतीत किया। इसी बीच नवम्बर, १५८९ के अंतिम सप्ताह में, उन्होंने तुर्की ग्रंथ वाक्यात बाबरी का फारसी अनुवाद सम्राट अकबर को समर्पित किया। इसी अवकाश में उन्हें मुगल साम्राज्य के उच्चतम पद (वकील मुतलक) पर कार्य करने का अवसर मिला। खानखाना की उपाधि उन्हें पूर्व ही मिल चुकी थी। सुख सम्मान, सुविधा तथा सम्पन्नता आदि सभी दृष्टियों से बत्तीस चौंतीस वर्ष की भरपूर तरुणावस्था का यह कालांश रहीम के जीवन का

१ समालोचना समुच्चय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (१९३० इलाहाबाद) पृ० १७३

अद्वितीय समय था। ऐसे जीवन म पौने तीन वष तो क्या पौने तीन दिन का समय काव्य रचना की दृष्टि स वर्षों म लम्ब जीवन की अपेक्षा कहीं अधिक काम्य है।

५ उन्हें सिन्ध विजय क पश्चात माच १५६३ स सितम्बर १५९३ तक छ महीने क लिए दरबार म रहने का एक और स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ था।

६ इसके पश्चात रहीम दक्षिण की विजयो म व्यस्त रहे। कुल मिलाकर दक्षिण म उन्होने लगभग तीस वष व्यतीत किये। यद्यपि वे समय समय पर दरबार म बुलाये जाते रहे परन्तु वास्तविक अर्थों म उन्हें अवकाश का उल्लेखनीय अवसर प्राप्त नही हुआ। हाँ लगभग ८५ वष की अवस्था म वे दक्षिण स बुलाए गए थे। उस समय पदच्युत सेनापति के रूप म लगभग दो वष अपनी जागीर कन्नौज म काटे थे। यह अवकाश पहले अवकाशो की भाँति न तो शान्तिपूर्ण था और न सम्पन्नतापूर्ण। इतना अवश्य है कि व पदों के भार स मुक्त थ। उन दोहों की रचना इसी समय की प्रतीत होती है जिनसे उनकी खिन्नता खिन्नता तथा विरक्ति इत्यादि टपकी पड रही है।[1]

७ इस अवकाश स भी बुरे दिन उन्हे राज्य विद्रोही के रूप म महावतखाँ की हिरासत म काटने पडे थ। लज्जा तथा ग्लानि स भरे इसी समय म दाराव की गदन क तरबूज तथा पौत्रो की निमम हत्या म इस बूढे सिंह के हृदय पर क्या बीती होगी इसका अनुमान भी नही लगाया जा सकता। इस घोर शोक के समय म किस का काव्य और कसी कविता।[2]

८ मर्मान्तक पीडा के उस अवकाश के पश्चात् अगला और अन्तिम समय तब मिला जब जहाँगीर ने उन्ह दोबार खानखानानी तथा एक लाख रुपये आदि देकर सम्मानित किया था। किन्तु कब्र म पर लटका कर बैठे हुए अभिभावक के घावो पर मरहम लगाने का प्रयत्न प्राय व्यथ ही था। सम्भव है भक्ति के कुछ दोहे उसी समय लिखे गये हो।

सारांश तथा निष्कर्ष

रहीम के जीवन का ऐतिहासिक अध्ययन कर लेने क पश्चात् हम उनके सम्बन्ध म निम्नलिखित निष्कर्षों पर सरलतापूर्वक पहुँच सकते हैं—

---

१ रहिमन उतरे पार भार झोंक सब भार मे। र० रत्ना० (याज्ञिक) पृ० १५
यारो यारी छोडिये वे रहीम अब नाहिं॥ वही पृ० २
रह्यो न काहू काम को सत न कोऊ लेय। वही पृ० ४
खरच बढ्यो उद्यम घट्यो नपति निठुर मन कीन्ह॥ वही पृ० ५
दुर्दिन परे रहीम कहि भूलत सब पहिचानि। वही पृ० १०
नहिं रहीम कोऊ लख्यो गाढ दिन को मित्त। वही पृ० १०
सदा रहै नहिं एक सी का रहीम पछतात॥ वही पृ० २५ इत्यादि इत्यादि

२ यद्यपि कविता का जन्म ही शोक करुणा एव दुख से माना जाता है परन्तु रहीम का जसा काव्य आज प्राप्त है वह उस मन स्थिति की उपज प्रतीत नही होती।

१ रहीम, अकबर के अभिभावक, इतिहास प्रसिद्ध बैरमखाँ खानखाना के, इतिहास प्रसिद्ध पुत्र थे।

२ रहीम का जन्म सलीमा बेगम के गर्भ से लाहौर में गुरुवार १७ दिसम्बर १५५६ तथा मृत्यु मार्च अप्रैल १६२७ को दिल्ली में हुई और वे अपने ही द्वारा बनाये हुए सुन्दर मकबरे में दफनाये गये।

३ रहीम का जन्म मुसलमान परिवार में हुआ था और वे आजीवन मुसलमान ही रहे किन्तु अकबर की उदार शिक्षा नीति के कारण उनमें धार्मिक कट्टरता कभी नहीं आई।

४ पिता के तुर्किस्तानी तथा माता के हिन्दू परिवर्तित भारतीय मुसलमान होने के कारण स्वदेशी तथा विदेशी दोनों रक्त रहीम के शरीर में विद्यमान थे। हिन्दुत्व से भी उनका रक्त सम्बन्ध था, भले ही वह दूर का रहा हो।

५ रहीम ने अपने पिता के समान ही, मतालीक खानखाना, प्रधान सेनापति तथा वकील मुतलक आदि मुगल दरबार के उच्चतम पदों को प्राप्त किया और वह भी पिता की अपेक्षा कहीं कम आयु में।

६ यद्यपि वे चार वर्ष की अवस्था से लेकर जीवन के अन्त तक मुगल दरबार से सम्बद्ध रहे किन्तु जितनी पदोन्नति तथा सेवा अकबर के शासनकाल में कर पाये उतनी जहाँगीर काल में नहीं कर सके।

७ रहीम ने अनाथ का जीवन भी बिताया और अनाथों के नाथ का भी। राजा रंक, मूर्ख पण्डित सहयोगी विरोधी, हिन्दू मुस्लिम बाल वृद्ध सभी के साथ कार्य करने के कारण मानव प्रकृति का जितना अनुभव रहीम को था शायद ही उतना किसी अन्य दरबारी का हो।

८ अपने दीर्घ जीवन के चढ़ाव उतार, यश अपयश सम्पन्नता विपन्नता तथा सौभाग्य-दुर्भाग्य के कारण उन्हें जीवन जगत का अत्यन्त नियामक अनुभव प्राप्त हो गया था।

९ उत्तर के काबुल और काश्मीर से लेकर दक्षिण में बरार बीजापुर तक की यात्राओं के कारण समूचे भारत की परम्पराओं को समझने तथा उसकी आत्मा तक पहुँचने का अवसर उन्हें प्राप्त हुआ था।

१० रहीम को विविध विषयों तथा भाषाओं का गम्भीर ज्ञान था और वे काव्य सर्जन पत्र लेखन तथा अनुवाद कार्य आदि की कलाओं में दक्ष थे।

११ सभी पुत्रों की मृत्यु अपने ही सामने होने के कारण उनकी वृद्धावस्था अत्यन्त पश्चाताप एवं परिताप में व्यतीत हुई।

१२ यद्यपि उनका सम्पूर्ण जीवन राजनीति तथा युद्धादि में व्यस्त रहा फिर भी उन्हें बीच-बीच में इस प्रकार के शान्तिपूर्ण अवकाश प्राप्त होते रहे जिनमें उत्तम काव्य रचना की जा सकती थी।

२

रहीम का व्यक्तित्व

कृति में कृतिकार के व्यक्तित्व का प्रतिफलन स्वाभाविक है। इसीलिए साहित्यिक समालोचनाओं के लिए व्यक्तित्व का अध्ययन भी आवश्यक है। जहाँ तक रहीम का सम्बन्ध है वे वीर सैनिक, कुशल सेनापति, सफल प्रशासक, अद्वितीय आश्रयदाता, वास्तविक अर्थों में गरीब निवाज, विश्वास पात्र मुसाहिब, नीति कुशल नेता, महान कवि, विविध भाषा विद, उदार कला पारखी इत्यादि सभी कुछ एक साथ थे। यही कारण है कि न केवल इतिहासकारों ने उनकी प्रशंसा की है अपितु कवियों ने उनके सम्बन्ध में सुन्दर सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। बनारस में शक सं० १५३१[1] अर्थात् रहीम के तिरपनवें वर्ष (१६०९ ई०) में खानखाना चरितम्[2] संस्कृत काव्य के प्रणेता कविवर रुद्र सूरि ने रहीम के व्यक्तित्व का बखान इस प्रकार किया है—

सकल गुण परीक्षक सीमा
नरपति मण्डल वन्दक धामा।
जयति जयति शोभमाननामा
गिरिधन राम-नवाब खानखाना ॥ ३।१३ ॥

उदारता, वीरता तथा दानशीलता से परिपूर्ण रहीम के व्यक्तित्व का गुण गान अनेक कवियों ने अनेक प्रकार किया है। गंग कवि का एक सवैया प्रस्तुत है—

सर सम सील सम धीरज समसर सम
साहब जमाल खानखाना था।
कर न कुबेर कलि कीरति कमाल करि
ताले बंद मरद दरद मंद दाना था।

---

१ नवाब खानखाना के प्रशंसा में रचना तिथि कवि ने इस प्रकार दी है—
शाके समाग्निविषयौ (१५३१) सौम्य वैशाखे शुक्लपक्षतौ।
चरितं खानखानाय कविना रुद्र सूरिणा ॥ ३।१३ ॥

२ इस ग्रन्थ का मूल हस्त-लेख कलकत्ता एक प्रति कामनवेल्थ रिलेशन लायब्रेरी में हस्तलिपि नं० ७३०८ कुम्भर ७० का नम्बर पर सुरक्षित है। श्री यतीन्द्र विमल चौधरी ने प्रथम बार १९५८ में अपने ग्रन्थ कन्ट्रीब्यूशन आफ मुस्लिम टू संस्कृत लिटरेचर भाग २ में सम्पादित कर प्रकाशित किया था।

दरबार दरस परस दरवेसन को तालिब,
तलब कुल आलम बखाना था।
गाहक गुनी के सुख चाहक दुनी के बीच
सत कवि दान का खजाना खानखाना था॥[1]

इन पंक्तियों में रहीम की सर्वतोमुखी प्रतिभा तथा बहु गुण सम्पन्नता का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। हम उनके व्यक्तित्व को छः प्रमुख शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं—

१ सेनापति रहीम
२ आश्रयदाता रहीम
३ दानवीर रहीम
४ कविवर रहीम
५ हिन्दुत्व प्रेमी रहीम, तथा
६ राजनीतिज्ञ रहीम

उनके व्यक्तित्व का एक पहलू और भी था जिसे हम बाह्य आकर्षण या शारीरिक सौन्दर्य कह सकते हैं। रहीम के माता पिता दोनों ही सुन्दर, स्वस्थ, प्रियदर्शी और पुष्ट थे। अतः सन्तान का सुन्दर होना कोई आश्चर्य का विषय नहीं। अकबर रहीम के भव्य भाल और उन्नत ललाट से बहुत अधिक प्रभावित था।[2] अकबर ही नहीं अन्य दरबारी भी बालक रहीम के आकर्षक व्यक्तित्व एवं शिष्ट मिष्ट व्यवहार पर मुग्ध थे। सुन्दर और स्वस्थ कुमार तो और भी बहुत से थे परन्तु इनके रूप रंग की बात कुछ और ही थी—

यह चितवन औरे कछू जेहि बस होत सुजान। —बिहारी

आजाद साहब ने रहीम की स्मरण शक्ति, हाजिर जवाबी तथा काव्य-संगीत प्रेम की सराहना करते हुए लिखा है कि उनके मुख मण्डल से सौन्दर्य रश्मियाँ सी फूटती थीं जो स्वजनों ही नहीं, राह चलते पथिकों का भी आकर्षित कर लिया करती थीं। चित्रकार उनके व्यक्तित्व से चित्र निर्माण की प्रेरणा प्राप्त करते थे और दरबारी अपनी बैठकों में बालक रहीम का चित्र सजाते थे। सम्राट अकबर तो किसी न किसी बहाने उन्हें अधिकांशतः अपने पास रखते ही थे, उनके पिता के शत्रु भी रहीम को स्नेह से देखते थे—जादू वह जो सर चढ़ के बोले।[3] बड़े होकर भी उनका यह सौन्दर्य अक्षुण्ण बना रहा था। अनेक युवतियों के उन पर मोहित होने की कथाएँ इसका प्रमाण हैं।[4] रुद्र कवि ने भी इन तथ्यों का मंडन दूसरे अध्याय में किया है। किसी -

---

१ रहीम रत्नावली पृ० ८६
२ अकबरनामा भाग ? (एशिया० सु० आफ बंगाल १९०७) पृ० २०३
३ अकबरी दरबार आजाद (अनु० रामचन्द्र वर्मा) भाग ३, पृ० २२७
४ रहीम रत्नावली पृ० ९९ ८

अज्ञात कवि ने उनके लिए ठीक ही कहा है—

मदन रूप तन तबल वीर बाहन गल लज्जिय।
धन मद जोवन राज मद एकहि मद न मत्तियो ॥[१]

रहीम की मुख शोभा का बखान सुप्रसिद्ध कवि गंग ने भी किया है। गोरे कपोलों को गंगा, काली मूछों को यमुना तथा अरुणारे अधरों को सरस्वती मानकर रहीम के मुख को कामद प्रयाग सिद्ध करने वाला दोहा प्रसिद्ध ही है। बाद के कवियों ने उनका अनुसरण भी स्वाविषयानुसार किया है।[२] दोहा इस प्रकार है—

गंग गोछ मोछें जमुन, अधरन सरसुति राग।
प्रगट खानखानान के कामद बदनु प्रयाग ॥

ऐसे सुन्दर और सरस व्यक्तित्व के लिए काव्य कला संगीतादि में रुचि स्वाभाविक है। किन्तु उनका अभिभावक अकबर यह सब नहीं चाहता था। वह तो अद्वितीय सेना नायक व होनहार पुत्र को उत्कृष्ट सैनिक तथा सेना नायक देखने को आकुल था। इसके लिए सम्राट ने योजना बद्ध रीति से प्रयत्न किया और १६ वर्ष की अल्प अवस्था ही में रहीम को गुजरात युद्ध में सेना के मध्य भाग की कमान देकर गौरवान्वित किया। उसके पश्चात सेना नायकत्व का क्रम जीवन भर प्रायः अक्षुण्ण ही रहा और वे अपने युग के कुशल ही नहीं अपितु अद्वितीय सेना नायक सिद्ध हुए।

सेनापति रहीम

अकबर के दरबार में एक से एक बढ़कर ईरानी तूरानी और हिन्दुस्तानी सरदार थे। महत्व अपेक्षाकृत हिन्दुस्तानियों का ही था और विशेषतः राजपूतों का। मुल्ला नीरी ने स्पष्ट स्वीकार किया है—

हिन्दू मेजन न शमशीरे इस्लाम।[३]
(हिन्दू भी मुसलमानों की ओर से तलवार चलाते हैं।)

स्पष्ट है कि अकबरी राज्य में प्रशंसा वीरत्व की होती थी। वहाँ हिन्दू मुसलमान या छोटे बड़े का विचार न था। खानखाना आयु में छोटे थे तो क्या सैनिक कार्यों में बचपन से ही बेजोड़ थे। उन्हें तीर और तलवार चलाने की अद्भुत क्षमता प्राप्त थी। घोड़े की सवारी का तो कहना ही क्या। कवियों ने रहीम के इन गुणों पर काव्य रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। घुड़सवारी के लिए परसिद्ध कवि के छप्पय की अन्तिम पंक्तियाँ प्रकार हैं—

थरहाहिं पलट्टहिं उच्छलहिं नच्चत धावत तुरङ्ग इमि।
सजन जिमि नागरि नन जिमि नट जिमि मग जिमि, पवन जिमि ॥[४]

---

१ रहीम रत्नावली पृ० ८८

२ तजि तीरथ, हरि राधिका तन द्युति कर अनुराग।
जिहि ब्रज केलि निकुंज मग पग पग होत प्रयाग ॥ —विहारी

३ अकबरी दरबार, भाग ३ पृ० १६६

४ रहीम रत्नावली पृ० ७८

इसी प्रकार तीर चलाने का उल्लेख करते हुए 'मदन' कवि ने लिखा—

> ओहती अटल खान साहब तुरक मान
> तेरी ये कमान तोसो तेहू सौं करत हैं।[1]

कवियों ही नहीं इतिहासकारो का प्रमाण भी लीजिए। मग्रासिरे रहीमी के समकालीन लेखक ने तो उनकी शस्त्र विद्या का और भी विस्तार से वर्णन किया है। एक घटना प्रस्तुत है—

'बाण विद्या मे खानखाना इतने दक्ष थे कि जब गुजरात के शाह मुजफ्फर पर विजय प्राप्त की तो एक दिन चौगान खेल रहे थे। उस समय एक कौआ उडा जाता था। खानखाना ने लगातार बारह तीर मारकर उसके आस पास एक चक्कर बाध दिया और तरहवें तीर से कौए को मार गिराया। एक बार एक सिंह के ललाट म ऐसा तीर मारा जो आर पार हो गया था। इस घटना का उल्लेख मुशी देवीप्रसाद ने भी किया है।'[2]

तीर-तलवार से भी अधिक महत्त्व व समय को देते थे। समय के अद्भुत पारखी और कद्र करने वाले थे। अपने कार्यों को शीघ्रता से सम्पन्न करना उनकी आदत थी। जब सम्राट ने उन्हें मुजफ्फर पर विजय प्राप्त करने के लिए स्वतन्त्र रूप से सेनापति बनाकर भेजा, तब रहीम ने इस तीव्र गति से कूच किया था कि बडे बडे तेज सेना नायक भी दग रह गए थे। उनकी आज्ञा थी कि बीस कोस से पहले अगला पडाव कदापि न डाला जाय। इतना ही नहीं शत्रु का अधिक बल दिखाकर उन्हीं के सरदारों ने उन्हें रोकना चाहा किन्तु उन्होंने बिना आराम किए अगले ही दिन प्रयाण ठान लिया।[3]

वृद्ध सलीसों ने भले ही इस जल्दबाजी तथा अदूरदर्शिता कहा हो परन्तु रहीम जानते थे कि उस अवसर पर थोडा भी विलम्ब करना शत्रु को और अधिक तैयारी का अवसर देना है। किन्तु इस कथन का यह तात्पर्य नहीं कि वे जल्दबाज व्यक्ति थे। रहीम ने अनुचित शीघ्रता कभी नहीं की। प्रतिकूल समय में हमेशा युद्ध को टालते थे। इसी युद्ध में साबरमती और सरखेज के बीच वाले मैदान में उन्होंने दो दिन टाल दिए थे। कारण यह था कि उन्हें मालवा से आने वाली कुमुक की प्रतीक्षा थी। तब लाचार होकर शत्रु को ही पहल करनी पडी थी। निश्चित ही यह पहल उसे महँगी पडी।

युद्ध सम्बन्धी मामलों में सेनापति रहीम बहुत ही सूझ बूझ से काम लेते थे। वे उत्साहभजक समाचारों को छिपाते और सैनिकों के उत्साहवर्द्धन के लिए स्वयं झूठी सच्ची अनुकूल अफवाहें फैलवा देते थे। इसी युद्ध में मुजफ्फर के महमूदनगर तक आ जाने के समाचार को उन्होंने गुप्त रखा था। इसके विपरीत जब उन्होंने

१ रहीम रत्नावली पृ० ७८
२ खानखाना नामा—मुशी देवी प्रसाद, भाग २ पृ० १६२
३ अकबरी दरबार, भाग ३, पृ० २६२

शत्रु सख्या की अत्यधिक विशालता क समाचारा से अपने सनिका को आतकित देखा तब एक जाली शाही फरमान तयार किया जिसम लिखा था कि सम्राट स्वय विशाल सेना के साथ, गुजरात विजय के लिए पधार रहे हैं। इस समाचार स शाही सनिको का उत्साह दुगना हो गया और जब मुजफ्फर ने यह सुना तो उसकी फूक सरक गई।[1]

वे अपने आप तो इस प्रकार क काय कर लेते थे किन्तु शत्रु पक्ष की चाला किया और षडयत्रा से सतक सावधान रहत थे। जाम नामक दूत का उद्दान इसी प्रकार मजा चलाया था।[2] अपने काम को दूसरे सरदारा पर टालना वे सनिक दमता के विरुद्ध समझते थे। उपयुक्त जाम नामक दूत ने एक बार समाचार दिया कि मुजफ्फर अमुक स्थान पर असुरक्षित है तेज जवान भेजे जायें तो पकडा जा सकता है। रहीम दूसरो पर न टालते हुए स्वय वहाँ पहुँच। यह बात दूसरी है कि वह पकडा न जा सका।[3]

सनिक हो या सेनापति उसका सबसे बडा भूषण है वीरता। यस तो खानखाना का समस्त जीवन ही शौय का मूर्तिमान रूप है किन्तु यहाँ उदाहरण के लिए एक घटना प्रस्तुत है। आष्टी के युद्ध म जब प्रात काल होने को हुआ तो शत्रु सना को सामने देख शाही सना के होश उड गए। शत्रु सेना चौगुनी के लगभग थी। सभी ने भागने की सलाह दी। निराश सेना का प्रतिनिधित्व करते हुए दौलतखा ने खानखाना स कहा हमारे सामने भारी सेना है। विजय ईश्वर के हाथ है। बताइये पराजय क बाद आपको कहा खोजे। किन्तु वाह रे रहीम! उस समय जो उत्तर दिया वह उन्हीं के योग्य था। रहीम बोले— खोजना ही पडे तो शवा क नीचे खोजना।[4] उत्तर का सुनना था कि सना म जोश की बारूद फट गई और इस शौय का प्रदशन किया गया कि शत्रु को भागते ही बना। ये था रहीम क शौय का फल।

इस विजय का श्रेय भाग्य को दिया जाय या रण कौशल को किन्तु इतना निश्चित है कि रहीम ने शत्रु की इतनी बडी शक्ति के सम्मुख मौत को साक्षात देखते हुए भी लडते लडते रण भूमि म वीर गति प्राप्त करने क जिस दृढ सकल्प का परिचय दिया वह निश्चित रूप से यह सिद्ध कर देता है कि रहीम मृत्यु क समय भय स भागने वाले नही थे। निश्चित ही यह कथन नितान्त भ्रामक है— जान देकर भी शान रखने का पाठ उन्होंने नही सीखा था।[5] इसके विपरीत रहीम की असदिग्ध वीरता सवत्र प्रशसित रही है। राजा प्रजा शत्रु मित्र, इतिहासकार और कवि

---

१ अकबरी दरबार भाग ३ पृ० २६४
२ वही, पृ० २८५
३ वही पृ० २८४
४ मआसिरुल उमरा, भाग २ पृ० १८८
५ अब्दुर्रहीम खानखाना पृ० २९८

सभी ने उनके शौर्य के गीत गाए हैं। 'परसिद्ध' कवि ने लिखा है—

सात दीप सात सिंधु थरक थरक कर,
जाके डर टूटत अटूट गढ राना के।
कंपत कुबेर बेर मेरु मरजाद छाँडि
एक एक रोम झर पडे हनुमाना के॥
धरनि धसक धरा मुसक ससक गई
भनत परसिद्ध खम्भ डोले खुरसाना के।
सेस फन फूट फूट चूर चकचूर भए,
चले पेस सामाजू नवाब खानखाना के॥[1]

शिवसिंह सेंगर ने इसी कवि का एक अन्य छंद उद्धृत किया है, जिसमें खानखाना की वीरता के आतंक का वर्णन है—

गाजी खानखाना तेरे धौंसा की धुकार सुनि,
सुत तजि पति भाजी धरी बाल हैं।
कटि लचकत बार भार ना सँभार जात,
परी विकराल जँह सघन तमाल हैं।
कवि 'परसिद्ध' तहाँ खगन खिजायो आनि
जल भरि भरि लेतीं दगन बिसाल हैं।
बेनी लखे मोर सीस फूल को चकोर लखें,
मुकता की माल ऐंचि लखत मराल हैं॥[2]

रहीम के शौर्य और साहस के सम्बन्ध में गाए गए ये गीत कोरी कवि कल्पना नहीं ऐतिहासिक विवरणों में सम्पुष्ट हैं। अपने सेना-नायकत्व और रण-कौशल के बल पर ही रहीम ने अनेक बार अपने से कई गुनी शक्ति वाले शत्रु को पराजित किया था। थोडी सेना से शत्रु की भारी वाहिनी को खदेड देना रहीम के सेनापतित्व की एक विस्मयकारी विशेषता थी। शत्रु को खदेडने में भी एक कौशल था। वे शत्रु के भागने की दिशा का पूर्वानुमान लगाकर उस पर कुछ ऐसे वेग से आक्रमण करते थे कि उसे सेना का सामान छोडकर भागते ही बनता था।

वे केवल वीर, साहसी और दूरदर्शी ही नहीं, नीति कुशल भी थे। शत्रु मित्र को खूब पहचानते थे और संधि विग्रह में दक्ष थे। परिस्थितियों के अनुसार शत्रु पक्ष से कुछ ऐसी शर्तें उपस्थित करते थे कि वह मुँह देखता रह जाता था। दक्षिण में मलिक अम्बर तथा सिंध के मिर्जा जानी से की गई संधियाँ इस तथ्य का प्रमाण हैं। उनकी संधि की शर्तें शत्रु पक्ष का निचोड कर रख देती थीं। मिर्जा जानी की तो लडकी भी उन्होंने अपने लडके के लिए माँग ली थी। और इस प्रकार शत्रुता को सम्बन्धों के नाते रिश्ते में परिवर्तित कर दिया था। क्या यहाँ महामति चाणक्य सेल्यूकस और चन्द्रगुप्त की संधियों की याद ताजा नहीं हो जाती?

---

१ तथा २ रहीम रत्नावली पृ० ७८-७९

सेनानायकत्व से सम्बन्धित रहीम के गुणों का परिचय कराने में पूरा प्रबन्ध तैयार हो सकता है। क्योंकि उन्होंने जिन विषम परिस्थितियों में सफलता प्राप्त की वे उनके जैसे सेनापति का ही काम था। दक्षिण में जाकर अच्छे अच्छे सेनापति असफल सिद्ध हुए थे और इस असफलता का कारण था मुगल सरदारों का पारस्परिक विद्वेष और असहयोग। रहीम की सफलता का रहस्य यही है कि वे असहयोगियों का भी विश्वास प्राप्त करते थे। समुचित युद्ध स्थल का चुनाव पृष्ठ भाग की सुरक्षा का ध्यान, खाद्य पूर्ति का पूर्ण प्रबन्ध तथा पराजित शत्रु के भागने का पूर्वानुमान करके ही वे आगे बढ़ते थे। अनुकूल व्यूह रचना टुकड़ियों का दक्षिण वाम एवं मध्य पक्ष में विभाजन तथा आवश्यकता के समय सैनिकों को दायें बायें खिसकाते रहना रहीम के सेनापतित्व का विशिष्ट अंग था। डा० समर बहादुर की आप्टी युद्ध से सम्बन्धित ये पंक्तियां उद्धरणीय हैं—

वह अपने युग का एक प्रवीण सेनानायक था। उसकी सेना में विभिन्न वर्गों के लोग थे और वह कुशल सेनापति सभी की निष्ठा एवं प्रेम का पात्र था। राजा अलीखां तथा कतिपय राजपूतों के इस समरांगण में निःस्वार्थ बलिदान उक्त कथन के साक्षी हैं। यदि आन्तरिक कलह और पारस्परिक वैमनस्य मार्ग में अवरोधक न होते और यदि इस विजय के पश्चात शाहीदल ने एक मत से कार्य किया होता तो परिणामतः दक्षिण की ऐतिहासिक गाथा आज कुछ दूसरी ही होती।[१]

शत्रु और मित्र सभी उनके महान सेनानायकत्व का लोहा मानते थे। अबुल फजल ने ठीक ही लिखा था— तलवार और कमानों को यदि बोलने की शक्ति होती तो वे तुम्हारे भुजबल का हजार बार बखान करते।[२]

अबुलफजल तो क्या सम्राट अकबर तक उनकी सम्मतियों को बिना ननुनच के स्वीकार कर लेते थे।[३] इतना ही नहीं कभी कभी तो उनकी युद्ध सम्बन्धी योजनाएँ अकबर की योजनाओं से भी बाजी मार ले जाती थीं।[४] यद्यपि अकबर की मृत्यु के पश्चात वे कुछ अधिक न कर सके परन्तु उनकी रणकुशलता से जहांगीर भी प्रभावित था। और जहांगीर ही क्यों सारा मुगल दरबार इसे स्वीकार करता था।[५] वस्तुतः युद्ध रहीम के लिए सामान्य खेल बन गया था और विजय थी उस खेल का अनिवार्य परिणाम। जिस प्रकार और राजा नवाब शिकार खेलने जाते तथा वहां से कुछ पशु पक्षी बांध लाते थे उसी प्रकार खानखाना युद्ध के लिए दौड़ जाते और अविलम्ब किसी न किसी शत्रु को बांध लाते थे। ऐसे ही भावों से भरा किसी अज्ञात

---

१ अब्दुर्रहीम खानखाना पृ० १४२-४३
२ खानखानानामा भाग २ पृ० १४७ पर उद्धृत प्रथम पत्र
३ अकबरी दरबार भाग २ अबुलफजल का पत्र, पृ० १८७
४ वही, पृ० २७१
५ जहांगीर चरित्र, पृ० २६१

कवि का एक छन्द द्रष्टव्य है—

काहू को सिकारि स्याल लोमन को खेल होत,
काहू की सिकारि मग मारि सुखमानो है।
काहू की सिकार साथ सिकरा सिचान बान
काहू की सिकार देखो वारुण बखानो है।
खानखाना की सिकार सिंधु पके बार पार
छद बद फद खट बरन को ठानो है।
अबही सुनोगे मास दोय तीन चार मांझ
कौन ही दिसा को पातशाह बांध आनो है।[1]

दानवीर रहीम

अकबर का काल सम्पन्नता और सुख का काल था। उसके सरदारों और मुसाहिबों के घर विपुल सम्पत्ति एकत्रित थी। कुछ इस सम्पत्ति का उपयोग विलास के लिए करते थे और कुछ दान धर्म आदि के लिए। इनमें तीन बहुत प्रसिद्ध थे—मिर्जा गयास बेग, बीरबल और रहीम। मुतामिद खाँ ने अपने ग्रन्थ इकबाल नामा जहाँगीरी में बेग के दान की बहुत प्रशंसा की है।[2] बीरबल की दान गाथायें भी इतिहास प्रसिद्ध हैं। किन्तु इन सबके सिरमौर अब्दुर्रहीम खानखाना थे। उनकी युद्धवीरता तो इतिहास के कतिपय ग्रन्थों तक ही सीमित है किन्तु दानवीरता जन जन की जिह्वा पर आज भी अंकित है। कलियुग के कर्ण खानखाना ने मानो जन सामान्य की दीनता दूर करने का सकल्प किया हुआ था—

श्रीखानखाना कलिकर्ण नरेश्वरेण
विद्वज्जनादिह निवारितमादरेण।
दारिद्रमाकलयति स्म निताऩ्तभीत
प्रत्यर्थि वीर धरणी पति मण्डलानि ॥[3]

लोग रहीम को कल्पतरु समझते थे। जिस घर से दरिद्रता न निकली हो तो समझ लेना चाहिए कि वह खानखाना के द्वार तक नहीं पहुँचा—

खानखाना न आवियो, तहा दालिद्र न जाय।
कूप नीर अन्न बिना नीलो धरा न पाय।[4]

दान का यह कार्यक्रम दो प्रकार से होता था—

१ दैनिक दान।
२ विशेष दान।

---

१ रहीम रत्नावली पृ० ८९ ९०
२ इलियट (१८७३ लन्दन) भाग ६, पृ० ४०४
३ खानखाना चरितम, २ १६
४ रहीम रत्नावली पृ० ८८

दैनिक दान के भी दो रूप थे—

(क) द्रव्य दान।

(ख) भोजन दान।

नमाज इत्यादि धार्मिक कृत्यों की भाँति द्रव्य दान खानखाना के जीवन का नित्य नैमित्तिक कार्य था। दान उनके स्वभाव एवं जीवन का अविभाज्य अंग हो गया था। बिना दान दिए उन्हें जीवन भी नहीं रुचता था—

तबहीं लौं जीबो भलो दीबो होय न धीम।
जग में रहिबो कुचित गति उचित न होय रहीम।[1]

सम्भवतः दैनिक दान के प्रबन्धक मियाँ फहीम होते थे। क्योंकि उन्हीं के बारे में यह कहावत प्रसिद्ध है कि—

कमाय रहीम और लुटावें मियाँ फहीम।[2]

रहीम जब दान करने बैठते थे तो द्रव्य की ढेरी लगा लेते थे और माँगनेवाले को मुट्ठी भर दे दिया करते थे। जितना मुट्ठी में आया उसके भाग्य का। दान देते समय आँख उठाकर ऊपर देखना रहीम के सिद्धान्त के विरुद्ध था। कौन ले जा रहा है कौन नहीं यह जानने का प्रयत्न रहीम ने कभी नहीं किया।

गंग और रहीम के प्रश्नोत्तर प्रसिद्ध ही हैं। गंग ने पूछा—

सीखे कहाँ नवाबजू ऐसी दैनी देन।
ज्यों ज्यों कर ऊंचो करो त्यों त्यों नीचे नैन।[3]

रहीम का उत्तर था—

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन
लोग भरम हम पर धरें याते नीचे नैन।[4]

ऐसे निस्पृह दानी के लिए आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही कहा है इनकी दानशीलता हृदय की सच्ची प्रेरणा के रूप में थी। कीर्ति की कामना से उसका कोई सम्पर्क न था।[5] रहीम वैसे भी अपने युग के पारस समझे जाते थे। कथा प्रसिद्ध है कि एक बार एक याचक ने ताँबे का गोला निकाल कर रहीम के घुटने से छुआ दिया। अंग रक्षकों ने उसे तुरंत धर दबाया किन्तु रहीम ने सबको हटाते हुये कहा— 'इस गोले के भार का सोना तौल दो।' मुसाहिबों द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि यह व्यक्ति रहीम के पारसत्व की जाँच के लिए आया था।

---

१ रहीम रत्नावली पृ० ९

२ यह फहीम (रहीम का विशेष कृपा पात्र सेवक) एक राजपूत का लड़का था।
—खानखानानामा (२) पृ० ८९

३ तथा ४ रहीम रत्नावली पृ० ६८ ६९

५ हिन्दी साहित्य का इतिहास पं० रामचन्द्र शुक्ल (१४वां संस्करण) पृ० २०८

इतना अधिक द्रव्य प्राप्त करके जब याचक घर लौटते थे तो लोग पूछा करते थे—

लंका लायो लूट किधौं सिंहन को कूट कूट,
हाथी घोड़े ऊँट एते पाये ते खजीने हैं।
'अलाकुली' कवि का कुबेर ते मिताई कीन्हो
अनतुले अनमाने नग और नगीने हैं।
पाई है त खान कैंधों भई पहचान भूल,
रह्यो है जहाँ नए समान तहाँ कीने हैं
पारस तें पाए किधौं पारा ते कमायो किधौं
समुद्र हू ते लायो किधौं खानखाना दीने हैं।[1]

इतनी अधिक उदारशीलता के कारण जब उन्हें कोष क्षीण होता दीखता तो वे उसे कभी तो शत्रुओं पर चढ़ाई करके भरते और कभी अन्य सरदारों के सहयोग से। यहाँ तक कि वे कभी कभी ऋण की व्यवस्था भी करते थे। परन्तु दान देने में उन्होंने कभी कमी नहीं की। अत्यधिक विपन्नता के अंतिम काल में भी जब याचकों ने अपने कल्पतरु का पीछा न छोड़ा तब रहीम को मजबूर होकर कहना पड़ा था—

ए रहीम दर दर फिरहिं, माँगि मधुकरी खाहिं
यारो यारी छोड़िए वे रहीम अब नाहिं।[2]

कहने की आवश्यकता नहीं कि—'बिन दीवो जीवो जगत हमें न रुचै रहीम' का लेखक अपनी विपन्न अवस्था के कुछ ही दिनों पश्चात संसार छोड़कर चल दिया था।

भोजन दान

रहीम के जीवन का दूसरा कार्यक्रम था भोजन दान। उनका भोजन सामान्य अमीर उमरावों का सा न होकर एक भोजन यज्ञ होता था। कहते हैं कि उनका लंगर सदैव और सबके लिए खुला रहता था। जब खानखाना भोजन करते थे तब पद और मर्यादा के अनुसार एक साथ सैकड़ों को भोजन मिलता था। वे खाद्य पदार्थों की रकाबियों में कहीं कुछ रुपए और कहीं कुछ अशर्फियाँ रख देते थे। जो जिसके कौर में आए वह उसके भाग्य का। आज तक यह कहावत प्रसिद्ध है—

रहीम खानखाना जिसके
खाने में भी खजाना।[3]

इन दैनिक दान कार्यों के अतिरिक्त विशिष्ट याचकों, गुणियों, साधुओं और सैनिकों को भी बराबर दान दक्षिणा मिलती रहती थी। अन्य दानी तो माँगने पर देते हैं परन्तु रहीम बिना माँगे दान दिया करते थे। वे जानते थे कि कुलीन

1. रहीम रत्नावली, पृ० ८१
2. वही पृ० २
3. अकबरी दरबार, भाग ३, पृ० ३९९

व्यक्ति के लिए आवश्यकता पड़ने पर भी माँगना मरण समान नहीं—

गरज आपनी आप सों रहिमन कही न जाय,
जैसे कुल की कुल बधू पर घर जात लजाय।[1]

रहीम जैसे असामान्य दानी थे वैसे ही उनके असामान्य याचक भी थे। उन याचकों के अनेक वर्णन लेखकों ने उद्धृत किये हैं।[2] हम तो केवल एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहेंगे। खानखाना एक बार दरबार की ओर जा रहे थे। मार्ग में एक शस्त्र सज्जित युवक बोझ ढोते मजदूर के समीप रुक कर खड़ा हो गया। ध्यान से देखने पर ज्ञात हुआ कि उसकी पगड़ी से दो लकड़ी की ईंटें बाहर निकली हुई हैं। पूछने पर उस व्यक्ति ने उत्तर दिया—महाराज! एक ईंट उन स्वामी के साथ में ढोता है जिन जो अपने नौकरों का ठीक प्रकार वेतन न दें। और दूसरी उस नौकर के लिए जो वेतन तो ले किन्तु सच्चाई के साथ सेवा करने से जी चुराये। रहीम ने बोझा ढोने का उसके जीवन भर का वेतन चुकाने की आज्ञा देते हुए कहा—लीजिए इस रत्न ईंट का बोझ तो अपने सर से उतार दीजिए। दूसरी ईंट का आपको अधिकार है।

वे ऐसी धनराशियाँ अपने सेवकों का प्राय भेंट करते रहते थे। कवियों के अनुसार उनके सेवक ऋण की चिन्ता भी नहीं करते थे। जानते थे कि खानखाना की सेवा में उपस्थित होते ही न केवल ऋण मुक्ति के लिए धन मिलेगा अपितु दो हजार हजारियों के समान मालामाल हो जायेंगे—

काहे रे करजदार! भगरत है बार बार,
नक दिल चोर पर जान इतवारी से।
वेहू घर हाल माल लिखले सवाई साल
देखना बिहाल मत जानना भिखारी से।
सेवा खानखाना की उमेदवारी वान कीते
महर मुहान की सु होत धनधारी से।
अब घरी पल माँझ पहर द्व पहर माँझ
आज काल के हैं ... द्व हजारी से॥ रहीम रत्नावली पृ० ८६

रहीम की उदारताओं तथा दानमानादि की जितनी चर्चा की जाय थोड़ी है। आपने अकबरी में अबुल फजल ने सरनाल युद्ध का विवरण देते हुए लिखा है कि रहीम ने मन ही मन यह संकल्प कर लिया था कि यदि युद्ध में विजय प्राप्त हुई तो हाथ लगने वाली सम्पूर्ण सम्पत्ति दान कर दी जायगी। भगवान ने कृपा की। विजयश्री ने रहीम का वरण किया। उन्होंने भी सुई से लेकर हाथी तक जो भी हाथ लगा था सब का सब लुटवा दिया। प्रश्न यह उठा कि सामान्य व्यक्ति तोप तमंचा

१ रहीम रत्नावली पृ० ५
२ देखिए आजाद का अकबरी दरबार तथा प० याज्ञिक की रहीम रत्नावली (भूमिका)

और हाथी घोड़ा का क्या करे ? अत उनका मूल्य आँक कर उतना रुपया रहीम ने अपने खजाने से अदा कर दिया।

भाग्यहीन तो सोने की लंका में भी बसते थे। कहते हैं कि एक सैनिक उस दान महायज्ञ के समय नहीं पहुँच पाया। जब वह खानखाना की सेवा में पहुँचा तब वे अपने कागज पत्र देख रहे थे। सैनिक ने अपने को कुछ न मिलने का निवेदन किया। रहीम के पास सर्वस्व दान के पश्चात मात्र कलमदान शेष था। उसे ही सैनिक को प्रदान करते हुए खानखाना बोले यही तेरे भाग्य का बचा था।[1]

ऐसा ही महादान का एक आयोजन २६ जनवरी १५६७ ई० वाली आष्टी-विजय के उपरान्त हुआ था। इसे तो दान क्या पूरी लूट ही कहना चाहिए। विश्व-इतिहास में ऐसे उदाहरण विरल ही मिलेंगे सम्भवत न भी मिलें। इस विजय में शत्रु पर अप्रत्याशित विजय प्राप्त हुई थी और शत्रु-पक्ष की भारी सामग्री रहीम के हाथ लगी थी। उसकी अपनी सम्पत्ति तथा हाथ लगे माल का मूल्य ७५,००,००० (पिचहत्तर लाख) रुपये था। विजय के उल्लास में रहीम ने अपने प्राण उत्सर्गकर्त्ता सैनिकों को पूरा का पूरा रुपया दान कर डाला था। रहीम के पास बचे थे केवल दो ऊँट।[2] इतनी बड़ी धन राशि का सब सामान सैनिकों में वितरित कर देना रहीम जैसे उदार दानवीरों का ही काम था। तभी कहा जाता था कि दान खानखाना के नाम पर ही जीवित था —

जोरावर अब जोर रवि रथ कसे जोर
बने जोर देखे दीठि जारि रहियतु है।
है न को लिवया ऐसो है न को दिवया ऐसो,
दान खानखाना के लहे ते लहियतु है।
तन मन डारे बाजी द्व तन सँभारे जात,
और अधिकाई कहो का सौं कहियतु है।
पौन की बड़ाई बरनत सब तारा कवि
पूरो न परत या ते पौन कहियतु है॥[3]

कवियों के अद्वितीय आश्रयदाता रहीम

यों तो राज दरबार कवियों को युगों युगों से आश्रय प्रदान करते चले आये हैं किन्तु इस सम्बन्ध में रहीम की उदारता असीम थी। इस उदारता में वे न केवल अमीर उमरावों से बढ़कर थे अपितु विश्व भर के सम्राटों से भी आगे थे। उस समय यूरोप की महारानी एलीजबेथ, ईरान के शाह अब्बास तथा भारत के अकबर विश्व के महानतम सम्राटों में से थे। सभी के दरबारों में कवि एवं कलाकारों का

१ आइने अकबरी पृ० ३५५
२ मआ० उमरा भाग २ पृ० १८६
३ रहीम रत्नावली, पृ० ८७

जमाव रहता था। किंतु इतिहास साक्षी है कि, भारत ही नही अपितु समस्त एशिया एव यूरोप मे रहीम की टक्कर का आश्रयदाता कोई दूसरा न था।

अब्दुल गनी साहिब, मुगल दरबार के फारसी साहित्य का इतिहास लिखते हुए उच्च स्वर से उदघोष करते है कि अकबर एशियाई सम्राटो म निस्सदेह प्रसिद्ध था किन्तु उसका दरबारी रहीम तो सुप्रसिद्ध था। उन्होने देशो के नाम गिनाते हुए कहा है कि फारस भारत मध्य एशिया और टर्की म उनके समान ज्योति पिण्ड काव्य आश्रयत्व के आकाश मे दूसरा न था।[1]

खानखाना क औदार्य एव आश्रयदायित्व की धूम इतनी मच गई कि देश विदेश के कवि उनके दरबार म इस प्रकार खिचे चले आते थे जसे भ्रमर कमल पर अथवा पतग दीपक पर। बात इस अवस्था तक पहुच गई थी कि सम्मान मे थोडा सा भी अन्तर आने पर कवि अपने आश्रयदाताओ को छोड रहीम के दरबार म आने की धमकी दे दिया करते थे। यह घटना छोटे मोटे राजाओ के साथ नही अपितु ईरान के शाह अब्बास क दरबार म भी घट चुकी थी। ईरान के सुप्रसिद्ध कवि कौसरी ने भरे दरबार मे यह सुनाया था—

नहीं दीख पडता है कोई ईरान मे
जो मेरे गूढाशयमय पदो का क्रिय करे
सन्तात्मा बना हू मैं अपने ही देश म
आवश्यक हो गया है मुझे हिन्दुस्तान जाना।
जिस प्रकार बूद एक जाती है सागर ओर
मै भी भेजूगा निज काव्य निधि हिन्द को,
क्योकि इस युग क राजाओ मे अब कोई नहीं
खानखाना के सिवा अन्य आश्रयदाता
सरस्वती के सुपुत्र सब कवियो का॥[2]

---

1 The one shining orb in the horizon of literary patronage at the Mughal Court and in the whole empire of Asia is the dazzling personality of Khankhanan who deserves a foremost place as supporter of Persian art and literature among the contemporary rulers of Persia India Central Asia and Turkey. Akbar among the Asiatic monarchs was undoubtedly eminent but his court noble Abdur Rahim Khankhanan was pre eminent.
—*A History of Persian language and literature at the Mughal court* Mohd Abdul Ghani (Alld 1930) Page 221

२ कि दर ईरान कसे नायद पदीदार कि बाशद जिन्स मायनीरा खरीदार।
दर ईरान तल्ख गश्ता कामे जानम बबायद शुद सुवे हिन्दुस्तानम॥
चु कतरा जानिबे अम्मां फरस्तम, मताए खुद बहिंदुस्तां फरस्तम।
कि न बुवद दर सुखन दानाने दौरां खरीदारे सुखन जुज खानखानान॥
—कोट पोइटस आफ इण्डिया एण्ड ईरान— आर० पी० मसानी
(बम्बई १९३८) पृ० १३८

इतिहास साक्षी है कि अपने आश्रित कवियों पर रहीम ने एक अवसर पर हजारों और लाखों अशर्फियाँ लुटाई थीं। इसीलिए अब्बास के दरबार में जो घटना घटी उसी की पुनरावृत्ति का आभास अकबर और जहाँगीर के दरबार में भी मिल जाता था। उदारता और योग्यता के लिए जितना गुण गान, रहीम का हुआ है उतना सम्भवतः अकबर का भी नहीं। फारसी कवि रशिमक्लन्दर की एक लम्बी कविता में उन गुण गायक कवियों का उल्लेख है जो फारसी इत्यादि बाहरी देशों से आये थे।[1] उनके द्वारा गिनाये हुए नामों में अधिक प्रसिद्ध हैं—हुरफी, नजीरी, शिकवी हयाती, नावी तथा कुफवी। मु० शिकेबी का, सिंध विजय के अवसर पर, हुमा सम्बधी शेर लिखकर एक हजार अशर्फियाँ पाना तो प्रसिद्ध ही है।[2]

ऐसी ही एक बात मु० नजीरी के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है। मुल्ला ने खानखाना से कहा कि मैंने कभी एक लाख रुपए का ढेर नहीं देखा। रहीम की आज्ञा से मुल्ला के सम्मुख ढेर लगवा दिया गया। प्रसन्न नजीरी ने कहा— 'खुदा का शुक्र है कि, अपने नवाब की कृपा से, मैंने इतना धन एकत्रित देख लिया।' रहीम ने वह समस्त ढेर नजीरी को देते हुए कहा— 'एक बार फिर खुदा का शुक्र अदा करो।'[3] मौलाना शिबली ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ शेरुल अजम में ऐसी ही एक मोटी रकम प्रदान करने का उल्लेख हुरफी के सम्बन्ध में किया है। एक मात्र कसीदे पर प्रसन्न होकर रहीम ने हुरफी को सत्तर हजार रुपए का इनाम दिया था।[4] मआसिर रहीमी द्वारा गिनाए हुए पुरस्कारों का विवरण प्रस्तुत किया जाय तो उसके लिए पृथक से एक ग्रंथ की आवश्यकता होगी।

खानखाना की अभूतपूर्व उदारता, दरबार के निजी कवियों तक के लिए ही सीमित न थी। वे आते जाते कवियों के प्रति भी उतने ही उदार थे। वस्तुतः उदारता उनकी आदत थी और काव्याश्रय उनका व्यसन। एक बार खानखाना दरबार से विदा लेकर बुरहानपुर जा रहे थे। मार्ग में प्राय सत्ताइस पडाव पडते थे। उनके पहले ही पडाव में जंगल में मंगल हो गया। वीरान को इस प्रकार आबाद होते देख किसी दरिद्र ने श्लेष युक्त एक शेर बनाकर उन्हें सुनाया। उसका अर्थ था—

मुनइम (धन सम्पन्न) व्यक्ति के लिए पहाड जंगल और उजाड स्थान में भी किसी वस्तु की कमी नहीं रहती। वह जहाँ जाता है वहीं खेमा खडा कर लेता है और बरगाह बना लेता है।[5]

---

१ कोट पोइट्स आफ ईरान एण्ड इण्डिया—आर० पी० मसानी (बम्बई १९३८) पृ० १३८

२ म० आ० उमरा० भाग २ पृ० १८६

३ वही, भाग २, पृ० १९६

४ शेरुल अजम मौलाना शिबली (अलीगढ १९२०) हिस्सा सोयम पृ० १३

५ उस समय तक रहीम को मुनइम खाँ की उपाधि मिल चुकी थी।
—अकबरी दरबार, भाग २ पृ० ४०४

कवि के हृदय की सच्ची अनुभूति तथा वर्णन की मार्मिकता ने रहीम को अत्यधिक प्रभावित किया। उन्होंने दरिद्र ब्राह्मण को एक लाख रुपया भेंट माला माल कर दिया। साथ ही प्रति दिन आकर दोहा सुनाने की प्रार्थना की। वह एक सप्ताह तक रोज दोहा सुनाकर एक लाख रुपया प्रति दिन प्राप्त करता रहा। आठवें दिन रहीम प्रतीक्षा ही करते रहे परन्तु कवि महाशय न पधारे। सम्भवतः पहाड़ा तक नित्य एक लाख रुपया लेकर प्रसन्न होने का अवसर आ जाने का उन्हें गम रहा।

कदाचित दरिद्र कवि को इतने अधिक धन की स्वप्न में भी आशा न रही थी। वस्तुतः कविगण रहीम से जितना मांगते थे उससे अधिक प्राप्त करते थे। एक बार फारसी के दो दोहों पर प्रसन्न होकर रहीम ने कवि की इच्छा पूछी। उसने सानन्द निवेदन किया—एक लाख रुपया। रहीम ने सहर्ष दो लाख रुपए दे दिए। ऐसी थी रहीम की दानशीलता।

रहीम के दरबार में फारसी में भी अधिक आश्रय हिन्दी को प्राप्त था। हिन्दी के कवियों की संख्या फारसी के कवियों से कहीं अधिक थी। फारसी के कवियों को पुरस्कार दो चार या दस पांच हजार तक ही प्राप्त हुए होंगे किन्तु हिन्दी कवि गंग को तो एक मात्र छप्पय[1] पर छत्तीस लाख रुपये की विशाल धनराशि प्राप्त हुई थी। यह एक मानक है रिकार्ड है। ध्यान नहीं आता कि किसी मुगल राजा रईस ने एक मात्र छंद पर छत्तीस लाख रुपये की विपुल द्रव्य राशि भेंट की हो। ३६ लाख इतनी भारी रकम होती है कि रुपया यदि एक तोले का हो तो चांदी का बोझ एक हजार एक सौ पच्चीस मन हो जायगा। यदि गंग महाशय सवा मन के भार के रुपया (अर्थात ४००० रुपया की गठरी) का बोझ बांधकर ले गये हों तो उन्हें खजाने से अपने घर तक (आठ कम) एक हजार चक्कर लगाने पड़े होंगे। वास्तव में गंग उपहार द्रव्य एवं सौभाग्य के बोझ से दब गये होंगे।

रहीम के पुरस्कार यहीं तक सीमित नहीं थे। वे तो कवियों का जीवन भर का बीमा कर दिया करते थे। वे इतना दे डालते थे कि उनके द्वारा पुरस्कृत कवि को कभी कभी जीवन भर और किसी के दरबार में जाने की आवश्यकता नहीं रहती थी। एक बार की घटना है कि किसी कवि ने एक कवित्त खानखाना की सेवा में

---

१ चकित भवर रहि गयो गमन नहिं करत कमल बन।
अहि फन मनि नहिं लेत तेज नहिं बहत पवन घन॥
हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिलै अति।
बहु सुंदरि पदमिनि पुरुष न चहै न करै रति॥
खल भलित सेष कवि गंग भन अमित तेज रवि रथ खस्यो।
खानखाना बैरम सुवन जबहिं क्रोध करि तंग कस्यो॥
हिंदी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (१४वां सं०),
पृ० २९६ से उद्धृत।

सुनाया। उसका प्रसग था कि सूर्य सोने के सुमेरू पर्वत के पीछे अस्त होता है। और सूर्यास्त के कारण चक्रवाक मिथुन का वियोग हो जाता है। अत चक्वी प्रार्थना करती है कि किसी प्रकार खानखाना का सुमेरू पर अधिकार हो जाय। उदार खानखाना विजयोल्लास में, समस्त प्राप्त धन को लुटवा देते हैं। अत सुमेरू भी लुट जायगा। सुमेरू लुटने पर सूर्यास्त का स्थान समाप्त हो जायगा। अत वह सदैव चमकता रहेगा और इस प्रकार चक्वी की वियोग व्यथा का सदा सर्वदा के लिए अन्त हो जायगा।'

कहने की आवश्यकता नहीं सूझ अछूती एव प्रिय थी। रहीम ने कवि महोदय से पूछा कि मनुष्य की आयु कितनी होती है। उत्तर मिला सौ वर्ष। सौभाग्यशाली की आयु उस समय पैंतीस वर्ष की थी। अत शेष पसठ वर्ष का, पाच रुपये प्रति दिन के हिसाब से धन पुरस्कार स्वरूप प्रदान कर दिया गया। ऐसी थी खानखाना की उदारता। इन गौरव गाथाओ से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्होंने कितने नये कवियों को प्रेरणा दी होगी और कितने पुराने कवियो के निखार में योग दान प्रदान किया होगा। मौ० शिबली का यह कथन सर्वथा सत्य है—"इस तरह की शाहाना फयाजियों और शायराना नुक्ता सजियों ने शेरो शायरी के हक में अब्रे करम का काम किया।"[1]

कवियो ने खानखाना की जितनी प्रशस्तिया गाई हैं उनका औचित्य उसके गुणो के कारण और भी बढ जाता है। खानखाना कवि को केवल अतुलनीय पुरस्कार ही नही देते थे अपितु इस सम्मान के साथ पुरस्कृत करते थे कि कवि गद गद हो जाता था। एक तथ्य और। वे अपने कवियो की प्रशसा में स्वय भी काव्य रचना करते थे। राजा नरबाबा मे ऐसा कदाचित ही कोई मिले। कहते हैं कि भाट कवि आसकरण जड्डा ने कतिपय उत्कृष्ट डिंगल दोहो में रहीम की प्रशसा की। उदाहरणार्थ एक दोहा प्रस्तुत है—

खानखाना नव्वाब रे खाडे आग खिवत।
जल वाला नर प्राजल, तण वाला जीवन्त ॥

अर्थात हे नवाब खानखाना! तेरे खाड (तलवार) की आग अद्भुत है। उसमे जो पानी वाले या अपनी तलवार के पानी पर भरोसा करने वाले अर्थात अपने को वीर समझने वाले हैं वे तो जल मरते हैं और जो तृण धारण करने वाले हैं अर्थात विनम्र हैं वे जीवित रह जाते हैं।

रहीम ने प्रत्येक दोहे पर एक लाख रुपये देकर कवि को पुरस्कृत करना चाहा किन्तु कवि ने अस्वीकार कर दिया और मॉगा कि सम्राट से महाराणा प्रताप के भाई के लिए जहाजपुर का परगना दिलवा दिया जाय। रहीम ने प्रयत्न किया और वे सफल हो गये। किन्तु 'जड्डा' के दोहो से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने

1 शेरूल अजम मौ० शिबली, भाग ३, पृ० १२

अद्वितीय आश्रयदाता थे अपितु स्वयं भी उत्कृष्ट कवि थे। सम्राट अकबर ने उन्हें यदि काव्य और कला की साधना में ही लगे रहने दिया होता तो साहित्य का इतिहास आज कुछ और ही होता है। मौ० शिबली का कथन है—

खानखाना इस दरजे का सखुन म ज था कि अगर शायरी में पडता तो उरफी और नसीरी का हमसर होता।[1] उनकी गजलों को तो शेख सादी के समान सरल और प्रभावकारी माना जाता है।[2] ये गजलें नमूने के तौर पर शेरुल अजम, हफ्त अकलीम, तजकिरे पुरआन, मआसिरे रहीमी तथा तुजुके जहांगीरी आदि में देखी जा सकती हैं। विद्वानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि रहीम ने अनेक पेशेवर फारसी शायरों को काव्य कला की साधना में बहुत पीछे छोड दिया था।[3] खेद है कि उनका लिखा फारसी दीवान आज तक उपलब्ध नहीं हुआ। उदाहरण के लिए रहिमन विलास में उद्धृत एक शेर प्रस्तुत है—

> अदाए हक्के मुहब्बत इनायत ज दोस्त,
> वगरन आशिक बहेच खुसदस्त।
> न जुल्फ दानमो नदाम ह कदरदानम,
> के माता बेह सरम ब हर्चो हस्त दर ववस्त॥

अर्थात् यह तो उनकी कृपा है कि वे मेरे प्रेम का प्रतिदान प्रदान करते हैं व यथा मैं तो उनसे बस भी सदैव प्रसन्न हूं। मैं नहीं जानता कि उनके केशों का बंधन अधिक सुन्दर है या लटाओं की लटकन मेरे लिए तो आपादमस्तक उनका प्रत्येक अंग सुन्दर है।

संस्कृत और रहीम

कभी समय था जबकि भारत के कण कण से संस्कृत श्लोकों की ललित कलित ध्वनि निःसृत होती थी। किन्तु देश की पराधीनता के साथ संस्कृत का भी पराभव निश्चित था। कारण प्रत्येक विजेता, शासन के साथ ही अपनी भाषा भी लाता है। उदार जातियाँ विजितों की सभ्यता एवं संस्कृति के अध्ययन एवं संरक्षण का भी प्रयत्न करती हैं जबकि अनुदार जातियाँ ऐसा नहीं कर पातीं। इस्लाम की अनुदारता जगत प्रसिद्ध [redacted]। स्वयं मुसलमान लेखक भी इस सत्य को स्वीकार करने में हिचक नहीं हैं।[4] अलबरुनी इस तथ्य का प्रमाण है। क्रांतिदर्शी अकबर ने इस स्थिति का विरोध कर मुसलमान विद्वानों को संस्कृत का सम्यक ज्ञान प्राप्त करने के लिए विवश किया। रहीम भी अपवाद न थे। उन्होंने न केवल संस्कृत के धर्म ग्रंथों का अध्ययन किया अपितु संस्कृत काव्य रचना में भी दक्षता प्राप्त की। इतना ही नहीं वे धातु

---

१ शेरुल अजम, मौ० शिबली भाग ३ पृ० १३
२ अब्दुर्रहीम खानखाना डा० समरबहादुरसिंह पृ० २८७
३ ए हिस्ट्री आफ परशि० लिट्० एट द मुगल कोर्ट, आर०पी० मसानी पृ० २२५
४ अलबरुनी कृत भारत प्रथम भाग अनु०सन्तराम (द्वि०सं०) पृ० ४

रचना करने तथा अशुद्धि शोधन में भी समर्थ हो गए। उस युग में संस्कृत में जितनी गति रहीम को प्राप्त थी उतनी किसी अन्य मुसलमान विद्वान यहां तक कि विद्वत् शिरोमणि अबुलफ़ज़्ल और फ़ैज़ी तक को भी प्राप्त नहीं थी।

कहते हैं कि एक बार जगन्नाथ त्रिशूली ने अपने युग के तथाकथित महापुरुषों पर यह श्लोक लिखा—

प्राप्य चलानधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु बन्धुवर्गेषु।
नापकृतं नोपकृतं न सत्कृतं किं कृतं तेन॥

अर्थात् राज्याधिकार प्राप्त कर लेने पर जिसने शत्रु मित्र और बन्धुओं का क्रमशः अपकार उपकार और सत्कार न किया तो किया क्या? सतत् परोपकारी रहीम चुप कैसे रहते, उन्होंने तुरन्त श्लोक का इस प्रकार परिवर्तित कर दिया—

प्राप्य चलाधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु बन्धुवर्गेषु।
नोपकृतं नोपकृतं नोपकृतं किं कृतं तेने॥[1]

अर्थात् राज्याधिकार प्राप्त कर, शत्रु मित्र और बन्धु सभी का उपकार न किया तो उसने क्या किया। निश्चित ही संस्कृत काव्य गौरव तथा आदर्श गरिमा की दृष्टि से यह सुधार श्लाघनीय था।

खानखाना-पाण्डित्य वर्णन के प्रसंग में बूंदी अधिपति महाराज मानसिंह के आश्रित कवि सूरजमल ने अपने राजस्थानी ग्रन्थ 'वंश भास्कर' में अनेक घटनाओं का वर्णन किया है। प्रसंगवश एक घटना उपस्थित है। एक बार कोई दुखी संस्कृत पण्डित मुसलमानों को कोसते हुए शाप दे रहा था और इस प्रसंग में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग कर रहा था जबकि संस्कृत व्याकरण के अनुसार केवल पंचमी विभक्ति का प्रयोग ही विहित है। संयोगवश खानखाना भी उधर आ निकले। उन्होंने ब्राह्मण का ध्यान इस अशुद्धि की ओर आकर्षित किया। वह सकपका गया और लज्जित ब्राह्मण से कुछ कहते न बना। उसने अपनी फटी पुरानी पगड़ी उतार कर खानखाना के पैरों पर रख दी और खानखाना ने उस चिथड़े को अपने सिर पर स्थान दिया। तदनन्तर उदारता की प्रत्यक्ष प्रतिमूर्ति रहीम ने उस ब्राह्मण को प्रभूत द्रव्य देकर कष्ट मुक्त कर दिया। निश्चित ही इतने योग्य खानखाना ने किसी संस्कृत काव्य की रचना की होगी, किन्तु ज्योतिष के मिश्रित ग्रन्थ 'खेट कौतुकम्' तथा कुछ श्लोकों को छोड़कर उनकी कोई भी संस्कृत कृति प्राप्य नहीं है। हां, प्राप्त श्लोकों के आधार पर खानखाना के भाव विचार शैली तथा काव्य प्रतिभा का अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए यहां दो श्लोक प्रस्तुत हैं—

रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।

---

१ कन्ट्रीब्यूशन आफ मुस्लिम्स टू संस्कृत लर्निंग—डा० जिमल चौधरी, (१९५४ कलकत्ता) भाग २ पृ० १८

राधा गृहीतमनसे अमनसे च तुभ्यं
दत्तमया निजमन स्तदिदं गृहाण ।[1]

अर्थात भगवन ! आप का निवास (रत्नों की खान) रत्नाकर (सागर) में है और उस पर भी पत्नी है स्वयं लक्ष्मी जी । तब हे जगदीश्वर ! कौन सी वस्तु आपको भेंट की जाय । मेरी समझ में तो आपके पास एक परम आवश्यक वस्तु का अभाव है । अतः वही मैं श्रीमन् को समर्पित करना चाहता हूँ । वह वस्तु है हृदय । आपका हृदय तो श्री राधारानी ने चुरा लिया है अतः आप आजकल बिना हृदय के हैं—हृदयहीन हैं । और यह स्थिति अच्छी नहीं । प्यारे प्रभु यदि हृदयहीन हो गए तो भक्त कहाँ जायगे । इसलिए महाराज ! मैं अपना हृदय आपको समर्पित कर रहा हूँ । स्वीकार कीजिए । इसमें मेरा भी कल्याण, आपका भी तथा जनसाधारण का भी कल्याण है । एक अन्य श्लोक में उनकी भक्ति भावना इस प्रकार फूटी है—

अहिल्या पाषाणः प्रकृतिपशुरासीत् कपिचमू ।
गुहो भूच्चाण्डालस्त्रितयमपि नीतं निजपदम् ।
अहं चित्तेनाश्मा पशुरपि तवार्चादिकरणे ।
क्रियाभिश्चाण्डालो रघुवर नमामुद्धरसि किम् ।[2]

पाषाणी अहिल्या पशु प्रकृति कपि समूह तथा नीच निषादराज इन तीनों को अपने अपने चरणों में शरण प्रदान की । हे रघुवर ! (माना कि) मैं (भक्तिभाव में) पाषाण पूजाभाव में पशु और कार्यों में चाण्डाल हूँ । (परन्तु अपनी परम्परा के अनुसार) आप मेरा उद्धार क्या नहीं करते ।

अपने प्यारे प्रभु से ऐसी विदग्धता पूर्ण विनम्र स्तुति तथा मिठास भरी माँग जीव सर्वथा स्पृहणीय है । भाव के साथ ही भाषा भी कम श्लाघनीय नहीं । भाषा के सम्बन्ध में तो उन्होंने और भी कई प्रयोग किए थे । 'खेट कौतुकम्' यदि संस्कृत और फारसी मिश्रित भाषा में लिखा गया है तो मदनाष्टक संस्कृत और खड़ी बोली मिश्रित भाषा में—

शरच्चन्द्र विचित्रतो तरलता मैं आ गया बाग में
काचित्तत्र कुरङ्ग शावनयना गुल तोड़ती थी खड़ी ।
उन्मद्भ्रूधनुषा कटाक्ष विशिखैः घायल किया था मुझे
तत्सीदामि सदैव मोह जलधौ हे दिल गुजारो शुकर ।[3]

हिन्दी और रहीम

रहीम युग द्रष्टा कवि थे । उन्होंने तुर्की, फारसी और संस्कृत इत्यादि में जिस प्रमुख प्रभाव को देखा उसे पूर्ण करने की कोशिश की । दुर्भाग्य यह रहा कि इस

१ कन्ट्रीब्यूशन आफ मुस्लिम्स टू संस्कृत लर्निंग भाग २ पृ० २० तथा रहीम रत्नावली पृ० ८२

२ वही पृ० २० तथा रहीम रत्नावली, पृ० ८२

३ रहीम रत्नावली, पृ० ८३

महामनीषी को काव्य रचना का यथेष्ट अवसर प्राप्त न हो सका। अन्यथा कौन जाने कि सूर, तुलसी और केशव का समकालीन यह कवि हिंदी काव्याकाश का 'सूर' बनता, 'ससि' बनता या 'उडगन' अथवा इन तीनों से भिन्न उपालोक बनकर एक ओर शृंगार की मधुभीनी रंगीनी विकीर्ण करता और दूसरी ओर नीति का उद्बोधक प्रकाश।

रहीम की हिंदी सेवाओं का अध्ययन अन्यत्र किया जाएगा। यहां तो इतना ही निवेदन करना पर्याप्त है कि उन्होंने अपने युग की आवश्यकताओं को समझ लिया था। वे जानते थे कि भारत की कोटि कोटि जनता का लाभ न अरबी फारसी में हो सकता है और न तुर्की एवं संस्कृत में। काव्यसंदेश को सामान्य जनमानस में उतारने वाली यदि कोई सर्वाधिक उपयोगी भाषा है तो वह हिन्दी ही है। यही कारण है कि अन्यान्य भाषाओं में पूर्ण गति रखते हुए भी उन्होंने सर्वाधिक आश्रय हिन्दी को प्रदान किया और उसी में सर्वाधिक मात्रा में काव्य रचना की। दरबार में सम्मान प्राप्त कर आगे बढ़ने के लिए हिन्दी जितनी अकबर की ऋणी है उससे कहीं अधिक रहीम की। उन्होंने केवल हिंदी कविता को प्रश्रय ही नहीं दिया अपितु स्वयमेव रचना करके हिन्दी काव्य-गगन को एक नई प्रेरणा प्रदान की। इस प्रेरणा के फलस्वरूप कितनी रचनाएँ प्रस्तुत हुईं यह तो नहीं कहा जा सकता किन्तु हुईं अवश्य थीं। रमई पाठक के पुत्र माथुर चतुर्वेदी के कुल में उत्पन्न कवि बाण की यह पंक्तिया उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत की जा सकती हैं—

> संवत सोरह से बोहत्तरि, चत्र चद्र उजियारि।
> आयुस पाय खानखाना को, तब कविता अनुसारि।[1]

खानखाना ही नहीं उनके ज्येष्ठ पुत्र एरिज बहादुर ने भी पिता की नीति को आगे बढ़ाना आरम्भ किया था। केशवदास ने जहांगीर चरित्र उसी की प्रेरणा से लिखा था। यदि यह युवक जीवित रहता तो न जाने हिंदी को कितना प्रोत्साहन और मिलता।

उर्दू और रहीम

रहीम के हिंदी काव्य प्रेम के साथ ही उर्दू की चर्चा करना भी आवश्यक प्रतीत होता है। रहीम का समस्त जीवन सैनिकों के साथ व्यतीत हुआ था। उस समय की सेना में कुछ सिपाही तूरानी थे कुछ ईरानी और कुछ हिंदुस्तानी। इन सबके सामूहिक निवास से सेना में एक कामचलाऊ भाषा गढ़ ली गई थी जिसे 'लश्करी जुबान' या उर्दू कहा जाता था। रहीम के काल तक उर्दू साहित्यिक भाषा न बन सकी थी। खुसरो ने इसी प्रकार की मिली जुली भाषा में साहित्य रचने का प्रयास बहुत पहले किया था परन्तु यह परम्परा चल न पाई थी और लश्करी जबान सामान्य स्तर के काम काज तक ही सीमित थी। मौलाना गनी का कथन है कि रहीम ने सामान्य सैनिकों की भाषा में भी काव्य रचना की थी।[2] काव्य

१ रहीम रत्नावली पृ० ६०

२ ए हिस्ट्री आफ परशियन लग्वेज एण्ड लिट्रेचर, पृ० २७१

के रूप म उर्दू का प्रयोग काफी बाद की बात है। इसलिए हमारे विचार स रहीम ने भी उर्दू या रेखता म प्रयुक्त कविता नहीं की। फारसी श न्दावली के मिश्रित होने के कारण हिन्दी ही कही कहा उर्दू जसी लगन लगी है। मदनाष्टक का भाषा इसी प्रकार की समझनी चाहिए। वैसे या आगे चलकर रहीम ने खिचडी भाषा का प्रयोग ५ द कर दिया था। आयु के विकास के साथ उनकी का य चेतना विकसित होती गई थी और उसम खिचडी भाषा के लिए कोई स्थान शेष न रहा था।

रहीम तथा विदेशी भाषा

सस्कृत और हि दी तो भारतीय भाषाए है ही, फारसी भी लगभग इसी श्रेणी म आ गई थी क्योंकि वह तत्कालीन प्रशासकों की राज्य भाषा थी। तुर्की मुगलों की पतक भाषा थी कि तु उसमे काव्य रचनाओं आदि की क्षमता भारतीय सरदारों म समाप्त ही हो चुकी थी, किन्तु रहीम की प्रतिभा ज मजात थी इसलिए उ होने तुर्की म भी अच्छी गति प्राप्त कर ली थी और तुर्की मे कविता करने की क्षमता रखत थ। बाबर के प्र थ का अनुवाद तो व कर ही चुके थे तुर्की क ही समान अरबी भी विदेशी भाषा थी। फारसी, उस समय के हिन्दू मुसलमान सभी सीखत थ। अरबी स मुसलमान ही परिचित रहते थे पर तु कुरान की कुछ आयतें याद करने का मतलब अरबी सीखना नही था। आज भी मुसलमानों की स्थिति वसी ही है। अपने यहाँ भी सस्कृत पढ़ना बात और है और पूजा पाठ के कुछ श्लोकों को कठाग्र कर लेना और बात। हाँ विद्वानों की बात अलग है। मुल्ला बदायूनी, अबुलफज्ल तथा अबुलफतह आदि विद्वान अरबी के भी ज्ञाता थे। रहीम भी इन्ही म से थे। उन्हें अरबी का पूरा विद्वान माना जाता है[1] और यह स्वीकार किया जाता है कि उ ह अरबी का य रचना म भी गति प्राप्त थी।[2] नहाबदी न रहीम के अरबी ज्ञान से सम्बन्धित एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि एक बार अकबर को तीन पत्र प्राप्त हुए। ये पत्र इतने भाव पूर्ण थे कि वह इनके मसौदे को तुरत जान लेना चाहता था। पर तु समय रात्रि का था और पत्र अरबी भाषा की हिजाजी' शैली म लिखे गए थे। उसने रात म ही दरबार के तीनों विद्वानों—अबुलफज्ल अबुलफतह तथा रहीम को बुला भेजा। प्रथम दोनों मौलवियों न ज्ञान के सीमित होने के कारण अनुवाद के लिए रात भर का समय माँगा। किन्तु अकबर की व्यग्रता बढ़ती जा रही थी। उसन निराश नेत्रों स रहीम की ओर देखा। रहीम पत्रों को लेकर पास म जलते हुए दीपक की ओर बढ़ और सभी को चकित करते हुए पत्रों का सारांश सम्राट को सुना दिया।[3]

---

१ रहिमन विलास, ब्रजरत्नदास पृ० ३०
२ कोर्ट पोइट्स आफ ईरान एण्ड इण्डिया, आर० पी० मसानी, प० १३८
३ इस घटना स रहीम का उत्कृष्ट अरबी ज्ञान सिद्ध है।

तुर्की और अरबी तो फिर भी किसी न किसी प्रकार से सम्बद्ध भाषाएँ थीं किन्तु आश्चर्य तो यह जानकर होता है कि यूरोपीय भाषाएँ भी रहीम ने सीखी थीं और अकबर की ओर से उन भाषाओं में पत्र भी लिख देते थे।[1] इतना ही नहीं मुंशी देवी प्रसाद ने इतिहासकारों की साक्षी देते हुए रहीम के सप्त भाषाविद होने की चर्चा की है।[2] मआसिर, उल उमरा में तो पश्वी की और भी कई प्रचलित भाषाओं में बात कर सकने की योग्यता की चर्चा की है। 'अकबरी दरबार' में भी इन तथ्यों का स्वीकार किया गया है।[3] निश्चित है कि विभिन्न स्वदेशी और विदेशी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने में रहीम की प्रतिभा अद्वितीय थी। वे अपने युग के कदाचित सबसे अधिक भाषाएँ जानने वाले और अधिकांश भाषाओं में काव्य रचना की क्षमता रखने वाले विलक्षण विद्वान थे।

हिन्दुत्व प्रेमी रहीम

विश्व के सभी तथाकथित धर्मों के पुरोहित अपने हाथ में कुछ विशिष्ट अधिकार रखते चले आये हैं। इस्लाम भी इसका अपवाद नहीं। वहां कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर का अधिकार मुल्लाओं तक ही सीमित है। धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता का समर्थक अकबर इस अपनी नीति विस्तार में बाधक समझता था। हिन्दुओं को अधिक अधिकार देने के लिए मुल्लाओं के विशेषाधिकार का समाप्त करना आवश्यक था। अतः उसने साम दाम दण्ड भेद से काम लेकर अपने युग के प्रमुख मुल्लाओं में फूट उत्पन्न कर दी थी। कुछ को आपस में लड़ाकर, कुछ को विशिष्ट कृपा पात्र बनाकर कुछ को उपेक्षित कर तथा कुछ को हिन्दुस्तान से बाहर हज करने के लिए भेजकर मुल्लाओं की शक्ति को विकेन्द्रित कर दिया था।

जिन ग्रंथों के आधार पर मुल्ला तथा इमाम आदि, विशिष्ट समस्याओं के निराकरण सम्बन्धी अधिकार अपने पास रखते थे अकबर ने उन्हीं ग्रंथों में से ऐसे उदाहरण एकत्रित करा लिये थे जिनके अनुसार राजा की सत्ता को सर्वोपरि स्वीकार किया गया है। और इस प्रकार के उदाहरणों का संकलन करने के पश्चात सम्राट ने एक लेख तैयार कराया था जिसके अनुसार विशिष्ट अधिकार इमामादि के स्थान पर सम्राट का था। इतना ही नहीं उसने इस लेख पर प्रसिद्ध प्रसिद्ध मुल्लाओं के हस्ताक्षर भी ले लिये थे। और यह एक महान क्रान्ति एवं वास्तविक उपलब्धि थी।

निश्चितता के साथ अकबर जब उदार पथ पर बढ़ा तो उसका सम्यक परिणाम अवश्यंभावी था। सभी प्रदेशों में धार्मिक कटुता कम हो गई। मुसलमान भी हिन्दुओं के त्योहारादि उत्सवों में सम्मिलित होने लगे तथा मृत्यु आदि के अवसर पर दाढ़ी मूछ मुड़ाकर भद्रा आदि कराने की रस्म अपनाने लगे। सम्राट स्वयं हिन्दू

१ रहीम रत्नावली, पृ० १२
२ खानखानानामा, भाग २ पृ० १६३
३ अकबरी दरबार भाग ३, पृ० ३८३

घट मुग्ध रहते राजपूत राजाओं जैसे वस्त्र पहनते तथा मन्दिर में जाते थे। इतना ही नहीं उन्होंने राजपूतों के साथ रोटी बेटी का सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया था। भले ही कुछ विद्वान इन क्रियाकलापों में कूटनीति के दर्शन करते हों किन्तु इतना निश्चित है कि ये कृत्य कोरा दिखावा नहीं थे। अकबर की आत्मा भी इन कामों में रमती थी।

जो हो इतना निश्चित है कि अकबर की इन नीतियों के परिणामस्वरूप हिन्दुओं की सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति में आशातीत सुधार हुआ। हिन्दू न केवल अकबरी दरबार के नवरत्नों में सुशोभित हुए अपितु राज्य का बड़े से बड़ा दायित्व भी सम्भालने लगे, वित्त, आन्तरिक प्रबन्ध तथा सेना जैसे सर्वोत्कृष्ट पदों पर टोडरमल बीरबल तथा मानसिंह ही प्रतिष्ठित थे। इन सब के परिणामस्वरूप पारस्परिक सहयोग एवं सद्भाव का वातावरण तैयार हुआ और नयी पीढ़ी को धार्मिक कटुता से मुक्त एक मधुर वातावरण में जीने का अवसर मिला। रहीम ऐसे ही वातावरण की उपज थे। वे जन्म से मुसलमान थे और अन्त तक मुसलमान ही रहे। इस्लाम हित के काम भी निरन्तर करते रहे। उन्होंने मक्का यात्रियों के लिए कर मुक्त जहाज चलाने की योजना बनाई और मस्जिदों के लिए नाना सुविधाओं की व्यवस्था की। यही कारण है कि धार्मिक उदारता का विरोधी तथा अबुलफज़ल मानसिंह यहाँ तक कि सम्राट अकबर के लिए भी कुत्सितपूर्ण गालियाँ देने वाला मुल्ला बदायूनी रहीम की बुराई नहीं करता।

परन्तु उनके व्यक्तित्व एवं काव्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू एवं हिन्दुत्व के प्रति रहीम के मन में महान आस्था थी। उनके श्लोकों को पढ़कर प्रतीत होता है जैसे रहीम स्वयं भगवान राम तथा कृष्ण की मूर्ति के चरणों में कर बद्ध उपस्थित होकर उनसे भक्त सुलभ नाना तर्कों द्वारा अपने उद्धार की याचना कर रहे हों—

आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्ण या भूमिका।
प्रीतिस्त्वं यदि चेन्निरीक्ष भगवन् स्वप्रार्थितं देहि मे।
× × ×
रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा,
देयं किमस्ति भवते जगदीश्वराय?
× × ×
अहं चित्तचातकं पशुरपि सदाचारविकरणे।
त्रियामिन्याडाडा रघुवर नकामुद्धरसि किम्।

इत्यादि ऐसी पंक्तियाँ हैं जो कवि की आत्मा के अन्तरतम से निसृत प्रतीत होती है। निम्नलिखित बरवों में यह स्वर और भी स्पष्ट सुना जा सकता है—

मोहन जीवन प्यारे कस हित कीन।
दरसन ही कौं तरफत, ये दृग मीन।
भजि मन राम सियापति, रघुकुल ईस।
दीन बन्धु दुख टारन कौसल धीस।

भजि नरहरि नारायण, तजि बक्वाद ।
प्रकट खम्भ ते राख्यो जिन प्रह्लाद ।[1]

इनके अतिरिक्त अन्य कितने ही बरवै उद्धत किए जा सकते हैं जिनसे उनका सगुण विश्वास तथा हृढ़ प्रेम स्पष्ट प्रतिभासित होता है । नाथ जी के मंदिर के दर्शनों से सम्बद्ध भक्तमाल में उद्धृत दो पदों से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि मानो सुषुप्ति अवस्था में बैठा हुआ मुरली मनोहर पीताम्बरधारी कमलनयन मनमोहन कृष्ण की मधुमय छवि को छक छक कर रस पान कर रहा हो । भगवान के रूप वर्णन की आसक्ति उनके विशाल नेत्रों का आकर्षण रहीम की आत्मा को झकझोर रहे हैं । वह आकुलता पूर्ण पदावली देखते ही बनती है—

छवि आवन मोहन लाल की ।
काछे काछनि कलित मुरली कर पीत पिछौरी साल की ।
बंक तिलक केसर के कीने, दुति मानो बिधु भाल की ।
बिसरत नाहिं सखी मो मन तें चितवनि नयन बिसाल की ।
या सरूप निरख सोई जाने इस रहीम के हाल की ।[2]

रहीम को कृष्ण के नेत्र भाल और कर-कपोलो ने ही आकर्षित नहीं किया था, वे उनकी मन्द मन्द मुस्कान अमृतमयी बतरानि तथा विशाल वक्षस्थल पर मुक्त माल की थहरानि से भी कम आकृष्ट न थे । रासलीला और नृत्य के समय पीताम्बर का फहरना रहीम के हृदय में उतनी ही गहरी अनुभूति उत्पन्न करता था जितनी की अन्य किसी भक्त के हृदय में—

कमल दल नैननि की उन्मानि ।
बिसरत नाहीं सखी मो मन ते मंद मंद मुसुकानि ।
यही रहे चित उर बिसाल की मुकुतमाल थहरानि ।
नृत्य समय पीताम्बर हू की फहरि फहरि फहरानि ।
अनुदिन श्री वृन्दावन ब्रज ते आवन आवन जानि ।
अब रहीम चित ते न टरति है सकल स्याम की बानि ।[3]

इन पदों को पढ़ते ही भक्त शिरोमणि सूरदास का स्मरण हो आना स्वाभाविक है । वैसी ही आसक्ति वैसी ही ललक, वही निष्ठा और वही विनम्रतापूर्ण आकुलता और सबके ऊपर भाषा का सौकुमार्य सारल्य एवं प्रवाह । भाव भाषा छन्द सभी दृष्टियों से पद सूर से होड़ लेने को तैयार हैं । काश ऐसे कुछ पद और मिल पाते । पद ही नहीं रहीम का भक्त हृदय घनाक्षरी और सवैया में भी फूटा है । उनकी प्रेम धारा सवैया में तो और सौ गुनी होकर बही है । इन सवैया और घनाक्षरियों में सगुण रूप के प्रति निष्ठा, महाभारत पुराणादि के क्षेत्र के उदाहरण

१ रहीम रत्नावली बरवै प्रसंग पृ० ६३
२ वही पृ० ७८
३ रहीम रत्नावली पृ० ८९

देवी देवताओं के प्रति पूज्य भाव सभी कुछ कमाल का है। नीति भक्ति निष्ठा तथा काव्य गरिमा आदि से एक साथ आपूरित वैष्णवी परम्परा की एक घनाक्षरी का अवलोकन कीजिए—

> बडेन सो जान पहचान क रहीम कहा,
> जो प करतार ही न सुख देन हार है।
> सीतहर सूरज सों नेह कियो याही हेत
> ताहू प कमल जारि डारत तुषार है।
> क्षीर निधि माहि धस्यो शकर क सीस बस्यो,
> तऊ न कलक नस्यो ससि मे सदा रहै।
> बडो रिझवार है चकोर दरबार है
> कलानिधि सो यार तऊ चाखत अगार है।[1]

स्पष्ट है कि रहीम की दृष्टि म सुख उच्च पद बडा की जान पहचान स नही अपितु प्रभु की कृपा से मिलता है। सूय से स्नेह होते हुए भी तुषार कमल को जला डालता है च द्रमा से एकनिष्ठ प्रेम होते हुए भी चकोर को आग ही भखनी पडती है। भाग्य म बदा दुख द य क्या प्रयत्नो से हट पाता है? बेचारे च द्रमा ने कौन कौन से उपम नही किये क्षीर सागर तथा भगवान शकर के शीश जसे उच्च एव अप्राप्य स्थलो को प्राप्त करके भी क्या उसका कलक मिट पाया? कहने की आवश्यकता नही कि अकबर और जहाँगीर इत्यादि स घनिष्ठतम सम्बध होते हुए भी रहीम का अ तिम जीवन ताप शाप से आपूरित रहा है। अत यह अनुभव उनके अपने जीवन का अनुभव है और अभि यक्ति कमल, चकोर क्षीर सागर एव शकर शीश के माध्यम स हुई है—गुलो बुलबुल के माध्यम से नही। यही है रहीम का हिन्दुत्व प्रेम। इतना ही नही जिस प्रकार भाग्य मे बदा दुख हटाये नही हटता उसी प्रकार भाग्य म बदा सुख भी प्राप्त होकर ही रहता है। एक सवया लीजिए—

> दीनु चहै करतार जिन्हें सुख सो तो रहीम टर नहि टारे।
> उद्यम पौरुष की हें बिना धन आवत आपुहि हाथ पसारे॥
> दव हसे अपनी अपना बिधि के परपच न जात बिचारे।
> बेटा भयो बसुदव क धाम औ दु दभि बाजत न द क द्वारे।[2]

यहा हम इस वाद विवाद म नही पडना चाहत कि रहीम भाग्यवादी थ या पुरुषार्थवादी। देखना यह है कि उ होने जो कुछ भी कहा है वह हि दुओ की शली म हि दुओ क ग्र थो क उदाहरण देते हुए कहा है। इसे इसका तात्पय यह नही कि रहीम न भाग्य पर ही लिखा है पुरुषाथ पर नही। उनका तो सारा जीवन ही पुरुषाथ का मूर्तिमान उदाहरण था। अत पुरुषाथ का प्रतिपादन भी उनके काव्य म हुआ है और वह सब भी हि दू धम स सम्बद्ध कथाओ क आधार पर। अधिक नही एक ही

---

१ रहीम रत्नावली पृ० ७६

२ वही पृ० ७३

उदाहरण पर्याप्त होगा—

जो पुरुषारथ ते कहू सपति मिलत रहीम ।
पेट लागि बराट घर तपत रसोई भीम ।[1]

स्पष्ट है कि यहाँ भी तथ्य पुष्टि का आधार नूर और तूर नहीं वैराट और भीम हैं, जो हिन्दुओं के पूज्य ग्रन्थ महाभारत के पात्र हैं। महाभारत रामायण तथा पुराणों इत्यादि से सम्बद्ध अनेकानेक सदर्भ प्रस्तुत किए जा सकते हैं। तीनों का एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है—

राम न जाते हिरण सग सीय न रावण साथ ।
जो रहीम भावी कतहु होति आपुने हाथ ।
रहीम दुरदिन के परे बडेन किए घटि काज ।
पाच रूप पाडव भए रथवाहक नलराज ।[2]
मागे घटत रहीम पद कितो करो बढि काम ।
तीन पग बसुधा करी, तऊ बावन नाम ।[3]

इस प्रकार रहीम के काव्य को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि रहीम की हिन्दू परम्पराओं रीति रिवाजों और धर्म ग्रन्थों के प्रति गहरी आस्था थी। इस आस्था और ज्ञान का प्रयोग जिस विस्तार एव शुद्धता के साथ रहीम ने किया है वैसा अन्य मुसलमान कवियों में सहज प्राप्त नहीं। कुछ कवियों ने तो हिन्दू सन्दर्भों में भयकर भूलें भी की हैं। जायसी की भूलों को आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल बहुत पहले गिना चुके हैं। रहीम के काव्य का आद्योपान्त अध्ययन कर लेने के पश्चात एक भी स्थल ऐसा प्राप्त नहीं होता जिससे हिन्दुत्व के प्रति किसी प्रकार की अनास्था या अशुद्धि प्रकट हो। शास्त्रीय अन्तकथाओं घटनाओं एव तथ्यों को वे कुछ इस प्रकार प्रकट करते हैं जिससे उनका हिन्दुत्व प्रेम तो प्रकट होता ही है साथ में सस्कृत कवियों जैसी पुनीत मौलिकता भी प्रतिभासित होती है—

जे गरीब पर हित करें, ते रहीम बड लोग ।
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग ।[4]
बडे दीन को दुख सुने लेत दया उर आनि ।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि ।[5]

स्पष्ट है कि रहीम के हृदय में वैष्णवी श्रद्धा की परम पुनीत एव प्रबल मन्दाकिनी प्रवाहित थी। उसी पुण्य जल के प्रताप से रहीम के मन की सम्पूर्ण धार्मिक कटुता धुल धुल कर समाप्त हो गई थी। जितनी नियता निष्ठा एव वैष्णवी

१ रहीम रत्नावली पृ० ७
२ वही पृ० १९
३ वही, पृ० १४
४ वही पृ० ७
५ वही पृ० १२

सूझ बूझ उनके काव्य म प्राप्त होती है उतनी अनेकानेक तथाकथित हि दुओं के काव्य म भी नही है। मुसलमान होते हुए भी उ होने हिन्दी और हि दुत्व की जितनी सेवा की है उसके लिए सभी हि दू उनके ऋणी हैं। अत यह मुसलमान कवि उतने ही अपितु उसस भी अधिक आदर का पात्र है जितने कि सूर तुलसी और नन्ददास। स्पृहणीय थी उनकी श्रद्धा और श्लाघनीय था उनका विश्वास—

धूर धरत निज सीस प कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी सो ढूढ़त गजराज।[1]
रहिमन को कोउ का कर ज्वारी चोर, लबार।
जो पत राखन हार है माखन चाखन हार।[2]

धर्म-निरपेक्ष भारत के लिए क्या रहीम का काव्य राष्ट्रीय चेतना का आदर्श प्रेरणा स्रोत नही हो सकता ?

रहीम के व्यक्तित्व सम्बन्धी विभिन्न पक्षों का अध्ययन कर लेने पर भी उनके कतिपय अन्य गुण गत पृष्ठों की सीमा मे नही आ पाए हैं। अत सक्षप म उनका उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा। रहीम का अध्ययन करते हुए हमे यह नही भूलना चाहिए कि वे अकबरी दरबार की उपज थे। नवरत्नो म स्थान ग्रहण करने के लिए जिन अनेक गुणो की आवश्यकता होती है वे प्राय सभी रहीम के व्यक्तित्व म समाहित थे। उनके व्यक्तित्व मे विरोधी गुणो का अपूर्व सामजस्य दिखाई देता है। वे जितने नीति कुशल और गम्भीर थे उतने ही हसमुख और विनोदप्रिय भी। एक बार की बात है कि वे मानसिंह के साथ शतरज खेल रहे थे। शर्त यह थी कि जो हारेगा उस बिल्ली की बोली बोलना पडेगी। रहीम ने जब अपना पाला हारता हुआ देखा तो उठ के खडे हो गए और आवश्यक काम का बहाना करके जाने लगे। मानसिंह ने जाने से पूर्व बिल्ली की बोली बोलने का आग्रह किया। इस पर रहीम दामन छुडाते हुए बोले— "गुमादामनम् व गुजारोद मीआयम, मीआयम्।" अर्थात दामन छोडिय मैं आता हूँ मैं आता हूँ। कहने की आवश्यकता नहीं कि रहीम अपने वाक्य के अन्त म मियाऊ मियाऊ कहकर बिल्ली की बोली बोल चुके थ। इस घटना स विनोदप्रियता के अतिरिक्त उनकी अवसरोचित अभिनय द ता प्रत्युत्पन्न मति एव वाक् पटुता भी स्पष्ट हो जाती है। उनकी वाक् पटुता ने तो जीवन म अनेक बार उनकी रक्षा की थी। शाही स्वभाव होने के कारण वे अपने महल म ठाठ बाट की उन वस्तुओं को भी रखते थ जो केवल राजा के लिए ही विहित हैं। इस तथ्य की चुगली अकबर स लगाई गई। तथ्य निरूपण के लिए आया अकबर उस ठाठ को देखकर दग रह गया। पूछने पर रहीम ने उत्तर दिया—'यह सब वस्तुए हुजूर के हो लिए हैं जिसस कि यहाँ पधारने पर आपको कष्ट न हो। और

१ रहीम रत्नावली पृ० ११
२ वही पृ० १७

आवश्यकता की सारी चीजें तैयार मिलें तथा मुझे भी किसी से याचना न करनी पड़े। अकबर इस वाक्पटुता से बहुत अधिक प्रभावित हुआ था।

वाक्पटुता के साथ ही व्यवहार कुशलता उनके चरित्र का बहुत बड़ा गुण थी। इसके बहुत से उदाहरण उनकी जीवनी से स्पष्ट हैं। उनकी जीवनी से यह भी स्पष्ट है कि रहीम युद्ध में जितने निष्ठुर थे शांति के समय उतने ही रसिक। 'तजकिरे हुसनी' में एक घटना का उल्लेख हुआ है, जिसमें उनसे किसी कवि ने कहा था—

'मेरी चन्द्रमुखि प्रियतमा यदि प्राण माँगे तो कोई हर्ज नहीं किन्तु खेद है कि वह मुझसे एक लाख रु० माँगती है। अतः हे उदारचेता खानखाना मेरे प्रेम की रक्षा करो।' प्रेम की पीर के पारखी खानखाना ने उसे एक लाख छः हजार रु० देकर विदा किया। एक लाख प्रमिका को देने के लिए और ऊपर के छः हजार मौज उड़ाने के लिए। इसी प्रकार की दूसरी घटना है कि एक बार उन्होंने वर्षा में भी अपने सैनिकों की छुट्टियाँ रद्द कर दीं और उन सबको एक एक मोहर दिलवाकर शिविर में ही उत्सव मनाने की आज्ञा प्रचारित की। किन्तु किसी सैनिक ने उनसे कहा कि एक मोहर से उनका तो जश्न पूरा हो जाएगा किन्तु उनकी उपस्थिति से पारिवारिक जनों को जो प्रसन्नता मिलती उससे वे वंचित ही रहेंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि कोमल चित्त रहीम ने बात को समझ कर छुट्टियों के रद्द करने की आज्ञा वापस ले ली।

वक्ता वन परम्परा और मआसिरे रहीमी में इस प्रकार की अनेक घटनाओं का वर्णन है। उन घटनाओं से खानखाना की विभिन्न रुचियों एवं चारित्रिक विशेषताओं का ज्ञान होता है। कहते हैं कि हमाम का आविष्कार उन्होंने ही करवाया था। सबसे पहला हमाम खानखाना ने गुजरात में मोहम्मद अली मिलावर की देखरेख में बनवाया था। पुस्तक संग्रह के शौकीन रहीम के कारीगरों ने ही जिल्दसाजी के काम आने वाला अबरी का कागज तैयार किया था। खानखाना ने ही ईरान से पहले पहल बीज मँगवाकर गुजरात के गाँवों में खरबूज की बढ़िया फसल तैयार कराई थी। व्यायाम में भी खानखाना की अत्यधिक रुचि एवं दक्षता प्राप्त थी। खेलों का शौक उन्हें और भी अधिक था। जन प्रसिद्धि है कि उन्होंने शतरंज पर कोई पुस्तक भी लिखी थी।

स्पष्ट है कि खानखाना का व्यक्तित्व अनेकानेक मानवीय गुणों से आपूरित था। वे क्रियात्मक व्यक्ति थे। इन गुणों के साथ साथ कुछ न कुछ कमियाँ भी अवश्य रही होंगी। उनके शराब पीने के उल्लेख भी मिलते हैं और दासी प्रेम के भी। मांस भक्षण का तो कहना ही क्या किन्तु यह सब तत्कालीन राजा नवाबों के भूषण माने जाते थे दूषण नहीं। उनके चरित्र के सबसे बड़े दूषण को व्यक्त करने वाली घटना शाहजहाँ के साथ गोदावरी तट पर महावत की संधि और उसको लिखे हुए सौ निगाह वाले पत्र से सम्बद्ध है। यह रहीम के जीवन पर ऐसा कलंक है जिसको इतिहास आज तक क्षमा नहीं कर पाया और न भविष्य में कर पाएगा

दूषण सदृश गुणों की आभा के सम्मुख नगण्य ही समझा जाना चाहिए। अन्ततोगत्वा वे भी हाड़ माँस के बने हमारे जैसे प्राणी थे। हाँ इतना अवश्य है कि उनके जैसा व्यक्तित्व उस युग के राज समाज में और विशेषतः अकबरी दरबार में दूसरा न था।

अपनी ओर से अधिक कुछ न कहते हुए हम उन्हीं के समसामयिक लेखक निज़ामुद्दीन बख्शी के ग्रंथ 'तबकाते नासिरी' का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। 'इस समय खानखाना की अवस्था सैंतीस वर्ष की है। आज से दस वर्ष हुए इसने खानखाना का मंसब तथा सेनापति का पद प्राप्त किया था। इसने बहुत बड़ी सेवाएँ की हैं। बड़े बड़े युद्धों में विजयी हुआ है। इस योग्य और मान्य पुरुष के ज्ञान विद्या और गुणों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखें वह सौ में एक पर्याप्त वर्णन थोड़ा है। इसने सब लोगों पर दया करने का गुण, बड़े बड़े विद्वानों और पण्डितों की शिक्षा फकीरों का प्रेम और कवि प्रकृति मानो अपने पिता से उत्तराधिकार में पाई है। लौकिक ज्ञान और गुण की दृष्टि से इस समय दरबार में उसके जोड़ का अमीर और कोई नहीं है।'[1] ऐसे महान् गुणी व्यक्ति को यदि केशवदास गंगा का नीर अथवा 'हनुमन्त वीर' बता दें तो इसमें अत्युक्ति ही क्या है—

साहिबु की साहिबी को रक्षक अनन्त गति
कीनो एक भगवन्त हनुमन्त बीर सो।
जाको जस 'केसोदास' भूतल के आस पास
सोहत छबीलो छीर सागर के छीर सो।
अमित उदार अति पावन विचारि चारु
जहाँ तहाँ आदरियो गंगा जी के नीर सो।
खलन के घालिबे को खलक के पालिबे को
खानखाना एक रामचन्द्र जू के तीर सो। —जहाँगीर चन्द्रिका

निष्कर्ष

निष्कर्ष यह है कि, रहीम का व्यक्तित्व सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न था। वे एक ही साथ सेनापति, प्रशासक, आश्रयदाता दानवीर, कूटनीतिज्ञ, बहुभाषाविद कलापारखी, कवि एवं विद्वान थे। जन्मजात मुसलमान होते हुए भी हिंदुत्व के प्रति अपार निष्ठा उन्हें भारतीय श्रद्धा का पात्र बना देती है। वे कवियों के कल्पतरु याचकों के कर्ण और गुणिजनों के भोज थे। विरोधी गुणों का बड़ा सुंदर सन्तुलित सामञ्जस्य उनके व्यक्तित्व में संनिहित था। सेनापति की दृढ़ता और कवि की कोमलता, दोनों ही उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग थी। प्रशासकों की यथार्थवादी दृष्टि भी उन्हें प्राप्त थी और कलाकारों की कल्पना प्रवणता भी। धन संग्रह को वे इतना आवश्यक समझते थे कि अबुलफज़्ल के लाख कहने पर भी अफगानिस्तान पर आक्रमण करने के लिए तब तक सहमत न हुए जब तक की ठट्ठा को हाथ में करके उनकी मुट्ठी गरम न हो जाय। दूसरी ओर धन से विमोह भी इतना

१ तबकाते नासिरी का उद्धरण, अकबरी दरबार भाग ३, पृ० ३३६ ३७

कि गग की एक कविता पर ३६ लाख रु० जितनी बडी राशि पुरस्कार म दे डाली थी। इतना ही नही ७८ लाख जसी महान अकल्पनीय धनराशि उन्होने सनिको को लुटवा दी थी।

सरल व्यक्तित्व के साथ ही वह कूटनीतिक दाव पचा के सिद्धस्त थ। शत्रु को साम दामादि से युद्ध इस प्रकार फँसाते कि वह लाख प्रयत्न करने पर भी उनके जाल से छुटकारा पाने म अपने को असमर्थ पाता था। मिर्जा जानी जस काइयाँ चाँद बीबी जसी वीरागना, मुजफ्फर जैसे साहसी तथा हब्शी अम्बर जस दुधर्ष योद्धाओं को वश म करने की सामर्थ्य रहीम की ही थी। यही कारण है कि एक नही अनेक बार उन्हें दक्षिण म बुलाया गया। परन्तु हार कर फिर भी दक्षिण कमान पर उन्ही की नियुक्ति करनी पडी। लोग प्रण कर करके दक्षिण विजय के लिए गऐ किन्तु रहीम से अधिक एक इन्च भी आगे न बढ सके। सच बात तो यह है कि जिस आदिलशाही कुतुबशाही सम्मिलित वाहिनी को रहीम सहज ही पराजित कर दिया करते थ उन्ही सनाओं ने रहीम के दक्षिण स लौटने पर मुगलो का टिकना कठिन कर दिया था। इसी क्षमता के परिणामस्वरूप, जहांगीर न चाहते हुए भी उन्हे दक्षिण भेजने को वाध्य हुआ था।

वे हलाकू चगेज या उसके अन्य वशजो की भांति रक्त पिपासु मुसलमान न थ। शान्तिपूर्ण समझौते करना, अनावश्यक हत्याओं से बचना तथा धन जन की व्यय बरबादी न होने देना उनकी युद्ध नीति के आवश्यक अंग थे। यही कारण है कि मलीका जसे महत्वाकांक्षी शत्रु भी उनके गुणो से रीझ कर मित्र बन गऐ थे और इन मित्रो ने अंतिम श्वास तक, लडते लडते प्राण न्यौछावर किये थे। भ्रण्टो सरखेज, नादात तथा सिन्ध के युद्ध उनके रण-कौशल के अमर कीर्ति स्तम्भ हैं। उनकी योजनाएँ इतनी विशाल तथा महत्वाकांक्षी होती थी कि अकबर और जहांगीर तक हस्तक्षेप करने म अपने को असमर्थ पाते थ। और मुंह मांगी धन जन की सहायता देने म ही कल्याण समझते थे। इतिहास साक्षी है कि रहीम की योजनाएँ ९५% सफल रही। वैसे सफलता असफलता दैवाधीन वस्तु है किन्तु अधिकाश युद्धो मे उन्हे सफलता ही मिली है। दक्षिण की जिन लडाइयो मे वे असफल हुए उनका दायित्व रहीम पर न होकर मुगल सेना के उन अधिकारियो पर है जो पारस्परिक विद्वेष के कारण अपने कर्तव्य को समुचित रीति स पूरा नहीं करते थ। इस कमी को रहीम तो क्या मानसिंह अबुलफज्ल, महावतखां, परवेज जहांगीर, शाहजहां और यहां तक कि सम्राट अकबर भी न मिटा सके। शाही सेना का गोरिल्ला युद्ध म निपुण न होना भी एक बहुत बडी सीमा थी, जिसके कारण रहीम और महावतखां को हो नही अपितु दो पीढ़ी पश्चात औरंगजेब तक को मराठा सेना से मुंह की खानी पडी थी।

अत दक्षिण की कोई भी हार, कभी भी रहीम की अयोग्यता के कारण नही हुई। जो लेखक रहीम पर अदूरर्दशिता और उतावलेपन का आरोप लगाते हैं यह यह भूल जाते हैं कि उनके जैसा दूरदर्शी व्यक्ति सम्पूर्ण दरबार में दूसरा

था। आत्मसमर्पण में उन्होंने जब कभी भी शीघ्रता की तो वह शत्रु पक्ष को तैयारी का विशेष अवसर न मिलने देने के लिए ही। यदि इसका परिणाम कभी विपरीत रहा तो वह रहीम के वश की बात न थी। आखिर शत्रु भी तो मोम का बना नहीं होता। हाँ इतना अवश्य है कि विकट परिस्थितियों में फँसे शाहजहाँ के हित में विपरीत सद्भावनाओं का पत्र लिखना तथा पवित्र कसमों इत्यादि की परवाह न करते हुए भी गोदावरी के उस पार जाकर शाही सेना से मिल जाना चाहे वह कितनी भी विकट परिस्थिति में क्यों न हो श्लाघनीय नहीं था परन्तु यहाँ भी हम यह नहीं भूलना चाहिए कि रहीम साधु महात्मा नहीं राजनैतिक क्षेत्र के व्यक्ति थे।

साहित्य के विद्यार्थी की सीमा का ध्यान रखते हुए हम इस विवाद में अधिक नहीं पड़ना चाहेंगे। क्योंकि हमारे लिए रहीम के इतिहास की अपेक्षा रहीम के स्वभाव व्यक्तित्व और काव्य क्षमता का अध्ययन अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से हम उन्हें तुर्की अरबी फारसी संस्कृत एवं हिन्दी का कुशल कवि एवं विभिन्न विषयों का पण्डित देखते हैं। जीवन-जगत के विविध क्षेत्रों का जितना क्रियात्मक अनुभव रहीम को प्राप्त था उतना अकबरी दरबार के अन्य नवरत्नों को भी नहीं। विविध भाषाओं के सम्यक ज्ञान और काव्य प्रतिभा में यहाँ कवि बीरबल युग पण्डित अबुलफजल और साहित्य शिरोमणि फैजी भी उनके सम्मुख नहीं टिक पाते। हम तो यहाँ तक कहेंगे कि अपने स्वनाम धन्य सूर तुलसी और रसखान आदि साहित्यकार केवल भक्त और कवि ही थे, जबकि रहीम भक्त कवि भाषाविद्, ज्योतिषी दानवीर प्रशासक एवं सेनापति सभी एक साथ थे। कुल मिलाकर उनके जैसा बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति हिन्दी में हम दूसरा दिखाई नहीं देता। तत्कालीन कवियों ने इस तथ्य को अपने प्रकार से स्वीकार किया है। मु० शकबी जैसा कवि उनकी काव्य निपुणता को वर्णन करने में अपने को असमर्थ पाता है[1] और नज़ीरी यह स्वीकार करता है कि (विद्वानों के) पत्र में जब तक रहीम का नाम नहीं आ जाता तब तक पत्र शौक से आगे नहीं बढ़ता और उसकी मोहर के बिना समय का आदेश पूरा नहीं हो पाता—

जे शौक नामे तो अज सफहा बगुजरत तहरीर।
ज खातिमे तो निशा ता कजाए फर्मा शुद॥[2]

—नज़ारी निशापुरी

---

१ सर चश्मए इल्मो बहरे मानी
कश फज्ल जे आम्ता न जुम्बद।
× × ×
अज हिम्मए दागरा शकबी
आ बेह कि नबे बया न जुम्बद॥ मु० शकबी॥
मआसिर रहीमी (सम्पा० हिदायत हुसैन) खण्ड प्रथम (१९२) कलकत्ता।
पृ० ८०-८१

२ वही पृ० १९४

३ रहीम की रचनाएँ और उनका समय निर्धारण

रहीम की रचनाओं के अनेक संग्रह समय समय पर प्रकाशित होते रहे हैं।[1] इनमें अधिक महत्वपूर्ण हैं बाबू ब्रजरत्नदास का 'रहिमन विलास' तथा पं० मायाशंकर याज्ञिक की 'रहीम रत्नावली'। याज्ञिक को शोध ग्रन्थ एवं हस्तलिखित प्रतियों के संग्रह का व्यसन था और उनका स्वकीय पुस्तकालय भी बहुत अच्छा था। अतः शोध संकलन की दृष्टि से 'रहीम रत्नावली' का महत्व हमें और भी अधिक ज्ञात होता है। रहीम के नाम पर रासपंचाध्यायी तथा रहीम सतसई इत्यादि की चर्चा बहुत पहले से होती चली आई है किन्तु उक्त पुस्तकों में ऐसी कोई कृति संग्रहीत नहीं है और न ही अभी तक खोज में प्राप्त हुई है। रहीम की जो भी पुस्तकें प्राप्त हैं उनका संकलन रहीम रत्नावली में निम्न प्रकार से हुआ है—

१ दोहावली
२ नगर शोभा
३ बरवै नायिकाभेद
४ बरवै
५ मदनाष्टक
६ फुटकर छंद तथा पद
७ शृंगार सोरठा
८ संस्कृत-काव्य

इस सूची में खेट-कौतुकम[2] का नाम नहीं है। याज्ञिक जी ने खेट-कौतुकम देने की आवश्यकता कदाचित इसलिए नहीं समझी क्योंकि यह ज्योतिष का ग्रंथ है, काव्य नहीं। खेट का अर्थ है ग्रह और कौतुक का अर्थ है चाल-क्रीडा या खेल। ग्रहों की क्रीडा पर लिखा गया ग्रंथ निश्चित ही ज्योतिष का होगा, काव्य का नहीं। किन्तु रहीम के काव्य विकास—विशेषतया भाषा-कौशल को समझने के लिए इस ग्रंथ की चर्चा परम आवश्यक है। हम इसी ग्रंथ को रहीम की प्रथम कृति मानते हैं।

१ साहित्य सम्मेलन का रहिमन विनोद, सुरेन्द्रनाथ तिवारी की रहीम कवितावली, रामनरेश त्रिपाठी का रहीम, रामनाथ सुमन का रहिमन चन्द्रिका, लाला भगवान दीन का रहिमन शतक इत्यादि।

२ यह पुस्तिका सर्वप्रथम १९०८ ई० में लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हुई थी।

कवि भी मौज आने पर इस प्रकार की छद रचना कर लेते थे। खानखाना पले थे फारसी के वातावरण म तथा अकबर की शिक्षा-नीति के अनुसार पढते थे सस्कृत ज्योतिष एव हिन्दू धम ग्रथ। अत फारसी सस्कृत मिश्रित भाषा मे फलित ज्योतिष का ग्रथ लिखना उनके लिए कोई बडी बात न थी। परन्तु यह उनका प्रारम्भिक प्रयास है जिसकी भाषा म किसी प्रकार का सुथरापन मादव या कौशल नही। फारसी हिन्दी का अनुपात भी नही निभ पाया है। कही सस्कृत शब्दावली अधिक है तो कही फारसी। दो श्लोको स यह तथ्य स्वत स्पष्ट हो जायगा—

नरपति कुल मान्य सलभो वन्दनाद्यो

× × ×

व पुरजसुलसुसिद्धो हिजगदस्च लेखे
जरदार महबूब सिर्दार व मुरौवत मनुजम।
यापितमकाने जोहरा मईस पुरस्त कुरुते ॥[1]

इनमे से प्रथम श्लोक की भाषा सस्कृत शब्द बहुला है तथा दूसरे की फारसी बहुला। प्रथम श्लोक मे प्रवाह की शिथिलता तथा दूसरे म सादगी भी द्रष्टव्य है। पहले श्लोक मे शब्दावली सश्लिष्ट है तो दूसरे म असमस्त शब्दों का प्रयोग हुआ है। अशुद्धिया भी हैं ही। निष्कष यह है कि खेट-कौतुकम' रहीम के उस जीवन की रचना है जब उन्हे सस्कृत या फारसी म से किसी पर भी अच्छा अधिकार प्राप्त नही था। सम्भवत यह रहीम के छात्र जीवन की रचना है। रहीम का छात्र जीवन पन्द्रह सोलह वष की अवस्था तक चला था। अत इसकी रचना उसी अवधि की होनी चाहिए। रहीम के स्वभाव तथा अय कृतियो से प्रकट होता है कि वे रसिक जीव थे। तरुणाई के जीवन की सभी कृतिया शृगारिक हैं। नीति के दोहे प्रौढ अवस्था के हैं। अत ज्ञात होता है कि यह कृति उनके जीवन म यौवनागम से पूव की है, अर्थात बारह चौदह वष की अवस्था की। अत खेट कौतुकम का रचना काल अनुमानत १५६९ ई० के आस पास होना चाहिए।

मदनाष्टक

खेट-कौतुकम स स्पष्ट है कि रहीम सस्कृत के प्रति पर्याप्त रूप से आकृष्ट थे, किन्तु सस्कृत फारसी मिश्रित भाषा न तो सस्कृत विद्वानो मे समादृत हो सकती थी और न असस्कृतज्ञ व्यक्तियो में। जनता की आम भाषा, फारसी तथा देशी भाषाओ का सम्मिश्रण थी, जो उस समय लश्करी भाषा या रेखता (उदू) कहलाती

---

१ यदि मगल नवम स्थान म हो, तो मनुष्य राज परिवार म आदर तथा उत्सवो म सम्मान प्राप्त करता है। उस ग्राम्य एव स्वतत्र जीवन के निर्वाह का अवसर मिलता है और वह भाग्यवान बनता है। परकीया युवतियो म निरत रहता है।

तथा

यदि शुक्र ग्यारहवें स्थान म हो तो व्यक्ति धनवान, ऐश्वयवान, सुसभ्य प्रिय व्यवहार वाला, राजा अथवा उसी के समान महापुरुष बनता है।

थी।[1] अतः विद्वानों की भाषा संस्कृत तथा आम लश्करी भाषा रेख्ता की मिश्रित शैली की ओर रहीम ने अपना पग आगे बढ़ाया। खुसरो की फारसी मिश्रित सामान्य भाषा के समान ही संस्कृत मिश्रित सामान्य भाषा भी काव्य सृजन की एक शैली थी भले ही वह बहुप्रचलित न रही हो। १४०० ई० के लगभग रचित 'शारंगधर पद्धति' में श्री नीलकण्ठ का एक छंद प्रसिद्ध है—

> नून बादल छाइ खेह पसरी नि श्राण शब्द खर
> शत्रु पाडि लुगालि तोडि हनिसौं एव भणन्त्युद्भटा।
> झूठे गर्व भरामधालि सहसा रे कन्त मेरे कहे।
> कण्ठे पाग निवेश जाह शरण श्रीमल्लदेव प्रभुम्।

रहीम मुसलमान होते हुए भी संस्कृत प्रेमी थे। अतः संस्कृत के सुप्रचलित छन्द में उन्होंने कविता की। यौवन के नवस्फुरण, संस्कृत प्रेम, हिन्दू धर्म के आदर तथा दरबारी वातावरण ने उन्हें रासलीला और गोपी विरह के विषय पर काव्य रचना करने के लिए प्रोत्साहित किया। प्रेमरसिक अष्टछापी नन्ददास ने रास पंचाध्यायी में शरद पूर्णिमा पर कृष्ण वीणावादन को सुन गोपियों द्वारा कुटुम्बियों को छोड़ यमुना तट पर जाने तथा रास रचाने आदि के विषय पर सुन्दर काव्य रचना की है। रहीम ने भी कदाचित् इसी विषय पर मदनाष्टक की रचना की। मदनाष्टक की तीन प्रतियाँ प्राप्त हैं उनमें भी क्रम निर्वाह तथा भाषा गठन आदि की दृष्टि से सम्मेलन पत्रिका का मदनाष्टक अधिक उपादेय प्रतीत होता है।

अष्टक के प्रथम पद में श्याम के वेणु वादन से मन्त्र मुग्ध गोपिका का सुत-पति इत्यादि को छोड़ वन जाने का वर्णन है— रति पति सुत निद्रा साइयाँ छोड़ भागी। दूसरे पद में प्रणय विभोर गोपिका का 'कलित ललित माला' तथा 'चपल चलन वाले' पीताम्बरधारी के दर्शनों का उल्लेख है जिसकी रूप माधुरी का पान करते ही उसकी आत्मा पुकार उठती है— अलि वन अलबेला, यार मेरा अकेला। तीसरे पद में छबीली छंगरा की छरी मणि जटित रसीली माधुरी मूँदरी से युक्त अमल कमल जैसे श्याम के हाथ को देखने का वर्णन है। चौथे पद में कथानक कुछ मोड़ लेता प्रतीत होता है। उसमें शिकार की कठिन कुटिल कारी जुल्फों की याद करते हुए नायिका को अचानक ही सकल शशि कला रोशनी हीन प्रतीत होने लगी है और वह कामना कर उठी है— अहह ! सजनला को किस तरह फेर देखौं।

यहाँ यह समझना कठिन हो जाता है कि जो गोपिका अभी पिछले पद में श्याम की रूप छवि का पान कर रही थी वह एकाएक कलेजे में ठहाका मारकर रुदन क्या करने लगी। निश्चित ही श्याम उसके नेत्रों से ओझल हुए प्रतीत होते हैं।

---

१ रेख्ता का नामोल्लेख स्वतः रहीम ने मदनाष्टक के एक पद में किया है—

> जरद बसन वाला, गुलचमन देखता था।
> झुक झुक मतवाला गावता रेखता था।

—रहीम रत्नावली, पृ० ७३

यहा हमे पुन श्रीमद्भागवत तथा रासपचाध्यायी के कथानक की याद आती है जहाँ श्याम रूप गर्विता गोपिकाओं की दृष्टि से सहसा अन्तर्धान हो जाते हैं। मदनाष्टक का पाचवा पद स्मृति विह्वलता का पद है, जिसमे गोपिका सलोनी रूपमाधुरी का स्मरण करती है—

श्रुति युग चपला से कुण्डलें झूमते थे।
नयन कर तमाशे मस्त ह्वै घूमते थे।

छठे पद मे श्याम की तरल तरनि सी तीर सी अमल कमल सी सुन्दरी श्याम आखो के मन मे बिलसने का वर्णन है। और सातवे पद मे भुजग भुज तथा बाकुरी मान भौहो के आकर्षण तथा अपनी 'अकल की बेदुरस्ती' का कथन है। यह वर्णन अन्य पदो की भाति भूतकाल मे न होकर वर्तमान काल मे है। दूसरी पक्ति मे तो नटवर को इस प्रकार सम्बोधित किया गया है जसे कि वे सम्मुख उपस्थित हो। ये दो पद उस समय के प्रतीत होते हैं जब रति पति इत्यादि त्याग कर आई हुई गोपिका को अलजले यार के दर्शन हुए थे। अत छठे और सातवे पद का स्थान तीसरा और चौथा प्रतीत होता है। इसके पश्चात् मदनाष्टक का अन्तिम पद है जिसमे गोपिका के विरह विह्वल अन्त करण का आर्तनाद है—

पकरि परम प्यारे सावरे को मिलाओ।
असल अमृत प्याला क्यो न मुझको पिलाओ।
इति वदति पठानी ? मनमथागी विरागी।
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी॥

—रहीम रत्नावली पृ० ४११

इस विवेचन से स्पष्ट है कि मदनाष्टक एकदम मुक्तक रचना नही है। उसका क्षीण कथानक रासपचाध्यायी का सा है। पदो मे वर्तमान कालिक क्रियाओ का भी प्रयोग है। वस ये प्रयोग सर्वथा शुद्ध नही हैं। रोशनाई (रोशनी के स्थान पर) आवने (अपन के स्थान पर) आदि प्रयोग अशुद्ध हैं। छैलरा, सावला, कुण्डलें, बेदुरस्ती, अकिल आदि प्रयोग भी चिन्त्य हैं। इनके अतिरिक्त अन्य प्रयोग भी अनगढ हैं। अत लेखक का नौसिखिया होना स्पष्ट है।

भाषा का अनगढपन भावो की अपरिपक्वता, प्रबन्धात्मकता का खण्डित प्रवाह तथा उठते हुए यौवन की प्रबल मदन तरग देखकर हमारा अनुमान है यह पन्द्रह सोलह वर्ष की अवस्था की कृति होगी। १५७२ ई० मे रहीम का गुजरातगमन ऐतिहासिक घटना है अत मदनाष्टक १५७२ ई० से पहले की कृति है। खेटकौतुकम का रचना काल अनुमानत १५६९ ई० है। वसे तो कवि थोडे बहुत पद कभी भी रच सकता है किन्तु कृति शृगारिक हैं। अत १५६९ या आयु के चौदह वर्ष से पूर्व की कृति मानना तर्कसगत नही। इसीलिए हमारा अनुमान है कि मदनाष्टक के नाम से पाए जाने वाले ये पद १५७०-१५७२ ई० के बीच रचे गये होगे। कौन कह सकता है, कि रहीम के नाम से प्रसिद्ध (अप्राप्त) कृति रासपचाध्यायी भी इसी प्रकार की रचना हो अथवा ये पद उसी के अग हो।

नगर शोभा

नगर शोभा में सबसे उद्दाम है नगर के नागरिक उपकरणों का नहीं प्रत्युत शोभा के मूर्तिमान स्वरूप नारियों का ही चित्रण है। इसके लिखने की प्रेरणा डॉ० कदाचित् फतेहपुर के मीना बाजार से मिली थी। मीना बाजार में नगर के सम्भ्रान्त कुलों की स्त्रियाँ आती थीं। जहाँ विक्रय की सभी व्यवस्था स्त्रियाँ ही किया करती थीं। सम्राट् स्वयं हरम की बेगमों तथा सरदारों की बहू-बेटियों के साथ फिरकर वहाँ तथा पुरस्कार एवं भेंटें या सम्मान प्रदान करते थे। कभी कभी तो सम्राट् द्वारा सरदारों के पुत्रों के लिए बालाएँ भी निश्चित कर ली जाती थीं। प्रायः मीना बाजार पर ही उनका विवाह भी सम्पन्न करा देते थे। युवक युवतियों का हास-लास एवं बालाओं की छेड़छाड़ तथा मधुर मुस्कानों का आनन्द प्रदान रहीम ने न जाने कितनी बार देखा होगा।

ललना लावण्य की नाना मंजरियों से परिपूर्ण मीना बाजार के सौन्दर्य सरोवर में रसिक हृदय रहीम का मानस निमज्जित हो गया। तरुण हृदय प्रतिभा और वातावरण सभी उपस्थित थे। अतः रहीम के मानस में कविता फूट पड़ी। उसने नारियों के उस नगर की शोभा को शब्दों की सुरम्य निगारियों में सजा दिया। रसिकवर रहीम की कृपा से ही उस सौन्दर्य सुधा का पर्याप्तभाग आज हमें भी प्राप्त है। इसकी खोज का श्रेय पं० मायाशंकर याज्ञिक को है। प्रति का परिचय कराते हुए वे लिखते हैं— 'इसके प्रत्येक दोहे में रहीम का नाम न होने पर भी कविता की भाषा, उसकी प्रौढ़ता और भाव स्पष्टतः से यह ग्रन्थ रहीम का ही जान पड़ता है। शृंगार सोरठ की भाषा से इसकी भाषा मिलती भी है। सबसे विश्वस्त प्रमाण यह है कि पुस्तक के आदि में लिखा है— अथ नगर शोभा नवाब खानखाना कृत।' सम्पूर्ण मुस्लिम शासन में खानखाना की उपाधि ही कितने व्यक्तियों को मिली और उनमें भी नवाब से सम्बोधित होने वाले खानखाना कितने हैं। और ऐसे नवाब जो खानखाना होते हुए भी सुप्रसिद्ध कवि हों – निश्चय ही रहीम हैं। अतः कृति का अब्दुर्रहीम खानखाना द्वारा रचित होना निर्भ्रान्त है।

नगर शोभा के अन्तर्गत विभिन्न उद्योग धंधों में संलग्न रमणियों का चित्रण है। सर्वप्रथम दो दोहों में मंगलाचरण है। यहाँ सौन्दर्य राशि के आदि रूप की स्तुति में अपनी लघुमति को असमर्थ मानता हुआ कवि इस नानारूपात्मक जगत में उसी आदिरूप की झलक देखकर नेत्रों की कुछ तृप्ति प्राप्त करता है।[1] कहने की आवश्यकता नहीं कि यह मंगलाचरण बहुत ही साभिप्राय तथा उपयुक्त है। कारण,

---

१ आदि रूप की परम दुति घट घट रही समाइ।
लघुमति ते मो मन रसन अस्तुति कही न जाइ ॥१॥
नैन तृप्त कछु होत हैं, निरखि जगत की भाँति।
जाहि ताहि में पाइयत आदि रूप की काँति ॥२॥

नगर शोभा, रहीम रत्नावली—पृ० २८

कवि ने प्रारम्भ में ही रूप वर्णन के प्रति अपनी आसक्ति, गम्भीरतापूर्वक व्यक्त कर दी है। यहाँ भी रसमंजरीकार (नायिका भेद) नन्ददास की स्मृति हो आना स्वाभाविक है, क्योंकि उन्होंने भी ग्रन्थारम्भ में मंगलाचरण कुछ इसी प्रकार का दिया है—

रूप प्रेम आनन्द रस, जो कछु जग में आहि।
सो सब गिरधर देव को, निधरक बरनों ताहि ॥[1]

मंगलाचरण के पश्चात् कविवर रहीम ने ब्राह्मणी से लेकर भगिनी तक के सौन्दर्य का वर्णन बड़ी ही शिष्टता, तल्लीनता और काव्यात्मकता के साथ किया है। ब्राह्मणी और भगिनी के बीच में खत्रानी, जौहरिन, कायथनी बर्हन, सुनारिन, बर्नैनी, रंगरेजिन, बनजारिन, लुहारिन, गुजरी, कमाइन, भटियारिन, तुरकी, सक्की, नटनी, चमारी, घसियारी इत्यादि लगभग ७० जाति की कुलांगनाओं का वर्णन एक सौ बयालीस दोहा में किया गया है। औसतन एक जाति या उद्योग के लिए दो दोहे प्रयुक्त हुए हैं। आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं दो से अधिक और कहीं कहीं दो से कम दोहा में भी काम चला लिया गया है।

नगर शोभा के वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता है जाति विशेष के सामाजिक गौरव का ध्यान रखते हुए उसी उद्योग में काम आने वाले पदार्थों एवं उपकरणों से जाति विशेष की नायिका का सौन्दर्य चित्रण। मंगलाचरण के पश्चात् सर्वप्रथम गंगा के समान परजापति परमेश्वरी ब्राह्मणी के परम पाप पल में हरने वाले रूप का चित्रण है, जो न केवल ब्राह्मण जाति के गौरव एवं हिन्दू समाज की परम्पराओं के अनुकूल है अपितु ब्राह्मणों के प्रति रहीम की श्रद्धा का भी द्योतक है।[2] कायस्थों का कार्य प्रायः नौकरी करना रहा है। अतः वे कायथनी से मैन की सैन द्वारा, छाती की पाती में प्रेमाक्षर लिखवाकर प्रिय को बाँचने के लिए भिजवाते हैं।[3] सुनारिन का काम स्वर्ण और साँचे से पड़ता है। अतः सुनारनी का परिचय 'साँचे में ढले परम रूप कंचन बरन' कहकर देते हैं।[4] कुम्हार का काम गध की पीठ पर

१ नन्ददास ग्रन्थावली—रसमंजरी—स० ब्रजरत्नदास (ना०प्र० स० काशी), पृ० १२६

२ उत्तम जाती ब्राह्मणी देखत चित्त लुभाय।
परम पाप पल में हरत परसत वाके पाय ॥३॥
परजापति परमेश्वरी गंग रूप समान।
जाके अंग तरंग में, करत नैन अस्नान ॥४॥ —रहीम रत्नावली, पृ० २८

३ कैथनि कथन न पारई प्रेम कथा मुख बैन।
छाती ही पाती मनो, लिखै मैन की सैन ॥६॥
वरनि बार लेखनि कर मसि काजरि भरि लेइ।
प्रेमाक्षर लिख नैन ते पिय बाँचन को देइ ॥१०॥ —वही, पृ० २८

४ परम रूप कंचन बरन शोभित नारि सुनारि।
मानो साँचे ढारि कै, बिधिना गढ़ी सुनारि ॥१२॥ —वही, पृष्ठ २६

थान से बने तुकील गुरवों में मिट्टी भर कर गाना है। कुम्हार की कुमारिका के कुचन्य को (मिट्टी भर कटोर उलटे) गगरे के समान बताया गया है।[1] बरवा पद्य वाली ठकुरानि के गरार के वर्णन में उनके कुचों को गर्भ (गगरा लगा) गया नितम्बों का सा ऐसा चित्रित किया गया है।[2] नाक भाजा बन्द बाला काछिन के कुचों का गाल भाग (बगर) अधरों का लाल गाजर तथा भुजाओं का मागन मूली से व्यक्त किया है।[3] इन वचनों द्वारा गणिका का मानु मुग्धी इत्यादि का काम गहरा है। अत उसने नारीरिक सौन्दर्य का चित्रण किया—

मुरग बसन तन गधिको बेसत बन न अपाय।
कुच मानु कुसो अधर मोचा घरान भाय ॥५३॥[4]

नायिकाओं के चित्रण में रहीम ने उदात्त के प्रकृत चन्द्रावती का ही प्रयास नहीं किया अपितु कामिनियों के काय व्यापार में भी उनके उदाहरण की शरत भनक दिखाई है। उदाहरण के लिए धुनी का वर्णन उपस्थित किया जा सकता है। रुई धुनने के व्यापार में तांत उसका पूर्ति तथा धुनी रुई कन के नरम शरीर रचना का तांत से चिपटना सम्मिलित रहता है। रहीम इन्हीं सब क्रियाओं का अपने ढंग से उपयोग करते हुए कहते हैं कि धुनी की प्रेम क्रीड़ा बड़ी विचित्र है। जब उसके मन की तांत बजाता है और कामदेव अपना पराक्रम दिखाता है तो प्रिय के स्पर्श करते ही वह रुई सी नरम हो जाती है। गरम अथवा शामिन अथवा कठोर नहीं रहती और पुन प्रिय के शरीर के रोम रोम से उस प्रकार एकाकार हो जाती है जैसे लिपटी हुई रुई (तांत से)—

धुनियाइन धुनि रैन दिन धर सुरति की भांति।
बाको राग न बुझि है कहा बजाव तांति ॥६७॥
काम पराक्रम जब करै धुवत नरम हो जाइ।
रोम रोम प्रिय के बदना रुई सो लपटाई ॥६८॥[5]

---

१ बरवा के माटी भरे कोरी बैस कुम्हार।
द्वै उलटे सरवा मनो दीसत कुच उनहार ॥२७॥
निरखि प्रान घट ज्यों रहै क्यों मुख आव थाक।
उर मानो आबाद है, चित्त भमै जिमि चाक ॥२८॥
—रहीम रत्नावली प० ३०

२ आभूषन बसतर पहिर चितवत पिय मुख ओर।
मानो गढ़ नितव कुच गडुवा ढार कठोर ॥१०॥
—वही प० ३६

३ कुच माटा गाजर अधर मूरा से भुज माइ।
बठी लौका बेचई लेटी खीरा खाइ ॥३६॥
—वही प० ३१

४ वही पृ० ३२
५ वही पृ० ३,

नायिकाएँ सदैव अनुकूल ही नही रहती, प्रतिकूल भी हो जाती हैं। तीर कमान बनाने वाली की प्रतिकूल अवस्था का चित्रण इस प्रकार हुआ है—

कर गुमान कमागरी, भौंह कमान चढाइ।
पिय कर गहि जब खचई, फिर कमान सी जाइ ॥४८॥
जो गात है पिय रस परस रहै रास जिय टेक।
सूधी करत कमान ज्यो बिरह अगिनि मे सेक ॥४८॥[1]

इस प्रकार शृगार का एक मार्मिक चित्र सम्पूर्ण कृति म परिव्याप्त है जिसने नगर शोभा का एक अनूठी शृङ्गार रचना बना दिया है। कही तो प्रेम अग आधीन चिर दासाग्नी क सारी निसि प्रिय सग रहने का उल्लेख हुआ है और कही प्रिय के सग अगडाती हुई नगारचिन (नक्कारा बजाने वाली) के घर 'आधी रात रति-प्रति की नौबत बजन का। कही रगरेजिनी क मुख पर सुरतात का रग दिखाया गया है तो कहीं वेश्या की विपरीत रति क सुख का सकेत। किन्तु इन चित्रो म अश्लीलता नही है। अश्लीलता के निकट म होता हुआ भाव सफाई से आगे निकल जाता है—

परम ऊजरी गूजरी, दह्यौ सीस प लेइ।
गोरस के मिसि डोलई, सो रस नेक न देइ[2] ॥३३॥

यहा 'रस' ने जिस प्रकार मर्यादा की रक्षा की है उसकी जितनी प्रशसा की जाय थोडी है। आचार्य चतुरसेन ने ठीक ही कहा था— इनके शृङ्गार मे भी एसा चमत्कार है कि अश्लीलता भी नहा आ पाई और घुस भी गया।[3] यह चमत्कार प्राय शब्द प्रयोग क कारण आया है किन्तु शब्द प्रयोग के सम्बन्ध म उनकी आदत प्राय पुनरुक्ति की है। एक एक शब्द का दो दो बार प्रयोग रहीम का बहुत प्रिय है। इतना प्रिय कि यह उनकी भाषा की एक कसौटी भी बन सकता है—

घोर घोर मन लेत है ठौर ठौर तन तोर ॥७२॥ —नटनी
घेर घेर उर राखही फेर फेर नहिं देइ ॥७६॥ —अहरनी

शब्द प्रयोग के साथ ही वे मुहावरे क प्रयोग के सम्बन्ध मे भी सजग है। धोबी के कुत्ते तथा तेली के बैल म सम्बन्धित मुहावरे समाज मे न जाने कब से प्रचलित हैं। इन जातियो का वर्णन करते समय रहीम ने त सम्बन्धित मुहावरा का भी प्रयोग किया है—

धोबन लुबधी प्रम की ना घर रहै न घाट।
देत फिरै घर घर बगर सुथरा घरे लिलार ॥१२७॥
बेलन तिली सुवास क तेलनि कर फुलेल।
बिरही दृष्टि फियो फिरै, ज्यौं तेली को बैल ॥४१॥

---

१ रहीम रत्नावली पृ० ३२
२ वही पृ० ३०
३ हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास—आ० चतुरसेन(१९४८ लाहौ

मुहावरो से भाषा मे कुछ कुपठता आई है। अरबी फारसी के शब्दो से भी उत्पन्न की है। इनकी ही कुपठता स्थानीय व पजाबीपन तथा पूर्वीपन का रूप निम्न लिखित पक्तियो म देखा जा सकता है—

हरिगुन आवज बसाया हिसा बाजत काम ॥७३॥
नालिबदनी रन बिन रहै सरिता के मास ॥३४॥

प्रान्तीय प्रयोगो के अतिरिक्त अरबी फारसी के ता अनेक शब्द पागानी म एकत्रित किये जा सकते हैं। गरूर आबाद शायरा बीन हाजिर मज मुनर तथा क्बाब आदि शब्द जहाँ तहाँ बिखर पडे हैं। ये प्रयोग कही कही ता सौन्दय म बाधा भी उत्पन्न करते हैं। कही कहा पर प्रयोग अशुद्ध भी है—राजपूत का स्त्रीलिंग राजपूतनी है पर रहीम ने रजपूतई का प्रयोग किया है। इसी प्रकार पान बेचन वाली के लिए पासी का शब्द प्रयुक्त हुआ है जबकि शब्द पतियारिन है। शब्द त्रुटियो के अतिरिक्त भग्न यून पदत्व आधिक पन्त्व आदि दोष भी पर्याप्त है। प्रारम्भ म उत्पन्न जो गात है पिय रस परस म स्पष्ट ही आधिक पन्त्व है। साथ म अतिशयोक्ति का सब प्रयोग भी श्रयस्कर प्रतीत नही होता। कही कही भाव भी स्पष्ट नही हो पाता।

शोभा अग अगेरनी सोमित माल गुलाल।
पना पीस पानी कर चलन बिलाव लाल ॥११६॥

यहाँ भगेहिनी का भाव स्पष्ट नही है। भाव के गुणो की सयोजना भी नही बन पाई। इन सबको देखते हुए हम इस नतीजे पर पहुचते हैं कि यह कृति भी कवि के अप्रौढ जीवन की रचना है। इसका ब्रज भाषा म प्रभाव तो है पर लालित्य नही। इसी प्रकार भावो मे यौवन की मांसलता तो है पर तु विचारो की गम्भीरता नही। अत यह भी बहुत अधिक प्रौढ जीवन की ही रचना नही है।

नगर शोभा के शृंगार के उद्दाम वेग तथा भाषा की अपरिपक्वता को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि यह रचना तेईस चौबीस या बहुत समझिए तो पच्चीस छब्बीस वर्ष की आयु से अधिक व्यक्ति की नही है। उधर रहीम अपने जीवन के चौबीसवें वर्ष मे अकबरी दरबार के मीर अर्ज के पद पर काय भी कर रहे थे। यह काय आराम का काय था—न परिश्रम था न परेशानी। हाँ यह अवकाश बहुत लम्बा नही था किन्तु रहीम जैसे जन्मजात प्रतिभाशील कवि के लिए सौ-डेढसौ शृंगारिक दोहे लिख देना दो चार वर्ष का काम नही। अत हमारा अनुमान है कि यह रचना इसी समय के आस पास अर्थात सन् १५८० मे लिखी गई होगी। सभव है कुछ दोहे १५८२ ई० मे भी लिखे गये हो जब कि वे शाहजादे सलीम के शिक्षक नियुक्त हुए थे। इस प्रकार हम नगर शोभा का निर्माण काल १५८०-८२ से आगे नही मान सकते।

इस प्रकार स्पष्ट है कि एक सौ बयालीस दोहो की रचना नगर शोभा रहीम के यौवन काल की कृति है जिसमे सवप्रथम ब्राह्मणी और क्षत्राणी (खतरानी) और अन्त मे चमारिन एव चूहरी युवतियो का सौन्दय वर्णित है। स्पष्ट

है कि हिंदू समाज में सब से अंतिम सिरे पर शूद्र या भगिया को रखा जाता रहा है। रहीम ने उसे भी गले लगाने का फतवा[1] देकर अपनी कृति का अंत किया। इसके आगे कोई जाति बचती ही नहीं। हा हलवाइन इत्यादि कुछ जातिया पर पथक से कुछ बरवै मिलते हैं। उनकी रचना भी १५८२ के बाद की नहीं जान पडती।

बरवै नायिका भेद

बरवै नायिका भेद हिंदी जगत की सुप्रसिद्ध कृति है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस कृति में नायिकाओं के भेद प्रभेदों का वर्णन है। नायिका का सामान्य अर्थ है सब प्रकार से रूप गुण सम्पन्न रमणीय रमणी[2] जो चिरतन काल से मानव के आकर्षण तथ रहस्य का केन्द्र बिन्दु रही है। वस्तुत इच्छा, ज्ञान और कर्म की त्रिभुज रेखाओं से घिरा मानव जीवन, क्षुधा काम तथा स्वत्व के तीप बिन्दुओं द्वारा सचालित रहता है। क्षुधा तथा स्वत्व कामना[3] बलवान प्रवृत्तिया तो अवश्य हैं परन्तु ये ससार के निर्माण का मूल आधार नहीं। केवल काम ही वह भावना है, जिस पर निसग निर्माण का पूर्ण दायित्व है और वही मनुष्य की प्रबलतम मूलभूत मनोवृत्ति है।[4] कदाचित इसीलिए इसे प्रसाद जी ने 'मगल से मडित श्रेय कहा है।[5]

वसे तो श्रेय सम्पादन में स्त्री पुरुष दोनों का योगदान समान रहता है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विश्लेषण करने पर तथा आधुनिक मनोविज्ञान एव शरीर रचना शास्त्र की दुहाई देकर विद्वानों ने यह निश्चित किया है कि नारी की काम भावनाएं तथा

---

१ हरी भरी गुन चूहरी वेखत जीव कलक।
परम लता सी लहलही धर पम सँयोग॥
वाके अधर कपोल को चुबौ पर जिमि रँग।
कर गहि गले लगाइय, हरै बिरह को रोग।१४२।

२ लाज भरी भाग भरी सुदर सुहाग भरी
राग भरी रति में पिया की सुखदायिका।
लाजे रति रूप खरा सील भरी सोगुने है
गुन गान आगरी, करनि हाइ भाइका।
मौन कवि कहत विलोकत ही जासु अग
प्रगटे मनज रस राशि उपजाइका।
बन मन भाइका मनोरथ साइका
सुचित चोप चाइका बखान ताहि नायिका॥ —मौन कवि

३ देख सी० जी० जुग का सिद्धात विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (एनेलेटिकल साइकालाजी)—एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका

४ देखें मनोविश्लेषण—सर ए० फ्रायड (अ० देवेन्द्र वेदालकार) लिबिडो की व्याख्या पृ० २२७

५ काम मगल से मण्डित श्रेय सर्ग इच्छा का है परिणाम।
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल बनाते हो असफल भव धाम॥
कामायनी पृ० ६३

शारीरिक यौन सरचनाएँ, पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक सश्लिष्ट हैं।[1] यह सश्लिष्टता आज के वैज्ञानिक युग म भी एक खुला रहस्य बनी हुई है। और चूंकि श स्त्र सजन एव काव्य सष्टि का अवसर नारी की अपेक्षा पुरुष को ही अधिक प्राप्त होता रहा है अत वह ऋग्वेद स आज तक नारी के आकषण विकषण के असख्य चित्र उतारकर उसे विभिन्न प्रकार से समझने का प्रयत्न करता चला आ रहा है। नायिका भेद उस प्रयत्न का साहित्यिक प्रतिफल है। इस साहित्य म स्त्री पुरुषो के शृ गारिक मनोभावो एव भेदा प्रभेदो को प्रकृति वय स्थिति स्वभाव परिस्थिति आदि की पष्ठभूमि पर समझने का यत्न किया जाता है।

निश्चित ही यह अपने मूल रूप मे काम शास्त्र का विषय है। यही कारण है कि वात्स्यायन मुनि के काम सूत्र म हम सवप्रथम विभिन्न आधारो पर भद प्रभेद के दशन होते हैं।[2] कामशास्त्र मे यह प्रवृत्ति चलती रही।[3] का यशास्त्र के अ तगत इस विषय का ज्ञान वाले प्रथम व्यक्ति नाट्याचाय भरत मुनि है।[4] नायक नायिका शास्त्र मे अपने म इस ग्रथ का प्रतिनिधित्व करते हैं कि इनका सम्ब ध नाटक स है। वहीं स धनजय सागर न दी रामच द्रादि नाट्याचार्यों एव रुद्रट मम्मट रुय्यक भोज केशवमिश्र विश्वनाथ शारदातनय शिगभूपाल तथा वाग्भट्ट आदि अलकारिको ने इस विषय का विवेचन प्रस्तुत किया। आगे चलकर रूप गोस्वामी की उज्ज्वल नील मणि तथा भानुदत्त की रसमजरि काव्यशास्त्रीय नायक नायिका भेद के आधार ग्रथ बन गये। हिन्दी के नायिका भेद की मौलिकता अमौलिकता क सम्ब ध म विद्वानो म पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वानो का कथन है कि हिन्दी के आचार्यों विशेषत रीतिकालीन काव्यशास्त्रियो ने इस अलकार शास्त्र को सस्कृत आचार्यों स ज्यो का त्यो ग्रहण कर लिया[5] जबकि दूसरो का कथन है कि उ होने इस सम्ब ध म पर्याप्त मौलिकता का परिचय दिया है[6] और नायिका भद को सस्कृत की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तार प्रदान किया है।[7] यहाँ तक कि सयद गुलाम नबी रसलीन न उनके भद प्रभेदो की सख्या एक हजार तीन सौ बावन तक पहुँचा दिया।[8] रहीम ने भी अनेक स्थानो पर मौलिकता प्रदर्शित की है।

---

१ दम्पति म भी रस की दृष्टि स नायिका ही मुख्य है। नायिका स अभिप्राय उस स्त्री स है जो यौवन रूप कुल प्रेम शील गुण वभव और भूषण स सम्पन्न हो। —देव और उनकी कविता डा० नगेन्द्र (१९४९) पृ०१४२

२ नायिकास्तिस्र कन्या पुनर्भू वेश्या च ॥ कामसूत्र १।५।॥

३ अनगरग ३ २ तथा रतिरहस्य १ १०

४ त्रिविधा प्रकृति स्त्रीणां नाना सत्व समुद्भवा।
बाह्या चाभ्यतरा चवस्याद् बाह्याभ्यन्तरा परा ॥ —नाट्यशास्त्र २४ १४३

५ रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यजना डा० बच्चनसिंह (प्र० स०) पृ० ६६

६ रीतिकालीन अलकार साहित्य का शास्त्रीय विवेचन डा० ओम प्रकाश शास्त्री (प्र० स०), पृ० २३

७ रीतिकाव्य की भूमिका डा० नगेन्द्र (द्वि० स०) पृ० १४३

८ इक सखिया द्वै परकीया सामान्या मिलि चारि।

रहीम के समय में हिन्दी भाषा में नायिका भेद के ग्रन्थ प्राप्त नहीं थे। नन्ददास की रसमंजरी इसमें अपवाद है। परन्तु रामधारीसिंह दिनकर[1] तथा राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी[2] आदि कतिपय विद्वान बरवै नायिका भेद का रसमंजरी से भी पूर्व की अर्थात् हिन्दी नायिका भेद की प्रथम कृति स्वीकार करते हैं। अतः स्पष्ट है कि रहीम ने अपने विवेचन का आधार संस्कृत काव्य शास्त्र का ही बनाया। संस्कृत भाषा में, उनकी रुचि एवं गति का एक ज्वलन्त प्रमाण यह भी है। जिस प्रकार नायिका भेद हिन्दी के लिए नया विषय था उसी प्रकार बरवै भी नया छन्द था। उनकी मौलिकता, आचार्यत्व एवं शास्त्रीय ज्ञान का इससे बड़ा और क्या प्रमाण होगा कि उन्होंने हिन्दी को एक नया विषय सर्वथा नए छन्द में प्रदान किया। बरवै को नवीन छन्द इसलिए कहा जा रहा है क्योंकि रहीम ही बरवै के साहित्यिक जनक हैं।[3]

अष्ट नायिका मिलि सोई, बत्तिस होत विचारि ॥
उत्तमादि सौं मिलि उहै सुन छियानवे होत।
पुन चौरासी तीन से, पद्मिनि आदि उदोत ॥
तेरह सो बावन बहुरि, दिव्यादिक के संग।
यों गनना में नायिका बरनी बुद्धि तरंग ॥ —रस प्रबोध

१ रीति कविता एवं शृंगार विवेचन—राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी (आगरा सं० २०१०) पृ० २३६-२४२

२ संस्कृति के चार अध्याय—डा० दिनकर पृ० ३५६

३ बरवै छन्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में घटना प्रसिद्ध है कि रहीम का एक सैनिक लम्बे अवकाश में अपने घर गया हुआ था। इसी बीच उसका विवाह हो गया और वह नवपरिणीता दुल्हिन के साथ रसकेलियों में कुछ ऐसा निमग्न हो गया कि यह ज्ञात ही न हुआ कि अवकाश की अवधि कब निकल गई। ध्यान आने पर बहुत पछताया। उसे अपनी नौकरी छूट जाने का भय था। पति को दुखी देख स्त्री ने जब दुख का कारण पूछा तो उस विदुषी ने पति को ज्ञान की प्रेरणा करते हुए दो पंक्ति लिखकर दे दीं और उन्हें खानखाना की सेवा में उपस्थित करने को कहा। रसिक खानखाना स्थिति की वास्तविकता को समझ गए तथा सैनिक को क्षमा कर दिया। रहीम को वे पंक्तियाँ इतनी रुचीं कि, उन्होंने उसमें स्वतः भी काव्य रचना की तथा अन्य गुणियों को लिखने के लिए एक सैनिक दुल्हिन द्वारा सम्प्रेषित निम्नलिखित पंक्तियों की प्रेरणा से रहीम ने नए छन्द को जन्म दिया और पंक्तियों में आए प्रमुख शब्द 'बिरवा' के आधार पर उस छन्द का नामकरण बरवै हुआ—

प्रेम प्रीति को बिरवा चलेउ लगाय।
सींचन की सुधि लीजियो सूखि न जाय ॥

नायिका भद के प्रारम्भिक दो दोहा म उ होने बरव छ द की प्रशसा की है।[1] ग्रौर उसके पश्चात एक बरव म सरस्वती व दना करके पुस्तक का समारम्भ कर दिया है। मगलाचरण इस प्रकार है—

बदो देवि सरदवा पद कर जोरि।
बरनत काव्य बरैवा लगइ न खोरि ॥३॥

प० मायाशकर याज्ञिक ने जिस हस्तलिखित प्रति से बरव नायिका भेद को सम्पादित किया है उसके प्रारम्भ मे रहीम के उदाहरणो म पूव महाकवि मतिराम कृत रसराज से लक्षण दोहा को भी लिख दिया गया है। इस प्रकार का सकलन किसने किया यह तो नही कहा जा सकता किन्तु हमारा अनुमान है रसिक किमी नवीन नामक रसिक ने ग्र थ म पूणता लाने की दृष्टि म ऐसा किया है। अनुमान का कारण इस प्रकार सम्पाप्ति नायिका भद के अतिम दोहे हैं—

लच्छन दोहा जानिए उदाहरण बरवान।
दूनो क सग्रह भए रस सिंगार निर्मान ॥११७॥
एह नवीन सग्रह सुनो जो देने चित देय।
बिबिध नायका नायकनि जानि भलो विधि लेय ॥११८॥

ग्र थ म कुल एक सौ सोलह छ द है। इनमे से बरव वणन के दो दोहे तथा मगलाचरण का एक बरवा निकाल देने पर कुल एक सौ तेरह बरवों से यह ग्र थ निर्मित है इनम भी नायिका भद का कुल बयासठ बरव दिये गये हैं। शेष इक्कीस बरवो म से तेरह म नायक वणन चार म दशन वणन तथा चार म सखी तथा ससीजन कम का वणन है। इस प्रकार एक सौ तेरह बरवो म नायिका भद नायक भद दशन भद तथा सखीजन कर्मों का वणन किया गया है। इतने बडे विषय को इतने थोडे से छदो म वर्णित कर देना गागर म सागर ही है।

सुविधा की दृष्टि से हम पहले नायक वणन को लेते है। नाट्य शास्त्र काम शास्त्र तथा साहित्य शास्त्र म नायिकाओ क समान ही नायको क भी भद किये गये हैं। य भद लगिक, शारीरिक तथा प्रकृति की दृष्टि से अनक हैं। दिव्यमत्यादि

---

१ कवित कह्यो दोहा कह्यो तुल न छप्पय छद।
बिरच्यो यही बिचारि क, यह बरवा रस कन्द ॥१॥
बेधक अनियारो बडो समुझ चतुर सुजान।
सुनत जात चित चाव प यह बरव के बान ॥२॥

—रहीम रत्नावली प० ४०

नीयका के अन्तर्गत तो नायका के भी एक सौ पतीस भेद गिना दिये गये है।[1] रहीम ने अपना नायक वर्णन नायक के गुणों से प्रारम्भ किया है। उन्होंने सुन्दर चतुर धनी कुलीन, केलि कला प्रवीण शीलवान तथा स्वस्थ व्यक्ति को नायक कहा है।[2] ये गुण आचार्य विश्वनाथ द्वारा समर्पित हैं। इससे अगले बरवै में पति उपपति तथा वसिक तीन प्रकार के नायक गिनाये गये हैं। गुरुजनों द्वारा विधिवत विवाहित नायक पति,[3] झरोखे से झांक झांककर आस जोड़ने तथा निहोर करने वाले को उपपति[4] वेश्यानुरागी आवारा बेन को वैसिक कहा गया है।[5] पति के पुन अनुकूल, दक्षिण धृष्ट तथा शठ—चार भेद किये हैं। अपनी ही स्त्री से सदैव निरत, निरपराधी जीवन व्यतीत करने वाला तथा पत्नी को स्वप्न में भी अप्रसन्न न करने वाले पति को अनुकूल[6] अनेक नारियों से एक ही समान स्नेह कर रस रंग रचाने वाले को दक्षिण[7] पर स्त्री गामी को धृष्ट तथा लोक लाज, कुल कान सब को छोड़ नित्य अपराधों की बान वाले जार कर्मादि के अभ्यस्त को शठ की संज्ञा दी गई है।[8] इनमें सर्वोत्तम है अनुकूल, जिसकी पत्नी को स्वप्न में भी कभी मान करने की गुंजाइश नहीं रहती—

करत नहीं अपरधवा, सपनेहु पीव।
मान करै की सघवा रहि गइ जीव ॥[9] ६६ प० ८९ ॥

रहीम ने नायका का वर्गीकरण एक अन्य प्रकार से भी किया है। इस वर्गीकरण के अन्तर्गत—प्रोषित मानी बचन चतुर तथा क्रिया चतुर नाम से चार दीपक दिये गये है। रहीम का यह वर्गीकरण, भानुदत्त की 'रस मंजरी' से भिन्न है, क्योंकि उन्होंने मानी और चतुर को पृथक्‌ वर्गीकृत नहीं किया, जबकि शासन ही नहीं नियात्मक गृहस्थ जीवन मे भी मान एवं चतुराई के अवसर आते ही रहते हैं।

---

१ शृंगार नायिका (सा० आ० जागलेकर) ५० ६३

२ वही, बरवै स० ९७ १०३ तथा १०४ प० ६०

३—८, रहीम रत्नावली, बरवै स० ९७ १०२, प० ५९ ६०

९ तुलनीय—

फूलन सौं बाल की बनाय गुही बेनी लाल
भाल दई बदी मग मद की असित है।
भांति भांति भूषण बनाये ब्रज भूषण
सुबीरो निज कर सौं खवाई करि हित है।
ह्वै कै रस बास जब दीवे को महावर के
सेनापति लाल गह्यो चरन ललित है।
चूमि हाथ नाह के लगाइ रही आँखिन सौं,
एहो प्राननाथ ! यह अति अनुचित है। —सेनापति

रहीम के त्रिया चतुर नायक, राधावल्लभ कृष्ण की चतुराई ता देखते ही बनती है—

खेलत जानेसि टोलिया नन्द किशोर ।
छुइ वृषभान कुमारिया भगा चोर ॥[1] १०८ प० ६१ ॥

दर्शन भेद

नायक भेद से अवकाश प्राप्त कर रहीम ने स्रवण स्वप्न चित्र साक्षात् नाम से चार प्रकार के दर्शनों का उल्लेख चार बरवों में किया है।[2] यह विभाजन भी रसमंजरी से भिन्न है क्योंकि वहां केवल तीन ही प्रकार के दर्शन गिनाये गये हैं। रहीम यहां पर साहित्य दर्पण से भी असहमति रखते हैं। यहां चार भेद होते हुए भी नाम भिन्न हैं।[3] स्वतन्त्र रूप से श्रवण दर्शन को मान्यता देना रहीम की मौलिकता है। आगे केशव इत्यादि ने भी यही स्वीकार किया है। स्वप्न देखती हुई नायिका को नौकरानी ने जगा दिया। रहीम का यह वर्णन बड़ा सुकुमार है। दुखियारी नायिका का काल्पनिक सुख भी विधाता से न देखा गया—

पीतम मिलेउ सपनवां भो सुख खानि ।
जाइ जगाएउ चेरिया भो दुख खानि ॥[4] ११० प० ६१ ॥

इसी प्रकार साक्षात दर्शन का वर्णन भी सुन्दर बन पड़ा है। विरह की विकराल अवधि के पश्चात वह पुण्य अवसर आया जबकि प्रेमी-युगल इकठौर हुए। उस समय कितना हर्ष, कितना उत्साह कितना चाव था उस आगतपतिका के हृदय में प्रिय के साक्षात दर्शनों के लिए उसके नेत्र चकोर बन गये—

बिरहिन और बिदेसिया भो इकठौर ।
पिय मुख हेरि तिरियवा चन्द्र चकोर ॥ ११२ प० ६१ ॥

सखी तथा सखीजन-कर्म

कभी कभी नायक नायिका अपने अभिप्रेत स्वयं नहीं सिद्ध कर पाते। वात्स्यायन ने ऐसे अवसरों पर दूतिका प्रयोग का परामर्श दिया है। उनका कथन है

---

१ कान्ह चतुराई करि द्वार मे बिछाई सेज
जानि मनि मन्दिर मे मन भाई बाम को ।
कालिदास रसिकाई जानि के चुपाइ रहे
आई जब सुन्दरि सिधाई निज धामकों ।
चचल चतुर छरकायल छबीली बाम
अचल छुव न दीनों स्याम अभिरामकों ।
पाटी पग धरि गई चेटक सों करि गई
मटी लौं उघरि गई छरि गई स्यामको ।
—कालीदास

२ रहीम रत्नावली—बरव सं० १०९ से ११२ पृ० ६१

३ साहित्य दर्पण—३ १८९

४ सपने में साइं मिले सोवत दिया जगाय ।
आंख न खोलूं डरपता मति सपना है जाय ॥
—कबीर

कि विधवा, शकुनिका, दासी भिक्षुणी आदि स्त्रियाँ इष्ट स्थान मे, न केवल सुगमता पूर्वक प्रवेश पा जाती हैं अपितु विश्वास प्राप्त करने म भी सफल सिद्ध होती हैं। इस काय के लिए विशेष गुण अपेक्षित है।[1] किन्तु इन गुणवती दूतियों स नायिकाओं को सावधान रहन की आवश्यकता होती है। कभी कभी ये ही प्रिय समागम प्राप्त कर जाती हैं।[2] इन स्त्रियो क लिए मात्र कतिपय गुण धारण करना ही आवश्यक नही अपितु उन्हें काय भी करन होत हैं। रहीम न मण्डन, शिक्षा, उपालम्भ तथा परिहास नाम से चार सखि कम गिनाये हैं। ये काय रसमजरी के आधार पर हैं। रहीम ने, सस्कृत आचार्यों की भाँति विस्तार स दूति वणन नही किया। उन्होने तो सक्षेपत चारो काय चार बरवों म गिना कर दूति कम का समाप्त कर दिया है। किन्तु सक्षिप्तता ने सौन्दय को आघात नही पहुँचाया। परिहास का स्वाभाविक सुदर सरस तथा हृदयहारी चित्रण प्रस्तुत करने वाला 'नायिका भेद' का अन्तिम बरवै इस प्रकार है—

विहँसत भउह चढाए धनुष मनोज।
लावत उर उपटनवाँ ऐंठि उरोज॥ ११६—पृ० ६२॥

अन्तिम शब्दो के साथ काव्य रसिको के हृदय भी यदि इठ जाँय तो कोई आश्चय नही। वैसे रहीम का यह बरव बहुत ही भास्वर शब्द चित्र प्रस्तुत करता है। स्पष्ट है कि रहीम के ये प्रसग सक्षिप्त होते हुए भी प्रभावशाली हैं। अपने वणना म रसमजरी एव काव्यप्रकाशादि सस्कृत ग्रन्थो का अवलम्ब लेत हुए भी रहीम ने

---

१ पटुता धाष्टर्यमिङ्गिताकारता प्रतारण कालज्ञता।
विषह्य बुद्धित्व लघ्वी प्रति पत्ति सोपाया चेति दूत गुणा॥
—कामसूत्र १ ५

२ (क) मैं पठई जेहि कजवा, आइसि साधि।
छूटि गो सीस जुरवना, दिठि करि बाँधि॥
(ख) मोहित हरबर आवत भो पथ खेद।
रहि रहि लेत उँससवा औ तन स्वेद॥ ३५॥
प्रिय समागम प्राप्त छली दूतिका के लौटने की दशा के चित्रण म 'शिव कवि' न रहीम क इन्ही भावो को उतार दिया है—
कटक तें अटकि अटकि सब आप ही तें
फटिगे बसन तिन्हें नीके क बनाइ ल।
बनी के विचित्र बार हारन मे आय आय
अरुझे अनोखे ते तौ बैठि सुरझाइ ल।
कहै शिव कवि दवि काहे का रही हैं बाम!
घाम तें पसीनो बह्यो ताकों सियराइ ल।
बात कहिबे कि नन्दलाल की उताल कहा,
हाल तो हरिन नैनी हफनि मिटाइ ल॥

मौलिकता का पर्याप्त परिचय दिया है किंतु यह तो ग्रन्थ का अन्तिम भाग है। प्रारम्भिक भाग है नायिका भेद। यह एक विस्तृत प्रसंग है। अत इस परिचयात्मक लेख में पूरे नायिका भेद का परिचय नहीं दिया जा सकता। यहाँ केवल इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि रहीम के नायिका-भेद के आधार क्या हैं ?

रहीमकृत नायिका भेद के आधार

१ सामाजिक सम्बन्ध तथा विवाहादि।
२ दशा तथा स्थिति।
३ वय तथा परिस्थितियाँ।
४ स्वभाव तथा गुण।

प्रथम—सामाजिक सम्बन्धो के आधार पर तीन भेद[१]—

१ स्वकीया (तीन भेद)	(क) मुग्धा	अज्ञात यौवना ज्ञात यौवना, नवोढा तथा विश्रब्ध नवोढा
	(ख) मध्या	(कोई भेद नहीं)
	(ग) प्रौढा	(कोई भेद नहीं)

---

१ यहाँ रसमंजरीकार भानुदत्त के नायिका भेद पर संक्षिप्ततः दृष्टि डालना अनुचित न होगा।

(क) त्रिविध नायिकाएँ—(क) स्वकीया (ख) परकीया (ग) सामान्या।

(अ) स्वकीया—मुग्धा अङ्कुरित यौवना (ज्ञात एवं अज्ञात यौवना २ भेद) नवोढा तथा विश्रब्ध नवोढा।
मध्या—
प्रगल्भा—रतिप्रीता एवं आनन्दातिसम्मोहा (मुग्धा एवं मध्या के धीरा, अधीरादि के आधार पर तीन तीन भेद हैं और ज्येष्ठा एवं कनिष्ठा के पुन धीरा, अधीरा के आधार पर तीन-तीन भेद हैं।)

(ब) परकीया—कन्यका (कोई उपभेद नहीं) परोढा—गुप्तादि छः भेद जो रहीम ने भी अपनाए हैं।

(स) सामान्या—(कोई भेद नहीं)

(ख) दशानुसार तीन भेद—(क) अन्य सम्भोग दुःखिता, (ख) वक्रोक्ति गर्विता—प्रेम गर्विता एवं सौन्दर्य गर्विता। (ग) मानवती—लघुमान मध्यमान गुरुमान।

(ग) अष्टदशाएँ प्रत्येक के ५ भेद—मुग्धा, मध्या प्रगल्भा, परकीया एवं सामान्या। परकीया के तीन भेद—ज्यो० दिवा० तथा तमो०। रहीम ने इन्हीं में प्रवत्स्यत्पतिका व आगत्पतिका जोडकर १० भेद किए हैं।

(घ) सत्त्वानुसार—दिव्य, अदिव्य तथा दिव्यादिव्य—तीन भेद।

(ङ) स्वभावानुसार—उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा—तीन भेद।

२ परकीया (क) अनूढा (अविवाहिता)
(ख) ऊढा (विवाहिता)—भूत सुरतिगुप्ता, भविष्य सुरतिगुप्ता, विदग्धा—क्रिया एवं वचन विदग्धा—अनुशयाना—प्रथम अनु० द्वि० अनु० तथा तृतीय अनु०, मुदिता और कुलटा ॥

३ सामान्या (गणिका)

द्वितीय—दशा तथा स्थिति—

१ अन्य सम्भोग दुखिता
२ प्रेम गर्विता
३ रूप गर्विता

तृतीय—वय तथा परिस्थिति के अनुसार

(दस नायिकाएँ तथा प्रत्येक के पांच पांच भेद)

१ प्रोषितपतिका मुग्धा, मध्या प्रौढा परकीया एवं सामान्या, पांच भेद
२ खण्डिता वही पांच भेद
३ कलहान्तरिता वही पांच भेद
४ विप्रलब्धा वही पांच भेद
५ उत्कण्ठिता वही पांच भेद
६ वासकसज्जा वही पांच भेद
७ स्वाधीन पतिका वही पांच भेद
८ अभिसारिका वही पांच भेद तथा शुक्ला एवं दिवाभिसारिका दो और प्रभेद।
९ प्रवत्स्यत्प्रेयसी वही पांच भेद
१० आगतपतिका वही पांच भेद

चतुर्थ—गुण तथा स्वभावानुसार

१ उत्तमा
२ मध्यमा
३ अधमा

नायिका भेद की इस श्रेणी पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है रहीम का विभाजन अन्य पूर्ववर्ती एवं परवर्ती आचार्यों की भांति संश्लिष्ट न होकर सब सुलभ एवं सरल है। इतना ही नहीं, नायिकाओं के जो उदाहरण रहीम ने दिए हैं वे बहुत ही सरस तथा अकृत्रिम हैं। और बहुत दूर तक कवि उनका अनुसरण करते

रहे हैं।[1] मतिराम ने तो अपने ग्रन्थ में रहीम के उदाहरण ही लिए हैं। कारण यह है कि रहीम के बरवै बहुत ही सटीक हैं। इनमें संयोग एवं वियोग दोनों ही प्रकार की रस सरिता प्रवाहित है। निम्नलिखित बरवै हमारे कथन को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं—

संयोग शृंगार

लखि सुघर सुघरिया, पिय के साथ।
छपए एक छतरिया बरसत पाथ॥ ९८—पृ० ५८
खेलत जानेसि टोलिया नंद किसोर।
छुइ वृषभानु कुंवरिया ... चोर॥१०८—पृ० ६१

---

१ आपुहि देत जवरवा गूंदत हार।
चुनि पहिराय चुनरिया प्रान अधार। ३६—पृ०४८
आरन पाय जवरवा नाइन दीन।
मुन्हें थंगोरत गोरिया ... बीन। ३७ पृ० ४८
प्रेम गर्विता के इस उदाहरण का अनुसरण देव दास सेनापति तथा बेनी प्रवीन आदि कवियों ने भी किया है। देखिए—
(क) मालिनि ह्वै हरिमाल गुहै चितवै मुख फेरि भयो चितचाइनि।
पान खवाय तमोलिनि ह्वै कै सुवासिन ह्वै सिरके सुख साइन॥
यही है 'देव' दिखाई कै दपण, जाकर देत भयो अब नाइन।
प्रेम पगो पिय पीत पिछौरी सों प्यारी के पौंछि पखारी ते पाइन॥
(ख) माँग सवारत काँधइ ल... कच भार भिजावत प्रेम समेत हौ।
रास उठावत कुंकुम लेइक, बास मिलाइ मनो लिखै रेत हौ।
बीरी खवावत अंजन देत बनावत आइ कैंपो बिन हेत हौ।
या सुधराई भरीसे कयो दौरिकै छोरि सलोन को काजर लेत हौ॥
(ग) फूलन सों बाल की बनाय गुही बेनीलाल,
भाल दई बदी मगमद की असति है।
भाँति भाँति भूषन बनाए ब्रज भूषन
सुबीरो निज कर सो खवाई करि हित है॥
ह्वै कै रस बस जब दीव को महावर के
सेनापति लाल गह्यो चरन ललित है।
चूमि हाथ नाह कै लगाइ रहीं आंखिन सों
एहो प्राननाथ ! यह अति अनुचित है॥
(घ) मालिन ह्वै हरवा गुहि देत चुरी पहिराय बन चुरिहेरी।
नाइन ह्वै कै निखारत केस हमेस कर बनि जोगिनि केरी॥
बेनीप्रवीन बनाइ बिरी बरन दने रहे राधिका केरी।
नन्दकिसोर सदा वृषभानु की, पौरि पै ठाढ़े बिके बने चेरी॥

पौढ़हु पीय पलँगिया मीड़हु पाय।
रैन जगे कर निंदिया, सब मिटि जाय ॥४९—पृ० ५०
जेंघन जोरत गोरिया, करत कठोर।
छुवन न पावे पियवा, कहूँ कुच कोर ॥१० —पृ० ४२

वियोग शृंगार

का सन कहउँ सँदेसवा, पिय परदेसु।
रातुल ह्वै नहिं फूले, यहि बिन देसु ॥४२—पृ० ४६
पिय पथ हेरत गोरिया, भौ भिनुसार।
चलहु न करहिं तिरिअवा, तुव इतवार ॥६३—पृ० ५२
उठ उठ जात खिरकिया, जोहत बाट।
कत वह आइहि मितवा सूनो खाट ॥६४—पृ० ५२
करबेउ ऊच अटरिया, तिय सग केलि।
कबधौं पहिरि गजरवा, हार चमेलि ॥१०८—पृ० ३०

बरवै नायिका भेद के सभी पहलुओं पर साँगोपाँग विवेचन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साहित्यिक शास्त्रीय तथा सामाजिक दृष्टियों से यह रचना अत्यन्त प्रौढ़ एवं उपयोगी है। साहित्य के अन्तर्गत भाव, भाषा एवं शैली का जितना महत्त्व है, उतना सिद्धान्त निरूपण अथवा विचार प्रतिपादन का नहीं। भावों की दृष्टि से यह रचना निस्सन्देह अत्यन्त सरस है। संयोग, वियोग मान, पूर्वराग प्रवास तथा आकुलता इत्यादि मनोदशा की बहुत ही सुन्दर अभिव्यंजना नायिका भेद के बरवों में है। रहीम बरवै छन्द के साहित्यिक जनक हैं। इस छन्द की सबसे बड़ी विशेषता है लघु आकार। इतने छोटे छन्द में भावों का जिस सफलता से भरा गया है वह अत्यन्त दुर्लभ है। यदि बिहारी ने गागर में सागर को भर दिया है तो रहीम उससे पहले ही महासागर को गागर में भर चुके थे। यदि दोहा गागर है तो उससे कहाँ छोटा बरवै तो गगासागर[1]। अतः यह कथन कोई अत्युक्ति नहीं कि रहीम ने महासागर को गगासागर में भर दिया है।

लम्बे लम्बे भावों को बरवै की छोटी सी पिटारी में सजा देना रहीम का एक बहुत बड़ा कौतुक है। इस कौतुक का रहस्य है उनकी भाषा। भाषा के क्षेत्र में भी एक बहुत बड़े कमाल की बात यह है कि वे सदैव असमस्त शब्दावली का प्रयोग करते हैं। और फिर भी अर्थ खोलने पर भाव का तार निकलता ही चला जाता है। बरवै नायिका भेद की भाषा इस दृष्टि से अत्यन्त सराहनीय है। उसमें न केवल संयोग वियोग के वर्णन करने की शक्ति है अपितु वह स्थिर तथा गतिमान करुण तथा प्रसन्न सभी प्रकार के चित्रों को आँचने में सफल है। कहीं कहीं तो रहीम ने ऐसे भाव भरे शब्द चित्र बरवै की छोटी सीमा में भर दिए हैं कि आज का कैमरा भी

१ टूटीदार बड़ा लोटा जिससे पँगता के समय जल परोसा जाता है।

उनस बाजी नहीं स सकता। सिर झुकाकर नीचे की ओर ताकती हुई, पर की छिगुनी से धरती कुरेदती मग्धा खडिता व सिसकियां और करुणा भरे रूप का अत्य त सरल शिष्ट और सालकार शब्दों द्वारा केवल एक बरव म उतार देने का काय रहीम जसे रस सिद्ध एव कवि कम कुशल शब्द शिल्पी ही कर सकते हैं—

सीस नवाइ नवेलिया निचवा जोइ।
छिति खनि छोर छिगुनियाँ सुसुकनि रोई॥ ४०—पृ० ५०

ऐसा ही एक अ य दारुण चित्र प्रस्तुत है—

भाँकि भरोखे गोरिया अखियन जोरि।
फिर चितवति चित मतवा करत निहोरि॥ १०३ – पृ० ६०

नायक-नायिका भेद जसे विस्तृत एव शास्त्रीय विषय का सभी जन तथा दूती कम सहित केवल ११३ बरवो म सजो देने का जो कठिन तथा अवधी क लिए सवथा नवीन काय रहीम न सम्पन्न किया वह उनकी योग्यता और लाघव का ज्वलन्त प्रमाण है। इससे उनके सस्कृत प्रम, साहित्य शास्त्रीय अध्ययन का भी ज्ञान हो जाता है। मुसलमान होकर भी काव्य शास्त्रीय अगो का इतना सुरुचि पूर्ण अध्ययन और निजी चिन्तन के योग के साथ उसका सुरुचिपूर्ण पुनराख्यान एक ऐसा काय है जिसके लिए कोई भी काव्यानुरागी रहीम की प्रतिभा के समक्ष सिर झुकाए बिना नहीं रह सकता। उनके व्यस्त जीवन इस्लाम धम और विषय के अछूतेपन का देखते हुए यह काय और भी सराहनीय है। नायिका भेद के बरवों के शिष्ट भाव एव प्राजल रूप को देखकर नगर शोभा के लेखक की शृ गार चेतना का विकास भी स्पष्ट हो जाता है। इस कृति म हमे शृ गार ही नहीं शृगार से ऊपर कुछ और भी दृष्टि-गोचर होता है—

यदि हम इस कृति के सामाजिक सदेश की ओर ध्यान दे तो देखेंगे कि रहीम को जहा भी अवसर मिला है वे शास्त्रीय लक्षणों की सीमा और शृ गार की सरसता को अक्षुण्ण रखते हुए भी एक स्वस्थ सँदेश दे जाते हैं। सामान्या अथवा वेश्या के वर्णन मे तो यह स्वर और भी स्पष्ट सुनाई पडता है। वेश्या चाहे कितनी भी रूप यौवन सम्पन्ना क्यो न हो अन्ततोगत्वा वह वेश्या ही है। उसका प्रम पैसे तक सीमित रहता है। यही कारण है कि प्रत्यन प्रकार की सामान्या क प्रत्येक उदाहरण मे वे किसी न किसी प्रकार वेश्या क मुख से धन मणिमाल और मौक्तिक हारो को झपटने की इच्छा व्यक्त कराकर प्रत्येक रसिक को सामान्या के कृत्रिम प्रेम की ओर सावधान कर देना चाहते हैं। काम कदम मे फस युवको के लिए रहीम का वह शाश्वत सदेश अत्य त उपयोगी है। अत बरवै नायिका भेद की उपादेयता मात्र शृ गार तक ही सीमित नहीं। उदाहरणार्थ केवल दो बरव पयाप्त होगे—

सामान्या उत्कठिता—

कठिन नीद मिनुसखा आलस पाइ।
धन द मुरख मितवा रहल लोभाइ। ६५—पृ० ५३

सामान्या अभिसारिका—

> धन हित कीन्ह सिंगरवा चातुर बाल।
> चली सग ले चेरिया, जहँवा लाल॥ ८२—पृ० ५५

स्पष्ट है कि यह कृति सयोग वियोग के मादक किन्तु परिष्कृत और मर्यादित चित्र प्रस्तुत करती हुई ऐसा लोकोपयोगी सदेश भी प्रदान करती है जो एतद् विषयक ग्रन्थ ग्रन्थो मे सामान्यत उपलब्ध नही। वैसे तो इस कृति का आधार सस्कृत काव्य शास्त्र और उसम भी विशेषत भानुदत्त एव विश्वनाथ के लोक प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। किन्तु यह भी निश्चित है कि रहीम न उन आचार्यों का ग्रन्थानुकरण नही किया। अनेक स्थलो पर हम उनकी मौलिकता एव स्वतन्त्र चिन्तन का परिचय प्राप्त हो जाता है। हिन्दी आचार्यों के प्रभाव से तो सर्वथा अछूते हैं ही, क्योकि हिन्दी म उस समय तक नायिका भेद पर ग्रन्थ थे ही नही। कृपाराम की 'हित तरगिणी' एव सूरदास की साहित्य-लहरी का नायिका भेद की आरम्भिक कृतियाँ मानने वालो की सख्या आज दिन प्रतिदिन घटती जा रही है। विद्वानो ने इन कृतियो की भाषा एव काल निर्णय पर इस प्रकार के प्रश्नचिह्न अकित किए हैं[1] जिनके कारण हम इन्ह परवर्ती कृतियाँ मानने के लिए बाध्य हैं। यहा यह उल्लेख करना अप्रासगिक न होगा कि कतिपय विद्वान बरवै नायिका भेद को ही हिन्दी की प्रथम कृति स्वीकार करत हैं। उनकी दृष्टि म यह रचना नन्ददास की रसमजरी से भी पहली है।[2] किन्तु हमारे विचार स अष्टछापी नन्ददास कृत रसमजरी का स्थान हिन्दी नायिका भेद विषयक स्वतन्त्र कृति के रूप मे प्रथम और रहीम के बरवै नायिका भेद का स्थान द्वितीय है, केशव के ग्रन्थो का स्थान कालक्रमानुसार ततीय है।

साहित्य जगत म यह प्रसिद्धि सर्वत्र व्याप्त है कि तुलसीदास जी को बरवै रामायण लिखने की प्रेरणा रहीम से मिली थी। इसका आधार बाबा वेणीमाधव दास की ये पक्तियाँ हैं—

> कवि रहीम बरवै रचे पठये मुनिवर पास।
> लखि तेहि सुन्दर छद मे रचना कियेउ प्रकास॥

इतना ही नहीं वेणी माधव जी ने बरवै रामायण का रचना काल स० १६६९ दिया है। इसी आधार पर डॉ० श्यामसुन्दर दास,[3] डा० रामकुमार वर्मा[4]

---

१ हिन्दी साहित्य—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी प० १७०

२ देखें राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी की 'रीति कविता एव शृगार विवेचन
तथा प० २३९ २४०
डा० रामधारीसिंह दिनकर की सस्कृति के चार अध्याय' प० ३५९

३ गोस्वामी तुलसीदास पृ० १००

४ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० ३७६

तथा डा० रामदत्त भारद्वाज¹ ने भी इस कृति का सं० १६६६ का ही रचनाकाल स्वीकार कर लिया है। किन्तु उस समय रहीम लगभग ५३ वर्ष के थे अर्थात् रहीम बरवै की रचना इसके पूर्व कर चुके थे। दूसरी ओर शम्भुनारायण चौबे बरवै रामायण को सं० १६६९ की रचना स्वीकार करते हैं² जब रहीम लगभग छप्पन वर्ष के रहे होंगे। उधर डा० माताप्रसाद गुप्त इसे तुलसी के जीवनान्तराल की एक संकलित कृति बतलाते हैं।³ अतः बरवै रामायण के आधार पर नायिका भेद का समय निश्चित करना अनिश्चितता के अतिरिक्त और कुछ नहीं। हमारे विचार से तुलसीदास जैसे महान सन्त के द्वारा नायिका भेद जैसे शृंगारिक बरवै का सृजन की अपेक्षा, रहीम जैसे रसिकप्रकृति के व्यक्ति से कभी न कभी की होगी। उन्होंने भक्ति विषयक भी कुछ उत्कृष्ट बरवै रचे थे, जो मानस के प्रारम्भिक प्रसंगों से प्रभावित हैं। रहीम ने उन्हीं भावों को गोस्वामी जी के पास भेजा होगा जिससे वे रहीम के प्रिय छन्द का भी उपयोग कर लें। अतः बरवै नायिका भेद के काल निर्णय में रहीम और तुलसी के बीच बरवै के आदान प्रदान को बहुत अधिक महत्व नहीं देना चाहिए। हम उनकी जीवनी के आधार पर ही नायिका भेद का निर्माण काल निश्चय कर सकते हैं।

रहीम ने गुजरात की सूबेदारी के पश्चात पाँच तीन वर्ष का समय दरबार में बिताया था। तीस बत्तीस वर्ष का भरा पूरा परिपक्व यौवन, दरबार का कलात्मक एवं शृंगार प्रधान वातावरण किसी भी कवि को शास्त्रीय शृंगारिक रचना की प्रेरणा दे सकते हैं। अतः हमारा अनुमान है कि इसी समय में और १५८८ ई० में बरवै नायिका भेद का निर्माण हुआ होगा। हाँ, इतना अवश्य है कि भाषा तथा छन्द की परिपक्वता को देखते हुए हम यह भी कहने का साहस कर सकते हैं कि रहीम ने इससे पूर्व भी अवधी भाषा में कुछ न कुछ अवश्य लिखा होगा अन्यथा एकदम भाषा पर इतना अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। दुर्भाग्य यह है कि रहीम का पूरा काव्य प्राप्त नहीं है।

फुटकर बरवै

नायिका भेद के बरवों के अतिरिक्त रहीम द्वारा रचित कुछ अन्य बरवै भी प्रसिद्ध हैं। एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक के आधार पर पं० याज्ञिक ने इस प्रकार के १०५ बरवों का सम्पादन रहीम रत्नावली में किया है।⁴ इन बरवों में १०१ बरवै तो एक प्राचीन प्रति के अनुसार है और शेष चार अन्य पुस्तकों से संकलित। बाद में

१ गोस्वामी तुलसीदास — पृ० ३०२
तुलसी के चार दल — पृ० १०२
तुलसीदास—पृ० २५५ २५६
रहीम रत्नावली, पृ० ६३ से ७२

और भी कुछ बरवै मिले हैं।[1] वास्तव में इनकी संख्या कितनी थी, नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कोई बरवा ग्रन्थ सूचक प्राप्त नहीं हुआ। हाँ, प्रारम्भ सूचक बरवै अवश्य हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि इनका प्रणयन नवीन कृति के रूप में किया गया था। कारण यह है कि प्रारम्भिक छः बरवै मंगलाचरण सूचक हैं। इन्हें पढ़ते ही प्रातः स्मरणीय गोस्वामी तुलसीदास जी के मानस की प्रारम्भिक पंक्तियाँ सहसा याद आ जाती हैं। प्रथम बरवै में 'विघन विनासन' तथा 'निमल बुद्धि प्रकासन' गणेश जी की वन्दना है। तदनन्तर चार बरवों में क्रमशः 'नन्दकुमार', 'सूरजदेव', 'गिरिजानन्द' तथा 'मंगल आनन्द कन्द कारन, प्रिय रघुवीर' का ध्यान किया गया है। मंगलाचरण के अन्तिम अर्थात छठे बरवै में गुरु वन्दना है—

पुनि पुनि बन्दहु गुरु के पद जलजात।
जिहि प्रताप तें मन के तिमिर बिलात॥ ६—पृ० ६३

सप्तम बरवै में, उमड़ घुमड़ कर आती हुई घन घोर घटाओं से उल्लसित मोर के शोर तथा उदीयमान तृणांकुरों के विकास का वर्णन करती हुई विरहिणी 'नन्द किशोर' का स्मरण करती है। आठवें बरवै में चहुँ ओर मूसलाधार बरसते मेघों के बीच में नन्दकुमार के उस आश्वासन का स्मरण करती है जो उन्होंने सावन में आवन के लिए दिया था। नवें बरवै में विरह जनित आशंका व्यक्त करते हुए वह, सखि से कहती है कि कहीं उसके प्रियतम को किसी अन्य बामा ने अपने बस में तो नहीं कर लिया। यह आशंका आते ही उसकी आकुलता अत्यधिक बढ़ने लगती है। एकादश बरवै में तो मानों विरह की करुणा सरिता ही फूट पड़ी है। शठ चातक का अहर्निश पीव पीव उसके हृदय में उत्पात मचाने लगता है। चमकती बिजली में उनकी अन्यान्य समवयस्काएँ अपने अपने प्रियतमों के साथ झूले का उत्सव मना रही हैं। ऐसे समय में उगते हुए नवांकुर यदि उसके हृदय में मदन महीप के तीर के समान घँस जाए तो आश्चर्य ही क्या?

उलहे नव अंकुरवा बिन बलवीर।
मानहु मदन महीप के, बिन पर तीर॥ १९—पृ० ६४

इस प्रकार यह विरह वर्णन, प्रायः निरन्तर रूप से इक्तीसवें बरवै तक चलता है। उसके पश्चात भक्ति के एक झीने पुट के साथ बरवै 'पसरहट्टे' की दुकान बन जाते हैं। ऋतु वर्णन, भ्रमर गीत, ज्ञान भक्ति, वैराग्य तथा धर्मोपदेश इत्यादि अनेक विषयों के कलात्मक नमूने उपस्थित मिलते हैं। यहाँ तक कि फारसी के बरवै भी बीच बीच में हैं—

मीं गुजरद ई दिलरा, बे दिलदार।
इक इक साअत हमचू, साल हजार॥ ८६—पृ० ७०

---

१ डा० समरबहादुर सिंह के संकलन में बरवों की संख्या १०९ है।
देखिए अब्दुर्रहीम खानखाना पृ० ३६४—

गम अज मैं गुद आलम पर हजार ।
ये दिलदार व गौरव बिसम करार ॥ ६४—पृ० ७०

दिलबर जद बर जिगरम तीर निगाह ।
तपीदा जां मी आयद हरदम आह् ॥ ६५—पृ० ७१

व गोयम मह यासम पेश निगार ।
तनहा नजर न आयद दिल लाचार ॥ ६६—पृ० ७१

कहने की आवश्यकता नहीं कि फारसी के बरवों में प्रेम की पीर का ही गायन है। यही इन बरवों का प्रधान विषय है। डा० रामचन्द्र तिवारी बरवों का विषय रास लीला मानते हैं।[1] रास लीला हो न हो किन्तु विरह लीला तो निर्विवाद ही है। हैं संयोग के चित्र भी किन्तु बहुत कम जितने हैं उतने मत न मादक एवं स्वाभाविक।

जब तब मोहन झूठी सौहैं खात ।
इन बातन ही प्यारे चतुर कहात ॥ ८८—पृ० ६७

पथिक आय पनघटवा कहत पियाव ।
पैया परों ननदिया फेरि कहाव ॥ १०२—पृ० ७१

गली अंधेरी मिलकर, रहि चुप चाप ।
बरजोरी मन मोहन करत मिलाप ॥ ७४—पृ० ६९

अंतिम बरवे में निरा चतुर नायक की बरजोरी का वर्णन अपने में एक ही है। ऐसे नायक की विरहिणी यदि अन्य बरवों में सौ सौ आंसू रोती है तो आश्चर्य ही क्या ? उसे तीनों मारुत तलवार जैसे लगते हैं। मारुत के साथ ही जब रिमझिम झड़ी लगी हो और घर घर में मदन हिलोर आई हुई हो तो उसके पिया का कर उसके कर में न होना करम की खोट नहीं तो और क्या है—

या झर मे घर घर मे मदन हिलोर ।
पिय नहि अपने कर मे करमे खोर ॥ १०३—पृ० ७१

कहने की आवश्यकता नहीं कि यहां 'करम' के यमक ने बरवे के आकर्षण में चार चांद लगा दिए हैं। ऐसी ही मदन हिलोर होली के हिल्लोल में उठती है। युवती के लिए विरह का यह अवसर अत्यन्त कष्टकर है और वह भी तब जबकि अन्य सखियां प्राण प्यारों के साथ फाग क्रीडा के हास विलास में मस्त हों। ऐसी अवस्था में भी जिस अभागिन को प्रिय आगमन की प्रतीक्षा में काग ही उड़ाने पड़ें, उस की हृदयगत पीड़ा का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता—

लोग लुगाई हिल मिल खेलत फाग ।
परयो उड़ावन मो को सब दिन काग ॥ ९७—पृ० ७१

---

१ हिन्दी साहित्य कोश (भाग २), स० डा० धीरेन्द्र वर्मा पृ० ४५५

में रहीम रचित शृंगार सोरठे का उल्लेख किया है। किन्तु दुर्भाग्य से अभी तक यह रचना प्राप्त नहीं हो सकी। स्वर्गीय याज्ञिक जी ने छः सोरठे रहीम रत्नावली में दिये थे। यही छः सोरठे रत्नावली के बीस वर्ष पश्चात की कृति 'रहिमन विलास' में प्रकाशित हैं।[1] इसलिए पुनरावृत्ति पाप से उन्हीं की परख पर सन्तोष करना पड़ रहा है। प्रथम सोरठा है—

गई आगि उर लाय आगि लेन आई जो तिय।
लागी नाहिं बुझाय भभकि भभकि बरि बरि उठै॥ १—पृ० ८०

यह सोरठा रहीम के रसिक हृदय, सूक्ष्म परिचय ज्ञान तथा भाषा के अलंकार की दुहाई देता है। ग्राम वधुएँ एक दूसरे के घर चूल्हा सुलगाने के लिए आग माँगने आया करती हैं। रहीम ने किसी ऐसी ही युवती को आग माँगते देखा होगा। आग लेते हुए उसके मन में भी आग लग गई। फिर तो भभक भभक कर काम ज्वाला की लपट उठना स्वाभाविक था। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस तरह से प्रज्वलित इस आग का बुझना सरल नहीं होगा। भभकि भभकि तथा बरि बरि इत्यादि शब्दों का पुनरुक्तिमय प्रयोग लपट आभा के शोभा को स्पष्ट करा देता है। अतः लेखक के एक स्थान में किसी प्रकार के सन्देह की गुंजाइश नहीं। वही असमस्त सरल शब्दावली वही जन सुलभ भाव। आग लेने जाने जैसी सामान्य घटना पर भी कविता हो सकती है यह सोरठे से सिद्ध है। ठीक ऐसा ही दूसरा चित्र देखिए —

दीपक हिए छिपाय नवल वधू घर लै चली।
कर विहीन पछिताय कुच लखि निज सीसै धुनै। २—पृ० ८०

जिस प्रकार युवतियाँ एक दूसरे के घर आग माँगने चली जाती हैं उसीप्रकार पड़ोसी के घर दीपक जलाने चले जाना तथा जलाने के पश्चात बुझने के भय से साड़ी के आँचल से ढक लेना बहुत ही सामान्य क्रिया है जो प्रायः प्रत्येक गाँव में सायंकाल को देखी जा सकती है। ऐसी सामान्य ग्राम्य घटना पर इतनी ऊँची कल्पना शृंगार भाव का ऐसा विस्फोट रहीम की प्रतिभा पर आश्चर्य होता है। सोरठे की पहली पंक्ति में यही है। दूसरी पंक्ति का भाव दीपक पर आँचल ढकने के बाद की क्रिया से सम्बद्ध है। आँचल हवा से लाख बचाने पर भी चलते समय दीपक की लौ हिलती है। रहीम के लिए यह दीपक की लौ का हिलना, मात्र प्रकम्पित होना नहीं सिर धुन धुन कर पछताना है। कारण घने वस्त्रों से सदैव आच्छादित रहते हुए भी अपनी उत्तुंगता और पीनता प्रदर्शित करते रहने वाले, नवल वधू के उरोज आज उसके नितान्त समीप हैं। किन्तु कर विहीनता—हाथ न होने के कारण दीपक कुच मर्दन कर भी तो किस प्रकार। यही है कर विहीन दीपक की पीड़ा। दीपक इसीलिए पछता रहा है और इसीलिए धुन रहा है अपना सिर। यहाँ रहीम की कल्पना कैसी रोमांटिक है कितनी अछूती और सरस।

---

१ रहिमन विलास—बाबू ब्रजरत्नदास (१६४८, इलाहाबाद) पृ० ६५

दीपक को ग्राचल म छिपा कर ले जाने का उल्लेख तो कवि ग्राज भी करत हैं¹ पर रहीम की सी नासल कल्पना किसी ने नही की। इतना सश्लिष्ट चित्र भी कोइ नही उतार पाया। कहते हैं कि एक बार कवि गग ने इसी भाव का प्रयोग करके दरबार म एक समस्या पूर्ति की थी। समस्या थी 'हालत पानी —

एक समय जल ग्रानन को घर-सो निक्ली ग्रबला व्रजरानी।
जात सकोल म डोल मरो जल खेंचत मे ग्रंगिया मसकानी॥
देखि सभा छतिया उघडो, कवि 'गग कहे मनसा ललचानी।
हाथ बिना पछितात रह्यो इहि कारन डोल मे हालत पानी॥²

स्पष्ट ह कि रहीम की सी सक्षिप्तता आकुलता ग्रौर नवलता इतने बडे छन्द म भी नही है। स्वाभाविकता भी उतनी नही है। क्योकि डाल हाथ म लटकना है जिसकी स्थिति जघाग्रा क पास हाती है उसकी ग्रपेक्षा ता पनिहारी के बगल का घडा व ा प्रदश के ग्रधिक समीप हाता है। ग्राँचल के दीपक का नकट्य ता बात ही कुछ ग्रौर है। दीपक पर ही एक सोरठा ग्रौर लीजिए—

पलटि चली मुसकाय दुति रहीम उपजाय ग्रति।
बाती सी उकसाय मानो दीनी दीप की॥ ४—पृ० ८०

यहा मध्या ग्रागतपतिका का प्रवास की लम्बी ग्रवधि क पश्चात प्रिय का पाना देखना पलटना मुस्काना इत्यादि ग्रनुभाव बडे ही मादक हैं। साथ ही मुस्काने इत्यादि के समय मुख कमल पर इस प्रकार की सौन्दय राशि फूट पडी माना म द-टिमटिमाते दीपक की बत्ती को सहमा उकसा दिया गया हो। यह भाव रहीम की स्वाभाविक सरसता सूक्ष्म परिवेक्षण तथा कमनीय कल्पना शक्ति का परिचायक है। वस्तुत इन सारठो म कल्पना विलास बहुत ही कमाल का है। ग्रंतिम ग्रथात छठा सारठा इस प्रकार है—

रहिमन पुतरी स्याम, मनहु जलज मधुकर लसै।
कैधौं शालिग्राम, रूपे के ग्ररघा धरै॥ ६—पृ० ८०

ग्राख के सफद परदे पर स्याम पुतली के चमकन की कितनी सालकार कल्पना है। यहा काल मधुकर का कमल म बसना जहा प्रकृति प्रेम एव शृगार दीपन का द्योतक है वहीं चाँदी की ग्राधार पिण्डी म स्थित शालिग्राम की चिकनी चमकदार काला बटिया की कल्पना रहीम हृदय की वैष्णवी भावना भी व्यक्त करता है।

---

१ शशि मुख पर घूघट डाले।
ग्राचल मे दीप छिपाये॥
जीवन की गोधूली मे
प्रिय कौतूहल से ग्राये॥ ग्रासू

२ रहीम रत्नावली पृ० ५६ पर उद्धृत।

कल्पना की कमनीयता, कवित्व की सरसता, नारी की सुकुमारता तथा भाषा की सानुप्रास सरलता इन सोरठों में है। चाहे वृन्द, मतिराम और बिहारी के दोहों के साथ रखिए और चाहे सूर तुलसी के पदों के साथ, उन्नीस नहीं उतरेंगे, इक्कीस ही रहेंगे। दुर्भाग्य यह कि यह अनूठी काव्य कृति प्राप्त नहीं है। यदि रहीम का पूरा काव्य प्राप्त हो जाता तो सूर, तुलसी के बाद, बिहारी और मतिराम आदि के स्थान क्रम की कल्पना जगत किसी और प्रकार से करता।

सब से बड़ी बात यह है कि इन सरस सोरठों का लेखक युद्ध की विभीषिका में निरंतर व्यस्त रहने वाला एक सेनापति है। शृंगार के कुसुम सोरठे और सर्व रचने की यह कला रचना तथा विशाल युद्धों के सफल संचालन में सक्षम होना दो परस्पर भिन्न गुण हैं। वस्तुस्थिति यह है कि रहीम का समूचा व्यक्तित्व विपरीत गुणों के सुन्दर सामंजस्य का आदर्श है। आचार्य द्विवेदी का कथन है—

"जिस स्नेह दग्ध कवि (रहीम) का हृदय मानवीय रस से परिपूर्ण था और अनासक्त तथा अनाविल सौन्दर्य की दृष्टि से समृद्ध था। जीवन के अनन्त घात प्रतिघातों के भीतर से भी राजकीय षड्यन्त्रों के चक्कर में बराबर आते रहने के बाद भी और हर प्रकार के उतार चढ़ाव में उठते गिरते रहने के बाद भी जिस कवि के हृदय का मानवीय रस निःशेष नहीं हुआ उसके हृदय की अद्भुत सरसता का अनुमान सहज ही किया जा सकता है।"[1]

फुटकर छन्द

शृंगार सोरठ के समान ही थोड़ी संख्या में रहीम के कतिपय अन्य छन्द इतस्ततः प्राचीन संग्रहों में बिखरे हुए हैं। उस युग में पद, सवैये, घनाक्षरी तथा छप्पय इत्यादि लिखने का बहुत प्रचार था। रहीम भी मन की मौज में आकर छन्द रचना करते रहे होंगे। तुलसीदास जी को जिस प्रकार प्रत्येक छन्द में राममय करने की धुन थी उसी प्रकार रहीम भी प्रत्येक छन्द में नीति रचना करना चाहते थे। बरवै नायिका भेद के आरम्भ में कवि ने स्वयं लिखा है—

कवित्त कह्यो दोहा कह्यो तुलै न छप्पय छन्द।
बिरच्यो यही बिचार कै, यह बरवै रस कन्द॥[2]

स्पष्ट है कि नायिका भेद लिखने से पूर्व, रहीम नाना प्रकार के छन्दों में रचनाएं प्रस्तुत कर चुके थे। किन्तु नायिका भेद की रचना उन्होंने अपने प्रिय छन्द बरवै में ही की। वैसे इससे पूर्व नगर शोभा प्रसंग के भी कुछ और बरवै प्राप्त हैं।[3] उनमें शब्दों को दुरुस्त करके कहने की प्रवृत्ति स्पष्ट है। वातावरण निर्माण एवं सौन्दर्य निरूपण में उद्यान विशेष की नगर शोभा जैसी शब्दावली प्रयुक्त की गई है।

---

१ हिन्दी साहित्य आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी (सं० २००६) पृ० २०४
२ रहीम रत्नावली पृ० ४०
३ वही पृ० २१

भाषा शैली तो है ही रहीम की। अत वे बरवै भी रहीम के ही हैं। किन्तु स्तर की दृष्टि स नायिका भेद के बरवों के समकक्ष नही हैं। ये बरवै प्रारम्भ की उस स्थिति के जान पडते हैं जब बरव छद अपनी दुधमुही अवस्था मे था। और चूकि हम नगर शोभा को सन १५८० ८२ की रचना मान चुके हैं। अत बरवै छद का साहित्य म प्रवेश भी इसी समय क आस पास की घटना है। उधर नायिका भेद का समय हमने १५८८ ई० माना है। अत निश्चित है कि उस समय तक रहीम, घनाक्षरी, सवये, छप्पय इत्यादि सभी छदा म रचना कर चुके थे। बत्तीस वष के प्रतिभा सम्पन्न युवक के लिए यह कोई आश्चय की बात नही।

प्राप्त फुटकर छन्द भक्ति एव नीति विषयक तो हैं ही, शृगार विषयक भी हैं। सच पूछिए तो शृगार विषयक ही अधिक हैं। अति अनियारे और विष के विषारे, नन बाणा पर लिखी एक घनाक्षरी प्रस्तुत है—

अति अनियारे मानो सान दे सुधारे
महा विष क विषारे ये करत परतात हैं।
ऐसे अपराधी देख, अगम अगाधी यहै,
साधना जो साधी हरि हिय मे अ हात हैं।
बार बार बोरे या तें लाल लाल डोरे भये,
तोहू तो रहीम थोरे विधिना सकात हैं।
धाइक घनेरे दुख दाइक हैं मेरे नित,
नन बान तेरे उर बेधि बेधि जात हैं॥[1]

नेत्र बाणा से बिधे हृदय की अवस्था भी विचित्र होती है। मन जितना बिधता जाता है उतना ही और अधिक बिधने की कामना करता है। मन मोहक की निष्ठुरता जानते हुए भी उनसे दशन देने म न लजाने की प्राथना करते हुए सकोच नही होता। उसे ज्ञात है कि प्रिय के न आने की अवस्था म भी चित्त उन्ही के पास रहेगा—'चित लाग्यो जित जये तित ही रहीम निति' जैसा अमूल्य भाव भरा पतवा देन वाली दूसरी घनाक्षरी भी द्रष्टव्य है—

मोहिबो निछोहिबो सनेह मे तो नयो नाहि
भले ही निठुर भये काहे को लजाइये।
तन मन रावरे सो मता के मगन होतु
उर्धार गये ते कहा खोरि लाइये।
चित लाग्यो जित जये तित ही रहीम निति,
धाधवे के हित इत एक बार आइये।
जान हूरसी उर बसी है तिहारे उर
मे सो प्रीत बसी तऊ हँसी न कराइये॥[2]

१ रहीम रत्नावली पृ० ७५
२ वही, पृ० ७६

छन्द मे निवेदक की विवशता देखते ही बनती है। उस नात है कि प्रिय का स्नेह पात्र कोई और है। किन्तु मतवाला हृदय फिर भी उनसे दर्शन दने की प्रार्थना करता हुआ पुकार उठता है कि पायवे (जलाने) के हित ही सही, कि तु एक बार दर्शन तो दीजिए। इतने पर भी यदि प्रिय न पधारें तो निष्ठुरता की पराकाष्ठा ही समझनी चाहिए। भगवान जाने वह कौन सी अभागी घड़ी थी, जब ऐसे निष्ठुर चितचोर से भेंट हुई। सवैया द्रष्टव्य है—

पुतरी अतुरीन कहू मिलिकैं लगि लागि गयो कहु काहु करटो।
हिरद दहिव सहिव ही को है कहिव को कहा कसु है गहि फेंटो ॥
सूधे चित तन हा हा करें हू रहीम' इतो दुख जात क्यो मेटो।
ऐसे कठोर सों औ चित चोर सा कौन सी हाय घरी भय भेंटो ॥[१]

प्रिय कठोर हो या कोमल, उसकी भेंट सब्व सुखद होती है। प्रिय का पाना पुण्य-फल का उदय ही समझना चाहिए। एसी पुण्य वेला म मौन रहना भला किस को अच्छा लगेगा ? कि तु मौन रहना या न रहना अपने बस की बात नही। निगोडी लाज, होठ तो क्या आख भी नही खुलने देती और नेत्र भरकर चन्द्रानन का रस पान करने की साध, मन की मन मे ही रह जाती है। सवये म रहीम की भाव धारा इस प्रकार बही है—

सीखी है ऐसो रहीम कहा इन नन अनोखे यो नेह की नांघन।
ओट भये रहते न बने कहते न बने बिरहानल रायन ॥
पुन्यन प्यारे सो भेंट भइ ए प मौन कुसम मिल्यो अपरायन।
स्याम सुधानिधि आनन की भरिये सखि सूधे चितये की साधन ॥[२]

स्पष्ट है कि दोहो, सोरठो और बरवों का यह रचयिता सवये एव घनाक्षरी लिखने मे भी सिद्धहस्त था। जब तक और छन्द न मिल जाएँ तब तक यह नही कहा जा सकता कि रहीम ने उस युग के सुपरिचित छ द, चौपाई मे कुछ लिखा था या नही। भक्तमाल प्रसग के दो पद— छबि आवन मोहन लाल को' तथा कमल दल नैनन की उनमान के सरस भावो तथा रहीम के संस्कृत काव्य का उल्लेख व्यक्तित्व के प्रसग म हो चुका है। यहाँ भगवती जाह्नवी के प्रति अगाध श्रद्धा प्रदर्शित करने वाले एक अन्य श्लोक को उद्धृत करने का लोभ संवरण करना कठिन है—

अच्युतचरणतरङ्गिणी शशि शेखर मौलि मालती माले।
मम तनुवितरणसमये हरता देया न मे हरिता ॥[३]

अर्थात भगवान विष्णु के चरणो मे तरगायित तथा शशिशेखर देवाधिदेव शकर की जटाओ मे मालती माला के समान शोभायमान हे गगे ! मेरे उद्धार के समय मुझे

---

१ रहीम रत्नावली, पृ० ७८

२ वही पृ० ७८

३ वही, श्लोक संख्या, ७ पृ० ८४

(त्रिलोकाधिपति) विष्णु मत बनाना, (अकिंचन) शंकर ही बनाना जिससे मैं तुम्हें अपने सर पर धारण किए रहने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूं।

कितनी पुनीत भावना है, कैसी अगाध वैष्णवी श्रद्धा। उन्होंने इसी भाव को दोहे में भी निबद्ध किया है—

अच्युत चरण तरंगिनी शिव सिर मालति माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव भाल॥[1]

निष्कर्ष

रहीम की रचनाओं का अध्ययन कर लेने के पश्चात इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि रहीम उच्च प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। उन्होंने जिस व्यस्त जीवन तथा विरोधी कार्य व्यापार में संलग्न रहते हुए भगवती भारती का आराधन किया, वह न केवल सराहनीय अपितु स्तुत्य है। रहीम विशेषतया शृंगार, भक्ति और नीति के कवि थे। यद्यपि कला, संस्कृत काव्यशास्त्र एवं ज्योतिष में भी इनकी अच्छी गति थी, किन्तु साहित्य में वे अपनी शृंगार एवं नीति सम्बन्धी कविताओं के कारण ही प्रसिद्ध हैं। इनकी कवि प्रतिभा प्रबन्धकार की प्रतिभा न होकर, मुक्तककार की प्रतिभा थी। उस क्षेत्र में रहीम किसी भी मुक्तककार से होड़ ले सकते हैं। उनका जितना भी काव्य प्राप्त है उसी के आधार पर हिन्दी मुक्तक काव्य परम्परा में उनका अपना स्थान सदैव ही सुरक्षित रहेगा। हिन्दी एवं हिन्दुत्व का समर्थक यह मुसलमान कवि सर्वथा वन्दनीय है।

१ रहीम रत्नावली (दोहावली) दोहा संख्या १, पृ० १

४ रहीम दोहावली—एक विषयपरक विवेचन

काल की क्रूरता सर्वविदित है। वह छोटे बड़े बुरे भले, पण्डित मूर्ख किसी को नहीं छोड़ता। विद्वान यही जानकर अपने को अमर करने के लिए विभिन्न प्रयत्न करते हैं। काव्य उन्ही प्रयत्नों का सर्वोत्तम रूप है। दुःख तब और अधिक होता है जब किसी महाकवि का काव्य भी काल के कराल गाल में विलीन हो जाता है। रहीम के साथ ऐसा ही हुआ है। हिन्दी जगत सदव से यह सुनता चला आया है कि रहीम ने कोई सतसई लिखी थी। किन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी लगभग तीन सौ से अधिक दोहे प्राप्त नहीं हो पाते हैं। वैसे तो रहीम ने और भी कई रचनाएँ लिखी थी किन्तु सामान्य जनता में उनकी प्रसिद्धि नीति के दोहों के कारण ही है। कुछ विद्वानों ने इन दोहों का सतसई[१] कुछ ने सतसई-दोहावली[२] तथा कुछ ने केवल दोहावली[३] नाम दिया है। प० मायाशंकर याज्ञिक ने इन दोहों को दोहावली शीर्षक से प्रकाशित किया है। हिन्दी में कुछ दोहावली और भी प्रसिद्ध हैं। अतः हम दोहावली के साथ रहीम शब्द जोड़ना आवश्यक समझते हैं। इसीलिए रहीम के नीति सम्बन्धी दोहों का प्रस्तुत अध्ययन, रहीम दोहावली शीर्षक से किया जा रहा है।

रहीम के व्यक्तित्व का अध्ययन करते समय यह निवेदन किया जा चुका है कि जीवन के जितने अधिक क्षेत्रों में रहीम का प्रवेश था उतना हिन्दी के किसी अन्य कवि का नहीं। रहीम के समान उच्च पदों पर कार्य करने वाला तो सम्भवतः कोई भी अन्य कवि इतना प्रसिद्ध नहीं हुआ। नीति के क्षेत्र में इतनी अधिक ख्याति का श्रेय उनके विशालतम अनुभव व ज्ञान को ही है। विस्तृत अनुभव तथा बहुमुखी प्रतिभा के बल पर रहीम ने जिस नीति काव्य का सृजन किया वह मध्य युग के अन्य कवियों की भाँति कुछ घिसे पिटे विषयों का पिष्ट-पेषण मात्र नहीं है। उन्होंने जनता के सम्मुख ऐसे स्वानुभूत तथ्य मर्मस्पर्शी शैली में प्रस्तुत किये जो शास्त्रीयता से सम्बद्ध होते हुए भी नितान्त व्यावहारिक है।

---

१ कविता कौमुदी—रामनरेश त्रिपाठी (अष्टम संस्करण), भाग १, प० ३३१
२ हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (संस्करण १४), प० २१०
३ रहीम रत्नावली प० मायाशंकर याज्ञिक (दोहावली) प० १

रहीम दोहावली की व्यावहारिकता

रहीम का प्रत्येक कथन क्रियात्मक जीवन एवं व्यावहारिक आधार पर टिका है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि रहीम आदर्श के विरोधी थे। विरोधी तो वे थोथे आदर्श के थे, व्यावहारिक आदर्श के नहीं। उनका अपना जीवन भी सांसारिक जीवन था। न वे सन्त महात्मा थे और न त्यागी ब्रह्मचारी। किन्तु फिर भी सामाजिक मर्यादाओं का पूर्ण निष्ठा के साथ निर्वाह करने पर उन्होंने साधु महात्माओं से कम बल नहीं दिया। वृद्धावस्था में विवाह कराने के इच्छुक तथा परदारा सम्भोग आदि के उत्सुक मिजाज द्वारा काले किए बालों वाले, बूढ़े जवानों पर करारी चोट करते हुए उन्होंने लिखा है—

> रहिमन थोरे दिनन को, कौन करे मुह स्याह।
> नहीं छलन को परतिया नहीं करन को ब्याह॥ १६४—पृ० १६

इस प्रकार की और अनेक कुप्रवृत्तियों पर उन्होंने यत्र-तत्र आघात करते हुए व्यावहारिक आदर्श की स्थापना पर बल दिया है। रहीम ने अनुभव किया था कि यदि बड़े आदमी थोड़ा सा भी लोक मंगल का कार्य सम्पादित करें तो उनकी बड़ाई कृतकार्य की अपेक्षा कहीं अधिक होती है—

> थोरो किए बडेन की, बडी बडाई होय।
> ज्यों रहीम हनुमंत को गिरधर कहत न कोय॥ १२—पृ० १

इस दोहे के व्यंग्यार्थ द्वारा रहीम ने तथाकथित बड़े आदमियों को लोकोपकार में निरत रहने की प्रेरणा दी है। ऐसा करने से उनका यश सामान्य स्थिति के उदार व्यक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक होगा।

स्वाभाविक सरसता जन्मजात प्रतिभा और शास्त्रीय ज्ञान ने रहीम के नीति काव्य के लिए माने में सुगन्ध भरने का कार्य किया है। कटु अनुभव एवं सरस अभिव्यक्ति के आधार पर जीवन साफल्य के जो मूलमन्त्र जनता को बताए वे आज भी जन जन के गले का कण्ठहार बने हुए हैं। उन्होंने परम्परागत गुरुभक्ति का अन्धानुकरण न करते हुए उद्घोष किया कि हमें उचित आज्ञाओं का ही पालन करना चाहिए। यदि गुरु भी अनुचित आज्ञा दें तो वह उपेक्षणीय है। इसके समर्थन में उन्होंने रामायण की घटना को उद्धृत किया है। गुरु वशिष्ठ ने महाराज भरत को राज्य करने का सानुरोध आदेश दिया था किन्तु राम की अनुपस्थिति में उसे मर्यादानुकूल न समझते हुए, भरत ने उसका पालन नहीं किया। ऐसा करने से भरत का श्रेय घटा नहीं बढ़ा ही है। यहाँ तक कि व सुयश में स्वयं भगवान राम से भी पहले आते हैं[1]—

> अनुचित बचन न मानिए जदपि गुरायसु गाढि।
> है रहीम रघुनाथ तें सुजस भरत को बाढि॥ ५—पृ० १

१ बंदौं प्रथम भरत के चरणा। जासु नेम व्रत जाय न बरना॥
—रामचरितमानस (बालकाण्ड)

भरत जस महापुरुष निजी नीति का निर्धारण करने मे सफल हैं। सामान्य जन तो गुरजनो के जोर पर ही उचित अनुचित काय करते हैं—

अनुचित उचित रहीम लघु करहि बडन के जोर।
ज्यो ससि के सयोग ते पचवत आगि चकोर॥ ४—पृ० १

जीवन म प्रतिदिन अच्छे बुरे सभी व्यक्तियो से पाला पडता है। वे अपनी बुद्धि-योग्यता और शिक्षा दीक्षानुसार व्यवहार करते हैं। अत हम मूर्खों के व्यवहार का बुरा मानकर व्यथ ही बात को बढाना नही चाहिए—

जसी जाकी बुद्धि है तसी कहै बनाय।
ताको बुरो न मानिये लन कहा सू जाय॥ ६७—पृ० ७

यहाँ चौथ चरण का स्वाभाविक तक अवलोकनीय है। उसम मूर्खों के प्रति एक सहानुभूति का भाव भी दृष्टिगोचर होता है। मूर्खों के प्रति सहानुभूति का व्यवहार सज्जनो की विशेषता है। यही विशेषता उन्ह दुष्टो से पथक करती है। सहानुभूति के आधार पर हम अपने सगे सम्बन्धियो और इष्ट मित्रो से लोक व्यवहार बनाए रखत है अन्यथा टकराव तो उनसे भी हो जाता है। टकराव के कारण कोई अपने सम्बन्धियो को छोड नही देता। उन्ही के कारण यह जीवन जीने योग्य बनता है। उन्ही के कारण सामाजिकता का निर्वाह होता है। अत हमे टूटे हुए सम्बन्धो को बार बार जोडने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। रहीम का तक है कि मोतियो की (उपयोगी एव बहुमूल्य) लडी जितनी बार टूटती है उतनी ही बार जोड दी जाती है। सम्बन्धियो का समाज भी मोती की लडी ही है—

टूटे सुजन मनाइए जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोइए टूटे मुक्ताहार॥ ८५—पृ० ६

टूटने के बाद जुडना और जुडने के बाद टूटना प्रकृति का नियम है। सुसमय के बाद कुसमय और कुसमय के बाद सुसमय का क्रम भी इसी प्रकार चलता है। यही जीवन का चक्र है। कुसमय उपस्थित होने पर यदि मानव अपने को बचा ले जाय तो सुख के दिन देख सकता है। अत कुअवसर उपस्थित होने पर यन केन प्रकारेण रक्षा का उपाय करना चाहिए। यदि किसी अभद्र स्थान म भी भाग कर शरण लेनी पडे तो कोई हानि नही—

दुरदिन परे रहीम कहि दुरथल जयत भागि।
ठाडे हूजत घूर पर जब घर लागत आगि॥ ६८—पृ० १०

ग्रामीण लोग घर म आग लगने पर समीपस्थ घूडियो पर भी जाकर अपनी रक्षा कर लेते हैं। यह उदाहरण रहीम के ग्राम्य सम्पर्क का सूचक होने के साथ तत्कालीन ग्रामीण स्थिति का सकेत प्रदान करता है। इससे हम उस काल के मकानो, छप्परो तथा आग लगने की घटनाओ का अनुमान सहज ही कर सकते हैं। ऐसे समय में ग्राम्य जीवन म बडी एकता आ जाती है। वस एकता सामान्यतया नहीं

रहती, सामान्यतया रहते हैं लडाई, झगडे, विद्वेष और घृणा। स्नेह पास पास रहने वाला मे उतना नही हो पाता जितना दूरस्थ सम्बन्धिया मे। इस दृष्टि से रहीम ने नकट्य की अपेक्षा दूरी को अच्छा माना है—

नात नेह दूरी भलो लो रहीम जिय जानि।
निकट निरादर होत है ज्यो गडही को पानि॥ १०६—पृ० ११

दूर से देखने पर यह तथ्य कुछ अटपटा नात होगा क्योंकि स्नेह तो निकट सम्पर्क और मेल-जोल की उपज है किन्तु रिश्तदारो के सम्बन्ध म नित्य प्रति का अनुभव रहीम के कथन का समर्थन करेगा। ऐसा ही एक अनुभव नौकरी चाकरी के सम्बन्ध मे है। नौकरी के क्षत्र मे सफलता, सराहना तथा अधिकारिया का स्नेह केवल काम करने मात्र स नही मिलता। उनके लिए कुछ अन्य अच्छी-बुरी योग्यताएँ प्राप्त करना आवश्यक है। खुशामद एसी ही योग्यता है। सब जानत हैं कि खुशामद स आमद होती है। मालिक की हा मे हा मिलाने वाले मौज करते हैं इनाम और उन्नतिया मार ले जाते हैं। दूसरी ओर सच्चे और परिश्रमी, मन मसोमले ही रह जाते हैं। राज समाज की इसी स्थिति से खीझ कर रहीम ने अधिकारिया की हाँ मे हा मिलान की बात कही होगी। वे तो यहा तक कह गये हैं कि, ऐसे समाज मे यदि आवश्यकता पड ता औरा से भी आगे बढ जाने म कोई हानि नही। यदि राजा दिन को रात कह ता एक पग और आग कह दीजिए—जी हा तारे भी दीख रहे हैं।

रहिमन जो रहिबो चहे कहै वाहि के दाव।
जो नप वासर निसि कहे तौ कचपची दिखाव॥ १८८—प० १६

आदर्शवादी इस तथ्य स सहमत न होगे किन्तु रहीम क समय मे यही वातावरण रहा होगा और सच पूछिए तो दफ्तरों, कल कारखाना और स्कूल-कालिजा म आज भी यही बात है। जीवन की ठोकरें खाने के पश्चात जब आदर्श का कच्चा धागा टूटता है तब कटु अनुभव व्यावहारिक जीवन व्यतीत करने को बाध्य कर देत हैं। नीति के कवि का काय इन्ही तथ्यों का उल्लेख करना है। इस दृष्टि से निम्नलिखित दोहे भी ध्यान देने योग्य हैं—

अनकीन्ही बातें करे, सोवत जागे सोय।
ताहि सिखाय जगायबो, रहिमन उचित न होय॥ ३—प० १
रहिमन तीन प्रकार तें हित अनहित पहचानि।
परबस परे परोस बस, परे मामला जानि॥ १९१—प० १६

पूर्व विवेचित विषय

रहीम खानखाना, कबीर के समान बहुश्रुत भी थे और तुलसीदास के समान बहुपठ भी। इन दाना के अतिरिक्त जीवन जगत का व्यावहारिक अनुभव उनकी बपौती थी। लोक और शास्त्र दोना पाठशालाओ स रहीम ने जो कुछ सीखा उसे काव्यात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम स हमारे सम्मुख उपस्थित कर दिया। यही कारण है कि

उनके नीति काव्य में स्वानुभूत क्रियात्मक तथ्यों के साथ ही पूर्व विवेचित शास्त्रीय विषयों का विवेचन भी भली भाँति तथा प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। इनमें भी अधिकता उन्हीं विषयों की है जिनसे उनका जीवन क्रियात्मक रीति से सम्बद्ध था। निश्चित ही महापुरुषों, भाग्यवानों, ज्ञानियों, पुण्यात्माओं तथा याचकों से उनका सम्पर्क अधिक था, अन्यान्य विषयों में कम। यही कारण है कि उनके काव्य में दान, भाग्य, पुरुषार्थ, दुर्भाग्य, निर्धनता, ऐश्वर्य, निराशा तथा कुसमय आदि विषयों की चर्चा अपेक्षाकृत अधिक हुई है। नीति के इन विषयों पर बहुत से दोहे महावतखाँ की नजरबन्दी की अवस्था के मानसिक विक्षोभ के समय तथा दुर्भाग्य दीनता एवं अधिकार मुक्तता की अवस्था में लिखे गये जान पड़ते हैं। शेष अवस्था में मन की मौज में आकर जो नीति काव्य लिखा गया है उसमें प्रेम, शृंगार, भक्ति, दया, दिव्यता आदि विषय प्रमुख हैं। इनमें भी सबसे अधिक सारगर्भित है—प्रेम।

प्रेम

परिचय, घनिष्ठता व मित्रता, हमारे सामाजिक मेल जोल के क्रमिक विकास हैं। इस शृंखला की अन्तिम सीढ़ी ही प्रेम है। प्रेम का सम्बन्ध हृदय की कोमलतम अनुभूति से है। इसीलिए अनुभूति प्रधान काव्यों एवं कला-कृतियों में, एक से एक अनूठे सरस और सुन्दर प्रसंगों की सृष्टि की गई है। कवियों के लिए प्रेम का वर्णन जितना अनुकूल पड़ता है उतना सम्भवतः कोई अन्य विषय नहीं। इसीलिए विश्व काव्य का ६०% कलेवर किसी न किसी प्रकार से प्रेम निरूपण से सम्बद्ध है। काव्य जगत से यदि प्रेम प्रसंगों को पृथक कर दिया जाए, तो जो कुछ शेष बचेगा वह इतना नीरस एवं अनाकर्षक होगा कि काव्य की आत्मा चीत्कार कर उठेगी। यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आजकल प्रेम वर्णन और शृंगार निरूपण को एक दूसरे से नितान्त सम्बद्ध अथवा एक करके मान लिया जाता है। वस्तुतः ऐसा नहीं होना चाहिए। शास्त्रीय झमेले में न पड़ते हुए यदि हम देखें तो पाएँगे कि शृंगार निरूपण का सम्बन्ध सौन्दर्य सज्जा और बाह्य आवरण से है जबकि प्रेम वर्णन का सम्बन्ध तत्सम्बन्धी आन्तरिक विचारों की भावात्मक, दार्शनिक, तात्विक और अनुभूति परक अभिव्यक्ति से है। यहाँ प्रेम वर्णन को हम इसी अर्थ में ले रहे हैं। अतः शृंगार निरूपण प्रस्तुत प्रसंग से भिन्न है।

रहीम स्वभावतः रसिक, भावुक और प्रवीण जीव थे। उन्हें वास्तविक रूप में कवि हृदय प्राप्त था। जन्मजात काव्य प्रतिभा तो स्वयं सिद्ध है ही। अतः रहीम के काव्य में प्रेम सम्बन्धी विचारों की प्रचुरता स्वाभाविक है। किन्तु रहीम की नैतिक चेतना एवं नीति-काव्य-सर्जना ने उनके प्रेम निरूपण को अन्य कवियों से भिन्न कर दिया है। रहीम अपने प्रेम वर्णन में कोमलता एवं मरमता के साथ उपयोगितापरक नैतिक स्तर भी बनाए रखते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दोहा लिया जा सकता है—

रहिमन अंसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।

प्रेम निवेदन के क्षेत्र में आँसुओं का अपना स्थान है। प्रत्येक प्रेमी यही करता है। दुख, भक्ति और भावावेग का प्रकटीकरण भी इस कथन के अपवाद नहीं। किन्तु प्रेम के क्षेत्र में आँसुओं का महत्व निर्विवाद है। शायद ही विश्व का कोई ऐसा सौभाग्य शाली प्रेमी हो जिसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आँसुओं से वास्ता न पड़ा हो। सच बात तो यह है कि काव्य की उत्पत्ति ही आँसू से हुई है और काव्य जगत की सरसतम रचनाएँ अश्रु जल से आसिक्त हैं। प्रेम पात्र के सम्मुख भावातिरेक में अथवा करुणार्द्र होकर आँसू की दो बूँद गिर जाने से प्रेमी हृदय की विरह तीव्रता, अनुराग सघनता, दुख कातरता तथा मिलनोत्कण्ठा का जितना परिचय प्राप्त हो जाता है उतना घटा के प्रेम निवेदन एवं दुख कथन से नहीं हो पाता। ऐसी भी स्थिति आती है जब शब्दमयी भाषा असमर्थ एवं मौन हो जाती है। उस अवस्था में हृदय की मूक अश्रुमयी भाषा ही भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनती है। रत्नाकर जी की ये पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं—

गहबरि आयो गरी भभरि अचानक त्यों
प्रेम परयो चपल चुचाय पुतरीन सों।
नेक कही बैनन अनेक कही नैनन सों
रही सही सोऊ कहि दीनी हिचकीन सों॥ — उद्धव शतक ८

निश्चित ही अभिव्यक्ति का इतना सरस माध्यम शाब्दिक भाषा नहीं हो सकती। परन्तु इस प्रकार के कथन सरलतापूर्वक एक नहीं अनेक उद्धृत किए जा सकते हैं। हाँ, आँसुओं की भाषा के साथ यह कथन कि 'जाहि निकारो गेह तें कस न भेद कहि देय'—शायद ही कहीं मिले। यहाँ प्रेम का नीति के साथ मणिकांचन संयोग देखते ही बनता है। काव्य में सन्निहित सौन्दर्य और सत्य के साथ शिवत्व का सम्मिलन, कुछ ऐसा अनूठा है जो व्याख्या से अधिक अनुभव करने की अपेक्षा रखता है। अतः इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यहाँ आँसू की सुकोमलता में नीति का पुट सोने में सुगन्ध का काम कर रहा है। रहीम का प्रेम वर्णन यही सुगन्धित सोना है, जबकि अन्यान्य कवियों का प्रेम वर्णन अधिकांशतः सोना ही है।

प्रेम के क्षेत्र में सौन्दर्य का आधिपत्य निश्चित रूप से अनिवार्य है। शायद ऐसा कोई प्रेम वर्णन हो जिसमें शारीरिक या मानसिक सौन्दर्य का आश्रय न लिया गया हो। यहाँ तक कि मर्यादित प्रेम के अद्वितीय गायक गोस्वामी तुलसीदास भी वाटिका-भेंट के समय कह ही गए— अवगा दलिए दसन जासू। रहीम ने यहाँ भी कमाल किया है। उनके शारीरिक सौन्दर्य निरूपण में भी नीति की वर्तन ही प्रभाव शाली झलक है। व्याख्या की अपेक्षा दो दोहे उद्धृत करना अधिक सार्थक होगा—

नैन सलोने अधर मधु कहि रहीम घटि कौन।
मीठो भावे लौन पै अरु मीठे पै लौन॥ ११२—पृ० ११

जो अनुचितकारी तिन्हें लगे अंक परिनाम।
लखे उरज उर बेधियत, क्यों न होय मुख स्याम॥ ६१—पृ० ७१

उरोजों के अग्र भाग की कृष्णता शृंगार काव्य में प्रशंस्य नहीं किन्तु उनसे यह निष्कर्ष निकालना कि ये कलुषित (काम) कलंकित हो गए हैं क्योंकि ये दूसरों का भेद कर ऊंचे उठे हैं रहीम का अपना है। इस प्रकार उरोज जैसे शृंगारिक अंग के वर्णन में भी रहीम का सन्देश है कि जो दूसरों का भेद कर या हानि पहुँचा कर आगे बढ़ते हैं उनके मुंह एक न एक दिन काले होते ही। कहने की आवश्यकता नहीं कि यहाँ गोस्वामी जी का यह दोहा भी बरबस स्मरण हो आता है—

तुलसी जो कीरति चहहिं पर की कीरति खोय।
तिनके मुंह मसि लागि है मिटिहि न मरिहै धोय॥

मादक अंगों के नीति परक आख्यान सम्बन्धी अन्य भी कई सरस दोहे हैं किन्तु वे शृंगार निरूपण के विषय हैं प्रेम वर्णन के नहीं। अतः इस विषय को आगे न बढ़ाते हुए प्रेम सम्बन्धी दो दोहे उद्धृत करते हैं—

रहिमन पैडा प्रेम को निपट सिलसिली गैल।
बिछलत पाँव पिपीलिका लोग लदावत बैल॥ २०६—पृ० २०
रहिमन मारग प्रेम को मत मतिहीन मझाव।
जो डिगिहै तो फिर कहूँ नहीं धरन को पाँव॥ २१५—पृ० २१

यहाँ प्रेम पंथ की कठिनता का वर्णन है। प्रेम पथ की यात्रा अत्यंत कठिन है। एक बार चल पड़ने के पश्चात यदि कहीं डिग पड़े तो फिर ठौर नहीं अतः निश्चय ही यह मूर्खों का पथ नहीं। इस पथ की फिसलाहट कुछ ऐसी विचित्र है कि सावधानी से चलने पर तो भारी से भारी बोझ (बैलों का लदान) सहज निकल जा सकता है किन्तु असावधानी से चींटी के भी पैर फिसल जाते हैं। रहीम का संकेत है कि प्रेम-पथ पर पवित्रता और सावधानीपूर्वक चलने से गृहस्थ सामाजिकता अथवा जीवन की भार-भरी बैलगाड़ी भी पार हो सकती है और असावधानता वासना अथवा स्वार्थ के कारण एक पग आगे बढ़ने पर ही विनाश के गहरे गर्त में फिसल कर गिरा जा सकता है।

प्रेम पथ की कठिनता से भी अधिक आश्चर्यजनक है उसकी विचित्रता। लोकानुभव उसे लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं समझ पाता। जिनके हृदय में एक बार प्रेम की आग सुलग जाती है उनके हृदय में और कोई आग जल ही नहीं पाती। प्रेम की अग्नि प्रज्वलित होने के पश्चात शान्त नहीं होती। वह तो सुलग सुलग कर जलती और बुझ बुझ कर सुलगती है—

जे सुलगे ते बुझ गये बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझ बुझ के सुलगाहिं॥ ६६—पृ० ७

इस ज्वाला का प्रभाव अत्यंत शीतलता एवं शांति प्रदायक है। प्रेम के प्रभाव से चिलचिलाती धूप शरद पूर्णिमा बन जाती है और तप्त बालू फूलों की सेज। कंटक फूल की सी गुदगुदी उत्पन्न करते हैं और मृत्तिका स्वर्ण का आभास देती है, किन्तु शर्त यही है कि प्रेम पात्र निकट हो। प्रेम पात्र का सान्निध्य प्राप्त करने के

पश्चात ढाक के तीन पात भी कल्प वृक्ष एवं स्वर्ग का सा सुख प्रदान करने लगते हैं। अतः न कल्पवृक्ष की आवश्यकता है और न स्वर्ग अथवा उसके नन्दन कानन की। आवश्यक है प्रिय और उसका नैकट्य—

कहा करौं बैकुण्ठ ले, कल्पवृक्ष की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल प्रीतम बाँह॥ ३८—पृ० ४

प्रेम की शीतलता को समाप्त करने वाली एक ही वस्तु है और वह है कपट। इसी ने प्रेम-पथ की पवित्रता को समाप्त कर दिया है। विश्वास पात्र प्रेमी की सम्प्राप्ति में जीवन जितना मधुमय एवं स्वर्गिक बनता है कपटी की प्राप्ति होने पर उतना ही दुखद एवं नारकीय। मीठी और भोली बातों का कपट जाल रचकर धूर्त जन सामान्य प्रेम पात्र को चंगुल में फँसा लेते हैं और स्वार्थ पूर्ण हो जाने पर आँखें फेर लेते हैं। कितने ही जीवनों को इस कपट व्यापार ने समाप्त कर दिया है। अतः रहीम ने कपटियों के प्रति सजग रहने का सन्देश देते हुए कहा है कि—सावधान! कहीं कोई धूर्त—प्रेम का स्वांग रचकर तुम्हारे शरीर की डीकली से अपने खेत को सींचने का उपक्रम न कर रहा हो—

रहिमन वहाँ न जाइये जहाँ कपट को हेत।
हम तन ढारत ढेकुली, सींचत अपुनो खेत॥ २३०—पृ० ७३

काव्य में प्रेम के कापटिक व्यवहार का निदर्शन कतिपय प्रतीकों के माध्यम से कराया जाता रहा है। जल तथा भ्रमर इसी भाव के लिए बदनाम हैं। मधुमय स्वर तथा आकुल प्रत्यावर्तन से भ्रमर कोमल कलिका के हृदय को अपने अनुराग के प्रति आश्वस्त कर, मनमाना मधुपान करता है। किन्तु मधुकोश समाप्त होते ही बिना किसी ममत्व के वही क्रिया नवीन कलिका से दोहराता है। उसके मन तर फिर तीसरी और चौथी कलिका से वही प्रणय क्रीडा। भोग सबका प्रेम किसी से नहीं। इसी को भ्रामरी वृत्ति का नाम दिया गया है। जल की स्थिति थोड़ी भिन्न है। अनन्य चित्तसमर्पिता मछली किसी भी परिस्थिति में जल का त्याग नहीं करती। जल उसके लिए जीवन मरण का साथी है। किन्तु क्या जल भी यही व्यवहार करता है? वह तो जाल के पड़ते ही, अपनी स्वाभाविक गति से आगे बह जाता है फँसती और जीवन देती है बेचारी मछली। इसी प्रकार सर सरोवरों को त्याग कर चातक का, एकमात्र स्वाति की बूंद के प्रति तथा हंस का मानसरोवर के मोती के प्रति प्रेम भाव अनन्यता का प्रतीक है। स्त्री पुरुषों में भी यह अनन्यता देखी जा सकती है किन्तु बहुत कम। अधिक है भ्रामरी वृत्ति जो नैतिक सामाजिक अथवा दार्शनिक किसी भी दृष्टि से श्लाघनीय नहीं। रहीम ने इन्हीं परम्परागत भावनाओं को लेकर अनन्य प्रेमादर्श से सम्बन्धित कई दोहे लिखे हैं—

धनि रहीम गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनत बसि, कहा भ्रमर को जाय॥ १०४

यद्यपि अवनि अनेक हैं कूपवत सरि ताल।
रहिमन मानसरोवरहिं, मनसा करत मराल ॥ १२१—पृ० १५
दादुर मोर किसान मन लग्यो रहै घन माहिं।
रहिमन चातक रटनि हू सरवर को कछु नाहिं ॥ ९३—पृ० १०

रहीम ने अपने प्रेम वर्णन में कतिपय बाधक तत्वों का निर्देश भी किया है। ये बाधक तत्व प्रेम की प्रगाढ़ता समाप्त कर देते हैं। अतः इनसे सावधानी बरतने की आवश्यकता है। सबसे बड़ी सावधानी विलगाव की भावना के प्रति बरती जानी चाहिए। विलगाव या विच्छेद की भावना मन में उत्पन्न होते ही प्रेम टूटते देर नहीं लगती और एक बार टूटा हुआ प्रेम कठिनाई से जुड़ता है। जिस प्रकार टूटे हुए धागे को जोड़ने से गाँठ पड़ जाती है। उसी प्रकार विलगाव के पश्चात यदि प्रेम सम्बन्धों को पुनः जोड़ लिया जाए तब भी हृदयों में एक प्रकार की गाँठ रह जाती है जो भविष्य में पुनः प्रेम में बाधक सिद्ध हो सकती है—

रहिमन धागा प्रेम का मत तोरहु चटकाय।
टूटे से फिर ना मिले मिले गाँठ पड़ जाय ॥ १९८—पृ० २०

प्रेम हृदय का व्यापार है। इसमें हृदय के द्वारा हृदय का सौदा होता है। इस व्यापार में छल और दिखावे के लिए कोई गुंजाइश नहीं। मुख से कुछ कहना और हृदय में कुछ और रखना प्रेम-व्यापार के घातक तत्व हैं। अतः प्रेम में बाह्य आभ्यन्तर सब प्रकार के सहज एवं निश्छल स्नेह भाव की आवश्यकता है। खीरे की सी स्थिति प्रेम का घातक तत्व है। खीरा ऊपर से देखने पर सुन्दर आकर्षक सब प्रकार से एक तथा गोलमटोल दीखता है किन्तु तराशने अथवा अन्तः निरीक्षण करने पर उसके हृदय में एक नहीं तीन-तीन फाँकें यहीं प्राप्त होती हैं। अतः रहीम की सम्मति है कि—

रहिमन प्रीति न कीजिए जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन ॥ २०७—पृ० २०

खीरा को रहीम ने कटुभाषियों का प्रतीक भी माना है और कहा है कि इसका सिर काट कर और कटे हुए पर जो नमक रगड़ने की क्रिया की जाती है वह उचित ही है। क्योंकि कटु वचन बोलने वालों की जाति बिना इस प्रकार की यातना दिए नहीं सुधरती—

खीरा सिर तें काटिए मलियत नौन लगाय।
रहिमन करुए मुखन कों चहियत यहै सजाय ॥ ६८—पृ० ५

[illegible] प्रेम में [illegible] भी वर्जित है। वस्तुतः प्रेम भाव भाव हो जहाँ [illegible] विनय का विषय भी है। प्रेम धारा में परिपूर्ण स्नान है। कारण प्रेम भाव में [illegible] स्वयं [illegible] के परमात्म तथा आत्मसमर्पण से प्रेरित भाव्य विस्मरण है। यह एकता में अनेकता तथा अनेकता में एकता स्थापित करने की शक्ति रखता है। हृदय [illegible] उत्पन्न करता है और [illegible] मात्र तक प्राप्य विस्तार का [illegible] करता है। रहीम ने [illegible] प्रेम वर्णन तथा विस्तार

अपने हितैषी मित्रों तथा गोत्र वालों के साथ किसी प्रकार का वैर विरोध न आने देने का आख्यान किया है—

> रीति प्रीति सबसों भली, बर न हित मित गोत।
> रहिमन याहो जन्म की बहुरि न संगति होत॥ २४०—पृ० २३

प्रेम को इतने ऊँचे स्तर पर देखने वाले रहीम ने एक दोहे में उसे वासना के साथ भी व्यक्त किया है, जबकि वस्तुस्थिति में प्रेम और वासना दो भिन्न मनोभाव हैं। प्रेम तो शिशु एवं निर्जीव वस्तु अथवा भाव विशेष से लेकर गुरु एवं प्रभु तक पहुँच सकता है जबकि वासना का क्षेत्र अत्यन्त सीमित केवल असमलिंगी प्राणी तक सीमित है। भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रेम आत्मा का प्रसाद है और वासना इन्द्रिय का भाजन। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने भक्ति सिद्धान्त का विवेचन करते हुए 'प्रेम और 'काम' शीर्षक से इस विषय पर सारगर्भित विचार व्यक्त किये हैं।[1] उनके द्वारा उद्धृत श्रीकृष्णदास कविराज की पंक्तियाँ पठनीय हैं—

> आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तार प्रेम नाम।
> श्रीकृष्णेर प्रीति इच्छा तार प्रेम नाम॥
> अतएव काम प्रेमे बहोत अंतर।
> काम अंधतम, प्रेम निर्मल भास्कर॥[2]

स्पष्ट ही वासना को अंधकार बताया गया है और प्रेम को सूर्य।

प्रेम भगवती जाह्नवी का निर्मल जल है तो वासना तड़ाग की पंकिलता है। अतः वासना और प्रेम का एक ही साथ वर्णन कुछ जमता नहीं। एक दोहे में रहीम ने कामदेव के घोड़े पर सवार होकर चलने को अग्निपथ कहा है और साथ ही प्रेम पथ की कठिनाई का उल्लेख भी किया है। प्रेम पथ निश्चित ही कठोर है किंतु वह वासना के घोड़े से सम्बद्ध नहीं। अतः निम्न दोहे का भाव कुछ उखड़ा उखड़ा सा प्रतीत होता है—

> रहिमन मन तुरग चढ़ि चलिबो पावक माहि।
> प्रेम पथ ऐसो कठिन सब कोउ निबहत नाहि॥[3] २१७—पृ० २१

परकीया प्रेम का आधार वासना अवश्य रहती है और उस पथ का निर्वाह निश्चित ही आग पर चलने के समान कठिन है जो सब के बस की बात नहीं। केवल दाक्षिण्य जन ही इस करतूत में सफल हो सकते हैं। परन्तु यह सफलता भी उनके हृदय के सच्चे प्रेम की द्योतक नहीं हो सकती। प्रेम की गली तो इतनी सकरी

---

१ राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य—डा० विजयेन्द्र स्नातक (द्वि० सं०), पृ० १५३

२ वही पृ० १५४ पर उद्धृत।

३ यह दोहा ध्रुवदास जी के नाम से भी प्रसिद्ध है। डा० स्नातक ने ग्रंथांत में ध्रुवदास जी के नाम से उद्धृत किया है। देखिए वही पृ० ५७२।

है जिसमे एक मन भावन के अतिरिक्त दूसरा समा ही नही सकता। दिव्य प्रेम से आपूरित नेत्रो मे किसी की छवि एक बार बसने पर किसी अन्य की छवि समा नहीं पाती। यदि समाती है तो प्रेमभाव म सत्यता एव सघनता नही मानी जा सकती है। सराय मे यदि स्थान नही है तो आग तुक प्रवेश नहीं कर सकता, यदि प्रवेश कर गया है तो निश्चित ही स्थान था और सच्चे प्रेमी के मन की सराय मे बसने पर किसी अन्य के लिए कोई स्थान शेष रहने का प्रश्न ही नही उठता—

प्रीतम छवि नैनन बसो, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराह रहीम लखि, आप पथिक फिरि जाय॥ ११९—पृ० १२

ऐसे अन्य बहुत से दोहे रहीम के नीति काव्य से उद्धृत किए जा सकते हैं। इन दोहो के अतिरिक्त वे दोहे पृथक है जिनको हम शृ गार के नाम से पुकारते हैं। इस प्रकार से सम्पूर्ण नायिका भेद नगर शोभा आदि शृ गार काव्य के अन्तर्गत है। फुटकर बरवौ म जो सयोग वियोग के एक से एक अनूठे चित्र प्रस्तुत हैं। शृ गारिक चित्रो के अतिरिक्त प्रेम का एक अन्य क्षेत्र भी है जिसमे पूज्य भाव विद्यमान रहता है। इस भाव को भक्ति का नाम दिया गया है। कहने की आवश्यकता नही कि यह एक भिन्न विषय है। प्रसगवश इतना कहना आवश्यक है कि विद्वान रहीम को भक्ति काव्य रचयिता की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। श्री रामनिरजन पाण्डेय ने अपने ग्र थ राम भक्ति शाखा म लिखा है "नीति और शील की पवित्रता के उपासक रहीम रसिकता के उपासक तो थे ही—राधाकृष्ण का परम पावन निश्छल प्रेम उनके हृदय म अनुराग की लाली बनकर समा गया था। यही अवस्था रहीम की काव्य साधना के भीतर कविता के मधुर माध्यम द्वारा राधाकृष्णमयी होकर उनके ग्र थो मे अभिव्यजित हुई है।" रहीम का भक्ति काव्य एक विस्तृत विषय है। और उसका किंचित सकेत स्थान स्थान पर किया भी जाता रहा है। अत हम अपनी ओर से अधिक कुछ न लिखते हुए उनके दो तीन दोहे उद्धृत करते हैं—

कहि रहीम जग मारियो नैन बान की चोट।
भगत भगत कोउ बचि गये, चरन कमल की ओट॥ २८—पृ० ३
रहिमन धोखे भाव से, मुख से निकसे राम।
पावत पूरन परम गति कामादिक को धाम॥ १९९—पृ० २०
रहिमन को कोउ का करे, ज्वारी चोर लबार।
जो पत राखन हार हैं, माखन चाखन हार॥ १७५—पृ० १७

इन दोहो मे स्पष्ट है कि नेत्र बाण अर्थात कामदेव या भौतिक आकर्षणो से बचना, परमगति प्राप्त करना तथा ससार के धूर्तों से त्राण पाने का एकमात्र उपाय, रहीम, भगवान रामकृष्णादि की भक्ति को ही समझते थे।

लक्ष्मी और ऐश्वर्य

जघन्य कृत्यो का सम्पादन विपत्ति धन के लिए किया जाता है। धन वह तत्व है जो प्राय दुजनो के पास ही एकत्रित रहता है। अरबी फारसी पर

समान अधिकार रखने वाले बलख के सुप्रसिद्ध कवि शाहिद (लगभग ९०० ई०) ने दावा किया था कि संसार का कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति धन सम्पन्न या सुखी नहीं मिलता। उनका कथन है कि 'ज्ञान तथा धन नरगिस और गुलाब के समान हैं। ये दोनों एक स्थान पर तथा एक ही साथ विकसित नहीं हो सकते। ज्ञानवानों के पास धन नहीं रहता और धनवालों के पास ज्ञान नहीं होता।'[1] भारत में लक्ष्मी और सरस्वती का वैर चिर प्रसिद्ध है।' लक्ष्मी की चंचलता भी अपने साहित्य में कम विख्यात नहीं है। कदाचित इसीलिए उसे चपला नाम से पुकारा गया है। लक्ष्मी की चंचलता का काव्यात्मक वर्णन रहीम के दोहों में देखते ही बनता है—

> कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
> पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय।। २३—पृ० ३
> कमला थिर न रहीम कहि लखत अधम जे कोय।
> प्रभु की सो अपनो कहै, क्यों न फजीहत होय।। २४—पृ० ३

इन दोहों में व्यंग्य विनोद श्लेष और शृंगार इत्यादि की छटा सुन्दरतम रूप में विद्यमान हैं। लक्ष्मी इसलिए स्थिर नहीं रहती क्योंकि वह पुरुष पुरातन (बूढ़े) विष्णु की युवती पत्नी है। इस युवती की कृपा कटाक्ष प्राप्त करने वाले धनवान उसे अपनी ही समझने का भ्रम कर लेते हैं। इसीलिए उनकी दुर्गति होती है। दूसरे की पत्नी को अपनी समझने वाले का फजीता निश्चित है। इसके विपरीत रहीम ने ऐश्वर्य के गुण भी गाए हैं। वे भली भांति जानते हैं कि, संसार में सभी काम व्यापार लक्ष्मी के माध्यम से सम्पन्न होते हैं। आपत्ति के समय तो लक्ष्मी ही सबसे बड़ा सहारा है। कमल की निजी सम्पत्ति (जल) के नष्ट होने पर घनिष्टतम मित्र सूर्य भी उसकी रक्षा नहीं कर पाता। सम्पत्ति हीन जीवन वैसा ही निष्प्रभ होता है जैसा दिन में दिखाई देने वाला चन्द्रमा—

> रहिमन निज सम्पत्ति बिना कोउ न बिपति सहाय।
> बिनु पानी ज्यों जलज को नहिं रवि सकै बचाय।। २०१—पृ० २०
> सम्पति भरम गंवाइके, हाथ रहत कछु नाहिं।
> ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहिं माहिं।। २६३—पृ० २६

दान

रहीम का व्यक्तित्व उदार दानी का व्यक्तित्व था। उस कलयुगी कर्ण को दान गाथाएँ अभी तक प्रसिद्ध हैं। उन्हें जीना तभी तक अच्छा लगता था जब तक दान देने में हाथ धीमा न हो। दानहीन जीवन रहीम के मत में व्यर्थ है। दानी को चाहिए कि वह अपने याचक को भरपूर तुष्टि करे। याचक को देखकर कुढ़ जाना

---

१ क्लासिक्स पर्शियन लिट्रेचर ए० जे० आर० बेरी (लन्दन १९१८)—पृ० ६७

अथवा वचन देकर मुकर जाना रहीम की दृष्टि में बहुत बड़ा अपराध था। उदारता पूर्वक धन देने का वे ईश्वरीय कृत्य समझते थे—

> माँगे मुकरि न को गयो केहि न त्यागियो साथ।
> माँगत आगे सुख लह्यो ते रहीम रघुनाथ॥ १८६—पृ० १८

सभी जानते हैं कि माँगना और मौन बराबर है। धन होते हुए भी दान न करने वाले धनी बहुत बड़े पाप के भागी होते हैं—

> रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
> उनते पहिले वे मुए जिन मुख निकसत नाहिं॥ २३४—पृ० २२

माँगना गर्हित पाप है किन्तु आपत्ति आने पर माँगने के अतिरिक्त और कोई चारा भी नहीं रहता। ऐसी अवस्था में माँगना बुरा नहीं। धनवानों एवं दान दाताओं को ऐसी परिस्थितियों की गम्भीरता अवश्य अपने ध्यान में रखनी चाहिए क्योंकि धन का काम तो धन से ही चलता है और विपत्ति में धनी की शरण अनिवार्य होती है—

> कोउ रहीम जनि काहु के द्वार गये पछिताय।
> सम्पति के सब जात हैं, विपति सबै ले जाय॥ ४२—पृ० ८

दान सम्बन्धी विचारों का वर्णन यथास्थान उनकी दानवीरता के प्रसंग में आ चुका है। अतः उनके अत्यन्त प्रसिद्ध तीन दोहों का यहाँ उद्धरण किया जा रहा है—

> दीन सबन को लखत है दीनहि लखै न कोय।
> जो रहीम दीनहि लखै दीन बन्धु सम होय॥ ९५—पृ० १०
> देनहार कोउ और है भेजत सो दिन रैन।
> लोग भरम हम पै करैं याते नीचे नैन॥ १००—पृ० १०
> रहिमन याचकता गहे बड़े छोट ह्वै जात।
> नारायण हू को भयो, बावन आँगुर गात॥ २१८—पृ० २१

सम्मान

दान और याचकतादि के प्रसंग में हम देख चुके हैं कि दान और मान का बैर है। माँगने से बड़े से बड़े का मान घटा है। किन्तु सम्मान का सबसे बड़ा शत्रु निर्धनता है। निर्धनता की स्थिति में सम्मान बनाए रखना और भी कठिन है। अतः रहीम ने महामति चाणक्य का अनुसरण करते हुए सम्मान की रक्षा में वन का निवास, बन्धुओं के मध्य निर्धन और असम्मान पूर्ण जीवन बिताने की अपेक्षा कहीं उत्तम समझा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि निर्धनता की कठिन परिस्थितियों में इज्जतदार आदमी के लिए इससे अधिक उपयुक्त दूसरा मार्ग खोज पाना सरल नहीं है। कदाचित् इसलिए रहीम ने आदर रहते ही वन गमन का सुझाव दिया था—

बरू रहीम कानन भलो, बास करिय फल भोग ।
बंधु मध्य धन हीन ह्वै, बसिबो उचित न योग ।।[1] २४५—पृ० २४

असम्मान से विपुल धन प्राप्त करने की अपेक्षा ससम्मान किन्तु अल्प धन से जीना कहीं उत्तम है—

धन थोरो इज्जत बडी, कह रहीम का बात ।
जसे कुल की कुल बधू, चियडन माहिं समात ।। १०२—पृ० १०

धन की चिन्ता न करते हुए, सम्मान का ध्यान कुलीनता का द्योतक है। सम्मान जाने की आशंका उत्पन्न होते ही, स्थान का त्याग कर देना चाहिए। सम्मानपूर्वक चने खाकर जीना उत्तम है, भूखे मरना उत्तम है, यहां तक कि विष पीना भी बुरा नहीं किन्तु असम्मानित होकर अमृत पीना भी मृत्यु के बराबर है। सम्मान ही जीवन है अपमान ही मृत्यु—

रहिमन तब लगि ठहरिये दान मान सम्मान ।
घटत मान जब देखिय, तुरतहि करिय पयान ।। १९०—पृ० १९
रहिमन मोहि न सुहाय, अमिय पियावत मान बिनु ।
बरू विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ।। २७६—पृ० २७

शील

भारतीय आचार दर्शन का मूल तत्व शील ही है। शील को मानवीय आस्थाओं का बीज कहा जा सकता है। भारतीय सभ्यता में शील का जितना महत्व है उतना सम्भवतः अन्य गुणों का नहीं। वस्तुतः अन्य समस्त गुणों का समाहार शील में हो जाता है। शील रहित जीवन असामाजिक और अमानुषीय जीवन होगा। इसीलिए शील की रक्षा करना हमारा प्रथम कर्तव्य है। जिस स्थान में शील के भंग होने की सम्भावना हो उस स्थान का तुरन्त त्याग कर देना चाहिए—

रहिमन रहिबो वा भलो जौ लौं सील समूच ।
सील ढील जब देखिए, तुरत कीजिए कूच ।। २२२—पृ० २२

यदि ऐसा न किया गया तो शील के साथ ही मान मर्यादा आदि वे सभी बन्धन नष्ट हो जाएंगे जिनके संघात का दूसरा नाम मानव जीवन है। शील और मर्यादा अतिक्रमण में विनाश निश्चित है।

जो मरजाद चली सदा, सोई तौ ठहराय ।
जो उमगे जल पार तें सो रहीम बहि जाय ।। ७३—पृ० ८

शील सरक्षण का सबसे बड़ा उपाय मन संयम है। मन के स्ववश होते ही इन्द्रियों पर विजय निश्चित है। और इन्द्रिय विजय होने पर शील, सदाचार, मान

१ वर वन व्याघ्रगजेन्द्र सेवित
द्रुमालय पक्वफलाम्बुसेवनम्
तृणेषु शय्या शत जीर्ण वल्कलं
न बन्धु मध्ये धनहीन जीवनम्। चाणक्य नीति—१०/१२

मर्यादा सब सुरक्षित हैं।[1] न किसी प्रकार के असयम का भय रह सकेगा और न स्खलन का। इसके बिना कोई किसी काम को ठीक प्रकार नहीं कर सकता।[2]

जो रहीम मन हाथ है, तो तन कित जाहि।
जल मे ज्यों छाया परे, काया भीजत नांहि ॥ ७८—पृ० ८

मित्र और मित्रता

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। यद्यपि समाज मे हित ग्रहित साधन करने वाले अनेक प्रकार के प्राणी हैं तथापि मानव-जीवन हित साधक तत्वा पर ही आधारित है। हित साधना की दृष्टि से मित्रता सबसे अधिक वाछनीय है। जिसे कोई अच्छा मित्र प्राप्त नही उसका जीवन सूना ही रहता है।[3] सच्चे मित्र के समप्राप्त होने से जीवन धन्य हो जाता है। प्रश्न उठता है सच्चे मित्र की कसौटी का। रहीम के पास इसका सीधा उत्तर है—कष्ट के समय साथ देना। आपत्ति के समय वही व्यक्ति साथ देगा जिसके हृदय म आत्म त्याग अथवा कष्ट सहिष्णुता की भावना है। बिना त्याग किए, बिना अपने को अग्नि म भावे, कोई किसी का कष्टमुक्त नही कर सकता। इस दृष्टि से दूध जल सम्बन्ध आदश है। दूध पर आच आने स पूव पानी अपने को जला डालता है और पानी को जलता देख दूध उफन कर जलने क लिए दौड़ता है तथा पुन उसका छीटा पाकर शान्त हो जाता है। उदाहरण पुराना होते हुए भी सटीक है। रहीम ने इसी भाव का प्रयोग किया है—

अलहि मिलाय रहीम ज्यो कियो आप सम छीर।
अँगवहि आपुहि आप त्यो, सकल आच की भीर ॥ ५६—पृ० ६

मित्र के लिए अपने आप कष्ट सहना, मित्रता का सबसे बड़ा लक्षण है।[4] सलाम राम राम तो आते जाते परस्पर सभी करते हैं परन्तु ऐसे व्यक्ति गाढे समय मे साथ दे सकेंगे इसम स देह है और गाढे समय म साथ दिए बिना किसी की मित्रता सिद्ध नही। वस्तुत विपत्ति इस दृष्टि से बडी उपयोगी है। वह क्षण मात्र म मित्र अमित्र की परीक्षा करा देती है। रहीम ने इसी तथ्य को अनेक दोहा मे अनक प्रकार से व्यक्त किया है। कुछ दोहे उद्धरणीय हैं—

रहिमन विपदा हू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत मे जान परे सब कोय ॥ २३३—पृ० २३

---

१ मनसावा इद सवमाप्तम। शतपथ ब्राह्मण—१/७/४/२२
२ न ह्ययुक्तेन मनसा किञ्चन सप्रति शक्नोति कर्तुम। वही—६/३/१/१४
३ शून्य पुत्रस्य गृह चिर शून्य नास्ति यस्य सन्मित्रम्।
मूखस्य दिशा शून्या सव शून्य दरिद्रस्य ॥ मच्छकटिक १/८
४ जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना ॥
—रामचरितमानस (किष्किन्धाकाण्ड)

सब को सब कोई करै, कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए, जब कछु अटके काम ॥ २५०—पृ० २४
मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है भीर परे ठहराय ॥ ३८—पृ० १४
कहि रहीम सम्पति सगे, बनत बहुत बहु रीति।
विपति कसौटी जे कसे, सो ही साँचे मीत ॥ ३१—पृ० ४

समय

रहीम का व्यक्तित्व अत्यन्त सजग था। वे समय की गति के प्रति सतर्क एवं सावधान रहने वाले जीव थे। उन्हें ज्ञात था कि समय अत्यन्त वेगवान है। कभी कभी एक बार का बिगड़ा काम जीवन भर प्रयत्न करने पर भी नहीं बन पाता। अतः प्रारम्भ से सावधान रहने की आवश्यकता है—

रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावनो नाम ॥ २१७—पृ० २१

लाख प्रयत्न करने पर भी समय नहीं लौटता। धन, सम्पत्ति, समादर, वैभव और स्वस्थ आदि सभी बहुमूल्य पदार्थ पुनः प्राप्त किए जा सकते हैं किन्तु गए हुए समय का हाथ आना असम्भव है। अतः समय रहते, सचेत होने के समान कोई बुद्धिमानी नहीं और समय पर एक क्षण भी चूक जाने के समान दूसरी मूर्खता कोई नहीं।[1] जिस प्रकार कुठार काठ को काट कर दो टूक कर देता है उसी प्रकार समय की चूक जीवन साफल्य को खण्डित कर देती है। समय चूक से उत्पन्न पश्चात्ताप हृदय को जीवन भर काटता रहता है—

समय लाभ सम लाभ नहिं समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी समय चूक की हूक ॥ २५५—पृ० ७५
रहिमन कुटिल कुठार ज्यों करि डारत द्वै टूक।
चतुरन के कसकत रहे समय चूक की हूक ॥ १७४—पृ० १७

कुसमय

समय की गति बड़ी विचित्र है। आज जो लाखों करोड़ों में खेलते हैं, कल वे ही कौड़ी कौड़ी के लिए मोहताज दिखाई पड़ते हैं। कल जिनके घर नौबत बजती थी, आज उनकी अर्थी उठाने वाला भी दिखाई नहीं पड़ता। बेचारे रहीम के पिता का यही हाल हुआ था। अच्छे समय में जो व्यक्ति छाया के समान अनुसरण करते हैं बुरा समय आने पर वे मुँह देखने से घृणा करने लगते हैं। इतना ही नहीं रक्षक, भक्षक बन जाते हैं। उन्नति और सुसमय के आने पर जिस सुन्दरी ने सायंकाल (उन्नति के समय) में दीपक को जलाकर आंचल की ओट से रक्षा की थी, प्रात

---

१ आयुषः क्षण एकोऽपि सर्वरत्नैर्न लभ्यते।
नीयते तद् वृथा येन, प्रमादः सुमहानहो ॥—योग वसिष्ठ ६ उ०/१७५/७८

(कुसमय) उपस्थित होने पर वही स्त्री उसी आँचल की झपक से दीप को बुझा देती है। दोष किसी का नहीं। कुसमय पड़ने पर मित्र का भी शत्रु बन जाना स्वाभाविक है—

जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट ओट।
समय परे ते होत हैं, वाही पट की चोट॥[1] ८०—पृ० ८
जिहि अंचल दीपक दुरयो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे मित्र शत्रु ह्वै जात॥ ६२—पृ० ७

दीपक से ही मिलती जुलती दशा तारों की है। आकाश की स्वाभाविक शोभा रात्रि के गहन अंधकार में अपनी चरम सीमा पर होती है। प्रकृति उस सुषमा पर तारों की अनन्त सम्पत्ति न्योछावर कर देती है। नक्षत्र भी प्रसन्नतापूर्वक उसकी सुख सभा में अपना योगदान देकर, सौन्दर्य में चार चाँद लगाते हैं। किन्तु ज्योंही उसके ऊपर प्रबल पराक्रमी सूर्य का आक्रमण होता है और दुर्भाग्य घेरता है त्योंही सारी महफिल समाप्त हो जाती है सम्पूर्ण तारक पिण्ड सूर्य की प्रथम रश्मि के उदित होने का आभास पाते ही भाग लेते हैं। रहीम का निष्कर्ष है कि विपत्ति आने पर धन भी इसी प्रकार तिरोहित हो जाता है, चाहे कितनी विपुल मात्रा में एकत्रित क्यों न किया गया हो—

विपति भए धन ना रहे रहा जो लाख करोर।
नभ तारे छिपि जात हैं ज्यों रहीम भय भोर॥ ३०—पृ० १३

प्रकृति की घटनावली का यह चक्र, हम दैनिक जीवन में भी देखते हैं। प्रकृति से उदाहरण देने का कारण तो केवल तथ्य की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। काव्य और शास्त्र में यही अन्तर है। यदि तथ्य की यथातथ्य अभिव्यक्ति कर दी जाय तो उसमें काव्य गरिमा नहीं आ पाती। इसी विषय में एक अन्य दोहा उक्त कथन का प्रमाण है—

धन दारा अरु सुतन सों, लगो रहे नित चित्त।
नहिं रहीम कोऊ लख्यो गाढ़े दिन को मित्त॥ १०३—पृ० १०

कथन में काव्यात्मकता न होते हुए भी जो चुभन है उसका श्रेय रहीम की भाषा को है। यह कथन अपने में नितान्त सत्य तथा अनुभव सिद्ध है। दोहे का अर्थ यह भी हो सकता है कि जब गाढ़ समय में धन स्त्री पुत्र इत्यादि काम आते ही नहीं तो मात्र उन्हीं के चक्कर में जीवन गवा देना कोई बुद्धिमत्ता नहीं। बुद्धिमानी तो उस शाश्वत तत्व को प्राप्त करने का प्रयत्न होगा जो गाढ़े दिन का मित्र है। वस्तुतः मित्र की कसौटी ही कुसमय है। दुर्दिन हमें इस तथ्य से अवगत करा देते हैं कि, कौन

१ दोहे का ध्वन्यार्थ यह भी हो सकता है कि, स्वार्थी व्यक्ति तभी तक साथ देते हैं जब तक उनका मतलब सिद्ध हो। समय निकल जाने पर वे साथ देना समाप्त कर देते हैं इतना ही नहीं घातक भी सिद्ध हो सकते हैं।

हमारा मित्र है और कौन शत्रु। अत इस दृष्टि से विपत्ति एक प्रकार से उपयोगी भी है—

> रहिमन विपदा हू भली, जो थोड़े दिन होय।
> *हित अनहित या जगत में, जान परत सब कोय॥* २३३—पृ० २३

दुर्दिन म सहायता देने वाले व्यक्ति का प्राप्त होना शुभ शकुन है। अंग्रेजी भाषा म एक कहावत प्रसिद्ध है जिसका अर्थ है कि अच्छे मित्र का प्राप्त होना दुर्दिन की समाप्ति और सौभाग्य के आगमन का सूचक है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि जब कोई मित्र सहायता का हाथ आगे बढ़ाएगा तभी दुर्दिनों की समाप्ति होगी। जब अच्छे दिन सदैव नहीं रहे तो कुसमय सदैव कैसे रह सकता है? इसलिए व्यर्थ की चिन्ता और पश्चात्ताप से क्या लाभ—

> समय पाय फल होत है समय पाय झरि जात।
> सदा रहे नहिं एकसी का रहीम पछितात॥ २५८—पृ० २५

दोहे का अन्तिम चरण आशावाद का मन्त्र देता है और यह बताता है कि कुसमय सदैव रहने वाला नहीं। विश्व का चक्र इस तथ्य का स्वत प्रमाण है। कुसमय के चंगुल म कौन नहीं फँसा? विश्व के सभी छोटे बड़े प्राणी, युग युगान्तरों से दुर्दैव द्वारा पीड़ित होते चले आए हैं। स्त्री पुरुष, सज्जन दुर्जन राजा रक सभी को इस चक्की म पिसना पड़ा है। अर्जुन, भीम नकुलादि पाण्डवों तथा नृप नल आदि महाराजाओं तक पर दुर्दिन का प्रकोप हुआ था और सभी को इस अवस्था म अपनी प्रतिष्ठा के विपरीत कार्य करने के लिए बाध्य होना पड़ा था। इसलिए जिस प्रकार भी ऊँच नीच म दुर्दिन कटें चुपचाप काट लेने चाहिएँ। व्यर्थ के शिकवा शिकायत की आवश्यकता नहीं। कहने सुनने और रोने गाने से कुछ लाभ भी तो नहीं होता। लोग उसम हाथ न बटा कर उल्टी हँसी उड़ाते ही देखे जाते हैं—

> रहिमन दुरदिन के परे बडेन किए घटि काज।
> पाँच रूप पांडव भए, रथवाहक नलराज॥ १९६—पृ० १९
> दुरदिन परे रहीम कहि भूलत सब पहिचानि।
> सोच नहीं वित हानि को जो न होय हित हानि॥ ९९—पृ० १०
> रहिमन चुप ह्वै बैठिए देख दिनन को फेर।
> जब नीके दिन आइ हैं बनत न लगि है देर॥ १८०—पृ० १८
> रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखो गोय।
> सुन अठिलैहैं लोग सब, बाँट न लैहैं कोय॥ २००—पृ० २०

स्मरण रहे कि यह देश किसी उपदेशक का शास्त्राजित प्रवचन नहीं अपितु रहीम के उतार चढ़ाव पूर्ण जीवन के स्वानुभूत तथ्य हैं। हजारों लाखों के भाग्य विधाता, करोड़ों के निस्पृह दानी तथा अकबरी साम्राज्य के परम विस्तारक रहीम, बन्दी निधन तथा विद्रोही का जीवन यापन करते हुए भी निराश नहीं हुए थे। उन्होंने दोबारह खानखानानी भी प्राप्त की और सेनापतित्व भी। इसीलिए कुसमय के सम्बन्ध में उन्होंने जो भी कहा है वह एक आपबीती कहानी है।

भाग्य

शहंशाह फारुख के परम समादृत फारसी कवि कासिमुल अनवर 'हाफिज' ने एक बार कहा था कि 'भाग्य हाथ के पंजे के समान पाँच अंगुलियाँ रखता है। जब वह किसी से अपना हुक्म मनवाना चाहता है तब दो अंगुलियाँ आँखों पर दो कानों पर तथा शेष एक को होठों पर रख कर कह देता है—सामान्य जिधर मैं कहता हूँ चला चल।[1] लोक अनुभव सिखा देता है कि यहाँ सब कुछ अपने ही हाथ में नहीं है। कोई परोक्ष शक्ति हमारी इच्छा के विरुद्ध बहुत से काम करा ले जाती है जिनका परिणाम कभी लाभकारी होता है और कभी हानिकारक। इसी का दूसरा नाम भाग्य है। भाग्य का ही खेल था कि कि रहीम मुगल साम्राज्य के उच्चतम पद, 'वकील मुतलक' तक पहुँचे और भाग्य के खल से उनके निरपराध पुत्र पौत्रादि, उनके सम्मुख मौत के घाट उतार दिए गए। अत उन्हें भाग्य की प्रबलता का बडा कटु अनुभव था। भाग्य की प्रबलता देखकर ही वे मानव को भाग्य के हाथ की कठपुतली कह गए हैं[2]—

> ज्यों नाचत कठपूतरी करम नचावत गात।
> अपने हाथ रहीम ज्यो, नहीं आपुने हाथ॥ ८४—प० ६

अपने हाथ मे कर्म है कर्म फल नही—

> निज कर क्रिया रहीम कहि सिधि भावी के हाथ।
> पासे अपने हाथ मे दाव न अपने हाथ॥ १११—प० ११

चौपड का खिलाडी खूब सोच समझकर कौडियाँ फेंकता है परन्तु दाँव वही पडते हैं जो पडने होते हैं। इसी प्रकार मनुष्य अपनी ओर से कर्म अत्यधिक विचार पूर्वक करता है किन्तु फल दैवाधीन ही रहता है। सामान्य व्यक्ति तो क्या, सब शक्ति-सम्पन्न नर देवादि भी भाग्य के हाथ का खिलौना बनते रहे हैं। वीरता एव शौर्य मे अद्वितीय पाण्डवों को वन वन की खाक छाननी पडी, (कवि परिपाटी के अनुसार) पार्वती का निस्सन्तान जीवन यापन करना पडा भगवान राम को कपट मृग का पीछा करना पडा तथा आकाश-पाताल को बाण के सम्मुख तुच्छ समझने वाले अर्जुन को अबला नारी का वेश धारण करना पडा—

> भावी या उनमान की, पाडव वनहि रहीम।
> तदपि गौरि सुनि बाँझ है बर है सम्भु अजीम॥ १३५—प० १४
> राम न जाते हिरन सग सीय न रावन साथ।
> जो रहीम भावी कतहू होति आपुने हाथ॥ २३७—प० २३
> महि नभ सर पंजर कियो रहिमन बल अवसेष।
> सो अर्जुन बैराट घर, रहे नारि के भेष॥ १४१—प० १४

---

१ फोट पोइटस आफ ईरान एण्ड इण्डिया आर० पी० मसानी (१९३८) प० ११
२ नचाती है नियति नटी सी, कदुक क्रीडा सी करती। —प्रसाद

भाग्य की शक्ति इतनी विचित्र है कि वह अच्छा या बुरा, लाभ या हानि जो भी कराना चाहती है, वैसी परिस्थितियाँ स्वयं बना लेती है।[1] किसी किसी का भाग्य जन्म से ही अनुकूल चलने लगता है। ऐसे व्यक्तियों के महान बनने में सन्देह ही क्या हो सकता है। लाख कमियाँ रहते हुए भी वे आगे निकल जाते हैं। उनकी बुराइयाँ लुप्त हो जाती हैं, कमियाँ छिप जाती हैं और अच्छाइयाँ खुलकर प्रकाश में खलती हैं। इतिहास समाज, धर्म तथा पुराण आदि से इस प्रकार के अनेक उदाहरण सरलतापूर्वक एकत्रित किए जा सकते हैं किन्तु कवि रहीम इसके लिए प्रकृति के प्रांगण से दृष्टान्त ग्रहण करते हुए लिखते हैं—

जे रहीम विधि बड किये, को कहि दूषन काढि।
चन्द्र दूबरो कूबरो तऊ नखत ते बाढि॥ ६८—प० ६

पुरुषार्थ

इस वर्णन से स्पष्ट है कि रहीम को भाग्य की शक्ति में पूरा विश्वास था। किन्तु विरोधी गुणों का धारक रहीम, मात्र भाग्य के भरोसे कभी नहीं बैठा। उनका समस्त जीवन पुरुषार्थ का उत्कृष्ट उदाहरण है। उनके काव्य में भी पुरुषार्थ सम्बन्धी दोहे यत्र तत्र प्राप्त हैं।

इस सम्बन्ध में उन्होंने बहुत सुन्दर अन्योक्ति लिखी है जिसमें सब प्रकार से पुष्ट और सुन्दर कदली को पुरुषार्थहीनता का तथा पात रहित कटकित करील को पुरुषार्थ का प्रतीक माना गया है। साधन, योग्यता एवं सम्मान सम्पन्न व्यक्ति भी यदि घर में घुसकर पुरुषार्थहीन जीवन व्यतीत करता हुआ, पूर्व अर्जित सम्पत्ति के बल पर जीता है तो उसकी अपेक्षा हिम आतप वात सहन कर खुले मैदान में डटे रहने वाला पुरुषार्थी कहीं अधिक अच्छा है, भले ही उसे अपने पुरुषार्थ में काटे प्राप्त हों। महत्व फल का नहीं उद्यम का है—

जो घर ही में घुस रहे कदरी सुपत सुडील।
तो रहीम तिनते भले, पथ के अपत करील॥ ७०—पृ० ७

किसी व्यक्ति को अधिक धनवान, यशवान अथवा गुणवान देखकर हमें अपने प्रति हीन भाव उत्पन्न नहीं करना चाहिए। कौन कह सकता है कि वर्तमान अवस्था को प्राप्त करने के लिए उसने, संसार के देखे अनदेखे कितना पुरुषार्थ किया है। *सभी जानते हैं कि व्यक्ति जन्म से कुछ लेकर अवतीर्ण नहीं होता। प्रयत्न एवं* पुरुषार्थ करते करते सभी कुछ प्राप्त हो जाता है। पुरुषार्थ यदि गलत दिशा की ओर

---

१ (क) तुलसी जस भवतव्यता, तसी मिल सहाय।
आप न आवे ताहिपै ताहि तहाँ ले जाय॥ —तुलसी

(ख) तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः।
सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता॥ —चाणक्यनीति, ६ ६

है तो असम्मान, घर और विदेश में हाथ लगेंगे और यदि यहाँ निन्दा की मार है तो प्रीति, निपुणता और यश आदि की प्राप्ति होगी—

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर प्रीति अभ्यास जस, होत होत ही होय॥ १५४—पृ० १५

जीवन में ऐसी भी अवस्था आ जाती है जब बड़े से बड़े व्यक्ति को दर दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं। दुर्भाग्य के उस समय में उसकी सहायता सगा से सगा सम्बन्धी भी नहीं करता। इन परिस्थितियों में पुरुषार्थी जीवन नौका को सम्मान से ले जाते हैं जबकि पुरुषार्थहीन व्यक्ति तब कायर जीवन-यापन करते हुए समाप्त हो जाते हैं। ये पुरुषार्थी परिस्थिति विशेष में छोटे से छोटा कार्य करने को भी व्यथा नहीं समझते। जो भी मिलता है हर्षपूर्वक ग्रहण करते हैं और पुरुषार्थ द्वारा दुर्दैव पर विजय प्राप्त करके पूर्व स्थिति को प्राप्त होते हैं। रहीम अपने कथन की पुष्टि में विराट की रसोई और भीम की कथा का उल्लेख करते हैं —

जो पुरुषारथ ते कहूँ, सम्पति मिलत रहीम।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम॥ ७१—पृ० ७

कहना न होगा कि यदि मानवीय पुरुषार्थ के साथ भाग्य का सहारा भी प्राप्त हो तो सोने में सुगन्ध आ जाती है।

महापुरुष

रहीम को अपने युग के महानतम पुरुषों के साथ रहने का सौभाग्य मिला था। अकबरी दरबार के नवरत्न उन दिनों भारतीय मेधा का नवनीत थे। अन्य महापुरुषों से भी रहीम ने अपने सम्बन्ध बना रखे थे। गोस्वामी तुलसीदास की मित्रता इस कथन का प्रमाण है। इन महापुरुषों के जीवन और कार्य व्यापारों का अध्ययन रहीम ने अवश्य ही निकट से किया होगा। यही कारण है कि, रहीम के नीति काव्य में महापुरुषों से सम्बन्धित दोहे प्रचुर संख्या में उपलब्ध हैं।

गाम्भीर्य महापुरुषों की सबसे बड़ी विशेषता है। जो व्यक्ति जितना महान होगा वह उतना ही गम्भीर भी होगा। गम्भीर व्यक्ति न तो हर्षातिरेक में फूल पड़ते हैं और न दुःख में आँसू बहाते हैं। उनके जीवन में एक विचित्र समरसता होती है। यह समरसता उन्हें झंझावातों को सहने का बल प्रदान करती है। रहीम ने दुःख सुख की समावस्था[1] के लिए चन्द्र के उदय एवं अस्त का उदाहरण देते हुए कहा है कि चन्द्र जिस (सुपीत) अवस्था में उगता है उसी में अस्त भी हो जाता है बड़े लोग भी सुख दुःख की अवस्था में इसी प्रकार एक समान व्यवहार करते हैं—

यों रहीम सुख दुख सहत बड़े लोग सह भाँति।
उवत चन्द जेहि भाँति सों अथवत ताही भाँति[2]॥ १५८—पृ० १६

---

१ सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। —श्रीमद्भगवद्गीता २ ३८

२ उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥ —पंचतंत्र २ ७

सुख दुःख म समान ही दूसरी अवस्था नि दा और स्तुति की है। सामान्य व्यक्ति स्तुति से सुख तथा निन्दा से दुःख का अनुभव करता है। परन्तु महापुरुष इस अवस्था म भी समभाव धारण करते हैं। प्रशसक का पुरस्कृत तथा निन्दक को तिरस्कृत करना महापुरुषों का काय नही। नि दा एव स्तुति की चिन्ता किए बिना वे न्याय पथ पर अग्रसर रहते हैं। उत्तु ग गोवर्द्धन को धारण करने वाले वृन्दावन बिहारी गिरिधर कृष्ण को यदि वशीधर कह दिया जाए तो क्या वे बुरा मान जाते हैं—

जो बडेन को लघु कहें नहि रहीम घटि जाँहि।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहि॥ ७२—प० ७

महापुरुष आत्मश्लाघा भी नही करते—

बडे बडाई ना कर बडो न बोल बोल।
रहिमन हीरा कब कहे लाख टका मेरो मोल॥ १२५—प० १३

गुण स्वत बोलत है। कोई महापुरुष अपने गुणा का ढिंढोरा नही पीटता। हाँ दूसरे उसका गुण-गान करत नही अघाते। सच्चे महापुरुष इस गुणगान से भी दूर भागते हैं। वे जहाँ तक बने, अपने काम धाम और नाम को छोटा करके ही प्रगट करते हैं। कारण यह है कि गुणगान, स्तवन एव प्रशसा इत्यादि से व्यक्ति के हृदय म गव एव अहकार का उदय हो सकता है जो निश्चित ही पतनकारी प्रवृत्तियाँ हैं। प्रशसा आदि तो उच्चकर्मों क अनिवाय परिणाम हैं। यही कारण है कि महापुरुष काम पर ध्यान देते हैं नाम पर नहीं—

रहिमन कबहु बडेन को नाहि गव को लेस।
भार धरें ससार को तऊ कहावत सेस॥ १७१—प० १७

दूसरो के लिए कष्ट सहना,[१] गरीब से हित करना[२] दीना के प्रति दयालु होना,[३] कभी अपना बडप्पनन न बघारना[४] परोपकार करना[५] छोटा को नजर स न गिराना[६] विषयो स यथा सम्भव पथक रहना[७] आदि गुण महापुरुषा के प्रसग मे बडे ही कलात्मक रूप से गिनाए गए हैं। रहीम के इन वणनो म विचित्र आकषण है।

नीच

ससार मे महापुरुषो की अपेक्षा नीच और मूर्खों की सख्या कहीं अधिक है। रहीम का जीवन धूर्तों स्वार्थियो तथा षडयन्त्रकारियो स लडने झगडने बीता था। उन्हें नीचो की रग रग का ज्ञान था। सेना म एकता बनाए रखने के लिए वे एसे नीचा को कभी साम, कभी दाम, कभी दण्ड तथा कभी भेद की नीति स वस म किया करते थे। नीचा से सम्बन्धित रहीम के विचार अनुभव की भट्टी स तप्त होकर निकले हैं—

रहिमन लाख भली करो, अगुनो अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हूँ साँप सहज धरि खाय॥ २२६—प० २२

---

१ स ७ तक क्रमश रहीम रत्नावली दाहा स० ४८ ६८ १२२ १२४ २४८ १६७ तथा ८३

रहिमन नीर पखान बूड़े प सीझै नहीं।
तैसे मूरख ज्ञान बूझ प सूझै नहीं॥ २७४—प० २१

शायद ही कोई भाग्यशाली व्यक्ति ऐसा हो जिसे उन नीचों से वास्ता न पड़ा हो जो उपकार करते हुए भी अपकार करने से बाज नहीं आते। ऐसे दुर्जन के साथ सिधाई से काम निकलना असम्भव हो जाता है। इसीलिए—'शठे शाठ्यं समाचरेत्' या 'दुष्टेषु न नीति' की कहावत प्रचलित हुई थी। समझाने बुझाने अथवा प्रार्थना याचना करने से उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे व्यक्तियों से दण्ड एवं डण्डे के जोर से ही काम निकाला जा सकता है। चाक के प्रतीक का प्रयोग करते हुए रहीम ने ठीक ही कहा है—

रहिमन चाक कुम्हार को माँगे दिया न देय।
छेद में डंडा डारि कै चाहे नांद लै लेय॥[1] १७१ प० १८॥

ऐसे व्यक्ति अवगुणों से प्रेम तथा गुणों से वैर रखते हैं। सीधे साफ मार्ग से उनका सम्बन्ध नहीं होता। यदि दुर्योग से उन्हें किसी उन्नति का अवसर प्राप्त हो जाए तो उनकी दशा, शतरंज के उस वजीर जैसी होती है जो प्यादे से फरजी बन जाने पर टेढ़ा टेढ़ा ही चलता है—

जो रहीम ओछो बढ़ै तो अति ही इतराय।
प्यादे से फरजी भयो टेढ़ो टेढ़ो जाय॥ ७५—प० ८

चाल ही नहीं रुचियाँ तथा स्वभाव भी टेढ़े होते हैं। सज्जनों द्वारा तिरस्कृत वस्तुएँ उन्हें अधिक प्रिय होती हैं—

जो विषया सतन तजी मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन करि, स्वान स्वाद सों खात॥ २३—प० ६

यहाँ श्वान का प्रयोग अप्रत्यक्ष रूप से नीच जनों के लिए किया गया है। किन्तु कई स्थलों पर उन्होंने स्थिति को एक दम स्पष्ट करते हुए नीच जनों तथा उनके कार्यों की तुलना श्वान से की है। श्वान, प्रेम प्रदर्शित करते हुए चाटता है और क्रोध में काटता है। परन्तु काटने और चाटने की दोनों ही क्रियाएँ हानिकर हैं—

रहिमन ओछे नरन सो बैर भलो न प्रीत।
काटे चाटे स्वान के दुहू भाँति विपरीत॥ ६६—प० १७

अत नीचों की मित्रता एवं शत्रुता दोनों के प्रति सावधान रहने की आवश्यकता है। ऐसा न हो कि धोखे में उनसे सम्बन्ध हो जाए और बाद में पछताना पड़े। ऐसा प्राय हो जाता है क्योंकि दुर्जन परिधान तथा वेषादि की दृष्टि से सज्जनों की अपेक्षा कहीं अधिक शिष्ट मिष्ट और आकर्षक बने रहते हैं। सुयोग उपस्थित होने पर ही उनका अन्तर समझ में आता है—

दोनों रहिमन एकसे जौ लौं बोलत नाँहि।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसन्त के माँहि॥ १०१—प० १०

---

१ नवध, ५ १०

२ इक्षु दण्डस्तिला शूद्रा कान्ता कांचन मेदिनी।
चन्दन दधि ताम्बूल मर्दन गुणवर्द्धनम्॥ —चाणक्यनीति —६ १३

कुसग

नीच के सग का ही दूसरा नाम कुसग या कुसगति है। कुसगति म फँस कर व्यक्ति जाति तथा राष्ट्र बरबाद होते देखे गए हैं। कुसग म लिप्त होने का परिणाम तो अनय है ही, उसके स्पश मात्र स कलक लग सकता है। रहीम ने कुसग को कालिख लगा बरतन कहा है, जिसके स्पश मात्र से कलौंच लग जाती है—

रहिमन उजली प्रकृति को, नहीं नीच को सग।
करिया बासन कर गहे, कालिख लागत अग ॥ १६८—५० १७

ऐसा ही भाव एक सोरठे म व्यक्त किया गया है। वहाँ कुसग की तुलना अगारे से की गई है। अगारा गम होने की अवस्था म अग को जला डालत है और ठण्डा होने अथात कोयला बनने की अवस्था म अग काला कर देता है। इसी प्रकार निष्क्रिय हो अथवा सक्रिय, कुसग सब त्याज्य ही है—

ओछे को सतसग, रहिमन तजहु अगार ज्यों।
तातो जारे अग सीरे प कारो करे ॥[1] २७१—५० २६

कुसग की घनिष्ठता तो क्या पडोस भी श्रेयस्कर नही। सुवृत्तियो का प्रभाव पडे या न पडे परन्तु कुवृत्तियो का प्रभाव तुरन्त पडता है। सज्जनो के साथ रहने से सुयश प्राप्त होने मे देर लग सकती है किन्तु दुजन के साथ बसने स कलक लगे बिना नही रहता। समुद्र जैसी विशाल विस्तृत एव गम्भीर जलराशि को पुल के बन्धन में इसलिए आना पडा क्योकि रावण उसके पडोस म बसा हुआ था। कुकृत्य किया पडोसी ने, बधन पडा समुद्र के गले। अत कुसगति में कुशल असम्भव है—

बसि कुसग चाहत कुशल यह रहीम जिय सोच।
महिमा घटी समुद्र की रावन बस्यो परोस ॥[2] १२७—५० १३

समुद्र रावण के पडोस म बसने नही गया था, प्रत्युत रावण स्वय आकर समुद्र के बीच बसा था। दुजन अपनी सुरम्यादि की दृष्टि स सज्जनो का सम्पक खोजते हैं और फिर अपने साथ ही उन्हें भी नष्ट कर देते हैं—'आप डूबे पाडिया ले डूबे जजमान'। कुसगति के ससग म जो भी आएगा, अपयश का भागी होगा। दूध जसी पुनीत वस्तु को भी यदि कलारिन (मदिरा बेचने वाली) के घडे म रख दिया जाए तो लोग उसे मदिरा ही समझेंगे—

रहिमन नीचन सग बसि लगत कलक न काहि।
दूध कलारी कर गहे मद समुझ सब ताहि ॥ २०२—५० २०

---

१ दुजनेन हि सम सख्य प्रीतिं चापि न कारयेत।
उष्णो दहति चांगार शीत कृष्णायते करम् ॥

२ तुलनीय—

दुजन के ससर्ग तें सज्जन लहत कलेस।
ज्यों दसमुख अपराध तें, बधन लह्यो जलेस ॥ —वृन्द

कलारी के कुसग से दूध जसो पवित्र वस्तु को मन्दिरा जैसी घृणित वस्तु का कलक लगा। कुसग का परिणाम ही ऐसा है। वेणीसहार म एक स्थान पर कहा गया है कि अमृत लता भी विष उसका सम्पर्क प्राप्त कर यदि मारक नही होगी तो मूर्च्छाकारी अवश्य ही हो जाएगी।[1] कविसमय प्रसिद्ध है कि स्वाति की जो बूद केल म गिर कर कपूर और शुक्ति म गिर कर मोती बनती है वही सप मुख के ससग से विष मे परिवर्तित हो जाती है—

मुक्ता कर करपूर कर चातक जीवन जोय।
ये तो बडा रहीम जल ब्याल बदन विष होय॥ १४७—प० १५

रहीम ने अ य भी कई दोहो म कुसग के दोषो का वणन किया है। उन सब का सार यही है कि कुसग विनाशकारी है जहाँ तक भी हो सके नीतिवान व्यक्ति को उससे बचने का उपक्रम हर कीमत पर करना चाहिए।

सत्सगति

कुसगति मानव जीवन के लिए अभिशाप है और सत्सगति वरदान। महाराज भतृहरि ने सत्सगति की बडी अद्भुत महिमा गाई है। वह बुद्धि की जडता को हरती है, वाणी म सत्य का सचार करती है, मोक्लाकान्तरा म कीर्ति का विस्तार करती है इत्यादि, इत्यादि।[2] तात्पय यह है कि सत्सगति मानव के समस्त सद्गुणो की विधात है। रहीम ने सत्सगति पर बहुत अधिक नहा लिखा। वस्तुत व कुसगति के वणन म सत्सगति की महिमा भी प्रकारान्तर से बता गए हैं। जिसके सस्कार उत्तम हैं उसका कुसगति भी कुछ बिगड नही सकती और जो सस्कार हीन है सत्सगति उसे प्रभावित नही कर सकती। दोनो की सीमाएँ हैं। सीमा निर्देश के सम्बन्ध मे उनके दो प्रतिनिधि दोहे अवलोकनीय हैं—

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजग॥[3] ७४—प० ८
रहिमन जो तुम कहत हो सगति ही गुन होय।
बीच उखारी रस भरा रस काहे ना होय॥[4] १८७—प० १९

---

१ वेणीसहार—१ २०

२ जाड्य धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्।
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति॥
चेत प्रसादयतिक्षु दिक्षु तनोति कीर्तिम्।
सत्सङ्गति कथय किं न करोति पुसाम्॥ —नीतिशतकम् २३

३ सजन कुसगति सग तें सज्जनता न तजत।
ज्यो भुजग जन सग तऊ चन्दन विष न धरत॥ —वृन्द

४ सगति सुमति न पावई परे कुमति के धघ।
राखहु मेल कपूर मे, हींगु न होत सुगध॥ —विहारी

नित्य प्रति सर्पों से संयुक्त रहने पर शीतल प्रकृति चन्दन में विष व्याप्त नहीं हो पाता। और चारों ओर ईख ही ईख होने पर रसभरी के पौध में मिठास नहीं आ पाता। स्पष्ट ही दोनों के प्रभाव की सीमा है, परन्तु प्रभाव होता निश्चित है—
बाँटन वारे को लगे ज्यों मेंहदी को रंग।

परोपकार

रहीम के व्यक्तित्व विश्लेषण से स्पष्ट हो चुका है कि वे एक परोपकारी जीव थे। समकालीन एवं परवर्ती लेखकों ने उनके परोपकार की भूरि भूरि प्रशंसा की है। स्वतः रहीम ने अपने नीति काव्य में परोपकार पर कई दोहे लिखे हैं। परोपकारियों का स्वाभाविक गुण है, स्वतः कष्ट सहकर भी दूसरों को सुखी करना। महाराज भर्तृहरि ने ऐसे ही पुरुषों को मनुष्यत्व की सर्वोत्कृष्ट श्रेणी में रखा था।[1] इस तथ्य की अभिव्यक्ति के लिए रहीम का ध्यान सेना के घोड़ों की ओर गया था। कहा जाता है कि प्रत्येक सवार, अश्व विशेष पर ही सध कर युद्ध कर पाता है। इस तथ्य का ध्यान में रखते हुए, राजा टोडरमल ने, सवार का नम्बर, उसके प्रिय घोड़े पर दागने की प्रथा चलाई थी जिससे कि घोड़ा छाँटने में असुविधा न हो। निश्चित ही इस प्रथा में घोड़े को, दागने की पीड़ा सहन करनी पड़ती थी। अपने ही वातावरण से विषय सामग्री संचित करने वाले रहीम ने, महापुरुषों की परोपकार प्रियता के लिए लिखा—

यों रहीम गति बड़न की, ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार॥ १५७—पृ० १६

मनुष्य पशुओं की अपेक्षा कहीं अधिक ज्ञानवान प्राणी है। इसीलिए महापुरुष परोपकार के लिए अपना तन मन प्राण सभी कुछ न्योछावर करते रहे हैं। महाराज शिवि और मुनिवर दधीचि के उदाहरण जगत प्रसिद्ध हैं—

रहिमन पर उपकार के करत न यारी बीच।
मांस दियो शिवि भूप ने, दीन्हो हाड़ दधीचि॥ २०४—पृ० २०

रहीम ने घड़े और रस्सी का उदाहरण देते हुए परोपकार के भाव को बहुत सुन्दर रीति से समझाया है। घड़ा अपने गले में रस्सी की फाँसी बँधवाता है, जल में डूबता है, कुएं के भरे से टकराकर अपने अस्तित्व के विनष्ट होने का खतरा मोल लेता है, किन्तु दूसरों की तृष्णा अवश्य शान्त करता है—

रहिमन रीति सराहिए जो घट गुन सम होय।
भीति आप प डारि कै, सब पियावै तोय॥ २२८—पृ० २२

---

१ एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये।
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये॥
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये।
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे॥ —नीतिशतकम् ७५

यही परोपकार का आनन्द है और यही है अपने अस्तित्व का सुन्दरतम उपयोग। अन्यथा शरीर तो समाप्त होगा ही। अतः आवश्यक है कि शरीर रहते शक्ति भर जितना परोपकार किया जा सके करें—

कहि रहीम इतऊ करे जा की जहाँ बसात।
नहिं यह रहे न वह रहे रहे कहन को बात॥ २६८—पृ० २६

स्वार्थ

परोपकार का विलोम है स्वार्थ। परोपकारी अपने को कष्ट देकर अन्यों का कल्याण करता है। स्वार्थी अन्यों को कष्ट देकर अपने सुख की कामना करता है। कभी-कभी तो इस निम्न निकृष्टतम मार्ग अपनाने में भी नहीं चूकता। ऐसे जघन्य व्यक्तियों के लिए रहीम ने बबूल का प्रतीक चुना है जो फूल फल और छाया प्रदान करने के स्थान पर पथिकों के मार्ग में कांटे बोना अधिक अच्छा समझता है—

आप न काहू काम के डार पात फल फूल।
औरन को रोकत फिरें रहिमन पेड़ बबूल॥ १२—पृ० २

इन सूत्रों का सबसे बड़ा धर्म स्वार्थ ही होता है। स्वार्थ का रोग ऐसा प्रबल है कि यह जिसे लग जाता है उसे अन्धा कर देता है। स्वार्थ के रोगी बड़ा से बड़ा उपकार भुला देते हैं। अधिकांश संसार की यही गति हो गई है। जब तक स्वार्थ सिद्ध नहीं होता लोग पीछे पीछे लगे फिरते हैं स्वार्थ निकल जाने पर उपकारी व्यक्ति को दूध की मक्खी की भाँति निकाल कर फेंक देते हैं। जब तक भाँवर नहीं पड़ती, मौर का दुल्हा के सिर पर स्थान मिलता है। भाँवरें पड़ते ही उसे नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है। स्वार्थ की सीमा है—

काज परे कछु और है काज सरे कछु और।
रहिमन भाँवर के भये नदी सिरावत मौर॥ ३६—पृ० ४

स्वार्थियों का स्वार्थ इतना प्रबल है कि उन्होंने स्वयं स्वार्थ को भी स्वार्थी बना दिया है। स्वार्थ के भय से प्रेम भाव तो विदा ही हो गया है और स्वयं स्वार्थ अपना स्वार्थ समझ कर स्वार्थियों के हृदय में आ विराजा है—

कह रहीम या जगत से, प्रीति गई द टेरि।
रहि रहीम नर नीच म, स्वारथ स्वारथ हेरि॥ ३०—पृ० ३

चिन्ता

मानव हृदय को सबसे अधिक संतप्त करने वाली मनोवृत्ति चिन्ता है। वैसे तो चिन्ता मनुष्य का धर्म है और प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को कोई न कोई चिन्ता होती है होनी भी चाहिए। क्योंकि सर्वथा चिन्ता शून्य होना एक प्रकार से मानसिक विक्षिप्तता अथवा पागलपन होगा। इसीलिए प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति चिन्ता ग्रस्त रहता है। राजा से रंक तक, कुबेर से निर्धन तक सभी के मन चिन्तित हैं—दोष है उसका आधिक्य। अधिक चिन्तित व्यक्ति के लिए भोजन, शयन यहाँ तक कि

सम्पूर्ण जीवन दूभर हो जाता है। चिन्ता की सुलगती हुई भट्टी[1] में शरीर के मांस, मज्जा तथा मेधादि तत्व भुनकर राख हो जाते हैं। अतः रहीम का कथन है कि चिन्ता चिता से भी अधिक भयंकर है। चिता केवल मृतक को जलाती है जबकि चिन्ता चलते फिरते जीवित जागृत व्यक्ति को स्वाहा कर डालती है। अतः शान्ति प्राप्त करने के लिए चिन्ता मुक्त रहना परम आवश्यक है—

अन्तर दाव लगी रहे, धुआं न प्रगटे सोय।
कै जिय जाने आपुनो, जा सिर बीती होय॥ २१—पृ० ३
रहिमन कठिन चितान तं चिन्ता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को, चिन्ता जीव समेत॥ १७०—पृ० १७

इन विषयों के अतिरिक्त और भी शताधिक विषय रहीम के नीति काव्य में वर्णित हैं। विस्तार भय से सबकी व्याख्या करना सम्भव नहीं। अतः परिचयात्मक रीति से कुछ प्रतिनिधित्व दोहे यहाँ प्रस्तुत हैं—

१ आत्म प्रशंसा—ये रहीम फीके दोऊ, जानि महा सतापु।
ज्यों तिय कुच आपन गहे आप बड़ाई आपु॥ १५६—पृ० १५

२ याचा प्रदर्शन—करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन हजूर।
मानहु टेरत विटप चढ़ि, मोहि समान को क्रूर॥ २७—पृ० ३

३ अत्यधिक प्रसन्नता—करमहीन रहिमन लखो धस्यो बड़े घर चोर।
चितत ही बड़ लाभ के, जागत ह्वै गो भोर॥ २६—पृ० ३

४ क्षण भंगुरता—कागद को सो पूतरा, सहजहि में घुल जाय।
रहिमन यह अचरज लख्यो, सो उ खैंचत बाय॥ ३५—पृ० ४

५ क्षमा— छिमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात।
का रहीम हरि को घटो, जो भृगु मारी लात॥ ५५—पृ० ६

६ सहनशीलता—धरती की सी रीति है सीत घाम औ मेह।
जैसी परे सो सहि रहे, त्यों रहीम यह देह॥ १०६—पृ० ११

७ काल— रहिमन मैयत के लिए, काल जीत जो जात।
बड़े बड़े समरथ भये, तो न कोउ मरिजात॥ २१३—पृ० २१

८ स्मृति— रहिमन सुधि सबते भली लगै जो बारम्बार।
बिछुरे मानस फिर मिलें, यही जान अवतार॥ २३५—पृ० २३

---

१ चिन्ता ज्वाल शरीर बन दावा लगि लगि जाय।
प्रगट धुंवा नहिं देत है उर अन्तर धुंधियाय।
उर अन्तर धुंधियाय जरे ज्यों काच की भट्टी।
जरि गयो लोहू मास, रह गई हाड की टट्टी।
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो मेरे मिन्ता।
वे नर कैसे जियें जाहि तन व्यापे चिन्ता। —गिरिधरदास

९ रीझ— नाद रीझ तन देत मृग, नर धन हेत समेत ।
ते रहीम पसु तें अधिक रीझहु कछू न देत ॥ ११०—पृ० ११

१० सपूत—जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय ।
बढ़े अँधेरो तेहि रहे, गए अँधेरो होय ॥ ७८—पृ० ८

११ कपूत—जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय ।
बारे उजियारो लगे, बढ़े अँधेरो होय ॥ ७७—पृ० ८

१२ पतिव्रता—पन्नग बेलि पतिव्रता, रिति सम सुनो सुजान ।
हिम रहीम बेली दही, सत सोजन दहियान ॥ ११३—पृ० ११

१३ दोहा—दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहि ।
ज्यों रहीम नट कुंडली सिमिट कूद चढ़ि जाहिं ॥ ९९—पृ० १०

१४ विषय सुख—रहिमन राम न उर धरे रहत विषय लपटाय ।
पसु खर खाये स्वाद सो, गुर गुलियाए खाय ॥ २२५—पृ० २२

१५ माया ममता—कहु रहीम कतिक रही, केतिक गई बिहाय ।
माया ममता मोह परि, अन्त चले पछिताय ॥ ३२—पृ० ४

१६ मन—रहिमन मनहि लगाय के देख लेहु किन कोय ।
नर को बस करिबो कहा, नारायण बस होय ॥ २१४—पृ० २१

१७ भेषज—रहिमन बहु भेषज करत, व्याधि न छाँडत साथ ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ ॥ २१०—पृ० २१

१८ अनमोल संगति—कहु रहीम कसे निभै बेर केर को संग ।
वे डोलत रस आपने उनके फाटत अंग ॥ ३३—पृ० ४

१९ छिपाए न छिपें—खर खून खाँसी खुसी बर प्रीति मद पान ।
रहिमन दाबे न दबे, जानत सकल जहान ॥ ४७—पृ० ५

२० गुरुता—गुरुता फबै रहीम कहि, फबि आई है जाहि ।
उर पर कुच नीके लगें, अनत बतौरी आहि ॥

२१ गाँठ—जहा गाँठ तहँ रस नहीं यह रहीम जग जोय ।
मँडए तर की गाँठ मे गाँठ गाँठ रस होय ॥ ६०—पृ० ६

२२ दीन—दीन सबन को लखत है दीन लखे न कोय ।
जो रहीम दीनै लखै दीन बंधु सम होय ॥ ९५—पृ० १०

२३ बड़ा पेट—बड़े पेट को भरन को है रहीम दुख बाढ़ि ।
या तें हाथी हहरि कै, दिये दाँत द्वै काढ़ि ॥ १२३—पृ० १२

२४ प्रति—रहिमन प्रतो न कीजिए गहि रहिए, निज कानि ।
सजन प्रति फूले तऊ डार पात की हानि ॥ १६०—पृ०१६

२५ जिह्वा—रहिमन जिह्वा बावरो, कहिगै सरग पताल ।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल ॥ १८६—पृ० १८

२६ पानी— रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे मोती मानस चून॥ २०५—पृ० २०

२७ विवाह— रहिमन ब्याह बिआधि है सकहु तो जाहु बचाय।
पांयन बेडी परत हैं ढोल बजाय बजाय॥ २०९—पृ० २१

२८ गोत— रहिमन यो सुख होत है बढत देख निज गोत।
ज्यो बडरी अंखिया निरखि अंखियन को सुख होत॥ २२०—पृ० २२

२९ क्रोध—रहिमन रिस को छाडि के करो गरीबी भेस।
मीठो बोलो नय चलो, सब तुम्हारे देस॥ २२६—पृ० २२

३० सौदा—सौदा करो सो कर चलो रहिमन याही घाट।
फिर सौदा पहो नहीं दूरि जान है बाट॥ २६१—पृ० २५

३१ अचरज—बिन्दु मो सिन्धु समान, को अचरज कासों कहैं।
हेरन हार हेरान रहिमन अपुने आप तें॥ २७७—पृ० २७

इन दोहो के अतिरिक्त भी शताधिक दोहे और उद्धृत किए जा सकते हैं जिन्हे देखने से ज्ञात होगा कि रहीम के वर्ण्य विषयो की सूची बहुत लम्बी है। उनके प्रमुख विषयो की संक्षिप्त नामावली इस प्रकार गिनाई जा सकती है—

गुरु आयसु, प्रभु, प्रभु भक्ति, प्रभु आश्रय सत्य महिमा, दान महिमा दान का प्रभाव, सच्चे दानी दान की विधि, दोहे का महत्व, रूप का आकर्षण, याचना, याचकता, आपतकाल मे मांगना, मांगने से मानहानि, मांगना और उदार दानी, जेहि मुख निकसत नाम प्रभुता पर घर गए की प्रभुता, नारी, सती कुल वधू कामातुरा नपति, राज्य, अधिकारी, अगुनी अगुन ममता, चिन्ता मोह मर्यादा, आपद धर्म, संगति, कुसंगति, कुसंग और कुशल, दुर्जन का पड़ोस, सुजन मण्डली मे साधु की स्थिति, साधु बचते नाहि अगार, करमहीन, मूर्ख, मूर्ख का ज्ञान, प्रेम, प्रेम का फिसलना, पथ प्रेम की कसौटी, प्रेम मे प्राणो की बाजी, प्रेम और प्रियतम, प्रीतम छवि और पर छवि, धन, धन की आवश्यकता, धन की सुरक्षा, धन के दुर्गुण, लक्ष्मी चांचल्य अधिक धन संग्रह थोरे जल के मीन, दीन दीन और दीनबन्धु, दिव्य दीनता, अधम पेट बडे पेट का भरना स्वार्थ विपदा हू भली गाढे दिन के मीत, गाढे दोऊ काम, अनमेल का संग स्वामी सेवक, निबल, निबलो की रक्षा सबलता, घमण्ड, आत्म विश्वास आत्म गौरव अपनी गरज गम्भीरता, निज मन की व्यथा, गोपनीयता, गोपनीय पदार्थ गुप्त न रहने वाले भाव दुराव दुराव किससे बडे लोग बडो की संगति बडो के काम क्षमा, असमय समय का प्रभाव, नैन बान, उरोज का श्याम मुख, उरोज और कतौरी निधनता, सहिष्णुता, सर्वांगीणता से दूरी, टढपन की तासीर, कडुवे मुखन को चहियत यहै सजाय, मिष्ट भाषण भावी, भावी और कर्म, चातक मीन भ्रमर जिह्वा, अति सुधि, गोत्र सच्चा सूर, जागीर उत्तम प्रकृति, शोध, विषय सुख विवाह गांठ, मन रीझ, स्मृति काल, विष, इत्यादि इत्यादि।

प्रस्तुत वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रहीम का प्राप्त नीति काव्य विषय निरूपण की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। उन्होंने दान मान, सुसंग कुसंग, सज्जन दुर्जनादि कतिपय पूर्व विवेचित विषय परम्परा को आगे बढ़ाते हुए, उस घोर धार्मिकता एवं शास्त्रीयता के वातावरण से मुक्त करके, क्रियात्मक जीवन के आधार पर व्यक्त किया। यद्यपि उनके विषय निर्वाचन में धर्म एवं शास्त्र से वैमत्य नहीं किन्तु फिर भी उसमें सरस अनुभूति एवं लौकिक अनुभव का अंश ही अधिक है। मध्ययुगीन नीति काव्य की परम्परा में अधिकांश कवियों ने सामान्यतः कुछ ही घिसे पिटे विषयों पर काव्य रचना की है। गुरु महत्व नाम जप, नारी निंदा, ब्रह्मचर्य महिमा, असार संसार ईश्वर जीव माया ममत, क्षण भंगुरता, विषय त्याग आदि ऐसे ही विषय हैं। इस समस्त विषय निरूपण का दृष्टिकोण धार्मिक रहा है। रहीम ने रामायण, महाभारत, पुराणादि की कथाओं तथा प्रभु विश्वास पर पूर्ण आस्था रखते हुए भी, अपने नीति काव्य को अतिशय धार्मिक संकीर्णता से मुक्त रखा है। यही कारण है कि वे नीति काव्य को नवीन दिशा की ओर मोड़ देने में समर्थ हो सके। उन्होंने अपने गम्भीर शास्त्र ज्ञान तथा विस्तृत लोकानुभव के आधार पर विशुद्ध व्यावहारिक विषय विवेचन की परिपाटी की स्थापना की तथा नीति काव्य के धवल प्रसाद को दैनिक जीवन की नींव पर खड़ा किया। इसीलिये उनका नीति-काव्य केवल किसी वर्ग विशेष तक सीमित न रहकर आज भी प्रत्येक श्रेणी के लोगों की जिह्वा पर अंकित है।

५ | रहीम के नीति-काव्य मे भावानुभूति तथा रस

काव्य, कमनीयता पूर्ण रचना है। कमनीयता के मूल आधार दो हैं—अनुभूति और अभिव्यक्ति। अनुभूति जितनी तीव्र होगी अभिव्यक्ति उतनी ही सशक्त हो जाएगी। जिस प्रकार किसी वस्तु को देखकर, हमारी पुतली पर उसकी छाया पड़ती है और मस्तिष्क के योग से उसका रूप, नाम, कर्म इत्यादि समझ लिया जाता है उसी प्रकार किसी वस्तु, दृश्य, कथा, घटना अथवा विचार के मन मे आते ही हमारी चेतना पर जो मूक प्रतिक्रिया होती है, वही अनुभूति है। मन की इस मूक प्रतिक्रिया को कह देना अथवा अभिव्यक्त कर देना ही अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति के साधन और प्रकार, भिन्न भिन्न हैं। दैनिक क्रिया-कलापों में यही अभिव्यक्ति शाब्दिक रूप धारण कर, भाषा बन जाती है। विशिष्ट प्रतिभा एवं योग्यता सम्पन्न व्यक्तियों की अनुभूति जन्य शाब्दिक अभिव्यक्ति ही साहित्य एवं काव्य है। तूलिका के माध्यम से उसी अनुभूति का अभिव्यक्तिकरण चित्र कला, स्वर के माध्यम से उसी अनुभूति का अभिव्यक्तिकरण सगीत-कला तथा छेनी हथोड़े के माध्यम से उसी अनुभूति का अभिव्यक्तिकरण मूर्तिकला है। अतः स्पष्ट है कि इन सबका मूल तत्व अनुभूति ही है।

अनुभूति प्रक्रिया और काव्य

अनुभूति की क्रिया निष्पन्न होते ही हमारे मस्तिष्क का विचित्र शक्ति सम्पन्न कम्प्यूटर न जाने अपनी किस कोठरी से ध्वनि, वर्ण, शब्द और वाक्य एकत्रित करके उन्हें स्वर, लय, व्याकरण आदि के आधार पर व्यवस्थित कर देता है और फिर ध्वनि यन्त्रों का माध्यम लेकर, उन्हें भाषा के रूप में अभिव्यक्त करता है। परन्तु अभिव्यक्ति से पूर्व अनुभूतिजन्य सम्वेदनाओं के फलस्वरूप शब्द चुने जा चुके होते हैं, कर्त्ता, क्रियादि के व्याकरण नियमों द्वारा निबद्ध एवं वाक्यों के परिवेश में न्यस्त हो चुके होते हैं। भाषा का दर्शन अभी खोज नहीं कर पाया कि ये सब क्रियाएं मस्तिष्क के किस भाग में होती हैं और कैसे होती हैं? आश्चर्य तो तब होता है जब कि मस्तिष्क को सोचने का भी अवसर नहीं मिलता और सड़क पर बेतहाशा दौड़ता हुआ व्यक्ति किसी रेंगती चीज को देखकर चीख उठता है—साँप। कुछ इसी प्रकार से अनुभूति जन्य सम्वेदन जब आवेग, दीप्तता उत्साह आदि के कारण शाब्दिक रूप में फूट पड़ते हैं तब भाव कहलाते हैं। और वे ही सम्वेदन जब विशेष मनन एवं चिंतन की प्रक्रिया से गुजरते हुए व्यक्त होते हैं तो विचार कहलाते हैं। अनुभूति का सहज स्वाभाविक, वेगवान पक्ष भाव है और सुचिन्त्य पक्ष विचार। वैसे तो दोनों ही हमारी धारणा

शक्ति की उपज हैं किन्तु भाव धारणा के जिस अश से सम्बद्ध है उसे अशरीर शास्त्रीय भाषा मे हृदय (हार्ट नहीं) तथा जिस अश से विचार सम्बद्ध हैं उसे सामान्यतया मस्तिष्क कह दिया जाता है। आज तो प्राचीन मान्यताएँ टूट रही हैं किन्तु सामान्यत कविता का हृदय पक्ष से सम्बद्ध माना जाता रहा है जिसमे मस्तिष्क का योगदान कम और हृदय का अधिक रहता है। कदाचित इसीलिए तुलसी ने कहा था कि कविता म हृदय पक्ष विस्तृत समुद्र और मस्तिष्क पक्ष उस अनुपात मे सीपी जसा होता है—हृदय सिंधु मति सीप समाना।

अनुभूति पक्ष के आधार

स्पष्ट है कि कविता एक भावमय व्यापार है भाव का सहज उच्छलन ही कविता है।[1] किन्तु भाव का मस्तिष्क से एकदम अलग नहीं किया जा सकता और मस्तिष्क का धर्म है चिन्तन करना, मनन करना विचार करना। अत कविता से विचार पक्ष तिरोहित नहीं हो सकता। कदाचित इसीलिए काव्य के अनुभूति पक्ष को उद्घाटित करते हुए प्राय चार आधारों पर विचार किया जाता है—

१ भाव २ विचार ३ कल्पना एव ४ रस

इसम भी मुख्य है—रस भाव, विचार, कल्पना सभी रस के सहयोगी हैं। मात्र भाव एक प्रलाप होगा मात्र विचार, उपदेश और मात्र कल्पना एक लालालापन। कविता का सब प्रकार स पुष्ट करने के लिए चारों का सम्यु सामजस्य आवश्यक है। भाव कविता की मासलता है विचार मेरुदण्ड कल्पना रससचार तथा रस प्राण। स्वस्थ रहने के लिए सभी का विकसित होना आवश्यक होगा। यह बात दूसरी है कि मासलता के अधिक होने पर शरीर अधिक आकषक, मेरुदण्ड की अधिक सम्पुष्टि से दीघजीवी रससचार के अधिक सुचारु होने स फुर्तीला दिखाई पडता है।

नीतिकाव्य—एक मध्यमान

नीतिकाव्य का ढाँचा कुछ ऐसा है जिसमे अन्य तीनों पक्ष के साथ ही, विचार पक्ष की प्रधानता रहती है। भावना और कल्पना का स्थान सुरक्षित होते हुए भी विचार का प्राबल्य रहता है। किन्तु कल्पना और भावना विहीन विचार विज्ञान एव दशन की वस्तु हैं। काव्य के लिए साहित्य का योगदान परम आवश्यक है। नीति काव्य का विचार पक्ष जितना प्रौढ प्रबल तथा विस्तृत होगा उसका मूल्य उतना ही अधिक समझा जायगा। साथ ही उसकी अनुभूति जितनी मार्मिक और कल्पना जितनी सूक्ष्म होगी उसका प्रभाव उतना ही अधिक होगा। अधिकाश सन्तों की रचनाएँ उपन्यासिकाएँ इसलिए बन गई हैं क्योंकि उनम भावना की मार्मिकता और कल्पना की तरलता नहीं है। दूसरी ओर शृगारी कविता म वासना का स्थान है क्योंकि यहाँ शुद्ध विचारों के लिए स्थान नहीं। नीति को सहायक इसलिए माना है क्योंकि यहाँ शुद्ध विचारों के लिए स्थान नहीं। नीति काव्य इन दोनों के बीच की अवस्था का काव्य है। सब प्रकार स मधुर, सब प्रकार स आस्वाद्य और सब प्रकार स कल्याणकारी। कहने की आवश्यकता नहीं कि रहीम का

---

१ पोइट्री इज द स्पोन्टेनियस ओवरफ्लो ऑफ द पावरफुल फीलिंग्स —वड्सवथ

काव्य इसी प्रकार का काव्य है। उनके काव्य के अनुभूति पक्ष में भावों की मिठास, कल्पना की रंगीनी और विचारों की गहनता का त्रिवेणी एक साथ बहता है। इसीलिए उनकी कविता में विचारोत्तेजन के साथ रसानुभवन की भी शक्ति है। सच्चे कवियों की कसौटी यही है।

जहा तक रहीम के नीति काव्य के विचार वर्ग का सम्बन्ध है, उसका अध्ययन रहीम दोहावली के विषय वर्णन प्रसंग में हो चुका है। हा यदि नीति के प्रकारों की दृष्टि से, उसे धर्म अर्थ, कामादि के रूप में वर्गीकृत करना चाहें तो सरलता से कर सकते हैं। धर्म और नीति व्याख्येय शब्द है। वस्तुतः धर्म की कोई भी सर्वसम्मत व्याख्या अभी तक प्रस्तुत नहीं कि जा सकी। युधिष्ठिर महाराज ने यक्ष को बताते हुए यही कहा था। किन्तु जो हो उसका महत्व निश्चित है—धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित।[1] काव्यकारों ने भी इसी स्वर में स्वर मिलाते हुए कहा था—धर्मेण लभते सर्व धर्मसारमिदं जगत।[2] इसी लिए आदि कवि के काव्य में लेकर आज तक धर्म पर नाना प्रकार से काव्य रचना होती चली आ रही है।

धर्मनीति

नीति काव्य और धर्म का सम्बन्ध पर्याप्त घनिष्ठ है। किन्तु नीति में धर्म अपने बाह्य रूप अर्थात पूजा पाठ नमाज तीर्थ, व्रतादि के रूप में न आकर कर्त्तव्य के रूप में आता है। रहीम धर्मनिरपेक्ष प्रकृति के जीव थे। यद्यपि रामकृष्णादि की भक्ति विषयक कथन उनके नीति-काव्य में है किन्तु धर्म के नाम की दुहाई देकर उन्होंने कुछ नहीं लिखा। यही कारण है कि रहीम के नीति काव्य में धर्म शब्द का प्रयोग अत्यन्त सीमित है परन्तु है अवश्य। यथा—

> रहिमन विद्या बुद्धि नहीं नहीं धरम जस दान।
> भूपर जनम वथा धर, पसु बिन पूछ विषान ॥ २३२—पृ० २३ ॥

वस्तुत रहीम की धर्मनीति कर्त्तव्य परायणता की नीति है। वे इसी अर्थ में धर्म-परायण थे, सामान्य प्रचलित अर्थ में धर्मोपदेशक नहीं। फिर भी उन्होंने आपत् धर्म की चर्चा करते हुए अपनी रक्षा के लिए प्रत्येक सभव उपाय काम में लाने की सम्मति दी है, चाहे घूरे पर जाकर शरण लेनी पड़े[3] या किसी द्वार पर मांगना पड़े।[4] वैयक्तिक धर्मनीति की दृष्टि से उन्होंने दुख सुख में समभाव धारण करने की छोटों को क्षमा करने की[5], बन्धु जा बवा से प्रेम भाव बनाये रखने की[6] था[?] जीवन के लिए मुह काला न करने की[7] सामाजिक दृष्टि से दान करते रहने की[8], परोपकारमय जीवन बिताने की[9], प्रीति में प्राणों की बाजी लगा देने की[10] राजनैतिक दृष्टि में दानि के समान सर्वसमकारी दृष्टि अपनाने की[11], नीति पर बल दिया है। इनके

१ मनुस्मृति, ८ १५

२ बाल्मीकि रामायण, ३ ६ ३०

३ से ११ क्रमश रहीम रत्नावली, दोहा० स० ६८ ४२, ५८ ८५, ६८ ८७ ८८, १५२ तथा २२४

अतिरिक्त कुछ उपदेशपरक भाव भी देखे जा सकते हैं—

गहि सरनागत राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाव ॥ ८६—प० ८
रहिमन रस को छाँडि़कै, करौ गरीबी भेस।
मीठो बोलो नै चलो, सब तुम्हारो देस ॥ २२६—प० २२
राम नाम जान्यो नहीं भइ पूजा में हानि।
कहि रहीम क्यों मानि हैं, जम के किंकर कानि ॥ २३८—प २३
रहिमन वहाँ न जाइए, जहाँ कपट को हेत।
हम तन ढारत ढेकुली, सींचत अपनो खेत ॥ २३०—प० २३
अमर बेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिए काहि ॥ ७—प० १

अर्थनीति

धन सम्बन्धी प्रत्येक विचार योजना और रीति अर्थ नीति के अन्तर्गत हैं। भारत प्रारम्भ से ही धर्म प्रधान देश रहा है। अत धर्म रहित अर्थ को भारत में कभी महत्व नहीं दिया गया। पाश्चात्य विचारधारा के विपरीत यहाँ समस्त सुखों का मूल धर्म है, अर्थ नहीं। महाभारतकार का कथन है—धर्ममूल सदैव अर्थ।[1] आग्नेय पुराण के अनुसार अर्थ यदि वृक्ष है तो धर्म उसका मूल—धर्ममूलोऽर्थ विटप।[2] किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि अर्थ निन्दनीय है या अनावश्यक है। अनावश्यक एवं निन्दनीय है अधर्म से अर्जित धन, अन्यथा धन में तो सभी गुण निवास करते हैं।[3] चाणक्य ने इसीलिए उसके संग्रह पर बहुत बल दिया है।[4] रहीम भी धन सम्पत्ति के विरोधी नहीं वे अधर्मार्जित धन के विरोधी थे। वे जानते थे कि ऐसा धन कभी टिकता नहीं—रहिमन वित्त अधर्म को जरत न लागै बार। ऐसा धन स्वयं तो जाता ही है साथ में अन्य हितों को भी क्षय कर जाता है। अत यदि मात्र धन ही नष्ट हो और उससे किसी अन्य प्रकार की हानि न हो तो बहुत बड़ी हानि नहीं समझनी चाहिए—सोच नहीं वित हानि को जो न होय हित हानि। वस्तुत धन का महत्व साधन के रूप में है, साध्य के रूप में नहीं। साधन की दृष्टि से वह जीवन के कार्य व्यवहारों के लिए परम आवश्यक है। जब तक अपने पास धन नहीं होता, विपत्ति में कोई परवाह नहीं करता—

१ महाभारत—शान्तिपर्व १२३ ४
२ आग्नेय पुराण २२४ २
३ यस्यास्ति वित्त स नर कुलीन
स पण्डित स श्रुतवान गुणज्ञ।
स एव वक्ता स च दर्शनीय
सर्वेगुणा काञ्चनमाश्रयन्ति ॥ नी० शतक—४१ ॥
४ चाणक्य नीति—६ १६

रहिमन निज सम्पति बिन कोउ न विपति सहाय।[1] ३०१—प० २०

अत हम कह सकते हैं कि धम तथा सम्मानपूवक धन का अजन तथा दान धमादि करत हुए विपत्ति काल के लिए उसका सरक्षण ही रहीम की आर्थिक नीति थी। दान उनकी अथनीति का अनिवाय अग था—

तब ही लौं जीवो भलो, दीबो होय न धीम।
जग मे रहिवो कुचित गति, उचित न होय रहीम॥[2] ८७—प ६

कामनीति

भारतीय सस्कृति म जिस प्रकार अथ को धम के अधीन माना गया है उसी प्रकार काम को धम और अथ दोना के अधीन स्वीकार किया गया है। वैसे भी अथ-हीन उपभोग केवल आकाश-कुसुम ही है। अत अथ एव धमयुक्त काम काम्य है। महाभारत न उसे धम अथ का फल स्वीकार किया है—

धम मूल सदवाय कामोऽथ फलमुच्यते।[3]

आग्नेय पुराण मे भी यही तथ्य स्वीकृत है—

धममूलोऽथ विटप तथा काम फलो महान्।[4]

---

१ रौनक बहार होती है पसे से सब वसूल।
जो न हो तो चेहरे पै उडती है खाक धूल॥
पसा ही सारी चीज है, पसा ही मद मूल।
बिन पसा आदमी है जहाँ बीच नामाकूल॥
पसा ही रग रूप है, पैसा ही माल है।
पसा न हो तो आदमी चर्खे की माल है॥—नज़ीर

लेकिन दूसरा पक्ष यह भी है—

काम कारूँ के न आया मालोजर।
मुनइमों! दौलत पै बेजा है घमण्ड॥—अजुम

—उर्दू कवियों की नीति कविताएँ—शिवनाथ शाडिल्य (१९२८ मेरठ), पृ० ३४

२ तब ही लौं जीवो भलो दीबो होय न धीम।
बिन दीबो जीवो जगत, हमें न रुच रहीम॥
हमें न रुचै रहीम, दिये बिनु जग म जीवो।
यहै एक है सार धन निज कर जो दीवो॥
धन की शोभा दान, दान सों जस फले जग।
जब लौं पर उपकार बने, धन्य जनम तबही लग॥

—राधाकृष्ण ग्रथावली—रहीम दोहो पर ११३ कुण्डलिया वाला भाग, स० श्यामसुदर दास (१९३० खण्ड प्रथम), प० ५३

३ महाभारत (शान्तिपव) १२३ ४

४ आग्नेयपुराण २२४ २

सम्पूर्ण कामशास्त्र की नीति यही है। कामसूत्रकार वात्स्यायन मुनि ने एक पग और आगे बढ़कर काम को धर्म ग्रंथ के समकक्ष ही स्थान दिया है। उन्होंने स्वीकार किया है कि काम की कतिपय कमियाँ हैं परन्तु क्या उन्हीं के कारण काम की सर्वथैव विगर्हणा नहीं की जा सकती क्या चोरों का भय होने हुए भी धनार्जन नहीं किया जाता? क्या मृगादि के भय से कृषि कर्म छोड़ दिया जाता है? क्या भिक्षुकों के भय से भोजन पकाना बन्द कर दिया जाय? तो फिर काम का उचित उपभोग भी क्या न किया जाय?[1]

नहि भिक्षुका सन्तीति स्थाल्यो नाधिश्रीयन्ते।
नहि मृगा सन्तीति यवा नाप्यन्त इति वात्स्यायन ॥[2]

किन्तु मध्य युग का वातावरण इन कथनों के प्रतिकूल था। सभी सन्त भक्तों ने काम और कामिनी की जी खोलकर निन्दा की है। किन्तु रहीम इसके विरोधी जान पड़ते हैं। उनका कोई स्वर काम-कामिनी निन्दकों के साथ नहीं मिलता। इसके विपरीत नगर शोभा, फुटकर बरवै तथा स्वयं नीति के दोहों में कहीं कहीं सुन्दर शृंगारिक चित्रण सोल्लास किये गये हैं—

मनसिज माली की उपज कही रहीम नहिं जाय।
फल श्यामा के उर लगे फूल श्याम उर आय ॥ १३८ पृ० १४ ॥

साथ ही वे काम की आतुरता के प्रति भी सजग हैं और कामातुरों के स्वार्थादि की प्रवृत्ति के प्रति सभी को सजग करते हुए कहते हैं—

अरज गरज मानें नहीं, रहिमन ए जन चारि।
रिनिया राजा, माँगता, काम आतुरी नारि ॥ ६—पृ० २ ॥

एक अन्य दोहे में उन्होंने मदन के घोड़े पर चढ़े हुए पुरुष के अग्नि पथ का भी उल्लेख किया है। परन्तु ये कथन विश्व का अनुभूत एवं तटस्थ सत्य है। इनमें न गर्हणा का भाव है और न अतिशयोक्ति का। यही कारण है कि किसी के लिए भी इससे असहमति प्रकट करना कठिन होगा। साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने कामातुरा का उल्लेख अन्य कवियों की भाँति ढोल गंवार बाघिनी सर्पिणी मात्र के साथ न करके राजा के साथ किया है। यह नीति केवल इसी दोहे में नहीं अन्यत्र भी देखी जा सकती है—

उरग तुरग, नारी नृपति नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हें सँभारिए, पलटत लगै न बार ॥ १४ पृ०—२

स्पष्ट है कि यहाँ नारी के साथ उरग तुरग आदि गर्हित तत्व ही नहीं नृपति जैसे सम्मानित पद भी हैं। एक अन्य प्रमुख बात यह है कि नारी के रूप तथा कामासक्ति के

---

१ कामशास्त्र के महत्व तथा भगवान महादेव एवं नन्दी आचार्य से लेकर वात्स्यायन एवं परवर्ती आचार्य परम्परा के लिए देखें—कामसूत्रम् (लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस सं० १९७१) प्रथम भाग, विस्तृत की भूमिका।

२ काम सूत्र १/२/३८—वही पृ० ७१

वसे प्रतिरजित चित्र भी रहीम ने नही उतारे जैसे सस्कृत के नीति कवियो ने ।[1] तात्पय यह है कि रहीम के नीति का य म नारी का असम्मान नही है । उनकी कामनीति म मध्यमाग का अवलम्बन है । पुरुष एव स्त्रियो को सामा यत कामातुरता के प्रति सावधान रहते हुए आयु-साधन एव मयादा के अनुकूल कामच्छाओ की परितुष्टि करनी चाहिए यही रहीम की कामनीति का साराश है—

रहिमन थोरे दिनन कों, कौन करे मुँह स्याह ।
नहीं छलन को परतियाँ, नहीं करन को ब्याह ॥ ९४—पृ० १६ ॥

मोक्षनीति

भारत आध्यात्मिकता प्रधान देश है । आध्यात्मवाद म जितनी कामना मोक्ष की है उतनी सम्भवत शायद ही किसी अ य विषय की हो कि तु आश्चयजनक तथ्य यह है कि भारत म मोक्ष के सम्बन्ध म कभी एक सी मा यताएँ नही रही । विभिन्न ऋषियो, आचार्यों, धमानुयायियो तथा मत सस्थापको ने अपन अपने विचारो के अनुसार माक्ष की विभिन्न व्याख्याएँ की हैं । सभी दाशनिको का मोक्ष सम्ब धी विवेचन भि न भि न है ।[2] इतनी विभि नता होते हुए भी उन सब म कुछेक समानताएँ खोज लेना बहुत कठिन नही है । सच पूछिए तो भारत की विशेषता ही है—विभि नता मे एकता की खोज । वाममार्गियो को छोड प्राय अ य सभी मनीषी इष्टदेव का भजन, प्राणिमात्र का हित, सादा जीवन तथा विषय त्याग आदि का मोक्ष साधना का माग स्वीकार करते हैं । रहीम, मोक्ष व्याख्याता नही थे । इस्लाम धमावलम्बी होने के

---

१ नारी के आकषण विकषण के एक साथ प्रतिरजित रूप के लिए छोटी सी पुस्तक शुक रम्भा सवाद बडी मह्त्वपूण है । इसम रम्भा नारी के लौकिक भोग का तथा शुक त्याग का पक्ष प्रस्तुत करते है । आस्वादाथ कुछ छ द निम्नोद्धृत हैं—

रम्भा— कामातुरा पूणशशाक वक्त्रा बिम्बाधरा कोमल नाल गौरा ।
नालिंगता स्वे हृदये भुजाभ्या वृथा गत तस्य नरस्य जीवितम् ॥ ८ ॥
आन ददग्धा तरुणी नताङ्गी सवधम ससाधन सष्टि रूपा ।
कामायदा यस्य गृहे न नारी वृथा गत तस्य नरस्य जीवितम् ॥ ३६ ॥
च द्राननाः सु दर गौरवर्णा व्यक्तस्तनी भोग विलास दक्षा ।
ना दोलिता य नयनेषु येन, वृथा गत तस्य नरस्य जीवितम् ॥ ३१ ॥
शुक—माया करण्डी नरकस्य हण्डी तपो विखण्डी सुकृतस्य मण्डी ।
नणा विखण्डी चिरसेविता चेत् वृथा गत तस्य नरस्य जीवितम् ॥
चि ता यथा दु खमयी सदोषा ससार पाशा जनमोहकर्त्री ।
स तापकोशा मजिता च येन वृथा गत तस्य नरस्य जीवितम् ॥
कापटयवेषा जनवचिका सा विण्मूत्रदुगधदरी दुराशा ।
ससेविता येन सदा मलाढया वृथा गततस्य नरस्य जीवितम् ॥

२ देखें भारतीय दशन—वाचस्पति गरोला (प्र० स०) विभि न दशनो मे मोक्ष सम्ब धी विवेचन

कारण उनकी भि न मा यताएँ होना और भी स्वाभाविक है। किन्तु उपयु क्त तत्वो से सम्ब धित दाहा को खोज कर, उनके मोक्ष नीति सम्ब धी प्रत्यक्ष एव परोक्ष विचार जान सकते हैं—

राम नाम जान्यो नहीं, भइ पूजा मे हानि।
कहि रहीम क्यों मानिहैं जम के किंकर कानि॥ २३४—पृ० २३
रीति प्रीति सबसों भली बर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की बहुरि न सगत होत॥२४०—पृ० ३३
जो विषया सतन तजी मूढ ताहि लपटात।
ज्यो नर डारत बमन कर स्वान स्वाद सो खात॥ ८३—पृ० ६
सदा नगारा कूच का बाजत आठों जाम।
रहिमन या जग आइक को करि रहा मुकाम॥ २४६—पृ० २४

धम, अथ काम, मोक्ष के अतिरिक्त फुटकर विषया की सूची तो विगत अध्याय मे प्रस्तुत की ही जा चुकी है। इस सब विवरण से स्पष्ट है रहीम के नीति का य का विचार पक्ष अत्य त पुष्ट परिपक्व तथा विस्तृत है।

भावानुभूति

रहीम के भावुक स्वभाव का विस्तृत विवेचन, उनके यक्तित्व सम्बन्धी प्रसग म किया जा चुका है। किसी का य, चित्र, उक्ति अथवा काय पर प्रसन्न होकर, लाखा का पुरस्कार दे डालना रहीम का सामा य काय था। याचक की आवश्यकता अथवा निधन की दीनता को देखकर उनका हृदय करुणा से भर जाता था। वीरता जहाँ भी हो, शत्रु अथवा मित्र म उसकी सराहना करना सौन्दय जहा भी हो प्रकृति म अथवा नारी म उस पर रीझ उठना कला जहाँ भी हो काय म अथवा चित्र म, उससे पुलकित हो उठना व्यक्ति की भावुक मनोवृत्ति के परिचायक हैं। इस दृष्टि से मदनाष्टक नगर शोभा बरव तथा फुटकर छद सभी उनकी भावुकता के प्रकाटय प्रमाण हैं। मादक वस्तुओ एव घटनाओ को देखकर भाव विभोर होने के बजाय उनसे नीति सम्बन्धी निष्कर्ष निकालना भावुक यक्तियो के लिए और भी अधिक कठिन काम है। पर तु रहीम के लिए यह अत्यन्त सरल था।

बडी बडा आँखा को देखकर नत्र प्रसन्न होते ही हैं किन्तु रहीम की अनुभूति म यह अपने गात्र की अभिवृद्धिजय प्रसन्नता है।[1] उरोज भी मास के गम्भीर पिण्ड हैं और रसौली भी, किन्तु रहीम की अनुभूति है कि गुरुता सभी का फबती नही। उरोजा का उत्तरोत्तर गुरुता हष कारक होती है जबकि रसौली म बढते हुए मास की गुरुता दुःख चिन्ता और कलप का विषय है।[2] रहीम ने दीप क जलते ही प्रकोष्ट क अन्दर की सभी वस्तुओं क देख जान पर अनुभव किया कि जब एक ही दीपक से अन्दर की सम्पूण वस्तुए दीख गइ तब नत्रो के दीपक जलने पर भी अन्तस का छिपा अनुराग क्या न प्रकट हो।[3] प्रेमी प्रेमिका के नत्रा की आँख मिचौनी देख और सयोग

१ ॥ ३ रहीम रत्नावली, क्रमश दाहा स० २२० ५१ तथा २७

के परिणाम अर्थात् कुचमदनादि का अनुभव न कर, रहीम के हृदय का नीति कवि गा उठा—

> कुटिलन सङ्ग रहीम कहि, साधू बचते नाहि ।
> ज्यों नना सना करें उरज उमेठे जाहि ॥ ४०—पृ० ४

यहाँ अनुभूति की सरसता तथा नीति की उपादेयता का मणि कांचन संयोग देखते ही बनता है। सामान्य घटना अनुभूति की गहराइयों में ले जाकर आस्वाद्य बना देना और फिर उससे नीति रत्न भी निकाल लेना रहीम के अनुभूति विधान की अमूल्य उपलब्धि है। उन्होंने सायंकालीन वेला में नारी को दीपक जलाते तथा बुझने के भय से आंचल में छिपाते देखा और देखा उसी अंचल से भोर होते समय दीपक को बुझाते। कल के रक्षक को आज का भक्षक देखकर नीति कवि का हृदय, असमय की इस प्रबलता पर चीत्कार कर उठा—

> जिहि अंचल दीपक दुरयो हन्यो सों ताही गात ।
> रहिमन असमय के परे मित्र शत्रु ह्वै जात ॥ ६२—पृ० ७

इसी प्रकार कल के गिरासीन मौड को दुल्हिन प्राप्ति के तुरंत पश्चात्, दूल्हे द्वारा जल में प्रवाहित किया जाता देख रहीम ने अनुभूति की आँखों से—काज परे कछु और है काज सरे कछु और का निष्कर्ष निकाल लिया। रहीम जैसा अनुभूतिशील नीति-कुशल कवि ही इस सामान्य घटना से इतना बड़ा निष्कर्ष निकाल सकता है। अनुभूति के बल पर ही रहीम ने शतरंज के खेल के प्यादे का फरजी बनता देख निष्कर्ष निकाला था—जो रहीम ओछो बढे तो अति ही राय। अनुभूति की सघनता सा देखिए—

> मूढ़ मण्डली में सुजन ठहरत नाहिं विसेखि ।
> स्याम कचन में सेत ज्यों, दूरि कीजियत देखि ॥ १५६—पृ० १५

डालडा और चाय समृति के इस युग में तो बाल जन्म से ही सफेद होने लगे हैं किन्तु पहले यह ढलती आयु का व्यापार था। काले बालों के बीच सफेद हुए, एक दो बालों को उखाड़ फेंकना लोक जीवन का सामान्य व्यापार है, किन्तु रहीम की अनुभूति प्रवणता ने इसे ही कविता का विषय बनाकर नीति निवचन का अवसर निकाल लिया। जिस प्रकार असंख्य काले बालों के बीच से एक दो श्वेत बालों को उखाड़ कर फेंक दिया जाता है उसी प्रकार दुष्टों के बीच से अल्प संख्यक सज्जन निकाल बाहर कर दिये जाते हैं। कितना बड़ा तथ्य और कितनी सामान्य घटना से। इसी को कहते हैं 'जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि।' अब अनुभूति की तरलता का एक उदाहरण लीजिए—

> रहिमन अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ ।
> जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥ १६५—पृ० १६

आसू के ढलकते ही हृदय के दुख का प्रगट होना सामान्य है किन्तु रहीम की अनुभूति यहाँ आंसुओं की बूंदों के समान तरल हो गई है और उस तरल अनुभूति ने ...

ही यही सरलता है एक ऐसा करिश्मा लेकर आता है जो पाठक को विचार करने पर मजबूर कर देता है—जाँ, जिसकी देह तें काम न आवै कहि देत ॥ यह नीति कथन शाश्वत एवं सार्वभौमिक सत्य है। साथ ही यह वैयक्तिक नीति के लिए उपयोगी है, सामाजिक नीति के लिए उपयोगी है, आर्थिक नीति के लिए उपयोगी है और राष्ट्रीय नीति के लिए भी उपयोगी है। अब हम रहीम की अनुभूति की सूक्ष्मता का एक उदाहरण प्रस्तुत करके इस प्रसंग का समापन करते हैं—

> रहिमन प्रीति सराहिए मिले होत रंग दून।
> ज्यों जरदी हरदी तजै तजै सफेदी चून ॥[1] २०८—पृ० २१।

हल्दी और चूना आदि के अवसरों पर रोली के प्रभाव में हल्दी और चूना मिलाने पर उन दोनों के रंग परिवर्तन की सूक्ष्मता पर जिस दृष्टि से रहीम की कवित्व प्रतिभा ने विचार किया वह उनके सूक्ष्म पर्यवेक्षण का द्योतक है। सामान्यतः कवि सूक्ष्मदर्शी प्राणी है। वह घटनाओं की सूक्ष्मता को पकड़ता है। उन्हें अनुभूति के रंग में डालता है और भाषा के माध्यम से व्यक्त कर देता है। परन्तु रहीम की इसके अतिरिक्त अन्य विशेषता है सामान्य घटनाओं की नीतिपरक व्याख्या। अनुभूति की सरलता, गहनता और सूक्ष्मता के सहारे वे घटना भाव या वस्तु व्यापार की गहराई में गोता लगाकर कोई न कोई अमूल्य रत्न ढूंढ लाते हैं जिससे नीति के प्रियदर्शी एवं हित साधक प्रकाश की रश्मियाँ फूटती रहती हैं।

रसानुभूति

रस भारतीय वाङ्मय का चिर अभिलाषित तत्त्व है। ईश्वर सम्प्राप्ति अथवा मोक्ष से लेकर इन्द्रिया को नितान्त स्थूल आनन्द अथवा भोग रस की व्याप्त परिधि में समाहित हो जाते हैं। इसीलिए वेद[2] उपनिषदादि[3] धर्म एवं दर्शन के उच्चतम ग्रन्थों में भी रस की चर्चाएँ हैं और रति रहस्य अनंत तरंग एवं कामसूत्रादि में भी। काव्य शास्त्र का रस इन दोनों का मध्यवर्ती है। यह लौकिक नायक-नायिकादि के संयोग वियोग से सम्बद्ध होते हुए भी ब्रह्मानन्द नहीं तो ब्रह्मानन्द सहोदर अवश्य है। प्राचीन काल में इस ब्रह्मानन्द सहोदरत्व का स्थान इतना ऊँचा था कि उसकी स्थिति के बिना उच्चकोटि के काव्य की कल्पना नहीं की जाती। काव्य ही उस वाक्य को कहा गया जो रसात्मक है—रसात्मक वाक्यं काव्यम्। रस की व्याख्याएं भरत मुनि से लेकर डा० नगेन्द्र तक इतनी होती चली आ रही हैं कि यदि उस सम्पूर्ण समालोचना साहित्य का एकत्रित कर लिया जाय तो केवल प्रथम कोटि के ग्रन्थों की

---

१ क़दमे शौक बढ़ें इनकी तरफ क्या 'अकबर'।
दिल से मिलते नहीं ये हाथ मिलाने वाले॥
—उर्दू कवियों की कविताएं—शिवनाथ शांडिल्य (१९६८) पृ० ४४

२ ओ३म आपो ज्योतीरसोऽमृत ब्रह्म भूर्भुवः स्वरो स्वाहा।

३ रसो वै सः। रस ह्येवाय लब्ध्वानन्दी भवति—तैत्तरीय उपनिषद्।

संख्या शताधिक होगी। इस क्षेत्र में विश्व वाङ्मय के अंतर्गत भारत का अपना स्थान है। विश्व के काव्य शास्त्र में काव्य रस विषयक भारतीय स्थापनाएं महत्तम एवं श्रेष्ठतम हैं।

आश्चर्य यह है कि इतनी विशद व्याख्याओं के होते हुए भी रस सम्बन्धी अनेक प्रश्नों पर विद्वानों में मतैक्य नहीं। उदाहरणार्थ रस संख्या का प्रश्न लिया जा सकता है। नाट्य के आठ रसों से लेकर उनकी संख्या लगभग सवा सौ तक पहुँच गई है। 'शृंगार के ५२ उपभेद, हास्य के ३६, करुण के ८, वीर के ६, भयानक के ६, वीभत्स के ६, अद्भुत के २, रौद्र के ३ तथा शान्त के शून्य, सर्वयोग १२२ है।'[1] नीति काव्य के काव्यत्व का प्रश्न भी ऐसा ही है। क्योंकि नीति के कवि प्रायः उपदेश की सर्जना करते हैं जिसमें रस नहीं आ पाता। 'यदि कवि जान बूझकर नैतिक हो तो वह उपदेशक हो जायगा कलाकार नहीं।'[2] हमारा विनम्र निवेदन है कि यह धारणा उच्च प्रतिभा सम्पन्न कवियों के सम्बन्ध में किसी प्रकार भी सत्य सिद्ध नहीं होती। अनुभूति प्रवण, भावुक, संयम तथा रस सिद्ध कवि के मानस से अनुभूति के क्षणों में जो निकलता है, रस मय होता है। रहीम का नीति काव्य हमारे कथन का ज्वलन्त प्रमाण है।

हाँ एक सीमा अवश्य है और वह है विषय एवं शैली की। रमणी-सौन्दर्य, कच कुच कुटिल कटाक्षादि पर रसवर्षण जितनी सरल है ईश्वर, जीव प्रकृति, सत्य परोपकारादि विषयों में उतनी ही कठिन। दूसरे महाकाव्यकार अथवा प्रबन्धकार को रस निष्पत्ति के लिए जितना अवकाश रहता है मुक्तककार को वह प्राप्त नहीं होता। 'प्रबन्ध की विस्तृत भूमि में रस सामग्री जुटा रखने के लिए पर्याप्त स्थान रहता है परन्तु मुक्तक की संकीर्ण नली में इस सामग्री का भरना बहुत ही कठिन काम है।'[3] यह कठिनाई बरवै दोहे और सोरठे जैसे लघु आकार के नीति विषयक छन्दों में और भी उग्रतर रूप में उपस्थित होती है। और फिर रहीम व्यावसायिक या दरबारी कवि नहीं थे। मन की मौज में मनोरंजन के लिए कविता करते थे।[4] किन्तु इन विषमताओं के होते हुए भी उनके नीति के दोहों में चुभन की, आह्लाद की, रस की, एक ऐसी संयोजना है जो आह्लादित किये बिना नहीं रहती—

१ रस सिद्धान्त—डा० नगेन्द्र (प्र० सं०), पृ० २५४

२ पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त—श्री लीलाधर गुप्त (प्र० सं०) पृ० २३६

३ सतसई सप्तक—डा० श्यामसुन्दर दास (१९६१ प्रयाग) पृ० २ (भूमिका)

४ एक लहैं तप पुंजन को फल ज्यों तुलसी अरु सूर गुसाईं।
एक लहै बहु संपत केसव भूषन ज्यों बर बीर बड़ाईं॥
एकन को जस ही सों प्रयोजन है रसखान रहीम की नाईं।
दास कवित्तन की चरचा, बुधि वंतन को सुख देत सदाईं।
(कविवर भिखारीदास कृत), काव्य निर्णय—सं० जवाहरलाल चतुर्वेदी
(द्वि० सं०) पृ० ५

कुटिलन संग रहीम कहि साधू बचते नाहिं ।[1]
ज्यो नना सैना करें, उरज उमेठे जाँहि ॥ ४०—प० ४

यहाँ रहीम का उद्देश्य है कुसंगति दोष का विवेचन । कुटिल जनों के साथ रहने मात्र से निर्दोष एवं निरपराध साधु प्रकृति सज्जनों को भी दण्ड सहन करना पड़ता है भले ही अपराध उनके द्वारा न होकर, पड़ोसी[2] या संगी दुष्टों द्वारा किया गया हो । रहीम की रहीमता इस तथ्य की सम्पुष्टि तथा अभिव्यक्तिकरण पद्धति में है जो इतनी मादक एवं सहृदय हृदयानुरंजनकारी है कि रस लेते ही बनता है व्याख्यान करते नहीं । यद्यपि रसिक जनों को आश्रय, भ्रूभंग कुशला रमणी को आलम्बन नैन सैन को अनुभाव इत्यादि मानकर रस सामग्री को उपस्थित किया जा सकता है किन्तु उससे परिचित हुए बिना भी सामान्य पाठक दोहे का जो आनन्द लेता है वह काव्य शास्त्रीय व्याख्या से कहीं अधिक आह्लादनीय है । रहीम को भी कदाचित यही अभीष्ट हो क्योंकि उन्होंने भरत के विभावानुभाव संचारी इत्यादि सूत्र को सम्मुख रखकर बिहारी की भाँति का रीति सिद्ध काव्य नहीं रचा । फिर भी आस्वादार्थ यहाँ विभिन्न रस भावादि के कतिपय प्रसंग प्रस्तुत हैं—

शृंगार तथा सजातीय भाव

शृंगार रस की भित्ति प्राणि मात्र की उस सर्वव्यापिनी भावना पर आधृत है जिसे शास्त्रीय भाषा में स्थायी भाव रति की संज्ञा दी गई है । निश्चित ही रतिज यह रस, कविभारती के नवरस रुचिरा[3] होते हुए भी अपने में अद्वितीय है ।[4] आश्चर्य होता है रस सिद्धान्त के आदि मनीषियों की प्रतिभा पर जिन्होंने पुत्र विषयक वत्सल भाव तथा देव विषयक श्रद्धादि को भी रति के अन्तर्गत समाहित किया था । क्योंकि युगयुगान्तरों के पश्चात फ्रायड जैसे मनोविश्लेषक को ग्रोडोपस ग्रंथि और चेतन, अवचेतनादि की खोज करते हुए भी लगभग यही तथ्य स्वीकार करना पड़ा है ।[5] पाश्चात्य विचारकों ने मनोविज्ञान के आधार पर प्रेम वासना तथा उसके काव्य में योगदान पर विस्तार से विचार किया । उन विचारों को हिन्दी ग्रन्थों में भी देखा जा सकता है ।[6]

---

१ बयो बसिये क्यों निबाहिये, नीति नेह पुर नाहिं ।
लगालगी लोचन करें नाहक मन बँधि जाँहि ॥—बिहारी

२ बसि कुसंग चाहत कुशल यह रहीम जिय सास ।
महिमा घटी समुद्र की रावन बस्यो परोस ॥—र० रत्ना०, १२७—प० १३

३ नियतिकृत नियम रहिता ह्लादैकमयी मनन्यपरतन्त्राम नवरस रुचिरा निर्मितमादधती भारती कवेर्जयति ।—मम्मट

४ शृंगार एव एको रस इति । —शृंगार प्रकाश ।

५ मनोविश्लेषण—फ्रायड (श्री देवेन्द्र वेदालंकार का हिन्दी अनुवाद) प० २७८ २९४ तथा ३००

६ देखें मधुर रस स्वरूप और विकास भाग १—रामस्वार्थ चौधरी पृ० ८८ ११२

रहीम के स्वभाव की शृगार प्रियता का उल्लेख हम स्थान स्थान पर करते रह हैं। फुटकर बरवो तथा शृगार सोरठा के रचयिता की कलम से निकली नीति का भी शृगार सौरभ मे सिंचित हो जाना स्वाभाविक था। नीति काव्य के क्षेत्र मे शृगार सरिता का वह अजस्र प्रवाह तो नही जो नगरशोभा अथवा बरवै नायिका भेद म है, परन्तु उसके मधु भीने छींट अवश्य ही अवलोकनीय हैं। प्रेम और काम सम्बन्धी दोहो मे ये छीटे अपेक्षाकृत सघन हैं—

जे सुलगे ते बुझि गये बुझे ते सुलगे नाहि।
रहिमन दाहे प्रेम के बुझि बुझि क सुलगाहि ॥ ६६—पृ० ७१
मनसिज माली की उपज, कही रहीम नहि जाय।
फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर आय ॥ १३६—पृ० १४

प्रथम दोह मे प्रेमाग्नि की लोकाग्नि से भिन्नता प्रदर्शित है। सामान्य अग्नि सुलग कर कुछ देर मे बुझ जाती है और जो पहले ही बुझ गई उसका फिर सुलगना क्या ? किन्तु प्रेम की अग्नि विचित्र है। यह एक बार लगने पर, बुझने का नाम नही लेती, इसीलिए प्रेम की अग्नि का जला प्राणी, बुझ-बुझकर सुलगता है। सुलग सुलग कर बुझन की मिठास निश्चित ही हृदय म एक गुदगुदी उत्पन्न करती है। और यही गुदगुदी रहीम क शृगार की विशेषता है। वे अपने शृगार सिंचित नीति का पक्ष को उस सीमा तक नही ल जाते जहा पहुँच कर वासना की गध उभरने लगती है। यह शृगारी कविया का मुबारक रह। रहीम का काव्य हम मात्र गुदगुदाता है, प्रहर्षित करता है, सरसाता है और इसी के साथ साथ सिखाता भी है। आज भी हम यह शैली, मुशी प्रेमचद के उपन्यासा म देख सकते हैं। वे अपने प्रेम प्रसगों को उस सीमा से आगे नही ल जात जहा से वासना के क्षेत्र का समारम्भ हो जाता है।

प्रेमाग्नि के प्रज्वलक कामदेव का प्रभाव भी विचित्र है। इस मनसिज माली ने लौकिक वनस्पति शास्त्रीय नियमा को ताक म उठाकर रख दिया है। क्योकि फल उसी डाल पर आता है जहां फूल हो। वह एक पका हुआ वानस्पतिक गर्भाशय है[1], जो फूल की पश्चातवर्ती उपज है। हा लौकी तोरी करेल आदि कुछ बेला मे मादा फूला म प्रारम्भ से ये जइया दिखाई पडने लगती हैं जबकि सामान्य फूला मे प्रलुप्त रहती हैं। परन्तु इतना अवश्य है कि फूल जहा लगता है फल वही बनता है। इधर यह नियम मनसिज माली ने भग कर दिया है। यहा फल को देखकर फूला जा रहा है और वह भी अलग अलग व्यक्तित्व के प्रसग म। फल श्यामा (राधा) क वक्ष पर पहले लग चुके हैं, श्याम का हृदय बाद मे फूला है। यह विचित्रता भी कितनी विचित्र है। शृगार की चोट का तो कहना ही क्या। पर तु इस न का सयमन भाव लालित्य तथा शृगार की मर्यादित अभिव्यक्ति देखत ही बनती है।

शृगार के क्षेत्र म नारी के भौतिक शरीर और शरीर म भी कतिपय अगा का वर्णन, शृगार काव्य का प्रमुख विषय रहा है। मात्र उरोजो को लेकर भावुक

---

१ फ्रूट इज द राइप्ड ओवरी।

कवियों ने पूरे का पूरे ग्रन्थों का प्रणयन कर डाला है। इसमें भी संस्कृत के कवियों की सूझ का तो कहना ही क्या।[1] कमी हिन्दी कवियों ने भी नहीं रखी। यहाँ तक विद्यापति और सूरदास इत्यादि भक्त कवियों ने भी एक से एक मादक उक्तियाँ कही हैं किन्तु उन्हीं अंगों को लेकर, नैतिक उद्भावना करना, रहीम का ही विषय है। कामुकता के स्थान पर कुचा से नैतिकता की प्रेरणा निश्चित ही सराहनीय है—

> गुरुता फबै रहीम कहि फबि आई है जाहि।
> उर पर कुच नीके लगे, अनत बतौरी आहि ॥ ५१—पृ० ५
>
> जो अनुचित कारी तिन्हैं लगे अंक परिनाम।
> लखे उरज उर वेधियत, क्यों न होय मुख स्याम ॥ ६६—पृ० ■

भावनात्मक दृष्टिकोण से भिन्न यदि विशुद्ध शरीर शास्त्रीय वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो उरोज हैं क्या मांस के सामान्य पिण्ड। यह मांस पिण्ड अपने उरोजत्व को इसलिए प्राप्त हुआ, क्योंकि वह उर पर स्थित है। यदि यही मांस हाथ पैर गर्दन इत्यादि शरीर के किसी अन्य अंग में बढ़ जाय तो रसौली या बतौरी (ट्यूमर) कहा जाता है। अतः रहीम ने शृंगार की पंकिलता से नैतिकता का पंकज विकसित करते हुए कहा कि गुरुता भारीपन गम्भीरता सभी के बस की बात नहीं, वह किसी किसी को ही शोभा देती है, अतिरिक्त मांस का अधिग्रहण करके पीनता एवं काठिन्य उरोजों को ही शोभा है अन्य अंगों की नहीं। जो प्रकृत्या गम्भीर नहीं हैं, उन्हें गम्भीर व्यवसायों को चयन करने अथवा गाम्भीर्य का तथाकथित आडम्बर बनाये रखने से सफलता मिलने वाली नहीं। अगले दोहे का सन्देश नैतिक दृष्टि से और अधिक क्रान्तिकारी तथा शृंगारिक दृष्टि से और अधिक मादक है। यह उरोजाग्र की श्यामता से सम्बद्ध है। शरीर शास्त्रीय दृष्टिकोण से, उस कृष्णता का जो भी महत्व हो, परन्तु नीति का भावुक कवि उससे दूसरों का उपकार न करने की शिक्षा प्राप्त करता है। उरोजों ने वक्ष प्रदेश को भेद कर ऊपर उठने का दुस्साहस किया है। अतः काला मुँह होना स्वाभाविक था।

---

१ सबसे कर (टैक्स) लेने वाला सम्राट होता है पर जो कुच सम्राट से भी कर हाथ ग्रहण करते हैं वे सम्राट से भी श्रेष्ठतर हैं। परन्तु वे अत्यन्त उचितज्ञ हैं। यौवन सम्राट के आने पर उठ कर खड़े होकर सम्मान करते हैं और जाने पर नत हो जाते हैं—

आदत्त य कर सोऽ॥ सम्राटिति निश्चय।
तस्मादपि कराग्लाजानौ सम्राटतरौ कुचौ ॥ ३ ॥
तारुण्यमागत दृष्ट्वा सम्मान कर्तु मुत्थितौ।
उचितज्ञौ कुचावेतौ प्रस्थाने शिरसा नतौ ॥ ४ ॥
कुचशतक—मारकण्डेय त्रिपाठी (स० १६८१) आजमगढ़ पृ० १

कदाचित इसीलिए उह निपीडित भी किया जाता है।[1] यह बात दूसरी है कि निपीडन मे भी यह मान दाभूति करते हा। यह अनुभूति स्वत अपने हाथ से मदन करन पर प्राप्त नहीं हाती। अपन मुँह मिया मिट्ठू बनने से किसी को वास्तविक आदर प्राप्त हुआ है ? आत्मश्लाघा के फीकेपन की शृंगारपरक अभिव्यक्ति देखिए—

ये रहीम फीके दोऊ जानि महा सतापु।
ज्यों तिय कुच आपन गहे आपु बडाई आपु ॥ १५६—पृ० १५ ॥

दोहे म वर्णित महा सताप की अनुभूति, किसी अभागी विरह विधुरा को ही प्राप्त होती होगी किन्तु रहीम के नीति निवचन मे शृंगारिकता के याग का आस्वाद सभी कर सकते हैं। नीति निवचन स सम्बद्ध ऐसे कुछ और भी दोहे रसिक जना के लिए उद्धत किये जा सकते हैं। जिनम अयान्य अगा स सम्बधित बडे ही सरस कथन विद्यमान हैं। नत्रा की दीघता चितवन के बाँकेपन तथा अधरा के मिठास म सम्बधित तीन दोहे देखिए—

रहिमन यो सुख होत है, बढत देख निज गोत।
ज्यो बडरी अँखिया निरखि आखिन को सुख होत ॥ २२०—पृ० २२
बाकी चितवन चित चढी, सूधी तौ कुछ धीम।
गासी ते बढि होत है काढि न सकत रहीम ॥ १८८—पृ० १३
नन सलोने अधर मधु कह रहीम घटि कौन।
मीठो भाव लौन प अरु मीठे प लौन ॥ ११२—पृ० ११

विषय को और अधिक लम्बा न करते हुए प्रिय-सयाग सम्बन्धी रहीम के विचारा की चचा कर शृगार विषयक प्रसग को समाप्त करेंगे। वस्तुत शृगार[2] का सार ही किसार-किसारी है और उसम भी प्रधान वस्तु है, उनका सयाग। मन भावते प्रिय का सयोग भौतिक जीवन का अद्वितीय उपलब्धि है। उसकी प्राप्ति होन पर शीतल, कष्टकर और अधकारपूण निशा दिन के प्रकाश-सुख से कही अधिक मादक सिद्ध हाती है और ढाक कल्पवृक्ष एव वैकुण्ठ से अधिक सुखद प्रतीत होता है। अत यत्न यही करना चाहिए कि किसी भी प्रकार प्रियतम से मनमुटाव विराध, वपरीत्य व वियोग प्राप्त न हो। क्योंकि वही सुख है, प्रकाश है कल्पवृक्ष है वकुण्ठ है—

रहिमन रजनी ही भली, प्रिय सों होय मिलाप।
खरो दिवस केहि काम को रहिबो आपुहि आप ॥ २२१—पृ० २२
काह करों वकुण्ठ ल, कल्पवृक्ष की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावनो जो गल प्रीतम बाँह ॥ ३८—पृ० ४

---

१ वक्षस्थले स्वभार्याया कुच गेहो स्मरस्य वै।
पातयन्ति च रोषेण दृष्टवाऽन्यां ति युतो युवा ॥
मेरी आज्ञा के बिना मेरी वस्तु (प्रिया वक्ष) पर काम ने गढ क्या बना लिया है। इसी रोष से युवक उसे हाथों से ढाते हैं।
कुचवत्तम मार्कण्डेय त्रिपाठी (स० १६८१)

२ बानी को सार बखानी सिंगार, सिंगार को सार सार किसोर किसोरी। —देव

इस प्रकार विभिन्न शारीरिक अगो त्रियाओ तथा घटनाओ के वणन को देख कर रहीम की अतिशय भावुकता एव शृगार काव्य क्षमता का स्पष्ट परिचय मिल जाता है। शृगारिक कवि जिन उपकरणो से केवल कामोद्दीपन का काय लेते रहे हैं, उन्ही के माध्यम से रहीम ने सरसतापूवक नीति निवचन करके नीति एव शृँगार के मणि-काचन सयोग द्वारा एक पथ दो काज सिद्ध किये है। परिणामस्वरूप उनके नीति कथन कोरे नीरस उपदेश न रहकर काव्यत्व को प्राप्त हुए हैं। अत रहीम दोहावली के दोहे नीति के दोहे नही नीति-काव्य के दोहे हैं—

प्रीतम छवि ननन बसी पर छवि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि आप पथिक फिरि जाय॥[1]

शात तथा सजातीय भाव

ऊपर यह देखा जा चुका है कि रति मानव जीवन की सर्वाधिक प्रभावशाली प्रवृत्ति है। किन्तु यह प्रवृत्ति अपने मूल असस्कृत रूप में मानवता को घोर पाशविकता स्वाथ एव विनाश के कगार म ढकेल सकती है। और दिव्य एव सस्कृत रूप में इष्टदेव राष्ट्र प्रकृति इत्यादि के उस अनुराग तक उठ सकती है जिसका परिणाम आत्मकल्याण एव समाज कल्याण है किन्तु रति का इतना उनयन सामान्यत महात्माओ तक के लिए कठिन होता है। इसक विपरीत मानवीय आत्मा की एक अन्य मूल प्रवृत्ति शम या निर्वेद है जो स्वभाव स ही शान्ति प्रदायक है। यही शम[2] या निर्वेद स्थायी भाव वराग्य दुलादि विभाव स्वार्थत्याग मो ा चितनादि अनुभाव तथा धति-स्मृति ग्लानि दन्य आदि सचारी के याग स उतना ही आस्वाद्य बन जाता है जितने अन्य स्थायीभाव। आस्वादन याग्य भाव ही रस है।[3] अत शम मूलक इस

१ प्रीतम छबि ननन बसी, पर छवि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि आप पथिक फिरि जाय।
आप पथिक फिर जाय टिकन की जगह न पाव।
तन मन प्रिय रस भरयो आन अब कहाँ समाव।
मन समुझावन चहत हाय अब कहा कर हम।
ननन ढिग आवत सब, ह्व जात जु प्रीतम।
—राधाकृष्ण ग्रन्थावली (रहीम पर ११३ कुण्डलिया वाला अश) खण्ड प्रथम सम्पादक बा० श्यामसुन्दर दास (१६३०)

२ आचाय विश्वनाथ क अनुसार निरीह (निष्काम) अवस्था में आत्म-विश्रामज सुख ही शम है—
शमो निरीहावस्थायां स्वात्मविश्रामज सुखम॥ —साहित्य दपण ३ १८०

३ विभावरनु भावश्च सात्त्विकव्यभिचारिभि
आनीयमान स्वाद्यत्व स्थायीभावो रस स्मृत॥—दशरूपक
अर्थात् विभाव अनुभाव, सात्विक भाव और व्यभिचारी भाव क द्वारा जो स्थायी भाव आस्वादन क योग्य बना दिया जाता है उस रस कहत हैं।

रस को शान्त रस की संज्ञा दी जाती है। किन्तु धनंजय तथा धनिक जैसे विद्वानों ने दशरूपक तथा उसकी टीका में शम एवं शान्त का जम कर खण्डन किया है। और 'अष्टौ स्थायिनो मताः' की घोषणा की है। वस्तुतः भरतमुनि ने प्रथम तो उसका वर्णन ही नहीं किया और जहाँ भी किया है, वहाँ न तो अन्य रसों की भाँति उसका लक्षण दिया है और न उसके अनुभाव आदि का ही वर्णन है। कदाचित् इन्हीं सब कारणों से भरत नाट्यशास्त्र के टीकाकार श्रीराम स्वामी शास्त्री ने शान्त से सम्बद्ध नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय के प्रसंग को प्रक्षिप्त माना है। किन्तु दूसरी ओर नाट्यशास्त्र के भट्टनायक तथा अभिनव गुप्त आदि सभी टीकाकारों ने शान्त की स्थिति स्वीकार की है। अभिनव गुप्ताचार्य ने तो अभिनवभारती के लगभग सौ पृष्ठों में शान्त रस का विवेचन एवं स्थापन किया है। अतः स्पष्ट है कि शान्त रस की स्थापना में बहुत मतभेद रहा है। यद्यपि 'अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः' कह कर आठ रसों की व्याख्या करने वाले आदि आचार्य भरत मुनि ने 'शान्तोऽपि नवमो रसः' की स्वीकृति दे दी थी और नाटक में स्थान न देते हुए भी[1] घोषित किया था कि सभी रस शान्त से उत्पन्न तथा अन्त में शान्त में ही अन्तर्लीन होते हैं। आचार्य अभिनव गुप्त ने प्रायः यही स्वीकार किया है—सर्वरसानाम् शान्तप्रायएवास्वादः। प० विश्वनाथ की स्थापना तो और भी उदात्त है—

> न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा।
> रसः स शान्तः, कथितो मुनीन्द्रैः सर्वेषु भावेषु शमः प्रमाणः॥

स्पष्ट है कि विश्वनाथ जी मुनियों की दुहाई पर उसी रस को शान्त रस कहते हैं जहाँ दुःख सुख चिन्ता द्वेष राग इत्यादि से वियुक्त हुए चित्त को समावस्था प्राप्त होती हो। आचार्य भिखारीदास द्वारा शान्त रस के उदाहरण में प्रस्तुत एक सवैया देखिए—

> भूखे, अघाने तिसाने रसाने हितू अहितून सों स्वच्छ मने हैं।
> हूँ छन भूषन, कंचन-काँच औ मृत्तिका मानिक एक गने हैं॥
> सून सी फूल सौ, माल प्रवाल सौ, दास हिए सम सुक्ख सने हैं।
> राम के नाम सों केवल काम ते—ई जग जीवन-मुक्त बने हैं॥[3]

इस उदाहरण तथा अन्यान्य विवरणों का अध्ययन करके हमारे हृदय में बार-बार यह प्रश्न उठ रहा है कि शान्त केवल पारलौकिक निर्वेद जन्य वैराग्य का ही रस है किन्तु जहाँ नितान्त लौकिक आधार पर सफलता असफलता अथवा तत्सम्बन्धी नियमाचरणों

१ नट अपनी चंचलता के कारण शान्त के स्थायी भाव शम का साधन नहीं कर सकता। इसलिए नाट्य में आठ ही रस होते हैं—
शान्तस्य शमसाध्यत्वान्नटे च तदसंभवात्। —रसगंगाधर

२ स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद्भावः प्रवर्तते।
पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते॥ —नाट्यशास्त्र ६-१०८

३ कविवर भिखारीदास कृत काव्य निर्णय—सं० जवाहरलाल चतुर्वेदी (द्वि० सं०)
—पृ० ८५

प्राप्ति की चर्चा हो वहाँ कौन सा रस होगा। यह निश्चित है कि शास्त्रीय आधार पर, क्रियात्मक नीति के कथन विशुद्ध शान्त के अन्तर्गत नहीं आते। शान्त रस प्राम विश्राम या निर्वेद का रस है और नीति लोकानुरक्ति का। शान्त रस का मूल भावना सदैव उदात्त होती है जबकि नीति अनुदात्त, घोर एवं कठोर भी होती है। सब भूत हित में निरत रहने आत्मवत सब भूतों (चाहे शत्रु हो अथवा मित्र) का समीक्षित करने सभी (सहयोगी विरोधी) प्राणियों के सुख एवं निरामय होने से सम्बद्ध ऐसे शुभ भाव नीति है किन्तु इसके विपरीत शठ को शठता से, नीच को दण्ड ■ प्रबल को कूट चाल से वशवर्ती बनाने के मानवोचित नियम भी नीति है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि नीति में प्रतिद्वन्द्विता हिंसा एवं कठोरता ही है। दया, ममता आदि नहीं है। ये सब भी है परन्तु लौकिक सफलता प्राप्त करने तथा दुष्टादि का दमन करने के कारण प्रतिद्वन्द्वितादि भी है। हम यह कह सकते हैं कि शान्त रस सर्वथा तप पूत, स्थित प्रज्ञ योगी का कठोर संयमी जीवन है और नीति स्वच्छन्द निरत सद्गृहस्थ का व्यवहार जिसमें लौकिक भाग दूषण नहीं भूषण है जब कि पहले में उन्हें सर्वथा अक्षम्य अपराध माना जाता है।

तात्पर्य यह है कि शान्त रस केवल लोकोत्तर आनन्द सर्वथा दिव्य त्याग वैराग्य आदि का ही आत्मसात करता है जब कि नीति पूर्णतया लाभ-साफल्य हेतु साम दाम दण्ड भेदादि पर आधारित है। डा० गुलाबराय का कथन है संसार की असारता की ओर ध्यान आकर्षित कर उससे वैराग्य उत्पन्न करना और जीव का ईश्वरोन्मुख करना शान्त रस का सदा का मूल उद्देश्य रहता है।[1] यद्यपि मोक्ष नीति भी नीति का एक अंग है किन्तु विशेषतया इस अभावमय पाप परिस प्रसार संसार की समस्त आपदाओं एवं विपरीतताओं से जूझते हुए उनको अपने अनुकूल बनाकर लौकिक सफलता प्राप्त करने की आशा प्रेरणा एवं शक्ति प्राप्त कराना नीति है। दूसरी ओर कुशल कवियों का नीति-कथन भी उसी प्रकार आस्वाद्य बन जाता है जिस प्रकार शान्त रस। अतः हमारे विचार में तो नीति का एक पृथक रस के रूप में माना जाना चाहिए। साफल्य स्थायी भाव मूलक नीति विषयक रस अपना ही प्रभाव एवं स्वाद रखता है जो शान्त के शास्त्रीय रूप से पृथक है। अतः नीति को शान्त रस में ही समाहित करना उचित नहीं। यों तो रस विशेष के विद्वान अन्य सभी रसों को अपने अपने मनोनीत किसी एक ही रस में अन्तर्निहित करते चले आये हैं और उस भाव से नीति भी शान्त के अन्तर्गत वर्णित की जाती रही है। किन्तु शान्त रस की सीमाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करते हुए यह खटकता अवश्य है। वस्तुतः यह रस सिद्धान्त के विद्वानों का विषय है और विशेष अध्ययन एवं विश्लेषण की अपेक्षा रखता है जिसके लिए यहाँ अवकाश नहीं। अतः इस विवाद में न उलझते हुए हम रहीम के नीति-काव्य से शान्त रस के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

कहु रहीम केतिक रही केतिक गई बिहाय।
माया ममता मोह परि अंत चले पछिताय॥ ३३—पृ० ४

---

१ सिद्धान्त और अध्ययन—डा० गुलाबराय (४वाँ सं०) पृ० १५६

काह कामरी पामड़ी जाड़ गए से काज।
रहिमन भूख मिटाइए कस्यो मिल अनाज॥
रीति प्रीति सबसों भली बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम को बहुरि न संगति होत। २४०—पृ० २३
सौदा करो सो करि चलो रहिमन याही घाट।
फिर सौदा पहो नहीं दूरि जान है बाट॥ २६१—पृ० २५

इन सभी दोहों का स्थाई भाव निर्वेद है और आत्म निरीक्षण वैराग्य सदभूत स्नेह पुण्य-सञ्चयन आदि अनुभाव हैं तथा पश्चाताप, दीन संतोष, स्मृति दैन्य चिन्ता आदि संचारी हैं। अतः ये दोहे शान्त रस के उदाहरण हैं। साथ ही दोहों की समानुभूति भी विचारणीय है। पहला दोहा रहीम के स्वकीय आत्मविश्लेषण की कहानी कहता प्रतीत होता है। जीवन के अन्तिम दिनों में उन्हें जितना पछताना पड़ा था उसकी चर्चा जीवनी प्रसंग में हो चुकी है। माया ममता के फेर में पड़कर घोर राजनैतिक उखाड़-पछाड़, युद्धों की मार-काट से भरे जीवन तथा उच्चतम मुगल पदों की प्राप्ति के पश्चात भी अन्त अन्तिम समय की खस्ता हालत पर रहीम ने जब विचार किया होगा तभी इस प्रकार के अनेक दोहे उनके मानस निर्झर से फूट पड़े होंगे और जीवन की पारलौकिक सफलता का कटु अनुभव कर प्रभु में आशामय विश्वास व्यक्त किया होगा—

रन बन व्याधि विपत्ति में, रहिमन मरै न कोय।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गये कि सोय॥ १५६—पृ० १६
गहि सरनागत राम की भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाव॥ ४१—पृ० ५
राम नाम जान्यो नहीं, भई पूजा में हानि।
कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि॥ २३४—पृ० २२

ध्यान देने की बात यह है कि इन दोहों में उपदेशकों की रूक्षता नहीं स्वानुभूति की कसक बोल रही है। इसीलिए तुलसी कबीर और नानक की अनुभूतिमयी पुनीत वाणी की सी गूँज है। भाव विभोर होकर गाने पर हमारे कथन की सत्यता स्वतः स्पष्ट हो जायेगी।

इन दोहों में रहीम के वैराग्य भाव की झलक भी देखी जा सकती है। वैराग्य सम्बन्धी कुछ और भी दोहे रहीम दोहावली में प्राप्य हैं किन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं है। कारण स्पष्ट है कि रहीम सन्त महात्मा नहीं थे। फिर प्रश्न उठ सकता है कि उन्होंने वैराग्यभाव की कविता—चाहे मात्रा में थोड़ी ही हो—क्या की? उत्तर स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में इस प्रकार के क्षण आते हैं[1] जब

१ पुराणान्ते श्मशानान्ते मैथुनान्ते च या मतिः।
सा मतिः सर्वदा चेत् स्यात् को न मुच्येत बन्धनात्॥
अर्थात पुराण-श्रवण के पश्चात श्मशान से लौटने पर तथा मैथुन के उपरान्त जो (वीतरागता प्रधान) बुद्धि उत्पन्न होती है वही यदि सर्वदा बनी रहे तो ऐसा कौन है जो बन्धन में मुक्त न हो जाय।—सूक्ति सुधाकर गी० प्रे० गोरखपुर (पष्ठ सं०)—पृ० १७६

वह वैराग्य अनुभव करने के लिए विवश हो जाता है। संत उस भाव में स्थायी रूप से निमग्न रहते हैं[1] जबकि गृहस्थ क्षणिक रूप से। रहीम तो वैसे भी अनुभूति प्रवण, साधु-संग प्रेमी तथा अंततोगत्वा पारिवारिक दृष्टि से दुखी जीव थे। अतः इस प्रकार के भाव हृदय में आना अस्वाभाविक नहीं। इनकी अभिव्यक्ति में भी अनुभूति की गहराई है वास्तविकता है। यही कारण है कि रहीम के वैराग्य सम्बन्धी दोहों का जो प्रभाव उत्पन्न होता है वह बिहारी मतिराम इत्यादि द्वारा यदा कदा कहे गये दोहों में नहीं है। वैराग्य की वह ध्वनि रहीम की आत्मानुभूत ध्वनि है केवल परम्पराभिव्यक्त नहीं जिन पर नौ सौ मूस खाय बिल्ली हज को चली की कहावत चरितार्थ होती है। और जो उपहासास्पद प्रतीत होते हैं। यह बात दूसरी है कि उनकी कविता में गम्भीर हास्य व्यंग्यादि भी हों।

हास्य व्यंग्य विनोद तथा सजातीय भाव

जीवन में गाम्भीर्य के साथ हास्य का भी अपना महत्त्व है। शारीरिक दृष्टि से यह पुष्टिकारक तथा मशीनों में तेल डालने जैसा कार्य करने वाला है। हास्य जीवन की नीरसता आलस्यादि को दूर कर सरसता उत्फुल्लता तथा हल्कापन प्रदान करता है। काव्यशास्त्र के अनुसार हास्य अष्ट रसों में से एक प्रधान रस है जिसकी उत्पत्ति वाणी-वेश आकारादि की क्रमगति एवं विकृति से होती है—वागादिवैकृतैश्चेतोविकासो हास इष्यते।—सा० दर्पण। *व्यंग्य नयन कपोल स्फुरण हृदय दीप्ति मुस्कान* आदि अनुभाव हर्ष चपलता उत्सुकता अवहित्था आदि संचारी भावों से पुष्ट होकर स्थायी भाव हास रसत्व को प्राप्त होता है। साहित्यदर्पण में अल्पता एवं अतिशयता के आधार पर *स्मित हसित तथा विहसित इत्यादि हास्य के छः भेद गिनाये गये हैं।*[2] रसगंगाधर में आत्मस्थ तथा परस्थ हास्य का भी उल्लेख है।[3] इनके अतिरिक्त शिष्ट अशिष्ट भी हास्य के अन्य भेद हो सकते हैं। सर्वोत्तम हास्य शिष्ट हास्य होता है जिसकी तीव्रता अनुभूति की गहनता व्यंग्य के करारेपन तथा कचोट की गहराई पर आधृत है। अपर काव्य में ऐसे हास्य की मात्रा अधिक नहीं है। व्रज भाषा में ही नहीं उसकी जननी संस्कृत ग्रंथों में भी हास्य रस के चमत्कृत उदाहरणों की कमी है

1 ममता की सीमितता तथा लौकिक पदार्थों की थोड़ी बहुत आवश्यकता रहती ही है—

साँइ इतना दीजिए जा मे कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

कबीर ग्रंथावली—डा० पारसनाथ पृ० [illegible]

2 ज्येष्ठानां स्मितहसिते, मध्यानां विहसितावहसिते च।
नीचानामपहसितं तथातिहसितं तदेष षड्भेदः॥—साहित्यदर्पण

3 आत्मस्था द्रष्टुरुत्पन्ना विभावेक्षणमात्रतः।
हसन्तमपरं दृष्ट्वा विभावाच्चोपजायते।
योऽसौ हास्यरसस्तज्ज्ञैः परस्थः परिकीर्तितः॥ —रसगंगाधर

ध्वनि अभाव है। यदि कहीं किसी कवि ने इस पर उदाहरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है तो वह इतना दुरूह हो गया है कि कुछ कहा नहीं जाता।[1] किन्तु शिष्ट हास्य के उदाहरण हो ही—ऐसी बात नहीं। सूर[2], तुलसी[3], बिहारी[4] आदि रससिद्ध कवियों की लेखनी से शिष्ट हास्य व्यंग्य के भी कतिपय सुन्दर छन्द लिखे गये हैं। रहीम का नीति-काव्य भी इस कथन में अपवाद नहीं। उनके निम्नलिखित दोहे तो गम्भीर एवं शिष्ट हास्य के सुन्दरतम उदाहरणों में से हैं—

> कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
> पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय॥ २३—पृ० ३
>
> कमला थिर न रहीम कहि लखत अधम जे कोय।
> प्रभु की सो अपनी कहे क्यों न फजीहत होय॥ २४—पृ० ३

उक्त दोनों दोहों में लक्ष्मी के चांचल्य की काव्यात्मक हास्याभिव्यक्ति है। भगवान विष्णु पुरुष पुरातन अथवा पुराने पुरुष अर्थात् वृद्ध हैं। उनकी चिरयौवना वधू लक्ष्मी जी चंचला क्यों नहीं होगी? बूढ़े की युवती वधू का दूसरे का घर झाँकना स्वाभाविक है। कहावत प्रसिद्ध है कि बाल्यावस्था का विवाह माता पिता के, तरुणावस्था का विवाह अपने तथा वृद्धावस्था का विवाह पड़ोसियों के सुख का कारण होता है। दूसरे दोहे में दोष को पुरुष पक्ष की ओर से प्रस्तुत किया गया है। लक्ष्मी चंचला ही सही किन्तु है तो प्रभु (दूसरे) की ही पत्नी। पर स्त्री चाहे कैसी भी हो उसे अपना समझने वाले परगामी का एक न एक दिन फजीता होगा ही। स्पष्ट है कि हास्य पुट के साथ दोनों दोहों में सन्निहित नैतिक ध्वनि वृद्ध विवाह एवं परकान्तासक्ति के निषेध से सम्बद्ध है। बुढ़ापे में मौड़ धारण करने वालों को सोच विचार कर कदम उठाना चाहिए क्योंकि तरुणी से विवाह उनके लिए उचित नहीं। इसमें उनकी पत्नी चंचला बन सकती है और उनके कुल पर कलंक लग सकता है। बचने की सम्भावना कम है। क्योंकि स्वयं लक्ष्मी तक की

---

१ कविवर भिखारीदास कृत काव्य निर्णय—स० जवाहरलाल चतुर्वेदी, पृ० ८६

२ बूझहिं लूमी, आधरहिं काजर नकटी पहिरे बेसरि।
मुंडली पाटी पारन चाहे कोढ़ी अंगहि केसरि॥
बहिरा सों पति मतो करे, सो उत्तर कौन पै पावै।
ऐसो न्याव है ता कहूँ ऊधो जो हम जोग सिखावै॥—सूरदास

३ बिंध के बासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारी दुखारे।
गौतम-तीय तरी तुलसी' सो कथा सुनि भे मुनि-बृन्द सुखारे॥
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू, करुना करि कानन को पग धारे॥—तुलसीदास

४ चित पितु मारक जोग गुनि, भयो भये सुत सोग।
फिर हुलस्यो जिय जोतसी समुझयो जारज जोग॥—बिहारी

चांचल्य किसी से छिपा नहीं। दूसरा भाव यह है कि लक्ष्मी का अनावश्यक संग्रह तथा प्रेम व्यर्थ है क्योंकि वह स्वभावतः चंचला है, ठहरती नहीं। धन दान भोग में कंजूसी नहीं करनी चाहिए।[1] दूसरे दोहे की ध्वनि तो और भी स्पष्ट है। दूसरे की स्त्री को अपनी समझ कर अनावश्यक रूप से प्यार करने वाले की बदनामी निश्चित है। पराई स्त्री यदि व्यभिचारिणी भी है तब तो कुलीन पुरुष को और भी सजग रहना चाहिए क्योंकि वह चांचल्य के कारण अपनी नाक लज्जा स्वयं ही खोती है पर दूसरों को डुबाने चली है। इसी प्रकार असमान विचारों वाले दम्पति पर उन्होंने सुन्दर हास्य का संयोजन किया है—

पुरुष पूजैं देवरा तिय पूजै रघुनाथ।
कहि रहीम दोउन बनै पड़ो बैल को साथ॥[2] ११८—पृ० १२

जिस घर का पुरुष इधर उधर के झाड़-फूंक देवी-देवता तथा भूत प्रेतादि के चबूतरों पर टक्कर मारने वाला हो और स्त्री सात्विक वृत्ति सम्पन्ना श्री राम भक्त हो अर्थात दोनों के विचारों में पर्याप्त भिन्नता हो तो गृहस्थ जीवन का मज़ा किरकिरा हो जाता है। गृहस्थ एक बैलगाड़ी है जो एक सी वृषभ जोड़ी से ही समुचित रूपेण गतिमान रह सकती है। यदि जुए के एक ओर बैल तथा दूसरी ओर पाड़ा अथवा भैंसा जोड़ दिया जाय, तो बैल भैंसे को धकेलता है और भैंसा बैल को। परिणामतः चालक के बार-बार पैनी मारने पर भी गाड़ी की चाल वही रहती है—नौ दिन चले अढ़ाई कोस। इसलिए गृहस्थ जीवन में समान विचार होना आवश्यक है। यदि नहीं हैं तो या तो पुरुष स्त्री जैसा हो जाय या स्त्री अपने को पुरुष के अनुसार ढाल ले। यही बात बड़े स्तर पर राजा प्रजा,[3] भक्त भगवान[4] आदि के सम्बन्ध में भी सत्य है। नीति-तत्व प्रधान शिष्ट हास्य की झलक निम्नलिखित दोहों में देखी जा सकती है—

जो रहीम ओछो बढ़ै तौ अति ही इतराय।
प्यादे सों फरजी भयो टेढ़ो टेढ़ो जाय॥ ७५—पृ० ८
ज्यों नाचत कठपूतरी करम नचावत गात।
अपने हाथ रहीम ज्यों नहीं आपने हाथ॥ ८४—पृ० ६
रहिमन जिह्वा बावरी कहि गइ सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही जूती खात कपाल॥ १८३—पृ० १८

---

१ दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥—नीतिशतकम् ४३
२ चिरजीवहु जोरी जुरै क्यों न सनेह गम्भीर।
को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के बीर॥—बिहारी
३ जो रहीम रहिबो चहै कहै वाहि के दाव।
जो बासर को निसि कहै तौ कचपची दिखाव॥ १८८—पृ० १६
४ ओ३म यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्। स्युष्टे सत्या इहाशिषः।
ऋग्वेद ८।४४।२३

रहिमन कहत सु पेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
रीते अनरीते करै, भरे बिगारत दीठ॥ १७३—पृ० १७
बड़े पेट के भरन में है रहीम दुख बाढ़ि।
या ते हाथी हहरि के दिये दांत द्वै काढ़ि॥[1] १२३—पृ० १२

अद्भुत रस एवं सजातीय भाव

विचित्र वस्तु को देख-सुन कर, आश्चर्यान्वित होना, मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है। शास्त्रीय भाषा में इसे ही अद्भुत रस कहते हैं। इसका स्थायी भाव विस्मय है—

विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृत॥ —साहित्यदर्पण

विचित्र अथवा अलौकिक वस्तुएँ अद्भुत रस का आलम्बन हैं। नेत्र विस्फारण सम्भ्रम, रोमाच स्वेद कम्प अश्रु करतल नाद आदि अनुभाव तथा उत्सुकता, हर्ष स्मृति आशंका भ्रान्ति तर्क आवेग आदि संचारी हैं। महाकवि देव का कथन है—

आश्चरज देखे सुने बाढ़त विस्मय चित्त।
अद्भुत रस विस्मय बढ़े अचल सचकित निमित्त॥[2]

विस्मय की प्रवृत्ति सर्वसामान्य होने के कारण अद्भुत रस का क्षेत्र भी पर्याप्त विस्तृत है। साहित्यदर्पण में आचार्य धर्मदत्त का मत उद्धृत करते हुए बताया गया है कि चमत्कार सम्पूर्ण रसों का आधार है। अतः अद्भुत रस को सब रसों में प्रधान स्वीकार करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने अपने पूर्वज श्री नारायण पण्डित का उद्धृत किया है—

रसे सारश्चमत्कार सर्वत्राप्यनुभूयते।
तच्चमत्कारसारत्वात सर्वत्राप्यद्भुतो रस॥
तस्मादद्भुतमेवाह कृती नारायणो रसम्।

रहीम जैसे सूक्ष्म द्रष्टा ने अनेक घटनाओं एवं तथ्यों से आश्चर्यान्वित होकर जो दोहे लिखे हैं, उनमें अद्भुत रस की झलक देखी जा सकती है। चारों ओर खड़ी ईख के बीच में 'रसभरे' के नीरस रहने को देख रहीम आश्चर्य से पूछ उठते हैं—

रहिमन जो तुम कहत हो सगत ही गुन होय।
बीच उखारी रसभरा रस काहे न होय॥ १८७—पृ० १९

इसी प्रकार निम्नलिखित दोहा भी विस्मय मूलक ही है—

कागज को सो पूतरा, सहजहि में घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो सोऊ खेंचत बाय॥ ३५—पृ० ४

---

१ बड़े पेट के भरन में है रहीम दुख बाढ़ि।
गज के मुख विधि याहि तें दिए दांत द्वै काढ़ि॥
दिए दांत द्वै काढ़ि प्रगट जग माहि दिखावत।
मनहु निकारे दाँत पेट को बिथा जनावत॥
लघु सन्तोषी सदा सुखी बचि सब रपेट तें।
सबहिन भारी परे परे सिर बड़े पेट के॥—राधाकृष्ण ग्रन्थावली

२ देव रसायन—महाकवि देव—चतुर्थ प्रकाश

६

नैतिक अनुभूति के तीन स्रोत—लोक-तत्व, भक्ति एव प्रकृति

मानव इस ससार का सबसे अधिक चेतना प्रवण प्राणी है। उसकी चेतना समाज सापेक्ष है। प्रत्येक व्यक्ति के विचार तथा सस्कार उसके वातावरण एव प्रशिक्षण से सम्बद्ध रहते है। किन्तु कतिपय प्राणी ऐसे भी देखे जाते हैं जो भोग मे पलते हुए भी त्याग के प्रति जागरूक रहते है नगर मे रहते हुए भी ग्राम्यजीवन के प्रति लालायित रहते है कृत्रिम बनाव शृगार से समन्वित होते हुए भी सहज स्वाभाविक जीवन मे रुचि रखते है। रहीम का जीवन एव व्यक्तित्व कुछ इसी प्रकार का था। वे उच्च अधिकारी थे। राजा नवाबो के कुल मे जन्म लेकर उसी वातावरण मे लालित पालित थे। किन्तु आश्चर्य यह है कि—उस महापुरुष के काव्य मे समस्त चित्रण सामान्य जन जीवन का ही है राजसी वैभव विलास की झलक तक नही। उनके नीति काव्य का एक प्रतिशत भी नवाबो और सम्राटो से सम्बद्ध नही है। गग नरहरि बीरबल इत्यादि की भाति उनका एक भी दोहा अकबर की प्रशसा मे लिखा प्राप्त नही होता। रहीम यदि चाहते तो अकबर के सम्बन्ध मे कुछ भी लिखकर वाहवाही लूट सकते थे। इतना ही नही वे युद्ध कला प्रशासन प्रक्रिया इत्यादि पर भी काव्य रचना कर सकते थे किन्तु उन्होने ऐसा कुछ नही किया जान पडता। कारण यह है कि रहीम जन जीवन के कवि थे। वे जन सामान्य की हितकारी नीति को जनता जनार्दन के लिए जन जन की भाषा शैली मे प्रस्तुत करना चाहते थे। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते हैं कि रहीम सच्चे लोक-कवि थे।

लोक तत्व और उसके अग

वस्तुत लोक काव्य लोक-वार्ता का अग है जो हमारी समीक्षा प्रणाली के लिए नया मानदण्ड है। हमारे ही नही पाश्चात्य जगत के लिए भी ये शब्द प्राचीन नही। लोक-वार्ता शब्द अग्रेजी के फोक-लोर शब्द के पर्याय के लिए प्रयुक्त हो रहा है। और इस फोक लोर का जन्म १८४६ ई० की घटना है। डब्ल्यू० जे० थामस महोदय ने असस्कृत मानव समुदायो की प्रथाओ एव मूढाग्रहो के लिए इस शब्द का निर्माण किया था। इस विषय का रोचक इतिहास एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका मे देखा जा सकता है।[1] टेनर फ्रेजर तथा मार्फिया इत्यादि विचारको ने इस सम्बन्ध मे

१ एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका भाग ६—पृ० ५१८

विस्तार से विचार व्यक्त करके इसे पृथक और दृढ़ अस्तित्व प्रदान किया है। आग्रह यहाँ तक बढ़ा है कि गम्म महोदय ने इसे भी उसी प्रकार विज्ञान का दर्जा देने की वकालत की है जिस प्रकार कि अन्य सामाजिक विज्ञान के विषयों को। अब लोक वार्त्ता का क्षेत्र नितान्त महत्वहीन असम्य मान्यताओं से निकलकर व्यवस्थित लोक धारणाओं तक विस्तृत हो गया है। डा० सत्येन्द्र के अनुसार लोक-वार्त्ता शब्द विशद अर्थ रखता है। इसके अन्तर्गत वह समस्त विचार सम्पत्ति आ जाती है जिसमें मानव का परम्परित रूप प्रत्यक्ष हो उठता है। और जिसके क्षेत्र लोक मानस होन हैं व लोक मानस जिनमें परिमार्जन अथवा सस्कार की चेतना काम नहीं करती होती।[1]

वस्तुत लोक वार्त्ता तथा उसी के अंग लोक-काव्य अथवा लोक-साहित्य का सौंदर्य, आदिम चेतना के दिग्दर्शन में सन्निहित है। नवीन शिक्षा संस्कार तथा सभ्यता की चकाचौंध में प्राचीन अवधारणाएँ तथा मान्यताएँ क्रमश जर्जर होती हुई विनष्ट हो जाती है। यही कारण है कि नितान्त सभ्य एव सुसंस्कृत समाज उस आदिम सौंदर्य के स्वाद से वंचित होता चला जा रहा है। प्रकृत रूप में प्राप्त शाक भाजियों का स्वाद तथाकथित बड़े-बड़े होटलों एव बावर्चीखानों में छकी भुनी एव तली हुई सब्जियों में प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए उस प्रकृत स्वाद या आदिम सौंदर्य के दर्शन के लिए हम अशिक्षित ग्रामीणों तथा आधुनिक सभ्यता की चकाचौंध से दूर बसे ग्रामों में जाना पड़ता है। केवल गावों में ही नहीं वरन जंगलों पहाड़ों और टापुओं में बसा हुआ वह मानव-समाज जो अपने परम्परा प्रथित रीति रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने के कारण अशिक्षित एव अल्प सभ्य कहा जाता है लोक का प्रतिनिधित्व करता है।[2] अत स्पष्ट है कि जिन जिन मान्यताओं परिपाटियों विश्वासों एव कथाओं में आदिम रूप सुरक्षित रहता है वे सभी लोक साहित्य कही जाती है। लौकिक धार्मिक विश्वास धर्म-गाथाए कथाए कहावतें, पहेलियां आदि सभी लोक-वार्ता के अंग है।[3] साहित्य की जिन विधाओं में ये तत्व विद्यमान होते है उन्हें लोक साहित्य की सज्ञा दी जाती है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी की मान्यता है कि जिनमें चीजें लोकचित्त से सीधे उत्पन्न होकर सर्व साधारण को आन्दोलित, प्रचारित और प्रभावित करती है वे ही लोक-साहित्य लोक शिल्प, लोक-नाटक एवं लोक कथानक आदि नामों से पुकारी जाती हैं।[4]

रहीम के काव्य की लोक सामग्री

लोक-काव्य में जिस सामग्री का प्रयोग होता है उसे लोक-सामग्री कह सकते हैं। इस दृष्टि से रहीम के नीति-काव्य का विश्लेषण करने पर उसमें लोक तत्वों के अनेक प्रयोग प्राप्त होते है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई सामान्य ग्राम्य परिवार

१ ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन—डा० सत्येन्द्र (द्वि० स०)—पृ० ३
२ हिन्दी भक्ति साहित्य मे लोकतत्व—रवीन्द्र भ्रमर (प्र० स०)—पृ० ३
३ ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन—पृ० २
४ विचार और वितर्क—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (प्रथम स०)—पृ० २०६

का अनुभवी व्यक्ति अपने ही आस पास के व्यक्तियों के लिए काव्य रचना कर रहा हो। प्राकृतिक वस्तु विनियोग के विश्लेषण से तो यह तथ्य और भी पुष्ट हो जाता है। सम्पूर्ण दोहावली को पढ़ जाइए वहाँ भी न फव्वारे हमाम, उगालदान इत्रदान गुलाब सांडदी चमनी लहसुनिया पुखराज भाडफानूस, राग रंग आदि राजसी वस्तुओं एवं शहरी साज-सज्जाओं के दर्शन न होंगे। प्रसंगत कहीं शतरंज के प्यादे फरजी इत्यादि की चर्चा एक दो दोहों में अपवाद स्वरूप भले ही आ गई हो अन्यथा समस्त वातावरण जन सामान्य का और विशेषत ग्राम का वातावरण है।

खेत की ढेंकुली नट की कला मुट्ठी का रेत मेंहदी का बँधना रथ कूबर का माया खजूर की छाँह, मैल मल्ल की गाँठ सूप की बटोर सुई का धागा कलारी का दूध, खीरे की फाँक हल्दी चून का मेल दीपक गौ की बाजत रहट की घड़िया चाक की माग बरतन की वानिक स्त्री का मथना जल-बर बर भस्म होना बरी-बरी का नौन कराल कटहल और राई भाड़ का भावता आग लगने पर घूरे की शरण धूल वधू का चिथड़ा म समाय रहना दीपक का बढ़ना दमड़ी की सेव पथ के अमल करील जाड़ा कामरी और पामरी सनित का कूप से खींचना अमर बलवा प्रयोग मिसरी म ग्रीम की फास आदि का सम्बन्ध लोक साहित्य म ही है।[1]

रहीम को अपनी कविता के विषय तथा उनकी अभिव्यक्ति के लिए अलंकरण एव अन्य उपादान जन जन के जीवन जगत म से बिखरे नजर आते हैं। वे अपने चारों ओर बिखरे कंकड पत्थर को उठा कर इस प्रकार दोहा के आभूषणो म फिट करते हैं कि, मणि माणिक्य भी मात खा जाते हैं। अपनी गरज आप न कह पाने के प्रसंग मे उन्हें राजा महाराजाओं का पारस्परिक नज्जानुभव याद नही आता याद आता है कुल-वधुओं का पराय घर जाते समय लजा जाना। गम्भीर से गम्भीर व्यक्ति के हृदय के रहस्यों को जान लेने के लिए राजकीय जासूसी-कला विशारदों का स्मरण न करके वे सामान्य बच्चे घडे और उसकी गदन म बधी गुन (रस्सी) की सहायता से गहरे कूप का जल निकाल लाने की क्रिया का श्लेष अलकार तथा प्रश्न शैली के माध्यम से कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं कि बात समझ म आते ही पाठक के मन की कली खिल उठती है—

> गुन ते लेत रहीम जन सलिल कूप ते काढ़ि।
> कूपहुँ ते कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि॥ ५०—पृ० ५

इसी सामग्री का प्रयोग परोपकार की अभिव्यक्ति में हुआ है। घडा अपने को फदे में फसा कर ही दूसरों की प्यास बुझा पाता है—

> रहिमन रीति सराहिए, जो घट गुन सम होय।
> भीति आप प डारि क, सब पियाव तोय। २२८—पृ० २२

[1] रहीम रत्नावली—क्रमश दोहा स० २३०, ८६ २८६ २४८, २७०, २७३ २१६ १६७ २०२ २०७ २०८ १७६ १७६, १६८, १२८, १५५, ११६, १२४, १३३ ८८ १०२, ७८, ८६ ७०, ३६, ५०, ७, ३८

परोपकार के प्रसग म मद्दनी का कथन भी लोकानुभूति का ही प्रतिपादक है। उनकी लोकानुभूति गम्भीर से गम्भीर और व्यापक से व्यापक तथ्यो की अभिव्यक्ति देने के लिए सामग्री जुटान म सब सक्षम है। पृथ्वी के उस कवि का न पाताल मे घसने की आवश्यकता है और न आकाश म उडने की। आस-पास के खेत-खलिहाना, बाग-बगीचा तथा घर आँगना म रहीम के लिए काव्य-सामग्री भरी पडी है—

रहिमन जग की रीति, मैं देख्यो रस ऊख में।
ताहू मे परतीति, जहाँ गाँठ तह रस नहीं॥ २७३—पृ० २७
रहिमन तहाँ न जाइए, जहाँ कपट को हेत।
हम तन ढारत ढेकुली, सींचत अपनो खेत॥ २३०—पृ० २३

सामान्यतया कवि, अपनी सूक्ष्म भावनाओ की अभिव्यक्ति करने के लिए पारलौकिक तत्वो का सहारा लेते हैं किन्तु रहीम भक्ति ज्ञान तथा वैराग्य जसे तत्वा की अभिव्यक्ति म भी पारलौकिक तथ्यो का अवलम्ब बनाते है। अन्य कवि अपने अलकरण विधान के लिए कुछ असाधारण दुर्लभ तथा अछूती सामग्री खोज लान पर गर्व करते हैं किन्तु लोकानुरक्ति का यह कवि विशुद्ध लौकिक ग्राम्य एव गई गुजरी सामग्री का उपयोग कर काव्य को अलकृत करता है छाज, (सूप)—छाट (हलका फटकन) गुर (गुड) खल (बिनौला एव सरसो इत्यादि से निकला पशु खाद्य) तथा ढोल दमामा जसी हल्की फुल्की लोक वस्तुओ का गम्भीर विषयाभिव्यक्ति मे विनियोग, रहीम के नीति-काव्य की प्रमुख विशेषता है—

रहिमन राम न उर धरे रहत विषय लपटाय।
पसु खर खात सवाद सौं, गुर गुलियाए खाय॥ २२५—पृ० २२
रहिमन यह तन सूप है लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उडि जान दे, गरुए राखि बटोर॥ २१९—पृ० २२
रहिमन छोटे नरन सों, होत बडो नहिं काम।
मढो दमामो जात नहिं, सहूँ चूहे के चाम॥ १८१—पृ० १८

इतना ही नही रहीम न बडे से बडे राज राजाधिराजा अकबर के पश्चात्वर्ती जहाँगीर, शाहजहा तथा रामकृष्णादि पर लिखी अन्योक्तिया एव स्तुतिया आदि म भी लोक सामग्री का ही उपयोग किया है—

रहिमन अब वे विरछ कहँ जिनकी छाँह गम्भीर।
बागन बिच बिच देखिअत, सेंहुड-कज करीर॥ १६३—पृ० १६
रहिमन को कोउ का करे, ज्वारी चोर लवार।
जो पत राखन हार है, माखन चाखनहार॥ १७५—पृ० १७
मुनि नारी पासान ही कपि पसु गुह मातग।
तीनों तारे राम जू, तीनो मेरे अग॥ १४८—पृ० १५

इसी प्रकार अन्य अनेक दोहों में लोक सामग्री का विनियोग हुआ है। अति न करने के प्रसंग में सँजने के अत्यधिक फूलने का परिणाम,[१] प्रारम्भ की बिगड़ी के न बनने के सम्प्रसंग में फटे दूध से मक्खन निकलने का प्रयोग,[२] आपत्ति काल में मित्र के शत्रु बन जाने के लिए पूर्व के आँचल आच्छन्न से सुरक्षित दीपक का अपने ही हाथ से बुझा देने के उदाहरण का उपयोग[३] आदि अनेक घटनाएँ एवं प्रसंग रहीम के काव्य में लोक तत्वों की प्रचुरता के प्रमाण हैं। नट का कुण्डली मारकर बैठना,[४] मुक्के खाते हुए नींद का आना,[५] बिना मूल की अमरबेल का फलना[६] चने की रोटी का परोसा जाना,[७] सभी लोक तत्व हैं। अधिक क्या, उन्होंने तो गाँवों में आग लगने तथा कूड़े या घूरे के ढेरों पर चढ़ जाने तक की घटनाओं का विनियोग अपने नीति कथनों में किया है। यहाँ तक बिचारे जूते और चाक तक को मुक्त नहीं किया गया। प्रगतिशील लेखक भी घूरे, लत्ते और आग इत्यादि को सम्भवतः इस प्रकार व्यक्त न कर सके होंगे—

> दुरदिन परे रहीम कहि दुरथल जयत भागि।
> ठाढ़े हूजत घूर पर जब घर लागत आगि॥ ९८—पृ० १०
> रहिमन चाक कुम्हार को माँगे कछू न देइ।
> छेद मे डंडा डारि के चहै नाँद स लेइ॥ १७९—पृ० १८
> रहिमन जिह्वा बावरी कहिगे सरगपताल।
> आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल॥ १८६—पृ० १८

प्रचलित भाव, अंधविश्वास तथा रूढ़ियाँ

लोक-काव्य के अन्तर्गत प्रचलित भावों, अंधविश्वासों, रूढ़ियों, मान्यताओं, संकल्पनाओं एवं कुण्ठाओं की यथातथ्य अभिव्यक्ति को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है। व्रत उपवास त्योहार संस्कार, रीति रिवाज यहाँ तक कि जादू-टोना इत्यादि की निष्कलुष अभिव्यक्ति लोक-काव्य का अंग माना जाता है। समाज जिन जिन भावनाओं से परिचालित है अथवा उसे जिन जिन अच्छी-बुरी मान्यताओं से गति प्राप्त होती है उन सभी का अकृत्रिम एवं अनलंकृत वर्णन लोक-काव्य की अनिवार्य विशेषता है। डा० रघुवंश का कथन है कि लोक अभिव्यक्ति साहित्य की सौन्दर्याभिव्यक्ति नहीं है। वह तो जीवन की प्रवाहित धारा की उल्लासमयी तरंग है जो जीवन के सहज यथार्थ में अविच्छिन्न रूप से बँधी है।[८] इसीलिए उन्होंने अन्यत्र जीवन रूढ़ियों के साथ स्वच्छन्द जीवन की भावाभिव्यक्ति को भी लोक-काव्य का अंग स्वीकार किया है।[९]

रहीम के नीति-काव्य में इस प्रकार के अनेक तत्व देखने को मिलते हैं। प्रथम में अर्जित वित्त-नाश के प्रसंग में उन्होंने चोरी करके होना रचने का उल्लेख किया

१-७ रहीम रत्नावली—दोहा सं० १६०, १२६, ६०, ८६, २२१, ७, २०२
८ धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक—हिन्दी अनुशीलन—लेख लोकाभिव्यक्ति की भावभूमि।
९ राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ (हि० सा० सम्मेलन दिल्ली प्रदेश) लेख साहित्य और लोक

है।[1] लोक में होलिका दहन के समय खाट-खटोला, जूआ-पहिया इत्यादि कुछ भी चुराकर जलाने तथा क्षणिक मनोविनोद में अपने ही समाज की हानि करने की प्रथा प्रचलित है। रहीम ने इस प्रथा का सम्बन्ध प्रथम के धन से जोड़कर मात्र प्रचलन पर करारा व्यंग्य किया है। 'पुरुष पूजें देवरा तिय पूजें रघुनाथ' के प्रसंग में भी ऐसा ही व्यंग्य है।[2] नरकप्रद मगहर प्रदेश में पहुँचने के भय से हाथ-पैर बन्धवाकर, मरने की प्रतीक्षा में काशी में पड़े-पड़े नरक भोगते रहना[3] तथा बाघ के भरवे का अगले जन्म में आदमखोर बाघ बनना[4] इत्यादि इसी शृंखला की मान्यताएँ हैं।

कवि-समय

कवि-समय एक व्याख्येय पद है जिसका अभिप्राय है कवियों की परम्परागत मान्यताएँ, जो अपने मूल रूप में रूढ़ि बन गई हैं। कवि शिक्षा के अन्तर्गत 'कवि-समय' का अर्थ है कवि समाज में प्राचीन परम्परा से मानी आती हुई बातें और परिपाटियाँ।[5] इन रूढ़ मान्यताओं की सत्यता असत्यता पर विचार किये बिना कवि उन्हें निरन्तर प्रयोग करते चले आये हैं। हमारे समाज में भी ऐसी अनेकानेक मान्यताएँ व्याप्त हो गई हैं। आश्चर्य की बात यह है कि इनमें से अधिकांश असत्य हैं परन्तु फिर भी लोक एवं साहित्य की परम्परा उनके माध्यम से भावाभिव्यक्त करती चली आ रही है। चकोर का अंगार चुगना, चातक का मात्र स्वाति की बूंद पीना, स्वाति-बूंद का केले, सीपी तथा सर्पमुख में गिरने से क्रमशः कपूर, मोती एवं विष बन जाना, चन्दन के वृक्ष पर सर्पों का लिपटे रहना, रात्रि में चकवे चकवी का वियोग हो जाना, भवानी का बाँझ होना, हंस का नीर-क्षीर विवेक इत्यादि ऐसी ही अनेक असत्य अथवा अर्ध-सत्य किन्तु परम्परागत कविजनानुमोदित मान्यताएँ हैं। इन्हीं को कवि-समय की संज्ञा दी जाती है।

कवि-समय की शास्त्रीय पृष्ठभूमि

'कवि-समय' का सर्वप्रथम प्रयोग राजशेखर ने अपने ग्रंथ 'काव्य मीमांसा' में किया था। यद्यपि राजशेखर से पूर्व आचार्य वामन ने 'काव्य समय' शब्द का प्रयोग किया था[6] किन्तु वह छन्द व्याकरणादि से सम्बन्धित प्रतिष्ठित परिपाटी के रूप में था, कवि-समय के अर्थ में नहीं। अन्य अनेक काव्यशास्त्रियों ने तो देश-काल विरोधी तथ्यों के उल्लेख को दोष माना है।[7] किन्तु काव्य मीमांसा के १४वें अध्याय के आरम्भ में राजशेखर ने कहा है कि, 'अशास्त्रीय (शास्त्रबहिर्भूत) अलौकिक (लोक में अज्ञात) तथा केवल परम्परा में प्रचलित जिस अर्थ का कवि लोग वर्णन करते हैं वह कवि समय

---

१ से ४ रहीम रत्नावली—क्रमशः दोहा सं० २३१, ११८, २२८, १८०

५ हिन्दी साहित्यकोश भाग १—पृ० २३०

६ काव्यालंकार सूत्र ५ १

७ काव्यालंकार ४ २ काव्यादर्श ४ ३

है।[१] उन्होंने कवि-समयों में समभग एक दर्जन भेदाभेद किए हैं जिन्हें मूलतः आकाश पाताल तथा भूमि सम्बन्धी के आधार पर स्वर्ग्य, पातालीय और भौम की संज्ञा दी गई है और उन्हें पृथक् पृथक् अध्यायों में सोदाहरण वर्णित किया गया है। संस्कृत[२] एवं हिन्दी[३] के परवर्ती आचार्यों के प्रेरणा-स्रोत एवं आधार राजशेखर ही रहे हैं। केशव ने 'कवि प्रिया' के चतुर्थ प्रभाव में कवि नियमों के अन्तर्गत कवि-समयों का भी सोदाहरण उल्लेख किया है—

कोकिल को कल बोलिबो, बरनत है मधुमास
बरषा हो हरषित कहैं, केकी केसवदास ॥—कविप्रिया ४ १४

रहीम के कवि समय

रहीम के नीति काव्य में इस प्रकार के अनेकानेक कवि समयों का उपयोग किया गया है। रहीम के काव्य की विशेषता है इन कवि-समयों का साभिप्राय एवं सप्रयोजन उपयोग। नीति के अभिव्यक्तीकरण में यह विनियोग इतना सटीक है कि कवि समय की सत्यता असत्यता का ध्यान आये बिना पाठक कथ्य को हृदयंगम करता हुआ नीति-कथन के रस में आपाद मस्तक निमग्न हो जाता है। कदाचित इसीलिए कवि समयों से सम्बद्ध दोहे समाज में अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित हैं। अपने कथन की पुष्टि के लिए हम कुछ दोहे उद्धृत करते हैं—

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग ॥ ७४—पृ० ८
धन रहीम गति दीप की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनत बसि, कहा भौंर को जाय ॥ १०४—पृ० ११
भावी या उनमान की, पांडव बनहिं रहीम।
तदपि गौरि सुनि बाँझ है, बरु हैं संभु अजीम ॥ १३५—पृ० १४
मुकता कर करपूर कर चातक जीवन जोय।
ये तो बडो रहीम जल, ब्याल-बदन विष होय ॥ १४७—पृ० १५

कवि समय प्रयोग—एक विशेषता

इन दोहों को ध्यान से देखने पर ज्ञात हो जाएगा कि रहीम ने कवि समयों का न केवल प्रयोग किया किन्तु उनसे विषयानुकूल काम भी लिया है। उनके काव्य में मात्र कवि रूढि-पालन के लिए कवि समय प्रयुक्त नहीं हुए हैं। नीति निवचन में उनका विनियोग एक पथ दो काज सिद्ध करता है। यही तथ्य लोक-तत्वों के विषय में है। लोक-तत्वों का विनियोग भी नीति-कथन के लिए है और प्रचुर मात्रा में है।

---

१ काव्यमीमांसा, व्याख्याकार—डा० गंगासागर राय (प्र० सं०) पृ० १९८
२ काव्यानुशासन अध्याय १ तथा काव्यकल्पलतावृत्ति—प्रस्ताव १
३ कवि प्रिया—प्रभाव ४

लोकतत्वाभिव्यक्ति के विभिन्न प्रकार

काव्य में लोकतत्व के प्रयोग विभिन्न प्रकार से हो सकते हैं—

१ वर्णनात्मक प्रयोग
२ कथात्मक प्रयोग
३ उदाहरणात्मक प्रयोग
४ निष्कर्षात्मक प्रयोग

वर्णनात्मक प्रयोग वहां होगा जहाँ, लोकतत्वों विशेषत ग्राम्य वस्तुओं, आचारों और संस्कारों इत्यादि का वर्णन केवल वर्णन के लिए, कवि की अपनी रीझ-खीझ के अनुसार हो। कथात्मक वर्णन के अन्तर्गत लोक-कथाओं अथवा लोक-वार्त्ताओं का वर्णन आयगा। अपने तथ्य की पुष्टि के लिए लोकतत्वों का उदाहरण के रूप में विनियोग, उदाहरणात्मक प्रयोग होगा। उनसे कतिपय निष्कर्ष निकालना निष्कर्षात्मक कहा जायगा। रहीम के काव्य में लोकतत्वों का विनियोग अन्तिम दो प्रकार में है और उसमें भी विशेषत निष्कर्षात्मक रीति से।

लोकपरक भाषा

भाषा लोकतत्वों का एक प्रमुख आधार है। अतिशय अलङ्कृत कृत्रिम तथा शास्त्रीय भाषा लोकतत्व की मूल भावना से मेल नहीं खाती। लोकतत्व की सारगर्भित अभिव्यक्ति के लिए सहज, स्वाभाविक भाषा का प्रयोग आवश्यक है। ऐसी भाषा जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्बित होता हो इसके लिए सामान्य जन जीवन सम्बन्धी दैनिक व्यवहार की शब्दावली किम्वदन्ती मुहावरे तथा स्थानीय प्रयोग आदि का आना आवश्यक है। रहीम की भाषा में इस प्रकार का रंग भी है और इस रंग ने उनकी सहज सुषमा मण्डित साहित्यिक शब्दावली के सौन्दर्य का विकास ही किया है ह्रास नहीं। याम वर वरेह,[1] श्रड न बौंड रहीम कहि,[2] कागद को सो पूतरा,[3] निठुरा आगे रायबो, आसु गारिबो खीस',[4] 'धरती की सी रीत'[5] धूर धरत निज सीस'[6] भार भौंक के भार में[7] मीत गिरी पाताल की अरानी कहि ठाम',[8] धिउ सक्कर जे खात[9] 'कुआ खनावत लोग',[10] पडा प्रेम का[11] 'गरुए राखि बटोर,[12] 'साईं जगीरें खाय'[13] इत्यादि प्रयोग लोकपरक ही हैं। एक दो स्थल एसे भी हैं जहाँ इन लोक प्रयोगों का बिम्ब अत्यन्त भास्वर तथा स्वर अत्यन्त कठोर तथा व्यंग्य अत्यन्त तीव्र है—

रहिमन चाक कुम्हार को मागे दिया न देइ।
छेद मे डंडा डारि कै, चहै नाद लै लेइ॥ १७८—पृ० १८
रहिमन जिह्वा बावरी कहिगै सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही जूती खात कपाल॥ १८६—पृ० १८

१ से १३ रहीम रत्नावली—१३ २०, ३५, ८१, १०६ १०७ १३३, १३६ १६६, १६५ २०६, २१६, २५१

पिछले दोहों की प्रखरता में लोकतत्व के दर्शन सहज ही किए जा सकते हैं। जहाँ कहीं मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग है, वहाँ लोक भाषा में भी मिठास और मादव है—

पात पात को सींचिबो, बरी-बरी को लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि को, कहो बरगो कौन॥ ११७—पृ० १२

लोकतत्व सम्बन्धी निष्कर्ष

इस विवरण से स्पष्ट है कि रहीम लोक-जीवन के कवि थे। उन्होंने अपने काव्य प्रणयन में लोक सामग्री और लोक भाषा का प्रयोग किया है। लोक मानस के भावों, लोक जीवन की मान्यताओं, लोक-वाणी के स्वरों तथा लोक विश्रुतियों के प्रयोगों को देखते हुए रहीम के नीति-काव्य का लोकतात्विक अध्ययन निश्चित ही सुखद एवं शिक्षाप्रद है।

रहीम के नीति-काव्य का दूसरा प्रधान स्रोत—भक्ति

भारत की धर्म भावना विश्वविख्यात है। धर्म में जितना प्रमुख स्थान भक्ति का है, उतना न तो योग का है और न साधना का। इसलिए जन साधारण ने धर्म और भक्ति को प्रायः एक ही समझ लिया है। गाँवों में किसी व्यक्ति को तनिक अधिक धार्मिक भाव सम्पन्न सच्चरित्र अथवा सत्सगप्रिय देखकर भगत जी की उपाधि से विभूषित कर दिया जाता है। तात्पर्य यह है कि निरक्षर अथवा अर्धसाक्षर समाज में भी भक्ति तत्व को समझा जा चुका है। दूसरी ओर ऊँचे-ऊँचे सन्त महात्मा दार्शनिक एवं विपश्चित भक्ति तत्व के निरूपण का प्रयत्न निरन्तर करते चले आ रहे हैं। वेदों के ज्ञान-कर्म-उपासना से लेकर उज्ज्वल नीलमणि के भक्ति रस की व्याख्याओं तक भक्ति को न जाने कितने प्रकार से विश्लेषित एवं वर्णित किया गया है। दक्षिण के रामानुज मध्व एवं निम्बार्क आदि जगत प्रसिद्ध दार्शनिक आचार्यों एवं बल्लभ-विट्ठलादि गणमान्य धर्म धुरन्धरों से लेकर सूर तुलसी, हरिऔध एवं मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों ने भक्ति पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया है। साहित्य-शास्त्र में यद्यपि भक्ति को एक भाव मान कर देव विषयक रीति के साथ सम्बद्ध किया गया है, किन्तु परवर्ती आचार्य रूप गोस्वामी ने भक्ति रसामृत सिन्धु एवं उज्ज्वल नीलमणि नामक ग्रन्थ द्वय में भक्ति को पूर्ण रस की गरिमा से अभिषिक्त कर दिया है। उनके अनुसार साक्षात भगवान कृष्ण की भक्ति स्वतन्त्र रस है—रसराज है। कृष्ण उसके आलम्बन भक्तों का समागम नदी-तीर्थ एकान्तादि उद्दीपन अश्रु-पात लीला-गान नृत्य कण्ठावरोध, आदि अनुभाव तथा मति ईर्ष्या वितर्कादि व्यभिचारी है। आज भी समस्त गौडीय समाज में भक्ति को रसराज माना जाता है।

भक्ति और उसके रूप

भक्ति की व्यापकता को देखते हुए, उसकी किसी परिभाषा की आवश्यकता नहीं है। किन्तु परिभाषा करनी ही पड़े तो भक्ति की सबसे बड़ी परिभाषा होगी—

इष्टदेव के प्रति सब समर्पण पूर्ण आसक्ति। इसी एक सत्य को विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से कहा है। शाण्डिल्य मुनि ने उसे 'सा परानुरक्ति ईश्वर'[1] कह कर परिभाषित किया है और नारद मुनि ने उसे 'सा त्वस्मिन परम प्रेमरूपा'[2] बताया है। परवर्ती कवियों का बल भी इसी ओर है। गोस्वामी तुलसीदास का कथन उल्लेखनीय है—

जाने बिनु न होइ परतीती बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।
प्रीति बिना नहिं भगति दिढाई, जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥

प्रेम प्रथित यह भक्ति भाव जिसे प्राप्त हो जाता है उसका जीवन सफल है। भागवतकार ने भगवान के श्रीमुख से कहलाया है कि, "हे उद्धव! जिस प्रकार धधकती हुई आग लकड़ियों के बड़े से बड़े ढेर को जलाकर राख कर देती है वैसे ही मेरी भक्ति, समस्त पापराशि को पूर्णतया जला डालती है। योग, ज्ञान अनुष्ठान, पाठ तप तथा त्याग मुझे प्राप्त करने में उतने समर्थ नहीं जितनी दिनों दिन बढ़ने वाली अनन्य प्रेममयी मेरी भक्ति।"[3] इसीलिए संतों ने भक्ति की महिमा का भूरि भूरि गायन किया है—

कबिरा हरि की भगति बिन ध्रिग जीमण संसार।
धूवा केरा धौल हर, जात न लागै बार॥—कबीर
श्याम न कथनी काम की करनी है इक सार।
भक्ति बिना पंडित वृथा, ज्यों खर चंदन भार॥—हरिराय व्यास
सेवा अरु तीरथ भ्रमण, फल तेहि कालहिं पाय।
भक्तन संग छिन एक में परम भक्ति उपजाय॥—ध्रुवदास

यह प्रेममयी परम प्रेम रूपा भक्ति आन्तरिक एवं बाह्य आधारों पर दो प्रकार की होती है। अपनी अपनी मान्यताओं के अनुसार प्रेयर नुमाज चंदन हवन प्राणायाम और जप आदि के द्वारा इष्टदेव की उपासना करना भक्ति का बाह्य स्वरूप है। प्रभु प्रेम जीव दया मानव-कल्याण एवं इष्ट चिंतन में अनुरक्ति भक्ति का आन्तरिक रूप है। इसे भक्तों की भावना के आधार पर नाना रूपों में विभाजित किया जाता है। भक्ति की आन्तरिक भावना का जल दुग्धादि द्रव पदार्थ से उपमित कर सकते हैं। थाली लोटा गिलास घट एवं परखनली इत्यादि जिस भी पात्र में द्रव को डाला जायगा वह उसी का आकार ग्रहण कर लेगा। ठीक इसी प्रकार प्रभु प्रेम भक्त की आन्तरिक भावना के अनुसार विभिन्न रूप ग्रहण करता रहा है। भक्तों ने अपने प्रभु का स्वामी-सखा पुत्र पति आदि अनेक रूपों में स्मरण किया है। इसीलिए भक्ति के दास्य-सख्य वात्सल्य एवं मधुर आदि अनेक रूप हो गए हैं। किन्तु वास्तविक महत्व इन रूपों का नहीं आधारभूत भावना का है अनुराग का है उत्कण्ठा का है। भगवान के प्रति अनुरक्ति जितनी अधिक होगी उत्कण्ठा उतनी तीव्रतर तथा भक्ति उतनी ही

१ शाण्डिल्य—भक्ति सूत्र अध्याय १ सूत्र सं० २
२ नारद—भक्ति सूत्र सूत्र सं० ३१
३ श्रीमदभागवत ११ १४ १६ २०

दन्तर होती जायगी। आचार्य शुक्ल का कथन है—"प्रेमी प्रिय के स्वरूप को जितना जाने रहता है उतने में मग्न होकर भी उसको और जानने के लिए बीच बीच में उत्कण्ठित होता रहता है पूर्ण दर्शन की यह उत्कण्ठा श्रेष्ठ भक्ति का लक्षण है।[1]

रहीम का भक्ति भाव

श्रेष्ठ भक्ति की काव्यात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से हिन्दी का भक्तिकाल सार्वभौमिक स्तर पर भी अपना सानी नहीं रखता। दयवाग से रहीम का जन्म उस समय हुआ था जबकि सम्पूर्ण भारत में भक्ति भावना अपने अनुत्तनीय वैभव के साथ स्थापित हो चुकी थी। अकबर की उदार धर्म नीति अनुकूल शिक्षा संस्कृत भाषा का ज्ञान गंगादि सद्क्रिया की संगति तथा तुलसी आदि सन्तों की मित्रता ने उस उदार चेता मुसलमान के हृदय में सगुण भक्ति की वही धारा प्रवाहित कर दी जिसके प्रवाह में तत्कालीन हिन्दू समाज वेग से बहा जा रहा था। फुटकर बरवै संस्कृत श्लोकों तथा कतिपय छन्दों में वे गणेश तथा हनुमान आदि हिन्दू देवी-देवताओं की स्तुति कर चुके थे। इस सामग्री को देखकर कोई भी निष्कर्ष निकाल सकता है कि रहीम के हृदय में वैष्णवी भक्ति का अथाह एवं निश्छल पारावार तरंगायित था। उसमें धर्मगत संकीर्णता का कहीं स्थान न था। भक्ति भाव भरे उनके हृदय से जो छन्द निर्मित हुए उन्हें देख यह आभास ही नहीं होता कि ये किसी मुसलमान की रचनाएँ हैं। यही कारण है रहीम रचित छन्द पूजा श्लोकों तथा उपासना स्तोत्रों तक में सम्मिलित किये जाते हैं।[2] पं० बलदेव उपाध्याय ने तो अपने २५० पृष्ठों के विविध विषयात्मक श्लोक संकलन में प्रार्थना शीर्षक से एक और केवल एक श्लोक उद्धृत किया है और वह रहीम का है।[3] भक्ति काव्य की सफलता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है ? वस्तुतः रहीम विभिन्न धर्मी भारतीय समाज के लिए आदर्श बन सकते हैं। धर्मनिरपेक्षता के वर्तमान युग में तो उनके काव्य का महत्व और भी अधिक है।

जहाँ तक नीति काव्य में भक्ति भाव के समन्वय का प्रश्न है उसके दर्शन हम रहीम शतकावली के प्रथम श्लोक से ही होने लगते हैं। अच्युत चरण तरंगिनी में भगवती गंगा की श्रद्धा से सम्बोधित यह दोहा जन प्रसिद्धि के अनुसार रहीम का अन्तिम छन्द था। जिसकी रचना उन्होंने मृत्यु शय्या पर की थी। स्मरणीय है कि मृत्यु शय्या पर पड़े मूर तुलसी आदि महाकवियों की भी छन्द रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

---

१ सूरदास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)—भक्ति का विकास—पृ० ५५

२ सूक्ति सुधाकर—(गी० प्र० गोरखपुर)— पृ० ७३ ७४ तथा ८८

३ सूक्ति मुक्तावली—पं० बलदेव उपाध्याय मथुरा १९८६ वि०, पृ० २४४

रहीम के भक्ति-भाव की विशेषता

भगवती जाह्नवी की अनन्त श्रद्धा से सम्बंधित उक्त दोहे के अतिरिक्त, रहीम दोहावली के नीति के दोहों में, कोई अन्य दोहा किसी देवी-देवता की स्तुति-उपासना से सम्बद्ध नहीं है। जहाँ जहाँ भी इस प्रकार के भाव आये हैं, वे सभी भगवान राम या कृष्ण के प्रति निवेदित हैं। यही उनके भक्ति भाव की प्रथम विशेषता है। इस निवेदन में रहीम के हृदय की उमड़ती श्रद्धा तल्लीनता तथा भक्ति भावना अपने उज्ज्वलतम रूप में प्रस्फुटित है। भक्त सुलभ अनुराग के साथ कविजनोचित विदग्धता, उनकी भक्ति के आकर्षण को द्विगुणित कर देती है। रहीम राम और कृष्ण जैसे इष्ट-देवों के होते हुए किसी से डरने की आवश्यकता नहीं समझते। सज्जनों से तो क्या दुर्जनों से भी नहीं डरते। ज्वारी चोर-लबार उनका बिगाड़ ही क्या सकेंगे जबकि इन सबके सरदार, उनका इष्टदेव स्वयं है। इसके लिए उन्हें पौराणिक आधार प्राप्त है। 'भगवान (कृष्ण) ने जुआरी शकुनी से पाण्डवों की रक्षा की थी। ग्वाल-बालों की गायों को ब्रह्मा जी ने चुराया तब भगवान ने ही उनको छुड़ाया था। लबार दुःशासन से द्रोपदी की रक्षा भी श्रीकृष्ण ने ही की थी।'[1] रहीम ने इन सभी प्रसंगों को जिस चतुराई के साथ दोहे में भरा है वह गागर में सागर भरने की कहावत चरितार्थ करता है। यह लाघव तथा विदग्धता रहीम के भक्ति-काव्य की दूसरी विशेषता है—

रहिमन को कोउ का करै ज्वारी चोर लबार।
जो पत राखन हार है माखन चाखन हार॥ १७५—पृ० १७
मुनि नारी पाषान ही कपि पसु गुह मातंग।
तीनो तारे राम जू, तीनो मेरे अंग॥ १६२—पृ० १६

प्रथम दोहे में जो लाघव और विदग्धता भगवान कृष्ण के प्रसंग में है वही दूसरे उदाहरण में भगवान राम से सम्बन्धित है। भगवान राम ने पाषाणी अहिल्या, पशु हनुमानादि तथा अकुलीन गुह निषादादि का उद्धार किया था। रहीम कहते हैं ये तीनों ही अवगुण अर्थात् अकर्णत्व (पाषाण) ज्ञानहीनता (पशुत्व) तथा अकुलीनता (यवन जाति) मेरे शरीर में हैं फिर मेरा उद्धार क्या नहीं करते ? कहने की आवश्यकता नहीं कि भक्त हृदय का यह विग्धतापूर्ण दैन्य निवेदन, हिन्दी और संस्कृत के किसी भी भक्त कवि में कम आकर्षक नहीं।[2]

रहीम की भक्ति भावना की तीसरी विशेषता है, उनकी नीति समन्विति। रहीम ने अन्य भक्तिकालीन कवियों की भाँति अपने काव्य को कोरे आत्म निवेदन या

---

१ रहीम रत्नावली—(टिप्पणी) पृ०—२८

२ इसी भाव पर रहीम का श्लोक भी है—

अहिल्या पाषाण प्रकृति पशुरासीत कपिचमू।
गुहो भूच्चाण्डाल स्त्रितयमपि नीतं निजपदम॥
अहं चित्तनाश्म पशुरपि तवार्चादि करणे।
क्रियाभिश्चाण्डालो रघुवर नमामुद्धरसि किम॥—रहीम रत्नावली

राम कृष्णादि के रूप वर्णन तक सीमित नहीं किया उन्होंने अपने भक्ति भावों को नीति कथनों से समन्वित करके व्यक्त किया है। इसीलिए उनके दोहे भक्ति से सम्बद्ध होते हुए भी नीति के ही दोहे हैं। रहीम का विश्वास था कि सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी हार्दिक प्रेम के बल पर, महान से महान व्यक्ति को वश में कर सकता है। इस तथ्य को उनका भक्त हृदय नारायण के वशवर्ती होने का तर्क देकर गा उठा है—

> रहिमन मनहिं लगाय कै, देखि लेहु किन कोय।
> नर को बस करिबो कहा, नारायण बस होय॥ २१४—पृ० २१

रहीम काल के सम्मुख औषधियों की प्रभावहीनता सिद्ध करते हुए अनाथ के नाथ हरि द्वारा रक्षित वन पादपों और वन मृगों का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।[1] मूल के सींचन से सम्पूर्ण शाखा-पत्रादि के अघाने एवं फलने फूलने की याद दिलाकर एक प्रभु के साधन करने पर बल देते हैं। पुरुष पुरातन की वधू का उदाहरण देकर धन सम्पत्ति का चांचल्य व्यक्त करते हैं।[3] वे नयन बाणों से बचने का श्रेय केवल भक्ति को ही देते हैं।[4] दीनबंधु से बंधुता स्थापित करा सकने में समर्थ दिव्य दीनता की सराहना करते नहीं अघाते।[5] सभी लोग समय दशा कुल देखकर सम्मान करते हैं। किन्तु भगवान के दरबार में ऐसी अव्यवस्था नहीं है। वे अपने दीन एवं अनाथ भक्तों का सहारा स्वयं हैं—

> समय दसा कुल देखि कै सब करत सनमान।
> रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान॥ २५२—पृ० २५

रहीम की भक्ति भावना की चौथी और सर्वप्रमुख विशेषता है उसका पौराणिक आधार। वे अपने नीति-कथनों के लिए सदैव रामायण, महाभारत तथा पुराणों से उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। ये उदाहरण उनकी श्रद्धा भक्ति निष्ठा तथा हिन्दू अभिरुचि के प्रतीक हैं।

असमय पड़ने पर आवश्यकतानुसार माँगने का औचित्य प्रतिपादित करते हुए वे लक्ष्मण द्वारा पारावार मुनि से नाज माँगने का उल्लेख करते हैं।[6] विपत्ति पड़ने के प्रसंग में उन्हें चित्रकूट याद आता है।[7] थोड़ा कार्य करने पर भी यश को अधिक श्रेय प्राप्त होता देख श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन तथा हनुमान द्वारा (सेतुबन्धन के समय) अनेक पर्वतों के धारण करने की घटना उद्धृत करते हैं।[8] भावी को अपने हाथ में न होना सिद्ध करने के लिए श्रीराम के कपट मृग के पीछे जाने का प्रमाण देते हैं।[9] रामायण प्रसंगों के समान महाभारत प्रसंगों से भी नीति प्रमाण प्रस्तुत करना रहीम को कम रुचिकर नहीं। पुरुषार्थ के सम्बन्ध में भीम की रसोई तथा दुर्दिन पड़ने पर पाण्डवों द्वारा पाँच विभिन्न रूप धारण करने का उल्लेख विगत प्रसंगों में हो चुका है। पुराणों के प्रसंग रामायण महाभारत प्रसंग से अधिक हैं। रमा के प्रसंग में विष्णु

१ से ६ रहीम दोहावली (क्रमशः) दोहा सं० २२० ? ,२३, २८ ६४ १० ५६, ६२, ? ?

के हृदय में भृगु की लात,[१] कष्ट तथा दानादि के प्रसंग में वामन अवतार,[२] सम्मान असम्मान के प्रसंग पर शंकर विष पान तथा राहु शीष-उच्छेदन,[३] अपने गात्र के उत्कर्ष के प्रसंग में वाराह अवतार द्वारा भूमि उत्खनन[४] बड़ों की गौरवहीनता के प्रसंग में शेष द्वारा भार वहन,[५] परोपकार के प्रसंग में शिवि और दधीचि का आलेखन[६] आदि अनेक पौराणिक गाथाएँ रहीम के भक्ति भाव की प्रतीक हैं। वामनावतार कथा का तो एकाधिक प्रसंग में विनियोग हुआ है—

रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावन नाम ॥ २१७—पृ० २१
रहिमन मांगत बडन की, लघुता होत अनूप।
बलि मख मांगन को गए, धरि बावन को रूप ॥ २१६—पृ० २१
रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायन हू को भयो बावन आँगुर गात ॥ २१८—पृ० २१

प्रश्न उठ सकता है कि पुराणादि की घटनाओं का नीति-परक विनियोग शास्त्रीय भक्ति परम्परा में कैसे लिया जाय ? हमारा विनम्र उत्तर है कि सगुण निर्गुण देवी रचना इत्यादि के प्रति जहाँ भी श्रद्धा एवं निष्ठा होगी, वहीं भक्ति का समावेश हो जायगा। रहीम के उक्त प्रसंगों में श्रृंगार साहित्य की बात सोचना भी अश्रद्धा होगी। अतः श्रद्धापूर्ण वर्णन के कारण ये सभी प्रसंग भक्ति भावना के अन्तर्गत हैं।

इनके अतिरिक्त रहीम की भक्ति भावना की एक पाँचवीं विशेषता भी है। यह विशेषता उन दोहों में देखी जा सकती है जिनमें नीति से अधिक श्रद्धा, निष्ठा, वैराग्य एवं प्रेम के दर्शन होते हैं—

अमर बेलि बिन मूल की प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिए काहि ॥ ७—पृ० १
अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आँखिन सौं हरि लख्यो, रहिमन बलि बलि जाय ॥ १६—पृ० २
रन बन व्याधि विपत्ति में रहिमन मरै न रोय।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गए कि सोय ॥ १८६—पृ० १६
रहिमन धोखे भाव से, मुख से निकसे राम।
पावन पूरन परम गति, कामादिक के धाम ॥ १६९—पृ० २०
राम नाम जान्यो नहीं जान्यो सदा उपाधि।
कहि रहीम तिहि आपुनो जनम गँवायो बादि ॥ २२८—पृ० २३

इन दोहों में व्यक्त तल्लीनता निष्ठा और विश्वास भक्त हृदय की सब से बड़ी निधि है सबसे मूल्यवान सम्पत्ति है। यह निधि अपने मूल रूप में रागात्मक होती है। प्रेम की रागात्मक अनुभूति ही भक्ति है।[७] किन्तु आचार्यों के बुद्धि वैभव के चक्कर

[१] से ६ रहीम रत्नावली—दोहा सं० ५८, ११६, १८३, १६१, १७१, २०८
[७] चिंतामणि—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—पृ० ७

समान है जो डोरी खींचने पर अपने से दूर अर्थात ऊपर आकाश में चला जाता है और ढील छोड़ने पर (स्मरण इत्यादि न करने अथवा न कराने वालों के) पास आ जाता है। कहते हैं कि यह दोहा रहीम ने उस समय कहा था जब दर्शन करने जाने पर नाथ जी के मंदिर के पट बन्द कर दिये गये थे और लौट आने पर स्वयं नाथ जी प्रसाद लेकर प्रकट हुए थे। चौथे दोहे का सम्बन्ध मथुरा-गमन से पूर्व श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण तथा बाद के सुधि विस्मरण से है। इसमें रहीम की निर्धनता भी व्यंग्य है। पांचवें दोहे में ग्राह द्वारा ग्रसित हाथी (रहीम) की रक्षा वाला स्वभाव छोड़कर, अन्य तथाकथित सहयोगी हाथियों जैसा स्वभाव ग्रहण करने का व्यंग्य है। भाव यही है कि प्रभु ने अब दीन-दुखियों की सहायता करना छोड़ दिया है।[1] छठा दोहा प्रभु की निष्ठुरता पर व्यंग्य करता है। उन्होंने रहीम को आत्मार्पित करने के उपरान्त अपने दर्शनों से वंचित कर दिया है। कहते हैं कि यह दोहा श्रीनाथ जी के मन्दिर के पट बन्द होने के अवसर पर कहा गया था। भक्तजनोचित सखा सुलभ इन व्यंग्यों के समान ही दास्यजनोचित दीन भाव से भी रहीम ने इष्टदेवों की उपासना की है—

दास्य भक्ति

गहि सरनागति राम की भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाव॥ ८६—पृ० ५
मुनि नारी पाषान ही कपि पसु गुह मातंग।
तीनों तारे रामजू तीनों मेरे अंग॥ १४८—पृ० ९
रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक।
दांत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक॥ १७७—पृ० १७

शान्त भक्ति

एक साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहिं सींचबो फूलहि फलहि अघाय॥ १६—पृ० २
रहिमन धोखे भाव से, मुख से निकसे राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम॥ १९६—पृ० २०

शृंगार भक्ति

मनसिज माली की उपज कही रहीम नहिं जाय।
फल स्यामा के उर लगे फूल स्याम उर आय॥ १३९—पृ० ११
प्रीतम छवि ननन बसी पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि पथिक आप फिरि जाय॥ १९९—पृ० १२

---

१ थोरे ही गुन रीझते विसराई वह बानि।
तुमहू कान्ह मनो भये, आजु कालि के दानि॥—बिहारी

भक्ति के इन प्रकारों के अतिरिक्त भक्ति ग्रंथों एवं काव्यों में सबसे अधिक चर्चा नवधा भक्ति की रही है। श्रीमद्भागवत[1] गीता[2] तथा मानस[3] इत्यादि ही नहीं वेदोपनिषदों[4] में भी नवधा भक्ति के संकेत मिलते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि सभी शास्त्रों की नवधा भक्ति में परिपूर्ण एकता नहीं है। यहाँ तक कि श्रीमद्भागवत तथा मानस में भी पर्याप्त अन्तर है। फिर भी भगवान के श्रवण कीर्तन स्मरण पादसेवन, अर्चन, वन्दन आत्मनिवेदनादि की मान्यता सर्वत्र है। रहीम के नीति-दोहों में प्रायः इन सभी से सम्बन्धित दोहे प्राप्त होते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

कीर्तन

रहिमन धोखे भाव से, मुख से निकसे राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम ॥ १९९—पृ० २०

स्मरण

तैं रहीम मन आपुनो कीन्हो चारु चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहे कृष्णचन्द्र की ओर ॥ ९०—पृ० ९

वन्दन

रहिमन मनहिं लगाय के देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा नारायन बस होय ॥ २१४—पृ० २१

अर्चन

राम नाम जान्यो नहीं, भई पूजा में हानि।
कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि ॥ २३८—पृ० २३

पाद सेवन

कहि रहीम जग मारियो नैन बान की चोट।
भगत भगत कोउ बचि गये चरन कमल की ओट ॥ २८—पृ० ३

गुण कथन

भेदाभेद एवं साधनाओं में रहीम के भक्ति भाव का सबसे बड़ा आधार है गुण-कथन। रहीम को जहाँ भी जिस किसी प्रसंग में अवसर प्राप्त होता है अपने प्रभु के गुण कथन से कभी नहीं अघाते। भगवान की दीनबन्धुता पर तो उनका विश्वास और भी अटल है। इसीलिए उन्होंने एक नहीं अनेक दोहों में दीन बत्सलता के गुण गाये हैं—

जे गरीब पर हित करैं ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग ॥ ६४—पृ० ७

१ श्रीमद्भागवत ७ ५ २३
२ श्रीमद्भगवद्गीता ९ ८ ८ २४ १० २५ तथा ११ ३९ ४० ६१ इत्यादि।
३ रामचरितमानस अरण्यकाण्ड
४ ऋग्वेद १ १५६ ३ १ १५४ १ १ १५४ ६४ इत्यादि।

दीन सबन को लखत है दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै दीनबंधु सम होय॥ ६५—पृ० १०
माँगे मुकरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ॥ १४६—पृ० १५
सतत संपति जान कै, सब को सब कुछ देत।
दीनबंधु बिनु दीन की, को रहीम सुधि लेत॥ २६२—पृ० २५

भक्ति सम्बन्धी निष्कर्ष

निष्कर्ष यह है कि रहीम का काव्य अत्यन्त आस्थावान भावुक भक्त हृदय की सृष्टि है। अपने युग की प्रतिनिधि भावना के समान ही, उनका काव्य वैष्णवी श्रद्धा से ओत प्रोत है। भगवान राम-कृष्णादि की सगुण भक्ति वीथिका को नीति की पुनीत एवं लोकोपयोगी जलधार से अभिसिंचित करने वाले, इस इस्लाम धर्मावलम्बी कवि की जितनी सराहना की जाय, थोड़ी है। उन्होंने अपने काव्य के लिए भारतीय लोक जीवन एवं हिन्दू धर्म-प्रथा से, जिस प्रकार की सामग्री का संचयन किया है, वह उन्हें भारतीय समाज का प्रतिनिधि कवि बनाने में पूर्ण सक्षम है। जब जब भी भक्ति एवं लोक काव्य की नीति मयी चर्चा होगी उनका नाम अग्रिम पंक्ति में अंकित किया जायगा। उनका काव्य चरित्रहीनता, नीरसता, निराशा अनैतिकता, असफलता, लोक-विमुखता नास्तिकता संकीर्णता, धर्मान्धता एवं अभारतीयता के मूलोच्छेदन के लिए राम बाण है।

अनुभूति का तीसरा प्रधान स्रोत—प्रकृति

प्रकृति मानवीय अनुभूति का विशेष क्षेत्र है। वह मानव की चिर सहचरी है। मनुष्य ने जब सर्वप्रथम इस धरा धाम पर अपने निंदियारे लोचन खोले तभी से उसे प्रकृति का सान्निध्य प्राप्त है। सच बात तो यह है कि प्रकृति हमारे आदि पुरुष से भी पूर्व विद्यमान थी। उसी के सम्पर्क से मानवीय चेतना का विकास हुआ। उषा, सन्ध्या पुष्प निर्झरादि की अवस्था के कारणों पर सोचते सोचते वह दार्शनिक बन गया। उनके किसी अनन्त शक्ति सम्पन्न निर्माता की कल्पना कर उसने आस्तिक भाव तथा धर्म को जन्म दे डाला। इसी प्रकार प्राकृतिक वस्तु-व्यापारों के संश्लेषण विश्लेषण की जानकारी ने उसे वैज्ञानिक बना दिया। उसकी अनुकृति की चेष्टाओं से कलाकार ने जन्म लिया और रूप की रीझ खीझ से कवि ने। मानवीय विचारों की सब प्राचीन थाती वैदिक ऋचाएं इस रीझ खीझ से आपूरित हैं। उप सूक्त ऋषियों में प्रकृति विषयक तरल भाव का प्रमाण है। कदाचित इसीलिए उन्होंने अपने काव्य को पावस के मेघों की उमड़ती घुमड़ती धारा कहा था[1] और अपने परम प्रभु को कवि—कविर्मनीषी परिभूःस्वयम्भू।[2]

---

१ ऋग्वेद ७ ६ १

२ यजुर्वेद (शुक्ल) ४० ८

प्रकृति और उसका विस्तार

विभिन्न दर्शन ग्रंथों में प्रकृति के विभिन्न रूपों की चर्चाएं हैं। सांख्य दर्शन में तो ये चर्चाएँ और भी विस्तृत हैं।[1] किन्तु उन सबमें न उलझते हुए हम मानते हैं कि प्रकृति का अर्थ है—प्रभु की प्रकृष्ट कृति। अपने को केन्द्र में रखते हुए हम इसे दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम—पुरुष प्रकृति तथा द्वितीय—पुरुषेतर प्रकृति। श्रीकृष्ण जी ने शक्ति का विभाजन इसी प्रकार किया था। उन्होंने एक ओर अपनी समस्त सेना कौरवों को प्रदान की थी तथा दूसरी ओर अपना पक्ष दिया पाण्डवों को। मानव से इतर जितना भी संसार है वह सब सहज रूप में प्रकृति-संज्ञा से पुकारा जाता है। इसमें नदी पहाड़, झरने आकाश पाताल सूर्य चन्द्र नीहारिका अग्नि वायु पशु पक्षी फूल, पात सभी समाहित हैं। काव्य में प्रकृति वर्णन से तात्पर्य इन्हीं मानवेतर प्राकृत पदार्थों के प्रयोग से है। आदि कवि से लेकर अद्यावधि इन पदार्थों का प्रयोग देश विदेश के सभी काव्यों में निरन्तर रीति से होता चला आ रहा है। डा० रघुवंश तथा डा० किरण कुमारी गुप्त इत्यादि ने अपने प्रकृति काव्य विषयक ग्रन्थों में इन तथ्यों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। डा० गुप्ता ने ईश्वर की कारीगरी को प्रकृति तथा पुरुष की कारीगरी को कला[2] बताते हुए प्राचीन कवियों के द्वारा प्रकृति के सुन्दर असुन्दर सभी रूपों को काव्य में स्थान देने की विस्तार से चर्चा की है। इस रीझ-खीज में नैतिक शिक्षा ग्रहण करने की परम्परा भी पर्याप्त प्राचीन है श्रीमद्भागवत के आधार पर तुलसीदास[3] एवं नन्ददास[4] आदि ने पर्याप्त प्रकृति काव्य की रचना की है।

रहीम के नीति काव्य के तीन ही प्रधान स्रोत हैं— प्रकृति लोक और भक्ति। इनमें भी अधिक अंश प्रकृति का है। रहीम रत्नावली में प्रकाशित २७७ दोहों में आधे से अधिक दोहों में प्रकृत उपकरण प्रयुक्त हुए हैं। अपने काव्य कलेवर में इतने बड़े अंश को प्राकृतिक उपकरणों से परिपूरित करने वाले कवि थोड़े ही होंगे। उनके समस्त नीति-काव्य का अनुशीलन करने पर हम नाना प्रकृत पदार्थों के प्रयोग दिखाई देते हैं।

रहीम-काव्य के प्राकृतिक उपकरण

सागर-नदी नगर-ग्राम नीर क्षीर चन्द्र-नखत शीत घाम कदरी-करील, विष मदन उजेरा अंधेरा श्वान वराह मणि मौक्तिक चन्द्र चकोर पशु-पक्षी, पेड़-पत्ती, वर-कर ग्रीष्म शरद जल मीन फल-फूल कूप-तडाग दादुर मोर घर घरा काक पिक,

१ सांख्य दर्शन—कपिल मुनि (पं० श्रीराम वाजपेयी की व्याख्या)—पृ० ३१, ६३, ६६ इत्यादि।

२ हिंदी काव्य में प्रकृति चित्रण—डा० किरणकुमारी गुप्ता (सं० २००६ प्रयाग) प्रकृति से अभिप्राय विषयक दीपक

३ मानस (किष्किन्धा काण्ड) वर्षा एवं शरद प्रसंग।

४ नन्ददास ग्रंथावली— भाषा दशम स्कंध प्रसंग।

भौंर-कज, पक उदधि, धरती आकाश, रज गज, मृग मृगया, नाद रीझ हिम हन्त कुल कमल, दादुर-कोकिल, पडा-बल, करौंदा कटहर, हीरा राई दूध मक्खन, नभ-तारे, खेत पट, मझधार भार वन-उपवन, गिरि भूमि, भीत पखान, नही मही, नभ-सर मानस हस, सफरी-बक, विप अमृत, माघ-पलाश चातक-व्याल, कपि मातग, श्वेत श्याम, चीता-बाघ कूप-सरिता, धनुप-कमान, भस्म-कलाप, तुरग अग, चन्द्रोन्य चन्द्रास्त, रन-वन डार-पात, मृग-वराह सहृदय-सज्जन मज्जा रुधिर घी शक्कर हार-पहाड काट चाट (श्वान की), तम-कज्जल, चूहा चाम, निशा दिवस, हिम अगार, उखारी रसभरा पवन धल सूखा वपा, जल अलज, दुग्ध मद्य, सम्पुटी घडियाल हाड माम मोती मानुप बल पिपील खीरा फाक हल्दी-चून खग मृग, घना मन सूरज-तारे साप सगीत ढेकुली खेत, तम उद्योत मेंहदी रग, भूखे मर दिवा मसि, नीर-पखान बहरी बाज सिध बिन्दु—इत्यादि वस्तुओ स सम्बद्ध वणन रहीम के काव्य म प्रकृति की स्थान की कहानी स्वय कहत है।[1]

प्रकृति—नतिक उद्भावनाओं का स्रोत

रहीम के काव्य म इन सभी वस्तुओ का उपयोग, अय अधिकाश कवियो की भाँति केवल सौन्दय चित्रण तथा भाव उद्दीपन के लिए ही नही हुआ है। उन्होने अपने विपय के साथ न्याय करते हुए, प्राकृतिक तत्वों का अधिक प्रयोग नीति-कथन के लिए किया है। कही तो वे प्राकृतिक घटनाओ अथवा तत्वो को देखकर, उनसे नतिक सिद्धान्त की उद्भावना कर लते है और कही अपने नीति-कथनो के उदाहरणस्वरूप प्रकृति का उपस्थित करते है। उनके समस्त नीति-काव्य म प्रकृति का उपयोग विशेपत इन्ही दो प्रकारों से हुआ है। प्रकृति के विविध क्रिया-कलापो को देखकर उनसे नैतिक सन्देश प्राप्त करना, रहीम के बुद्धि वैभव का कमाल है। बिना जड मूल का अमर

---

१ रहीम रत्नावली—क्रमश दोहा स० ४३ ५४ ८६, ६५, ६८ ७० ७४, ७७ ८३ ८५ ६० ४१ ३८ ३३ ४४, ४५, ५० ८३, ६८ १०१ १०४ १०५ १०६, १०७, १०८ ११०, ११३ ११५, ११७, ११८, १२४, १२५, १२६, १३० १३२ १३३ १३५, १३७ १३६, १३८, १४० १४२, १४३, १४४, १४७ १४८ १४६, १५०, १५१, १५४, १५५ १५७ १५८, १५६ १६० १६१, १६३, १६४, १६६ १६७ १६६, १७६ १८१, १८५ २७१, १८७ १६६ १६५ २०१, २०२ २०३, २०४, २०५, २०६ २०७ २०८, २१०, २२३, २२४, २२८ २२९, २३०, २४७, २४८, २५७ २६३ २७४, २७५, तथा २७७।

बेल को फलते देख व, सभी के पालन करने वाले प्रभु का आश्रय अपनाने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं।[1] सूय चन्द्रादि ज्योति पिण्डो को एक ही आभा से उदित एव अस्त होते हुए देखकर उन्हे सुख दुख म एकसा बने रहने की स्मृति हो आती है।[2] एक ही दीप स कक्ष की सम्पूण वस्तुए प्रकाशित होते देख उन्हे दगा के दो दीपो के होते हुए हृदयस्थ प्रेम न छिपने की युक्ति सूझ जाती है।[3] गगा के जलधि म मिलन पर गगा नाम लुप्त हो जाने पर उन्हने घर पहुँचने पर प्रभुता के नष्ट होने की सीख मिल जाती है।[4] इस प्रकार के न जाने कितने तथ्यो से उनके नीति-काव्य का ताना बाना बुना गया है। साथ ही इन निष्कर्षों का अपना एक आकषण भी है जो मन पर सीधी चोट करता है—

मथत-मथत माखन रहे, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है भीर परे ठहराय॥ १३४—पृ० १४
रहिमन घरिया रहट की त्यो ओछे की डीठ।
रीतिहि सम्मुख होत हैं भरी दिखाव पीठ॥ १७८—पृ० १८

जिस प्रकार प्राकृतिक घटनाओ को देखकर उनसे नतिक निष्कष निकाले गये हैं उसी प्रकार अपने नतिक निष्कर्षों के लिए प्रकृति को उदाहरण के रूप म प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति वणन का यह रूप ऊपर विवेचित रूप की अपेक्षा और भी अधिक प्रयुक्त है। छोटे छोटे व्यक्तियो के उचित अनुचित कार्यों के पीछे बडा का हाथ रहा करता है। चकोर को अगारे पचाने की शक्ति शशि के सयोग स प्राप्त है।[5] अपने पास धन धान्यादि का सहारा होने पर ही मित्र रक्षा करते हैं। अबु के बिना अनुज का हित रवि भी नही कर पाता।[6] विधाता द्वारा बड बनाये हुए व्यक्तियो के दूषणो पर ध्यान न देकर ससार उन्ह बडा ही समझता रहता है। चन्द्र दुबला-कुबडा रहन पर भी नभश्री स बडा गिना जाता है।[7] फारसी की कहावत है 'खतारा बजुर्गां गिरफ्तन खता अस्त'। अर्थात बडो की त्रुटियो को पकडना भी एक त्रुटि है। जीवन मर्यादा के अनुकूल ही होना चाहिए। मर्यादा उल्लघन करते ही उसका विनष्ट होना स्वाभाविक है। जल, तडागादि म उतना ही ठहरता है, जितने म उसके किनारे मर्यादित हैं। अधिक हो जाने पर वह बाहर बह कर पथभ्रष्ट हो जाता है[8] इत्यादि इत्यादि। प्रकृति-समर्थित उनके ये नीति-कथन इतने सरल प्रभावशाली तथा प्रसिद्ध हैं कि बच्चे-बच्चे की वाणी पर रहते है—

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसग।
चन्दन विष व्यापत नहीं लिपटे रहत भुजग॥ १७६—पृ० ८

परम्परा निर्वाह, मौलिकता एव सूक्ष्मता

रहीम द्वारा प्राकृतिक वणन म प्रकृति के नाना वस्तु-व्यापारो का विनियोग हुआ है। कहा ये वणन नितान्त परम्परागत हैं और कहा एकदम मौलिक। भ्रमर चक हस, चातक मयूर स्वाति आदि स सम्बद्ध मान्यताए भारतीय समाज म चिर प्रचलित हैं।

---

१ से ८ रहीम रत्नावली—दोहा सख्या (क्रमश) ४७ १५ २७ ४३, ५८, ६५, ७२

साथ ही इनसे हरजाईपन एकनिष्ठता पवित्रता, आदि की शिक्षा लेना भी कोई नई बात नहीं, किन्तु रहीम इन प्राचीन तथ्यों को भी कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि उनके प्रभाव में नवीनता आये बिना नहीं रहती। उनका ढंग कुछ अपना ही है—

वह चितवन और कछू जिहिं बस होत सुजान।

परम्परागत निवचनों में भी उनकी मौलिकता के दर्शन होते हैं। छोटों की शोभा बड़ों के संसर्ग से होती है बड़े भी छोटों के सम्पर्क से लाभान्वित होते हैं। दमड़ी की मेख से बंधे सहस्रों के अश्व की शोभा ऐसी ही है।[1] अतः बड़ों को प्राप्त कर छोटों का त्याग देने में कोई बुद्धिमानी नहीं। सुई का काम पड़ने पर सुई ही उपयोगी सिद्ध होगी तलवार नहीं यद्यपि वह उससे कई गुनी बड़ी और नुकीली है।[2] बड़े हों या छोटे सभी से सावधान रहने की आवश्यकता है। कुछ लोग विनम्र होकर, झुककर चलते हुए भी चोट कर जाते हैं। चीता चोर और कमान का झुकना चोट का कारण होता है।[3] चोट के अवसरों से सावधान रहते हुए अपने सम्मान की रक्षा करते रहना चाहिए। मोती और मनुष्य आदि की आब (पानी) और मान लज्जा इत्यादि उतर जाने पर रह ही क्या जाता है—

रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे मोती मानुष चून॥ २०८—पृ० २०

इस प्रकार के अन्यान्य कथनों की सूची बड़ी लम्बी है। कथ्य सामग्री में प्राचीनता होते हुए भी निरूपण की नवीनता स्पष्ट है। नवीनता के साथ साथ प्रकृति-प्रयोग की सूक्ष्मता उनके प्रकृति सम्बन्धी अनुभूति की विशेषता है। उन्होंने प्राकृतिक दृश्य क्रियाओं एवं व्यापारों को सूक्ष्मता से देखा है उस पर मनन किया है और पुनः अनुभूति प्रवण चेतना से उसे नीति के सिद्धान्तों पर घटाया है। मेंहदी बाटने वाले के पोरुओं के लाल होने से परोपकार की प्रेरणा, रहीम की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है।[4] निशाकाश में चन्द्रमा की छटा किसे मोहित नहीं करती किन्तु वही चन्द्रमा दिन में भी दिखाई पड़ जाया करता है। क्या उस समय भी कोई उसकी ओर आकर्षित होता है? निश्चित ही रहीम जैसे विरले सूक्ष्मदर्शी उसे देखते हैं और शिक्षा प्राप्त कर पुकार उठते हैं—

सपत भरम गँवाइके हात रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम ससि रहत है दिवस प्रकासहि माहिं॥ २६३—पृ० २६

कहीं-कहीं ये वर्णन सूक्ष्म से सूक्ष्मतम होते हुए एकदम अशरीरी वस्तुओं से सम्बद्ध हो गये हैं। छाया ऐसी ही अशरीरी वस्तु है—

जो रहीम मन हाथ है तो तन कहुँ किन जाहि।
जल में जो छाया परे काया भीजत नाहिं॥ ७९—पृ० ८

---

१ से ४ रहीम रत्नावली—दोहा सख्या क्रमशः १६, १६७ १५८, १४८

प्रकृति की इसी सूक्ष्म अशरीरी सामग्री से जग की रीति का वर्णन देखिए—

रहिमन जग की रीति मैं देख्यो रस ऊख में।
ताहू में परतीति, जहाँ गाठ तँह रस नहीं॥ २३७—पृ० २७

प्रकृति के पत्रों पुष्पों फूलों फलों की सूक्ष्मता से देखना और उनसे नैतिक प्रेरणा ग्रहण करना उनके बाह्य रूप आकार को देखकर मोहित हो जाने की अपेक्षा कहीं अधिक योग्यता की अपेक्षा रखता है। सभी ने खीरा देखा है तराशा है खाया है किन्तु उसकी गहराई में सूक्ष्मता से पैठ करके निम्नलिखित तथ्यों की अभिव्यक्ति कितने कवि कर पाये हैं—

खीरा सिर तें काटिए मलियत नमक लगाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहियत इहै सजाय॥ ४८—पृ० ५
रहिमन प्रीति न कीजिए जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला भीतर फाकें तीन॥ २०७—पृ० २०

प्रकृति वर्णन के विविध रूप

डा० श्यामसुन्दरदास के अनुसार कवियों का प्रकृति वर्णन बहुत कुछ मनोवृत्तियों भावनाओं और विचारों पर निर्भर करता है।[1] इस कारण प्रकृति वर्णन के अनेक रूप हो जाते हैं। सामान्यतया प्रकृति वर्णन की समीक्षा करते हुए कतिपय नायकों के अन्तर्गत विचार किया जाता है। इन्हें, आलम्बनात्मक उद्दीपनात्मक पृष्ठधारात्मक अलंकरणात्मक उपदेशात्मक परिगणनात्मक संख्यात्मक, मानवीकरणात्मक अन्योक्त्यात्मक प्रतीकात्मक भयात्मक रहस्यात्मक नखवर्णनात्मक आदि नाम दिये जाते हैं। सभी कवियों के प्रकृति-वर्णन में ये सभी रूप समान सौन्दर्य के साथ वर्णित नहीं होते। मुक्तककार की अपेक्षा प्रबन्धकार को इन रूपों के वर्णन का अधिक अवसर प्राप्त होता है। महाकाव्य का तो यह एक तत्व ही गिना जाता है। स्पष्ट है कि रहीम में मुक्तक काव्य की अपनी सीमा है। वे नीति के कवि हैं प्रकृति के नहीं। किन्तु ऊपर गिनाये गये कतिपय प्रमुख रूपों का व्यवहार हम रहीम के नीति-काव्य में भी खोज सकते हैं।

आलम्बनात्मक प्राकृति वर्णन

जहाँ कवि प्राकृति वर्णन केवल प्राकृतिक दृश्यों एवं घटनाओं के लिए ही करता है वहाँ प्रकृति वर्णन आलम्बनात्मक होता है। यहाँ कवि का उद्देश्य निर्लिप्त रूप में मात्र प्रकृति वर्णन ही होना है। इस प्रकार के सबसे सुन्दर उदाहरण संस्कृत कवियों और विशेषतः आदि कवि वाल्मीकि एवं महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। हिन्दी में रामनरेश त्रिपाठी के तथा पंतजी के प्रकृति चित्रण में, आलम्बनात्मक रूप अधिक अच्छा उभरा है।[2] रहीम का उद्देश्य प्रकृति चित्रण को

१ साहित्य-लोचन—डा० श्यामसुन्दरदास (छठा सं०)—पृ० ८२

२ देखिए—पथिक (खण्ड काव्य) तथा वीणा-पल्लव गुंजन आदि की कविताएँ।

केवल प्रकृति चित्रण के लिए प्रस्तुत करना नही था। अत इस प्रकार के चित्र उनके काव्य म नाम मात्र का ही हैं फिर भी एक दो उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। जहा अन्योक्ति मुखरित नही वहा आलम्बनात्मक रूप उभरता प्रतीत होता है—

> दादुर मोर किसान मन लग्यो रहे घन माहि।
> रहिमन चातक रटनि हूँ सरवर को कछु नाहि॥ ९३—पृ० १०
> दोनों रहिमन एकसे जो लों बोलत नाहि।
> जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसन्त के माहि॥ १०१—पृ० १०

उद्दीपनात्मक प्रकृति वणन

मानव हृदय के प्रेम, वात्सल्य घृणा, आश्चय करुणा इत्यादि भाव जिस प्रकृति-चित्रण से उद्दीप्ति को प्राप्त होते हैं वहा उद्दीपनात्मक प्रकृति वणन माना जाता है। सयोग वियोग क शृगारिक क्षेत्र म इस प्रकार के प्रकृति वणन का विशेष महत्त्व है। सूर की गोपियो द्वारा कहे गये—'पिय बिनु नागिन काली रात', 'देखियत कालिन्दी अति कारी' 'मधुबन तुम कत रहत हरे', इत्यादि पद उद्दीपनात्मक प्रकृति के सुन्दर उदाहरण हैं। नीति काव्य म शृगार क सयोगवियोगादि का अवसर अत्यन्त सीमित होने के कारण रहीम दोहावली म उद्दीपनात्मक प्रकृति वणना की सख्या थोडी ही है। निम्नलिखित दोहा म इस प्रकार के प्रकृति चित्रण का आस्वाद लिया जा सकता है। यहा रजनी मृदुता सलौनापन तथा ढाक आदि हमारे भावो के उद्दीपक है—

> रहिमन रजनी ही भली पिय सो होय मिलाप।
> खरो दिवस कहि काम को रहियो आपुहि आप॥ २२१—पृ० २३
> नन सलौन अधर मृदु कहि रहीम घटि कौन।
> मीठो भाव लौन पर, अरु मीठे पर लौन॥ ११२—पृ० ११
> कहा करौं बकुण्ठ लै कल्प वृच्छ की छाह।
> रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल प्रीतम बाह॥ ३८—पृ० ४

पृष्ठधारात्मक प्रकृति वणन

किसी भाव घटना या व्यापार विशेष के वणन करने म पूव जब कवि वातावरण निर्माण के लिए प्राकृतिक उपकरणो को पृष्ठ भूमि के रूप म प्रस्तुत करता है वहाँ पृष्ठधारात्मक प्रकृति-वणन कहा जाता है। प्रिय प्रवास महाकाव्य के अनक सर्गो का श्रीगणेश इसी प्रकार क प्रकृति-वणन से हुआ है। संस्कृत-कवियो न नाति कथनो की पृष्ठभूमि म प्रकृति को बहुत ही सुन्दर रूप म विन्यस्त किया है। कश्मीरी कवि दामोदर गुप्त म जनो क स्वभाव के सम्बन्ध म यह कहना चाहते हैं कि व जन्म एव स्वभाव म ही परोपकारी होते है। परन्तु इस कथन की पृष्ठभूमि म व बिना किसी

पत्र की आकाशा के उदित होने वाले इन्द्र धनुष का वर्णन करते है—

मण्डयितुं वियदुदयति पुरहूतधनुर्विनव फलवाञ्छाम।
अनपेक्षितात्मकार्य परहितकरणग्रह सता सहज ॥[1]

आचार्य क्षेमेन्द्र इस विधा म और भी पटु है।[2] स्वय भर्तृहरि ने इस प्रकार के अनेक श्लोक रचे है।[3] रहीम के नीति काव्य म प्रकृति चित्रण की यह विधा पुष्कल रूप स प्रयुक्त हुई है। रहीम न प्राकृतिक घटना व्यापारो से अपने नीति-वचनो के लिए सुन्दर पृष्ठभूमि तयार की है। तरुवर फल नही खाते सरोवर स्वयमेव पानी नही पीते। इसी प्रकार परोपकारी जीव सम्पत्ति का सचयन दूसरो के ही हितार्थ करते है। जलहीन क्वार के थोथे बादल वृथा ही गरज-गरज कर अपनी विगत श्रावण भादो मास की स्थिति की लकीर पीटते है धनी पुरुषो का निधन होने पर पिछले गीत गाना स्वाभाविक है। दही मथने पर अन्य सब तत्वो द्वारा सहयोग छोड दिए जाने पर भी मक्खन अन्त तक साथ बना रहता है। मित्र वही है जो विपत्ति म थन म भी पृथक न हो। इन सभी म प्रकृति को पष्ठभूमि म रखकर तथ्य प्रस्तुत किय गये है—

तरुवर फल नहिं खात हैं सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित, सपति सचहिं सुजान ॥ ८८—पृ० ६

थोथे बादर क्वार के जो रहीम घहरात।
धनी पुरुष निधन भये करें पाछिली बात ॥ ६६—पृ० ६

मथत मथत माखन रहे दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है भीर परे ठहराय ॥ १३६—पृ० १४

कदली सीप भुजग मुख स्वांति एक गुण तीन।
जसी सगत बठिए, तसोई फल दीन ॥ २२—पृ० ३

कौन बड़ाई जलधि मिलि गग नाम भौ धीम।
केहि की प्रभुता नहीं घटी, पर घर गये रहीम ॥ ८३—पृ० ५

अलकरणात्मक प्रकृति वर्णन

मानवीय चेतना का सस्कार सौन्दर्य-सज्जा का मूल कारण है। मनुष्य अपने को सुन्दरतर बनाने की दृष्टि स विभिन्न प्रकार के उपकरणो को धारण करता चला आया है। य उपकरण ही अलकार कहलाते है। वाणी को सुन्दरतर करने के लिए जिस चमत्कारमयी शब्द-योजना का प्रयोग किया जाता है उसे भी अलकार कहते है।

१ कुट्टनीमतम (अनु० अत्रिदेव—१९६१ वाराणसी) श्लोक १०८२, पृ० २०२
२ हार नाभस्य रव प्रकाशताप कृशानो पवनस्य वेग।
परोपकार करणारतानां महाजनाना सहज स्वभाव ॥—क्षेमेन्द्र
३ स्वाया सागरशुक्तिमध्यपतित तन्मौक्तिक जायते।
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुण ससर्गतो देहिनाम ॥—भर्तृहरि

अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक तथा दृष्टान्तादि ऐसे ही अलंकार हैं। अलंकारों के उपकरण जब प्रकृति के प्रांगण से चुने जाते हैं, अथवा जहाँ पुष्प-लता, चन्द्र-सूर्यादि प्राकृतिक तत्त्वों का प्रयोग उपमा रूपकादि की सामग्री संचयन के लिए होता है वहाँ प्रकृति वर्णन को अलंकरणात्मक कहा जाता है। यह विधा काव्य की चिर प्रचलित विधाओं में से है। युग युगान्तरों से सभी कवि इसका प्रयोग करते चले आये हैं। रहीम ने अनेक दोहों की अलंकरण सामग्री प्रकृति के प्रांगण में चुनी है। अतः निम्नलिखित उद्धरण अलंकरणात्मक प्रकृतिवर्णन के अन्तर्गत समाहित होंगे—

रहिमन राज सराहिए ससि सम सुखद जो होय। २२४—पृ० २२
रहिमन रीति सराहिए जो घट गुन सम होय॥ २२८—पृ० २२

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारे लगे, बढ़े अँधेरो होय॥ ७७—पृ० ८
जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय।
बड़े उजेरे तेहि रहें, गए अँधेरो होय॥ ७८—पृ० ८

उपदेशात्मक प्रकृति वर्णन

प्राकृतिक घटना-व्यापारों से नैतिक उपदेश प्राप्त करने की प्रवृत्ति पर्याप्त प्राचीन एवं सार्वभौमिक है। आंग्ल कवि वर्ड्सवर्थ ने स्वीकार किया था कि प्रकृति उसके लिए माता, प्रेमिका एवं उपदेशिका आदि सब कुछ है। वेदोपनिषदादि ग्रन्थों की परम्परा से होता हुआ यह रूप श्रीमद्भागवत में अत्यन्त विकसित हो गया है। तुलसी, सूरदास आदि से लेकर पंत जी तक के काव्यों से प्रकृति से प्राप्त उपदेशों का संकलन किया जा सकता है। प्रकृति सापेक्ष इन उपदेशों को ही उपदेशात्मक प्रकृति वर्णन की संज्ञा दी गई है। रहीम के काव्य में प्रकृति के उपदेशात्मक रूप के दर्शन कुछ कम नहीं होते। कहीं वह स्वाति नक्षत्र की बूँद में संगति के प्रभाव की उपदेशिका प्रतीत होती है[1] तो कहीं फलों से लदे तरुवर परोपकार का सन्देश प्रदान करते हैं।[2] बेर और केर का संग अनमेल मैत्री के परिणामों का दिग्दर्शन कराता है[3] और थोड़े जल में तड़पती हुई मछली घर उद्यम और बढ़े खर्च वाले गृहस्थ की दशा का आभास देता है।[4] तात्पर्य यह है कि प्रकृति के नानावस्तु-व्यापारों का रहीम ने उपदेशात्मक रीति से प्रयुक्त किया है। इस प्रकार के अधिकांश उपदेशों एवं निष्कर्षों में निश्चित ही एक विचित्र आकर्षण है—

बड़े पेट के भरन को है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथिहि हहरि कै दियं दाँत द्वै काढ़ि॥ १२३ पृ०—१२

१ से ४ रहीम रत्नावली— दोहा सं० ८२, २८, २३, ८४

परिगणनात्मक प्रकृति-वर्णन

कभी-कभी कवि थोड़ी ही पंक्तियों में प्रकृति के विभिन्न उपकरणों की सूची गिना देता है। उनका सामासिक चित्र समुपस्थित करना उसका उद्देश्य नहीं होता। इस प्रकृति वर्णन को परिगणनात्मक प्रकृति वर्णन कहा जाता है। यद्यपि यह रूप न तो प्रभावशाली है और न उत्कृष्ट किन्तु फिर भी प्रायः सभी कवियों की कृतियों में न्यूनाधिक मात्रा में दर्शन हो मिल जाता है। प्राचीन सूफी कवियों ने तो भर भर कर लम्बी लम्बी तालिकाएँ प्रस्तुत की हैं। मानस तक में ऐसे वर्णन देखे जा सकते हैं। आधुनिक युग के प्रथम महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' में भी इस प्रकार के विस्तृत स्थल प्राप्त हैं। कहीं-कहीं तो वस्तु परिगणन की धुन में हरिऔध जी ने वे वस्तुएं भी गिना दी हैं जो वृन्दावन के वातावरण में उत्पन्न नहीं होतीं। रहीम के नीति काव्य में इस प्रकार के अवसर प्रायः नहीं हैं। वस्तु परिगणन सम्बन्धी दोहे सायास खोजने पर ही दृष्टिगोचर होते हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में यह रूप देखा जा सकता है—

> दादुर मोर चकोर मन लग्यो रहै घन माहिं॥ ६३—पृ० १०
> चोरी चोर कमान के नए ते अवगुन होय॥ १४८—पृ० १४
> पानी गए न ऊबरे, मोती मानुस चून॥ २०८—पृ० २०

संख्यात्मक प्रकृति वर्णन

परिगणनात्मक तथा संख्यात्मक दोनों रूप प्रायः एक से हैं। अन्तर केवल यह है कि संख्यात्मक प्रकृति वर्णन में कवि परिगणित वस्तुओं की संख्या भी स्वयं ही बता देता है—

> सिंहादेकं बकादेकं शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात्।
> वायसात्पञ्च शिक्षेच्चषट् शुनस्त्रीणि गर्दभात्॥[1]

अर्थात् सिंह से एक, बगुले से एक, मुर्गे से चार, कौवे से पांच, कुत्ते से छः, गधे से तीन गुण ग्रहण करने चाहिए। यहाँ कवि ने स्वतः संख्याओं का भी उल्लेख कर दिया है। रहीम ने भी अपने प्रकार से कहीं कहीं संख्याओं का भी उल्लेख किया है। ऐसे दोहे संख्यात्मक प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत आते हैं। कुछ पंक्तियां लीजिए—

> कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुण तीन॥ २२—पृ० ३
> ये रहीम फीके दुवौ जानि महा संतापु। १४०—पृ० १५

मानवीकरणात्मक प्रकृति वर्णन

निष्प्राण प्रकृति को प्राणवत चित्रित करने की विधा मानवीकरण है। कवि भावावेग के समय प्रकृति को नारी, पुरुष, मित्र, प्रेयसी इत्यादि मानकर उसके घटना व्यापारों में मानवीय क्रिया-कलापों का सन्नियोजन करता है। छायावाद के काव्य में प्रकृति का मानवीकरण अपने उत्कृष्टतम रूप में विद्यमान है। प्रलय काल के पश्चात

---

1 चाणक्य नीति ६ १८

सिन्धु तल में उदित होती भूमि के सम्बन्ध में प्रसाद का कथन, मानवीकरण का उत्तम उदाहरण है —

सिन्धु सेज पर धरा वधू, अब तनिक सकुच बैठी सी।
प्रलय निशा हलचल स्मृति मे, मान किए सी ऐंठी सी॥—कामायनी

छायावादी कविताओं में नदी पर्वत, दिवा रात्रि आदि का सुन्दर मानवीकरण हुआ है।[1] यद्यपि सूर तुलसी ने भी मानवीकरण के चित्र उतारे हैं[2] किन्तु उनका युग प्रकृति के मानवीकरण का युग नहीं था। अतः रहीम के काव्य में भी मानवीकरण का अभाव ही है परन्तु एक दो चित्र बहुत ही सुन्दर हैं। इस दृष्टि से प्रस्तुत दोहे का भाव आस्वाद्य है—

पसरि पत्र झपहिं पितहिं सकुचि देत ससि सीत।
कहु रहीम कुल कमल के को बैरी को मीत॥ ११५—पृ० १२

अन्योक्त्यात्मक प्रकृति वर्णन

अन्योक्ति का सीधा सादा व्युत्पत्ति परक अर्थ है—अन्य के प्रति कही गई उक्ति। जहाँ प्रकृति के प्रस्तुत विषय पर प्रत्यक्ष कथन होते हुए भी उसका अभिप्राय विशेषतः सामाजिक अथवा राजनीतिक व्यक्ति या पद विशेष पर केन्द्रित रहता है, वहाँ प्रकृति का अन्योक्तिपरक वर्णन होता है। बाबा दीनदयाल गिरि हिन्दी में अन्योक्तियों के बादशाह हैं। उनके काव्य में आम कदली बबूल हाथी आदि से सम्बद्ध सुन्दर एवं मार्मिक अन्योक्तियाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। रहीम के नीतिकाव्य में अनेक कथन अन्योक्तिपरक हैं। बर, बीग अरण्ड केला कोकिला, दादुर मोर बक, मीन मर कागज, पट कुम्हार इत्यादि पर सुन्दर अन्योक्तियों की रचना हुई है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दोहे देखे जा सकते हैं—

जो घर ही मे घस रहे कदला सुपत सुडौल।
तो रहीम तिनते भले पथ के अपत करील॥ ७०—पृ० ७
रहिमन अब वे बिरछ कहँ जिनकी छाँह गँभीर।
बागन बिच बिच देखियत सेंहुड़ कंज करीर॥ १६३—पृ० १६
अड़ न बौड़ रहीम कहि देखि सचिक्कन पान।
हस्ती-ढक्का कुल्हड़िन सहैं ते तरवर आन॥ २०—पृ० ३

प्रतीकात्मक प्रकृति-वर्णन

प्रतीक का अर्थ है चिह्न। जहाँ किसी व्यक्ति चरित्र भाव गुणावगुण विशेष की अवधारणा, प्रकृति की किसी वस्तु विशेष में सन्निहित करली जाती है वहाँ प्रतीकात्मक प्रकृति वर्णन होता है। छायावादी काव्य में प्रतीकों का सुन्दर विनियोजन

१ कविता—पन्त जी का नौकाविहार निराला जी की मेरे गणपति मेरे विशाल तथा डा० रामकुमार वर्मा की य तारे तारा बाल दीपक कविताएँ।
२ द्रष्टव्य—सूरसागर में गोपियों का तथा मानस में श्रीराम का विरह वर्णन।

हुआ है। प्रसादजी ने तो कहीं-कहीं प्रतीकों की झडी लगा दी है।[1] रहीम के काव्य में चातक और मीन प्रेम की अनन्यता के, बबूल तथा पान पर कष्टकारक व्यक्ति के, बेर तथा केला अनमेल संगति के, बाजू टूट बाज वृद्ध सेवक के, भ्रमर कर स्वार्थी के, नभ के तारे सम्पन्नता के सेन्द्र बज करीर अनुन्दार नृपति के, श्वान आक्षेपक के, पट चाक तृष्णा तथा कंजूस के, पृथ्वी सहनशीलता के तथा भ्रमरवत् आदि आश्रयहीनता के प्रतीक के रूप में व्यवहृत हुए हैं। पानी का आदर के प्रतीक के रूप में रहीम का प्रयोग लोक प्रसिद्ध है—

> रहिमन पानी राखिए बिनु पानी सब सून।
> पानी गए न ऊबरे, मोती मानुष चून॥ २०/—पृ० २०

भयात्मक प्रकृति वर्णन

प्रकृति सदैव सुन्दर ही नहीं होती विकराल तथा भयंकर भी होती है। पुष्प के साथ कंटक तथा तितली के साथ व्याल उद्यानों में सन्ध देखे जा सकते हैं। बसन्त के साथ पतझड़ निर्माण के साथ विनाश प्रकृति की अनिवार्य लीलाएँ हैं। प्रकृति के सच्चे प्रेमी उसके प्रत्येक रूप से प्रेम करते हैं। इसीलिए काव्य में वासन्ती बयार के साथ उग्र निःश्वासों के भी वर्णन हुए हैं। एक ही कृति में प्रसंगान्तर से उषा रश्मियों और प्रलय तरंगों के एक साथ वर्णन देखे जा सकते हैं। कामायनी इसका प्रमाण है। रहीम के काव्य में चिता रुधिर तथा व्याल इत्यादि भयंकर वस्तुओं के प्रयोग भी कहीं कहीं देखने को मिल जाते हैं—

> एतो बडो रहीम जल, व्याल बदन विष होय। १४७—पृ० १५
> बधिक बध मृग बान सो, रुधिर देत बताय। १६४—पृ० १६
> चिता दहति निर्जीव को चिंता जीव समेत॥ १७०—पृ० १७

रहस्यात्मक प्रकृति वर्णन

हमारा जितना अधिक सम्पर्क प्रकृति से है उतना किसी अन्य वस्तु से नहीं। सब ओर प्रकृति ही प्रकृति परिव्याप्त है। हम उसका मनोरम लीला विहार या विकराल विनाश निरन्तर ताण्डव देखते रहते हैं परन्तु उन सबको समझना हमारे बस का नहीं है। उसको समझने की बौद्धिक चेष्टा है विज्ञान और उसे जानने का आध्यात्मिक प्रयत्न है दर्शन। युग युगान्तरों के चिंतन के पश्चात् भी प्रकृति के अधिकांश तत्व आज तक रहस्यमय बने हुए हैं। ये तत्व, कवि के भाव विभोर मानस पटल पर प्रत्यावर्तित होकर रहस्यात्मक रूप में अनेक स्थलों पर चित्रित हुए हैं। हिन्दी काव्य में प्रथम से भी रहस्यवाद की धारा प्रवाहित रही है। प्राचीन काल में

---

१ झंझा झकोर गर्जन था
बिजली थी नीरद माला।
पाकर इस शून्य हृदय को
सबने आ डेरा डाला॥—आंसू

जायसी एवं कबीर और आधुनिक युग में महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा आदि के काव्य में रहस्यवादी रस पग पग पर अनुभवता है। रहीम भी प्रकृति के कतिपय तत्वों, संसार के उनके क्रिया व्यापारों तथा प्रभु के पुनीत विस्तृत विधान पर विस्मय विमुग्ध थे। कागज के पुतले का वर्षों तक वायु खींचते खींचते एक क्षण में क्रिया शून्य हो जाना, धूल की इस गठरी की गाँठ खुलते ही, पंच-तत्वों में बिखर जाना तथा लघु बीज में विशाल वृक्ष अथवा छोटी-सी बूंद में विस्तृत समुद्र के सभी गुणों का विद्यमान रहना, रहीम को रहस्य का संकेत करते थे। इन्हीं रहस्यों का प्रतिपादन इनके अनेक दोहों में हुआ है—

> बिंदु भी सिंधु समान, को अचरज कासों कहैं।
> हेरनहार हेरान रहिमन अपुने आप तें॥ २७०—पृ० ७७

प्रकृति चित्रण की उपर्युक्त रीतियों के अतिरिक्त ऋतुवर्णन, बारहमासा इत्यादि अन्य कुछ विधाएँ और भी हैं जिनका प्रयोग रहीम के नीति काव्य में नहीं के बराबर है। हाँ शृंगारिक वर्णनों में ये विधाएँ भी अपने सुन्दरतम रूप में देखी जा सकती हैं।[1] नीति के दोहों में यद्यपि वर्षा वसन्त पावस फागुन इत्यादि का व्यवहार हुआ है किन्तु उसी के आधार पर रहीम के काव्य में परम्परागत ऋतुवर्णन अथवा बारहमासा की वह परम्परा खोजना भूल होगी जिसका जायसी इत्यादि ने अपने प्रबंधी काव्यों में तथा सेनापति एवं आदि ने ब्रजभाषा काव्यों में निर्वाह किया है।[2]

प्रकृति चित्रण सम्बन्धी निष्कर्ष

वस्तुतः प्रकृति वर्णन रहीम का विषय नहीं है। इन्होंने तो नीति की निगाह से प्रकृति की विभिन्न घटनाओं को देखा है और उन घटनाओं से नीति परक निष्कर्ष निकाल कर उन्हें दक्षतापूर्वक अभिव्यक्त कर दिया है। यह निष्कर्षीकरण ठीक वैसा ही है जैसा शृंगारिक कवि करता है। उसके नायक नायिकाओं को संयोग के समय विधु किरण मधु बरसाती प्रतीत होती है मलयज पवन गंध के भार से दबा प्रतीत होता है। प्रकृति की सम्पूर्ण लीलाएँ अत्यन्त मादक एवं मोहक प्रतीत होती हैं।[3] दूसरी ओर वियोग के समय बादल तप्त तेल बरसाने लगते हैं पावक उरग श्वास सी

---

१ लगत असाढ़ कहत हो चलन किशोर।
 घन घुमड़े चहुं ओरन नाचत मोर॥ २६—पृ० ६१
 उमड़ि घुमड़ि घन घुमड़े दिसि विदिसान।
 सावन दिन मनभावन करत पयान॥ १७—पृ० ६८
 जब ते आयो सजनी मास असाढ़।
 जानी सखि वा तिय के हिय की गाढ़॥ २६—पृ० ६१

२ देखिए प्रभुदयाल मीतल का संकलन—ब्रजभाषा साहित्य का ऋतु सौन्दर्य (साहित्य संस्थान मथुरा)

३ देखिए कामायनी—वासनासर्ग

जान पड़ती है। तात्पर्य यह है कि प्रकृति के समस्त व्यापार दुखद दिखाई देते हैं।[1] ठीक उसी प्रकार नीति के कवि रहीम को घने और गुन की सहायता से गहरे कूप से जल खिंचता देखकर गुन (गुण) की सहायता से गहरे से गहरे मन वालों की बात निकाल लेने की दृष्टि मिलता है।[2] खग मृग आदि का प्राकृतिक रूप से स्वस्थ रहते देखकर औषधि (आधिक्य) की व्यर्थता दिखाई पड़ती है।[3] कोयले का सम्पर्क आदि का संग प्रतीत होने लगता है क्योंकि वह दहकने पर अंगों को जला डालता है और बुझने पर काला कर देता है।[4] इन सब तथ्यों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि रहीम ने प्रकृति का अधिक उपयोग नैतिक निष्कर्ष निकालने के लिए किया है। इसे यदि हम चाहें तो निष्कर्षात्मक प्रकृति वर्णन की संज्ञा दे सकते हैं। यद्यपि प्रकृति वर्णन के अलंकरणात्मक पृष्ठभूमिात्मक आदि रूप भी उनके नीति-काव्य में उपलब्ध हैं किन्तु उसका अधिकांश निष्कर्षात्मक प्रकृति वर्णन ही है और निष्कर्षात्मक प्रकृति वर्णन की दृष्टि से रहीम अपने क्षेत्र के हिन्दी कवियों में अद्वितीय हैं।



१ मानस—अरण्यकाण्ड
२ से ४ रहीम रत्नावली—दोहा सं० ५०, २१०, २७१

७

रहीम के नीति-काव्य मे कल्पना एव ध्वनि

मनुष्य की प्रत्येक कृति उसकी कल्पना का परत्व है। प्रत्येक सिद्धात, प्रत्येक यन्त्र प्रत्येक भाव और प्रत्येक कला उसके निर्माता की किसी न किसी मूल कल्पना का परत्व है। यही कारण है कि कल्पना का तात्त्विक विवेचन दर्शन, कला साहित्य मनोविज्ञान एव सौदर्य शास्त्र के क्षेत्र म युगो युगो म होता रहा है। अरस्तू हीगल गेट काण्ट फ्रायड, क्रोचे रिचर्ड, कालरिज, वर्डसवर्थ आदि की कृतिया इस तथ्य का प्रमाण है। दैनिक अनुभव यह सिद्ध करता है कि हम किसी वस्तु का सृजन करने से पूर्व उसका एक काल्पनिक चित्र अपने मस्तिष्क म बना लेते हैं। काण्ट के अनुसार मन जो कुछ भी बाहर से प्राप्त करता है उसे वह पहले सगठित करता है और पुन रचनात्मक शक्ति के द्वारा नाना रूपो म व्यक्त करता है। इस प्रकार कल्पना रचनात्मक भी है और सश्लेषणात्मक भी।

काव्य और कल्पना

विलियम वर्डसवर्थ ने कविता को शान्ति के क्षणो म एकत्रित भावो का अजस्र प्रवाह बताते हुए काण्ट के तथ्य का ही समर्थन किया है।[2] हैजलिट ने तो काव्य की परिभाषा ही कल्पना की भाषा कहकर की है।[3] हडसन भी यही स्वीकार करता है। यह बात दूसरी है कि उसने साथ म भाव को भी जोड दिया है।[4] डा० जानसन ने आनन्द और सत्य के सम्मिश्रण की कला बताते हुए तर्क के लिए कल्पना की सहायता पर बल दिया है।[5] क्रोचे काव्य सृजन की प्रक्रिया म प्रथम स्थान कल्पना को देने के बाद ही विचार और बुद्धि का विनियोग स्वीकार करते हैं।

---

१ पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव—डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा (गोरखपुर १९६०)—पृ० ८६

2 Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings It takes its origin from emotion recollected in tranquility

3 Lectures on English poetry

4 Poetry is interpretation of life through imagination and emotion

5 Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason

क्रोचे और कालरिज

क्रोचे ने सौन्दर्य शास्त्र के प्रसंग में कल्पना पर विस्तार से विचार किया है। कारण यह है कि सौन्दर्यास्वादन को कल्पना व्यापार का अनिवार्य अंग माना गया है। कवि उसी के सहारे वस्तुओं के सहज स्वाभाविक रूप को व्यक्त करने में समर्थ होता है। इसका सम्बन्ध स्वयंप्रकाश ज्ञान से अत्यधिक है। इससे भी अधिक विस्तार से विचार करने वाला में कालरिज का नाम अग्रगण्य है। उसने काण्ट तथा क्रोचे आदि की भाँति दर्शन का आधार न लेते हुए शुद्ध साहित्यिक स्तर पर विचार किया है। उसने इमेजिनेशन और फैंसी के एकत्रीकरण की भूल का सुधार करते हुए फैंसी का सम्बन्ध चित्र संघात तथा इमेजिनेशन का सम्बन्ध चित्रीकरण की मूल विधायिनी शक्ति से माना है। काव्य ही नहीं, मूर्तिकला चित्रकला संगीत इत्यादि के लिए भी कल्पना की मूल विधातृ शक्ति स्वीकार किया है। कलाओं के माध्यम से प्राप्त ज्ञानोपलब्धि का श्रेय कल्पना को ही है। काव्य का यही तत्व उसे विज्ञान से पृथक करता है। क्योंकि विज्ञान का उद्देश्य मात्र सत्य का उद्घाटन है।[1] वहाँ तथ्यों की प्रधानता रहती है और यहाँ (काव्य में) कल्पना की। कलाकार कल्पना की सहायता के लिए तथ्य का उपयोग करता है जबकि वैज्ञानिक तथ्यों के लिए कल्पना का सहयोग मात्र चाहता है।[2] डा० श्यामसुन्दरदास ने तो यहाँ तक कह दिया है कि विज्ञान में जो बुद्धि है, दर्शन में जो दृष्टि है वही कविता में कल्पना है।[3] वैज्ञानिक हो या दार्शनिक तथ्योद्घाटन तो सभी करते हैं किन्तु उनके ढंग एवं साधन भिन्न-भिन्न है। कालरिज के अनुसार कवि के लिए वैज्ञानिकता नहीं अपितु दार्शनिकता आवश्यक है। उनका कहना है कि कोई भी व्यक्ति गम्भीर दार्शनिक हुए बिना अच्छा कवि नहीं बन सकता। दार्शनिक की तत्व विधायिनी कल्पना कविता के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है।[4]

रिचर्ड्स के छः अर्थ

वर्तमान शताब्दी में आई० ए० रिचर्ड्स कालरिज का भारी पोषक है। उसने पहले कल्पना के छः अर्थ दिये हैं जो आलोचनात्मक वाद विवाद में प्रचलित है। पहले अर्थ में कल्पना चाक्षुष सुस्पष्ट प्रतिमाओं की उत्पादक मानी जाती है। दूसरे अर्थ में कल्पना सालंकार भाषा के प्रयोग से सम्बद्ध है। वे साहित्यकार जो रूपकों और उपमाओं से अपने भाव व्यक्त करते हैं कल्पनाशील

---

१ बायोग्रफिया लिटरेरिया—जे० नारास (भाग २)—पृ० २२१

2 Artist treat fact as stimuli for imagination whereas scientists use imagination to co ordinate facts —Arther Koestler

—*Dictionary of Thoughts P 292*

३ साहित्यालोचन—डा० श्यामसुन्दरदास (छठा सं०)—पृ० ७८

४ बायोग्राफिया लिटेरिया (भाग २) पृ० २७०

कहलाते हैं। तीसरे अर्थ म वह लेखक अथवा पाठक कल्पनाशील कहलाता है जो दूसरे मनुष्यो की विभावस्थाओ का विशेषतया दूसरो के मनोभावो का सहानुभूति पूर्वक प्रस्तुत कर सकता है। चौथे अर्थ म कल्पना युक्ति कौशल की द्योतक है (सामान्य अप्रत्यक्ष तत्वो का युक्ति से मिलाने वाली है)। पाचवा अर्थ वैज्ञानिक है जो असादृश्य वस्तुओ म भी सादृश्य दिखा देता है। छठे अर्थ म कल्पना वह मौलिक और सयोगिक शक्ति है जो विपरीत और विस्वर गुणो के सन्तुलन म प्रकट होती है।

कल्पना और प्रतिभा

वस्तुत य सब कल्पना के विभिन्न उपयोगो के द्योतक हैं। इन उपयोगो म ही कोई रचना अपने विशिष्ट काव्यत्व को प्राप्त होती है। कदाचित इसीलिए स्टीवार्ट ने कहा था कि कल्पना की असाधारण मात्रा ही काव्य प्रतिभा को जन्म देती है।[2] काव्य प्रतिभा ही नही, जीवनी शक्ति एव आत्मा के लिए भी कल्पना की परम आवश्यकता है। बीचर का कथन है कि कल्पना के बिना आत्मा की स्थिति ठीक वसी ही है जसी कि दूरदर्शक यन्त्र-हीन वेधशाला की।[3] वड सवर्थ ने कल्पना को एकात्मक शक्ति तथा स्वच्छतम अन्तर्दृष्टि का दूसरा नाम कहा है।[4] शक्सपियर की मान्यता भी कुछ ऐसी प्रकार की है।[5] कहने का तात्पर्य यह है कि पाश्चात्य विचारको एव कवियो ने कल्पना तत्व पर बडी सूक्ष्मता म विचार करके उस काव्य की मूल विधातृ शक्ति स्वीकार किया है। उसी के बल पर कवि नाना प्रकार के नये-नये दृश्य विधान प्रस्तुत करता है। इसी का आश्रय लेकर कवि अपार काव्य ससार का प्रजापति बना हुआ है।[6] हमारे यहा कदाचित इसी नवनवोन्मेषशालिनी शक्ति को प्रतिभा का नाम दिया गया था—

> प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता
> तदनुप्राणनाज्जीवेद वर्णनानिपुण कवि ॥—भामह

---

१ पाश्चात्य साहित्यालोचन—लीलाधर गुप्त पृ० ५६

२ डिक्शनरी आफ थाट्स—एडवर्ड्स (१९६६)—पृ० २९०

३ वही पृ०—२९३

4 Imagination which in truth
Is but another name for absolute power
And clearest insight amplitude of mind
And reason is her most exalted mood —Words worth
—*The Oxford Dictionary of Quotaion P 579*

5 And as imagination bodies forth
The forms of things unknown the poets pen
Turns them to shapes and gives to airy nothing
A local habitation and name —Shakespeare
—*A Mid Summer Night s Dream*

६ अपारे काव्य ससारे कविरेव प्रजापति
यथास्मै रोचते विश्व तथेद परिवर्तते ॥ —अग्निपुराण

हिंदी विद्वानों का कल्पना विवेचन

कल्पना और प्रतिभा के अतिरिक्त [illegible] शब्दों में [illegible] उपासना का भी प्रकार है। आचार्य शुक्ल की धारणा है— जो हमसे अलग है, हमसे दूर प्रतीत होती है उसकी मूर्ति मन में लाकर उसके सामीप्य का अनुभव कराना उपासना है। साहित्य वाले इसे भावना कहते।[1] और आजकल के लोग कल्पना। जिस प्रकार भक्ति के लिए उपास्य और उपासना आवश्यक होती है उसी प्रकार भावों के प्रवर्तन के लिए भावना या कल्पना अपेक्षित होती है।[2] कल्पना [illegible] लिखा है— काव्य जगत की रचना करने वाली कल्पना [illegible] कहा है।[a] किसी भावावेग द्वारा परिचालित अन्तर्वृत्ति जब उस भाव के पोषक स्वरूप गढ़कर या काट छाँट कर सामने रखने लगती है तब उसे हम [illegible] कवि कल्पना कहते हैं। बाबू गुलाबराय जी ने भी प्रकारान्तर से यही बात कही थी— कल्पना वह शक्ति है जिसके द्वारा हम अप्रत्यक्ष के मानसिक चित्र उपस्थित करते हैं।[3] ये मानसिक चित्र जितने अधिक साफ होंगे कल्पना उतनी ही सफल समझी जायगी क्योंकि विगत प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक अनुभवों (पास्ट परसेप्चुअल एक्सपीरियन्सेज) के बिम्बों और विचारों के रूप में विचारात्मक स्तर पर रचनात्मक नियोजन कल्पना है।[4] विगत अनुभव अपने मूल रूप में कल्पना नहीं होते। वे या तो स्मृति हैं या। किन्तु कल्पना तभी होगी जब उनके आधार पर कोई नवीन सृष्टि की गई हो। पूर्व अनुभूतियों की पुनर्योजना से अपूर्व की अनुभूति उत्पन्न करने की क्रिया या शक्ति को कल्पना कहते हैं। वर्तमान का अवगाहन करने वाला प्रत्यक्ष, अतीत का अवगाहन करने वाली स्मृति तथा अनागत का अवगाहन करने वाली है कल्पना।[5] बाबू गुलाबराय के अनुसार कल्पना वह शक्ति है जिसके द्वारा हम अप्रत्यक्ष के मानसिक चित्र उपस्थित करते हैं।[6]

कल्पना और आस्वाद

निष्कर्ष यह है कि कल्पना एक नैसर्गिक मानसिक व्यापार अथवा शक्ति है जिसके द्वारा हम सामान्यतया विगत और विशेषतया अनागत आधार पर नये नये चित्रों भावों एवं बिम्बों का निर्माण करते हैं। ये चित्र जितने गहरे अनूठे स्वच्छ एवं प्रभावोत्पादक हों कल्पना उतनी ही सूक्ष्म सबल तथा साभिप्राय कहलाती है। विज्ञान के क्षेत्र में नये-नये उपकरणों का निर्माण दर्शन के क्षेत्र में नवीन अवधारणाओं

---

१ चिंतामणि—आ० रामचन्द्र शुक्ल, (भाग २)—पृ० २१९
२ सूरदास—आ० रामचन्द्र शुक्ल—पृ० २८
३ सिद्धान्त और अध्ययन—गुलाबराय—पृ० ६७
४ हिन्दी विश्वकोश—ना० प्र० सभा काशी (भाग २)—पृ० ३८६
५ हिन्दी साहित्य कोश—ज्ञानमण्डल वाराणसी,—पृ० १२७
६ सिद्धान्त और अध्ययन—डा० गुलाबराय (छठा सं०)—पृ० १०१

की स्थापना तथा दैनिक जीवन के अन्तर्गत स्वप्नादि म[1] इस शक्ति का प्रयोग निरन्तर होता रहता है किन्तु कल्पना का सर्वाधिक विनियोग कला के क्षेत्र म सम्बद्ध है। यदि अपन, स्थानक निर्माण, परिस्थिति चित्रण भाव निरूपण, चरित्र उन्मीलन अलकार सयोजन शैली सस्थापन एव रस निष्पादन आदि सभी क्षेत्रा म कल्पना का आश्रय ग्रहण करता है। पाठक अथवा आस्वादक भी कल्पना के माध्यम से ही काव्य का आस्वाद तक पहुँचता है।

रहीम का कल्पना व्यापार

जहा तक हमारे चरित्र-नायक रहीम के कल्पना विधान का प्रश्न है वहा हम नि सकोच कह सकते है कि उनके नीति-काव्य म कल्पना का विभिन्न प्रकार से विनियोग हुआ है। रहीम के नीति कथना म जो एक विशेष रमणीयता एव दुलभ प्रभावोत्पादकता है उसका बहुत बडा श्रेय उनके सफल कल्पना विधान को है। कहा उनकी कल्पना स्थूल सिद्धान्तो को सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करती है तो कहा नीरस कथना को सरस बनाती है। उसी का सहारा लेकर उपयोगी दुर्बोध एव अग्राह्य को ग्राह्य बोधगम्य सरसास्वाद्य एव अर्थरुचिकर को रुचिकर बनाकर पाठक के सम्मुख प्रस्तुत कर सके हैं। इसी के बल पर कहीं उन्होंने प्रकृति प्रागण से उपदेश सग्रहण म सफलता प्राप्त की है तथा कहीं पुराण पुष्कर स नीति-सौरभ के सकलन म दक्षता। जन-जीवन एव लोकानुभव की सामान्य स सामान्य घटना द्वारा बडी से बडी नीति का प्रतिपादन रहीम के कल्पना विधान का ही कमाल है। इतने पर भी उनकी कल्पना नितान्त निरायास अकृत्रिम एव सवसुलभ है। न उन्ह आकाश के तारे तोडकर लाने म विश्वास है और न सागर तल की गहराइया म पैठ कर रत्नकण एकत्रित करने की चाह। उनकी कल्पना व्याप्त वातावरण म चक्कर काट कर ही कुछ ऐसी असामान्य उपलब्धि प्राप्त कर लेती है जो सवथा परिचित लगते हुए भी नवीन एव अछूती होती है।

रहीम की मौलिकता

रहीम को वास्तविक कवि हृदय प्राप्त था। उनकी कल्पना प्रवणता के दशन अनेक दोहो म होते हैं। प्राचीनता मे नवीनता भरना रहीम की प्रमुख विशेषता है—

> नाद रीझि तन तन देत मृग नर धन हेत समेत।
> ते रहीम पशु ते अधिक रीझेहु कछू न देत॥ ११०—पृ० ११

मृग का तन्त्री नाद पर रीझना और पकडा जाना चिर प्रचलित है परन्तु इस प्रसग से यह कल्पना करना कि जो रीझने पर भी कुछ नहीं देत, व पशु तो क्या पशु स भी गये गुजरे हैं रहीम की मौलिकता है। क्वार के जल रहित बादलो से निकलता

---

1 Imagination is the ruler of our dreams —Clulow

—*Dictionary of Thought* P 293

हिलने म, रग स डालने की कल्पना[१] युद्ध के लिए बाजू टूटे बाज की कल्पना,[२] ग्राटा लगे मृग के सुस्वर से भोजन की प्रियता सम्बन्धी कल्पना[३] जल मिले दूध के उफनने स मित्र के लिए की गई ग्रात्माहुति की कल्पना[४] नारी के पट स दीपक को बुझता देख असमय पड़ने पर मित्र व शत्रु बन जाने की कल्पना,[५] प्यादे के फरजी बनने पर टेढ़ी चाल स ग्रोछे के स्वभाव की कल्पना[६] नाट के लघु कलेवर म विशाल धन को भरा देख नट की कुण्डली की कल्पना,[७] दूध के फटने स वान के बिगड़न की कल्पना[८] मथने पर दही के सब तत्वों के ग्रलग हो जाने पर केवल माखन के निरता रहने स, मुसीबत पड़ने पर भी सच्चे मित्र के डटा रहने की कल्पना,[९] कुए के रहट की घड़ियों से ग्रोछे के व्यवहार की कल्पना,[१०] इत्यादि सभी स्वाभाविक हैं।

षड्मुखी कल्पना विधान

इस कल्पना व्यापार पर विहगम दृष्टि-पात करने स स्पष्ट हो जायगा कि रहीम ने कल्पना चयन विभिन्न क्षेत्रों से किया है। इन क्षेत्रों का वर्गीकृत करने स हम उसका षड्मुखी विधान दृष्टिगोचर होता है—

१ शब्द क्षेत्रीय कल्पना
२ प्रकृति क्षेत्रीय कल्पना
३ शरीर क्षेत्रीय कल्पना
४ मनोविज्ञान क्षेत्रीय कल्पना
५ क्रिया-व्यापार क्षेत्रीय कल्पना
६ पुराण क्षेत्रीय कल्पना

शब्द क्षेत्रीय कल्पना

कविता, शाब्दिक व्यापार है। कवि के पास अपनी कलाकृति के निर्माणार्थ न छेनी होती है न हथौड़ा न तूलिका न रंग न वाद्य और न यन्त्र। वह मात्र शब्द की पूजी से अपना व्यापार चलाता है। जितना अधिक शब्द भण्डार तथा जितना सुन्दर उसका विनियोग होगा, काव्य उतना ही उत्तम सिद्ध होगा। कुशल कवियों का एक एक शब्द माला के माणिक की भांति कुछ इस प्रकार पिरोया गया होता है कि उसे स्वेच्छा स निकाला नही जा सकता। निकाला तो क्या इधर उधर खिसकाया भी नही जा सकता। शब्दों का यह विन्यस्तीकरण जब किसी कल्पना विशेष के ग्राधार पर हो तब वहा शब्दाधारित कल्पना कही जायगी। रहीम के काव्य म ऐसी कल्पना के दर्शन प्रचुर मात्रा म होते हैं। उदाहरण के लिए पानी, वारे, बढे, पुरुष पुरातन ग्रनखाए तथा शेष इत्यादि कितने ही शब्दों को लिया जा सकता है। रहीम की कल्पना ने इन शब्दों के विनियोग म कुछ एसा कमाल दिखाया है कि शब्द को

१ से १० रहीम दोहावली, दोहा सख्या क्रमश ३३ ३७, ५३, ५६, ६२, ७५ ६६, १२६ १३८, १७८

तनिक भी टस से मस नहीं किया जा सकता। दोहे प्रसिद्ध ही हैं—

रहिमन पानी राखिए बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानस चून॥ २०५—पृ० २०
जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगे, बढ़े अँधेरो होय॥ १७७—पृ० ८
कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय॥ २३—पृ० ३
रहिमन अपने पेट सो, बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अनखाए रहे, तो सों को अनखाए॥ १६२—पृ० १६
रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेस।
भार धरै संसार को तऊ कहावत सेस॥ १६१—पृ० १७

प्रकृति क्षेत्रीय कल्पना

प्रकृति मानव की आदि जननी है। उसका जन्म मानव जन्म से युगों पूर्व की घटना है। धर्म दर्शन तथा विज्ञान इस तथ्य पर एक मत हैं कि स्थावर सृष्टि का जन्म जंगम सृष्टि से बहुत पूर्व हो चुका था। वैदिक दर्शन में प्रकृति को आत्मा एवं ब्रह्म के ही समान अनादि स्वीकार किया गया है। निश्चित ही मानव का जीवन प्रकृति पर आधारित है। वायु जल अन्न वस्त्र सभी तो प्रकृति से प्राप्त होते हैं। भौतिक जीवन के समान है। आध्यात्मिक जीवन भी प्रकृति के प्रांगण से प्रेरणा ग्रहण करता है। धर्म के क्षेत्र में उसके देवता प्रकृति के उपकरण हैं। दर्शन के क्षेत्र में भी प्राकृतिक तत्त्वों का महत्व कम नहीं। सांख्य-दर्शन इसका प्रमाण है। फिर नीति भी इससे अछूती क्या रहती। वेद से लेकर भागवत तक सभी ने प्रकृति से नैतिक शिक्षा ग्रहण की है। रहीम का नीति-काव्य भी इसका अपवाद नहीं।

प्रकृति के विस्तृत उद्यान में भ्रमण करती हुई उनकी नैतिक कल्पना नाना भाँति कुसुम एकत्रित करती रही है। ईख के पोरओं की गाँठ को रसहीन देखकर हृदय में गाँठ पड़ते ही प्रेम की समाप्ति की[1] छिछली छाँह और दूरस्थ फल वाले खजूर को देखकर उपकार विमुख तथाकथित बड़े लोगों की,[2] दिन के निष्प्रभ चन्द्रमा को देखकर श्रीविहीन धनी की[3] मान मानसरोवर ही में विहार करने वाले मराल से एक-निष्ठ प्रेमी की[4] अपनी गर्दन को फाँसी के फन्दे में डालकर घड़े को दूसरों की प्यास बुझाने देख परोपकार की[5] जो कल्पनाएँ रहीम ने की हैं वे प्रकृति क्षेत्रीय ही हैं। ऐसी कल्पनाओं की सूची बहुत लम्बी है। अतः यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि रहीम की कल्पना ने अपने नीति वचन के लिए प्रकृति के क्षेत्र से बहुत अधिक सामग्री ग्रहण की है। उनके कल्पना पट का बहुत बड़ा अंश प्रकृति के तान-बान से बुना

१ से ५ रहीम रत्नावली, दोहा संख्या क्रमशः ७३, २७०, २६३, २४३, २२८

गया है। उनके रंग जितने आकर्षक हैं उतने ही उपयोगी भी हैं—

रहिमन निज सम्पति बिना कोउ न बिपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहिं रबि सकै बचाय॥ २०१—पृ० २०
रहिमन प्रीत न कीजिए जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाकें तीन॥ २०७—पृ० २०
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग॥ ७८—पृ० ८

शरीर क्षेत्रीय कल्पना

मनुष्य के सबसे अधिक निकट उसका शरीर है। शरीर जैसी पूर्ण और विचित्र कृति इस सृष्टि में और है भी क्या। जो कुछ ब्रह्माण्ड में है वह सभी इस पिण्ड में भी है—यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे। अतः जन-कवि शरीर को सर्वथा नजरन्दाज नहीं कर सकता। यही कारण है कि रहीम की कल्पना दृष्टि शरीरांगों पर प्रमुख रूप से ठहरी है। वे शरीर के विभिन्न अंगों को देखकर नाना कल्पनाएं करते हैं। ये कल्पनाएँ उनके नीति रचना को अलंकृत करने के लिए उपमा रूपक तथा दृष्टान्तादि का अनूठा मसाला प्रदान करती है। रहीम बड़े-बड़े नैनों को देखकर प्रसन्नता अनुभव करने की स्वाभाविक बात में कल्पना का आरोप कर उससे स्वर्गीय एवं स्वकुल की समुन्नति का सन्देश प्राप्त करते हैं।[1] अपने को वासना की चोट से बचा कर भगवान के चरणकमलों की ओट प्राप्त करने की प्रेरणा भी नैनों से ली है। काले कचों में से श्वेत कच को उखाड़ा जाता देख वे दुर्जनों के बीच में सज्जनों के अलग होने की कल्पना कर लेते हैं।[3] अपने ही हाथों को अपने हाथ में समाहित न देख वे भाग्य को कर्म के आधीन होने की कल्पना करते हैं।[4] कुच के (पीन मांस पिण्ड) को वक्षस्थल पर शोभित तथा अन्यत्र अनभिवांछित रसोली के रूप में देख वे स्थान भ्रष्टा न शोभन्ते की नैतिक उड़ान भरते हैं।[5] कुचों पर तो रहीम ने एक नहीं अनेक कल्पनाएं की हैं। उनमें से कुछ तो इतनी मार्मिक हैं कि रहीम की कल्पना प्रवणता की प्रशंसा करनी ही पड़ती है। मानव शरीरांग ही नहीं पशु-पक्षियों के अनेक अंग भी रहीम को नीति कल्पना का आधार प्रदान करते हैं

रहिमन छोटे नरन सों होत बड़ो नहिं काम।
मढ़ो दमामो जात नहिं सौ चूहे के चाम॥ १८१ पृ० १८

अतः स्पष्ट है कि अंगों को देखकर रहीम के मन में जो भाव उठते थे वे उनका उपयोग अन्य कवियों की भाँति शृंगारांकन के लिए न करके नीति-कथन के लिए किया करते थे।

मनोविज्ञान क्षेत्रीय कल्पना

प्राणियों के शारीरिक अंगों के अंकन में रहीम ने जिस प्रकार कल्पना का विनियोग किया उसी प्रकार उनके मानसिक जगत में उनकी भी आँखें हैं।

१ से ५ रहीम रत्नावली दोहा संख्या क्रमशः २२०, २८ १६८ ८६, ११

आधुनिक शब्दावली में हम कह सकते हैं कि उनकी कल्पना ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करके भी नीति की खोज की है। वे धनिकों निधनों, राजाओं गुणियों, कुलटाओं-कुलवधुओं कामियों याचकों निश्चिन्त चिन्तातुरों मोहियों निर्मोहियों गम्भीरों छिछोरों स्वाभिमानियों-गुणाभिमानियों, उपकारियों अपकारियों इत्यादि के हृदय की बात खोज निकालने में पटु हैं। उनकी कल्पना विभिन्न प्राणियों के अन्तर्मन में पैठ कर उनके स्वभाव का अध्ययन करके जिस तथ्य का आकलन करती है वह आकर्षक एवं उपयोगी तो होता ही है सत्य एवं शाश्वत भी होता है—

गरज आपनी आप सों रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुल वधू, पर घर जात, लजाय॥ ४८—पृ०
रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते कस न भेद कहि देइ॥ १६१—पृ० १६
रहिमन हम जिन के रहे बीच न सोहत हार।
वायु जो ऐसी बह गई, बीचन पड़े पहार॥ १६७—पृ० १६

इन दोहों में कुलीन स्त्री का पराये घर जाकर माँगते समय लजा जाना दुख के आधिक्य से आँसुओं का ढलकना पति पत्नी के संयोग की अवस्था में कण्ठहार तक का अनभिवांछित लगना इत्यादि कथन मनोवैज्ञानिक अथवा मानसिक सत्य से सम्बद्ध है। इन्हें कवि ने अपनी कल्पना के रंग में कुछ इस प्रकार रंगा है कि हिन्दी काव्य की जाज्वल्यमान प्रदर्शिनी में इन हीरों की चमक का आकर्षण पृथक् ही बना हुआ है।

क्रिया व्यापार क्षत्रीय कल्पना

प्राणी अनन्त हैं और उनके व्यापार अनन्तानन्त। इसी प्रकार वस्तुएँ अनेक हैं और उनके गुण स्वभावादि अनेकानेक। कवि के मन को जो वस्तु रुचिकर प्रतीत होती है वह उसकी कल्पना और कला के आधार पर सर्वजनास्वाद्य बनाकर प्रगट कर देता है। एक ही वस्तु को शृंगार, वैराग्य नीति हास्य इत्यादि विभिन्न दृष्टिकोणों के कारण विभिन्न प्रकार से वर्णित किया जाता है। रहीम नीति के कवि हैं। अतः उन्होंने नानाविधि वस्तु-व्यापारों को नीति के रंग में रंगकर व्यक्त किया है। मिसरी खाते समय मुँह में आ गई हुई फाँस द्वारा, रस में विष उत्पन्न होने के अनुभव से कवि प्रमाताप के मध्य क्रोध कटु वचनों की विरस स्थिति की कल्पना करता है।[1] डार पात फल फूल तथा मूल सभी प्रकार से अनुपयोगी बबूल द्वारा कवि क्रूर प्राणियों के अपकारों की कल्पना करता है।[2] श्वान के काटने तथा चाटने की लीला कियाओं के विपरीत परिणाम से कवि को ओछे नरों की रार प्रीति का ध्यान आता है।[3] काम के समय सिर पर तथा काम निकलने पर नदी में प्रवाहित होने हुए मौड को देखकर कवि ने काज परे कछु और है काज सरे कछु और की कल्पना की है।[4] इसी प्रकार के नाना व्यापारों से कवि ने नाना भाँति की नैतिक कल्पनाएं की हैं।

१ से ४ रहीम रत्नावली, दोहा संख्या क्रमशः ८ १२ १६० २५

कहीं-कहीं तो इन कल्पनाओं का आकर्षण देखते ही बनता है। उदाहरणार्थ हाथी के विभिन्न क्रिया व्यापारों से सम्बन्धित तीन कल्पनाएँ प्रस्तुत हैं।—

बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथी हहरि कै दिये दाँत [illegible] काढ़ि ॥ १२३—पृ० १२
रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक।
दाँत दिखावत दीन ह्वै चलत घिसावत नाक ॥ १८२—पृ० १७
धूर धरत नित सीस प कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज ॥ १०७—पृ० ११

पुराण क्षेत्रीय कल्पना

ऊपर दिए हुए अन्तिम दोहे से रहीम की पौराणिक कल्पना के सम्यक् दर्शन हो जाते हैं। रहीम के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से स्पष्ट है कि वे हिन्दुत्व तथा हिन्दुत्व सम्बन्धी प्रथा के परम निष्ठावान एवं विश्वासी अनुयायी थे। उनकी श्रद्धामयी कल्पना ने पुराणों के क्षेत्र में जो स्वच्छन्द विचरण किया है। पुराणों की विभिन्न कथाओं एवं घटनाओं के सम्बन्ध में उन्होंने नाना भाँति की कल्पनाएँ की हैं। ये कल्पनाएँ इतनी उदात्त एवं सारगर्भित हैं कि उनका सौन्दर्य देखते ही बनता है। नीति निर्वचन कल्पना विनियोग पौराणिक-श्रद्धा अभिव्यक्ति कुशलता तथा चिन्तन गरिमा से ऐसा पुनीत पंचामृत तैयार किया गया है, कि जिसे पान करके निश्चित ही पापी तक भी पार उतर सकते हैं—

रहिमन मनहिं लगाइ कै, देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा नारायन बस होय ॥ २१४—पृ० २१
राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुँ होति आपुने हाथ ॥ २३०—पृ० २३
जे गरीब पर हित करैं ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ॥ ६४—पृ० ७
छिमा बड़न को चाहिए छोटन को उत्पात।
का रहीम हरि को घट्यो जो भृगु मारी लात ॥ ५१—पृ० ६

निष्कर्ष

इन षट्मुखी कल्पना क्षेत्रों के अतिरिक्त अलंकरण विधान एवं शैली संयोजन के क्षेत्र में भी रहीम के कल्पना विनियोग का अध्ययन किया जा सकता है। किन्तु प्रसंग का अधिक विस्तार न देते हुए हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि नीति के सीमित क्षेत्र में भी उनकी कल्पना सरिता विभिन्न क्षेत्रों से होकर गुजरी है। इन क्षेत्रों को उसने सरस सिक्त सुन्दर विनीत तथा उपयोगी बनाया है। उसमें गहराई है किन्तु पाताल तक जाने का व्यर्थ प्रयास नहीं उसमें ऊँचाई है किन्तु आकाश-कुसुमों के छूने का उपक्रम नहीं उसमें रंगीनी है कर्दम नहीं पावनत्व है पंकिलता

नहीं। धरती की धूल से अभिषिक्त उसके आरोग्य जल का मज्जन पान लौकिक एवं पारलौकिक दोनों दृष्टियों से नितान्त उपयोगी है।

ध्वनि और रहीम का नीति-काव्य

भारतीय काव्य-शास्त्र में काव्य की आत्मा के सम्बन्ध में पर्याप्त वाद विवाद चलता रहा है। विभिन्न सम्प्रदायों के संस्थापकों एवं उनके अनुवर्तियों ने अपनी अपनी मान्यताओं के अनुसार काव्य की आत्मा पर आग्रहपूर्वक विचार व्यक्त किये हैं। रस, अलंकार, रीति, ध्वनि एवं वक्रोक्ति आदि सिद्धान्तवादी काव्य की आत्मा अलंकार, रस, रीति, ध्वनि एवं वक्रोक्ति को मानते चले आए हैं। इनमें अंतिम विजय, रस एवं ध्वनि और विशेषतः रस की ही रही है।

ध्वनि और उसकी व्याख्या

ध्वनि भारतीय काव्य-शास्त्र की अपेक्षाकृत परवर्ती सकल्पना है। फिर भी ध्वन्यालोक में इस सिद्धान्त की पर्याप्त प्राचीनता के सकेत दिए गए हैं। ध्वन्यालोककार ने, अपनी कृति के आरम्भ में ही, प्राचीन विद्वानों की दुहाई देकर ध्वनि को काव्य की आत्मा सिद्ध किया है—'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैः समाम्नातपूर्वः।'[1] उन्होंने प्राचीनता का सकेत किया है। किन्तु प्राप्त सामग्री के अनुसार विद्वान ध्वनि का उद्भव और विकास आठवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी के बीच की घटना मानते हैं। ध्वनि की प्राचीनता महान् वैय्याकरण भर्तृहरि के वाक्यप्रदीप से भी सिद्ध है। किन्तु उन्होंने एक वैय्याकरण की दृष्टि से शब्द-अर्थ के सयोग वियोग से उत्पन्न स्फोट को विद्वानों की दुहाई पर ध्वनि की सज्ञा दी है—

> यः संयोगवियोगाभ्यां कारणैरुपजायते।
> स स्फोटः शब्दजः शब्दो ध्वनिरित्युच्यते बुधैः ॥

वैय्याकरणों के इसी ध्वनि शब्द को लेकर आलंकारिकों ने पर्याप्त विस्तृतीकरण किया है। व्याकरण में ध्वनि केवल अभिव्यंजक शब्द के अर्थ में ही प्रयुक्त होती है परन्तु साहित्यशास्त्र में इसका प्रयोग अभिव्यंजक शब्द और अर्थ दोनों के लिए होने लगा।'[2] उल्लेखनीय यह है कि ध्वन्यार्थ अभिधा लक्षणा एवं व्यंजना से आगे की वस्तु है। "अभिधा केवल प्रसिद्ध (सांकेतित) अर्थों को ही समझा सकती है अप्रसिद्ध अर्थों को नहीं। और लक्षणा मुख्य अर्थ से सबद्ध अर्थ को ही समझा सकती है और वह भी मुख्य अर्थ के बाधित होने पर, किन्तु व्यंजना के लिए ऐसी किसी शर्त की आवश्यकता नहीं वह तो सर्वत्र अप्रतिहत रूप से चलती है।'[4] ध्वनि व्यंजना से भी सूक्ष्म और अगली स्थिति है।

---

१ ध्वन्यालोक १ १

२ यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥ ध्वन्या० १ १३ ॥

३ भारतीय साहित्य शास्त्र बलदेव उपाध्याय (द्वि० स०) पृ० २१३

४ हिन्दी रसगंगाधर (पहला भाग) नाग० प्रचा० सभा काशी पृ० ६४

प्रस्तु, ध्वनि का प्रयोग—व्यंजक शब्द व्यंजक अर्थ, व्यंग्यार्थ, व्यंजना व्यापार तथा व्यंग्य प्रधान काव्य—इन पाँच अर्थों में हुआ है।[1] ध्वनि के अवयवार्थों का दर्शन से भी विभिन्न अर्थों की सार्थकता सिद्ध हो जाती है।[2] किन्तु काव्य शास्त्र में सर्वाधिक मान्यता निम्नलिखित श्लोकार्थ की है—

प्रतीयमान पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम।
यत तत प्रसिद्धावयवातिरिक्त विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु ॥[3]

अर्थात् महाकवियों की वाणी में वाच्यार्थ से भिन्न प्रतीयमान अर्थ रमणियों के (मुख नयन आदि) अंगोपांगों के अतिरिक्त (उनसे पृथक हुए) लावण्य के समान कुछ और ही है। जिस प्रकार दीपक तथा प्रकाश एक दूसरे से पृथक किन्तु साधन साध्य भाव से सम्बद्ध हैं वाच्यार्थ तथा ध्वनि का सम्बन्ध भी उसी प्रकार का है। कवि को साधन और साध्य दोनों की ही अपेक्षा रहती है—

आलोकार्थी यथा दीपशिखायां यत्नवान जनः।
तदुपायतया तद्वदर्थे वाच्ये तदादतः ॥[4]

महान कवियों की सरस्वती उस स्वाद अर्थ का विकीर्ण करती हुई प्रतिभासमान प्रतिभा विशेष का प्रकट करती है[5] जहाँ अर्थ स्वयं को तथा शब्द अपने अभिधेय अर्थ को गौण करके उस अर्थ को प्रकाशित करते हैं वही काव्य विशेष विद्वानों द्वारा ध्वनि कहा जाता है।[6] परवर्ती विद्वानों ने इन्हीं तथ्यों को अपने अपने प्रकार से दुहराया है। आचार्य भिखारी दास ने बड़े सरल शब्दों में ध्वनि की परिभाषा दी है—

वाच्य अरथ ते व्यंग मे चमत्कार अधिकार।
धुनि ताही कों कहत हैं उत्तम काव्य विचार ॥[7]

ध्वनि के आत्म पद पर आसीन हो जाने के कारण अलंकार, रीति वक्रोक्ति गुण, दोष आदि काव्य के बाह्यांगों का महत्व निश्चित ही कम हो गया। उसके स्थान पर काव्य के सूक्ष्म एवं आन्तरिक अंगों का महत्व स्थापित हुआ। परन्तु यह स्थापना गुड़ियों का खेल न थी। इसके लिए काव्य शास्त्रियों में बहुत दिनों तक कड़ा संघर्ष तथा उग्र वाद विवाद चलता रहा था।

ध्वनि की स्थापना

आनन्दवर्द्धन के उपरांत ही भट्टनायक ने व्यंजना के अस्तित्व का निषेध करते हुए भावकत्व और भोजकत्व दो काव्य शक्तियों की उद्भावना की थी। किन्तु

१ हिन्दी ध्वन्यालोक (भूमिका) पृ० २४
२ (क) ध्वनति य स व्यञ्जक ध्वनि (ख) ध्वनति ध्वनयति वा य स व्यञ्जकोऽर्थो ध्वनि (ग) ध्वन्यत इति ध्वनि इत्यादि
३ से ६ तक ध्वन्यालोक (क्रमश) १ ४ १ ९ १ १६ १ १३
७ काव्यनिर्णय स० जवाहरलाल चतुर्वेदी पृ० ११

अभिनव गुप्त ने सबल तर्कों द्वारा उनको अनगत प्रमाणित किया एवं व्यंजना की ही पुष्टि की। भट्टनायक के पश्चात् ध्वनिवाद को कुंतक और महिमभट्ट जैसे पराक्रमी विरोधियों का सामना करना पड़ा। कुंतक ने ध्वनि को वक्रोक्ति के अन्तर्गत ही ग्रहण करके उसको काव्य की आत्मा मानने से इनकार कर दिया उधर महिमभट्ट ने कहा कि व्यंजना की उद्भावना ही तर्क सम्मत नहीं है। शब्द की केवल दो ही शक्तियां मानी गई हैं—अभिधा और लक्षणा, यह तीसरी शक्ति कहां से आ गई। वे स्वयं तो शब्द की केवल एक ही शक्ति मानते हैं—अभिधा। वास्तव में जिसे व्यंजना कहा गया है, वह स्वतन्त्र शब्द शक्ति न होकर केवल अनुमान का ही एक विशेष भेद है—जिसे उन्होंने नाम दिया 'काव्यानुभूति'। इसी काव्यानुभूति के द्वारा सहृदय को रसानुभूति होती है। महिमभट्ट का यह सिद्धान्त स्पष्ट ही शंकुक के अनुमितिवाद से प्रभावित था और उसी की तरह यह भी ग्राह्य न हो सका। भट्टनायक कुंतक और महिमभट्ट के परास्त हो जाने पर ध्वनि का राज्य एक प्रकार से अकण्टक ही हो गया।'[1] आनन्दवर्द्धन, मम्मट तथा पंडितराज जगन्नाथ को इस स्थापना के वृहत्त्रयी की संज्ञा दी जा सकती है।

ध्वनि और रस

ध्वनि की स्थापना भारतीय काव्य शास्त्र में एक युगान्तरकारी घटना थी। यद्यपि ध्वनि सम्प्रदाय को रस सम्प्रदाय का ही विस्तृत रूप भी कह दिया जाता है[2] परन्तु ध्वनि तथा रस दो पृथक सम्प्रदाय हैं। कारण सर्वाधिक मान्य रस सिद्धांत की कतिपय सीमाएँ थी। विभावानुभाव संचारियों के सर्वत्र एक साथ एकत्रित न हो सकने के कारण अत्यन्त मनोहारी एवं चमत्कारपूर्ण मुक्तक रस काव्य के अन्तर्गत न आ पाते थे। जबकि उनमें ध्वनि निश्चित ही हो सकती है। ध्वनि और रस में ध्वनि सिद्धांत के अनुसार पलड़ा ध्वनि का ही भारी है। रस की स्थिति ध्वनि के बिना संभव नहीं है परन्तु ध्वनि की स्थिति रस विहीन हो सकती है। वस्तु ध्वनि अलंकार ध्वनि—ध्वनि काव्य के उत्कृष्ट रूप हैं। अतः काव्य में अनिवार्यता ध्वनि की है रस की नहीं। रस के बिना काव्यत्व संभव है, ध्वनि के बिना नहीं। आनन्दवर्द्धन के मत में ध्वनि काव्य की आत्मा है। रस परम श्रेष्ठ तत्व अवश्य है किन्तु आत्मा नहीं।[3] ध्वनि की स्थापना से रसेतर काव्य को भी सम्मानित स्थान प्राप्त हो गया। इतना ही नहीं ध्वनिहीन काव्य को भी सर्वथा विगर्हणा नहीं हुई और उसे भी चित्र-काव्य की कोटि में अन्तर्भुक्त कर लिया गया। पंडितराज ने तो एक पग और आगे बढ़कर काव्य कोटियों की संख्या में एक की और वृद्धि कर दी। उन्होंने शब्दालंकारों को अधम अर्थालंकारों को मध्यम गुणीभूत व्यंग्य को उत्तम तथा ध्वनि को उत्तमोत्तम काव्य

१ रीति काव्य की भूमिका—डा० नगेन्द्र (द्वि० सं०) पृ० ११४

२ साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्द कोश—राजेन्द्र द्विवेदी (१९५५) पृ० १०७

३ भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका (भाग २) डा० नगेन्द्र पृ० ३८९

कहकर वर्गीकृत किया। उन्होंने ध्वनि के स्थान पर रसवाद के प्रबल आग्रह की अत्यंत कटु आलोचना कर ध्वनि एवं रस का समन्वय सा स्थापित कर लिया। हिन्दी के अधिकांश आचार्यों ने ध्वनि एवं रस को प्रायः एक ही साथ वर्णित किया है। फिर भी ध्वनि का अपना महत्व है अपना क्षेत्र है। उसके भेद प्रभेदादि भी रस से भिन्न हैं।

ध्वनि के भेद तथा रहीम का नीति काव्य

आनन्दवर्द्धनाचार्य ने ध्वनि की स्थापना बहुत ही व्यापक आधार पर की थी। उन्होंने रस, अलंकारादि सभी को ध्वनि में समाहित कर लिया था। कदाचित् इसी लिए ध्वनि के तीन भेद किए गए थे—वस्तु ध्वनि, रस ध्वनि और अलंकार ध्वनि। एक को दूसरे और दूसरे को तीसरे भेदों में सम्मिलित करके लोचनकार ने ध्वनि के ७४२० भेद बताए हैं।[1] काव्यप्रकाशकार तथा साहित्यदर्पणकार ने इन्हें सुधारते हुए क्रमशः १०४५५ तक सीमित करने का उपक्रम किया है। पंडितराज ने तो समग्र योग और भी कम अर्थात् ३८७५ तक कर दिया है।[2] किन्तु मोटे तौर पर मूल भेद केवल दो हैं—लक्षणा मूला ध्वनि और अभिधा मूला ध्वनि। इन्हीं का दूसरा नाम क्रमशः अविवक्षित वाच्य ध्वनि तथा विवक्षित वाच्य ध्वनि अथवा विवक्षितान्यपर वाच्य ध्वनि है। डा० गुलाबराय के मत में विवक्षितान्य परवाच्य का तात्पर्य है वाच्यार्थ का अस्तित्व रहते हुए भी किसी दूसरे अर्थ का रहना। तथा अविवक्षित वाच्य का तात्पर्य है *वाच्यार्थ करने की विवक्षा न रहना क्योंकि उसमें तो वाच्यार्थ का बोध* (स्वयं) हो जाता है।[3] डा० आमप्रकाश के अनुसार इन दोनों भेदों का आधार विवक्षा का न होना एवं विवक्षा का होना है। विवक्षा का अर्थ इच्छा है। *कई बार व्यंग्यार्थ की प्राप्ति में 'वाच्यार्थ' की इच्छा का अभाव रहता है तब* लक्षणा द्वारा व्यंग्यार्थ पर पहुँचा जाता है। कई स्थलों पर वाच्यार्थ के बाध से व्यंग्यार्थ की प्रतीति सीधी हो जाती है।[4]

लक्षणा मूला (अविवक्षित वाच्य ध्वनि) को दो भागों में वर्गीकृत किया गया है[5]—अर्थान्तर संक्रमित वाच्य और अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य। इन भेदों का आधार वाच्यार्थ का व्यंग्यार्थ में संक्रमित हो जाना (समा जाना) अथवा अत्यन्त तिरस्कृत (उपेक्षित) रहना है। इनके भी पद गत एवं वाक्य-गत होने से अनेकानेक भेद हो जाते हैं। लक्षणा मूला के समान ही अभिधा मूला ध्वनि के भी मूलतः दो भेद हैं—असंलक्ष्य क्रम *व्यंग्य ध्वनि तथा संलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि। यहाँ विशेष रूप से यह बात ध्यान देने*

१ ध्वन्यालोक लोचनटीका तृतीय उद्योत कारिका संख्या ४३
२ हिंदी रसगंगाधर (पहला भाग) ना० प्र० स० काशी (द्वि० सं०) पृ० १०१
३ सिद्धांत और अध्ययन डा० गुलाबराय (छठा सं०) पृ० २५५
४ काव्यालोचन डा० आमप्रकाश शास्त्री, पृ० ३४
५ अविवक्षितवाच्यो यस्तत्र वाच्य भवेद् ध्वनौ।
अर्थान्तर संक्रमितमत्यन्त वा तिरस्कृतम्॥ (सूत्र ३६) काव्यप्रकाश ४ ७४

योग्य है कि ग्रंथकार (आचार्य मम्मट) ने उसको 'असंलक्ष्यक्रम' न कहकर असंलक्ष्यक्रम-व्यंग्य ध्वनि कहा है। इसका अभिप्राय यह होता है कि उसमें वाच्य और व्यंग्य की प्रतीति का क्रम तो अवश्य है परन्तु शीघ्रता के कारण वह दिखाई नहीं देता। विभाव, अनुभाव आदि की प्रतीति ही रस नहीं है अपितु उनकी प्रतीति रस प्रतीति का कारण है। विभावादि की प्रतीति होने के बाद रसादि की प्रतीति होती है। इसलिए रसादि की प्रतीति में क्रम अवश्य रहता है, परन्तु जैसे कमल के सौ पत्तों को एक साथ रखकर उनमें सुई चुभाई जाय तो वह उन पत्तों का भेद तो क्रम से ही करती है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वह एक साथ सौ पत्तों के पार पहुँच गयी है इसी प्रकार रस की अनुभूति में विभावादि की प्रतीति का क्रम होने पर भी उसकी प्रतीति न होने से उसको असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि कहा गया है।[1]

इसके रसादि (रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावसंधि, भाव-शबलता एवं भावशान्ति) आठ भेद होते हैं। अतः स्पष्ट है कि रस असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि का अंग अथवा भेद है। किन्तु रसादि असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य के अन्तर्गत तभी आते हैं जब वे काव्य विशेष में प्रधानतः स्थित हों। अन्यथा वस्तु अथवा अलंकार किसी अन्य के अंग बनने पर वे गुणीभूत व्यंग्य कहलाते हैं असंलक्ष्यक्रम नहीं। असंलक्ष्यक्रम के अतिरिक्त विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि का दूसरा भेद संलक्ष्यक्रम व्यंग्य है। इसे अनुस्वानाभ ध्वनि भी कहते हैं।[2] संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि में वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ का क्रम लक्षित होता रहता है। कहीं यह शब्द पर आधृत रहती है कहीं अर्थ पर और कहीं दोनों पर। इसी आधार पर इसके तीन भेद किये जाते हैं—(१) शब्द शक्ति संभव (२) अर्थशक्ति संभव और (३) शब्दार्थ उभय शक्ति संभव। इनके भी भेद प्रभेद हैं किन्तु उन सब में उलझने की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

शब्दशक्ति संभवा (अभिधा मूला) संलक्ष्यक्रम व्यंग्य

यह ध्वनि वहाँ मानी जायगी जहाँ व्यंग्यार्थ की प्रतीति किसी शब्द विशेष के कारण होती हो और उसका पर्याय रखने पर ध्वनि चमत्कार समाप्त हो जाता हो। ऐसी उक्ति में यदि अलंकार भी हो तो उसे अलंकार रूप ध्वनि कहेंगे। और यदि अलंकार न हो तो वस्तुरूप ध्वनि कहेंगे। एक उदाहरण लीजिए—

> कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
> पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय॥ २३—पृ० ३

---

१ श्री मम्मटाचार्य विरचित काव्य प्रकाश व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर स० डा० नगेन्द्र (वाराणसी), पृ० ९४

२ अनुस्वानाभ संलक्ष्यक्रम व्यंग्यस्थितिस्तु यः।
शब्दार्थोभयशक्त्युत्थस्त्रिधा स कथितो ध्वनिः॥ —सूत्र ५२
—काव्यप्रकाश ४ ३७

प्रथम पंक्ति का वाच्यार्थ है धन की अस्थिरता। परन्तु इसका व्यंग्यार्थ है कि संसार इतना मूढ है कि यह जानते हुए भी कि धन स्थाई वस्तु नहीं उसके संग्रह में जीवनभर लगा रहता है। इसी क्रम में विचार करते हुए अगला भाव निकलता है कि जानबूझ कर भी अर्थ संग्रह के चक्कर में जीवन गवा देना बहुत बडी मूर्खता है और उसमें अगला क्रमिक अर्थ है कि अस्थिर धन संग्रह के स्थान पर जीवन का उपयोग धर्म पुण्यादि स्थिर महत्त्व की वस्तुओं में करना चाहिए।

दूसरी पंक्ति में व्यंग्यार्थ और भी तीखा एवं चमत्कारपूर्ण है। क्योंकि पुरुष पुरातन अर्थात् बूढे की वधू अर्थात् युवती का चचला होना स्वाभाविक है। इसलिए आयु से गिरे हुए पुरुषों को नवयुवतियों से विवाह कराते समय भली प्रकार से आगा पीछा सोच लेना चाहिए। क्योंकि उनकी युवती वधुओं द्वारा चचला बनकर कुल मर्यादा आदि को समाप्त कर दिया जाना सभव है। अत अगला क्रमिक व्यंग्यार्थ होगा कि बूढों को युवतियों से विवाह नहीं करना चाहिए।

यहाँ अर्थ स्पष्ट ही क्रम क्रम से आगे बढता प्रतीत होता है। अत सलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि है। दूसरी ओर कमला के स्थान पर धन सम्पत्ति—लक्ष्मी[1] आदि शब्दों के रख देने से दोहे का चारुत्व समाप्त हो जाएगा। तृतीय चरण पुरुष पुरातन अर्थात् विष्णु से सम्बद्ध है। इसी प्रकार पुरुष पुरातन न कहकर भगवान विष्णु या वृद्ध पुरुषादि के कहने से भी भाव नष्ट हो जाता है। इतना ही नहीं वधू के स्थान पर स्त्री पत्नी दुल्हिन इत्यादि शब्दों से भी बात नहीं बनती क्योंकि स्त्री-पत्नी आदि से आयु का चढतापन—यौवन अथवा चांचल्य आदि व्यक्त नहीं होते और दुल्हिन अर्थात् नव-नवेली सद्यविवाहिता युवती के भी सग-साथ वालों का परिचय के अभाव में चचलता की सभावना नहीं है। कमला पुरुष पुरातन एव वधू के स्थान पर पर्यायों को रखने से व्यंग्यार्थ तथा उसका सौन्दर्य समाप्त हो जाता है। अत यहाँ शब्दशक्ति सभवा ध्वनि है जैसा कि ऊपर बताया गया है कि इसके दो भेद वस्तु एव अलकार ध्वनि है। उस दृष्टि से प्रस्तुत दोहे की प्रथम पंक्ति में कोई अलकार न होने के कारण वस्तु रूप ध्वनि तथा दूसरी पंक्ति के पुरुष पुरातन (बूढा तथा विष्णु) में श्लेष होने के कारण अलकार रूप ध्वनि है। इस प्रकार यह दोहा अभिधा मूला सलक्ष्यक्रम व्यंग्य की शब्द शक्ति सभवा ध्वनि का बहुत सुन्दर उदाहरण है। निम्न लिखित दोहों में भी यही ध्वनि है—

> कमला थिर न रहीम कहि लखत अधम जे कोय।
> प्रभु की सो अपनो कहे क्यों न फजीहत होय॥ २४—पृ० ३
> कहि रहीम जग मारियो, नैन बान की चोट।
> भगत भगत कोउ बचि गये चरन-कमल की ओट॥ २८—पृ० ३

---

१ लक्ष्मी के कहने पर विष्णु से सम्बद्धता में बाधा न पडते हुए भी उसके कमला सनत्व आदि का भाव नहीं आता। अत सौन्दर्य कमला कहने से ही सुरक्षित रहता है।

इन में प्रथम दोहे का व्यंग्यार्थ है कि लक्ष्मी धन ऐश्वर्यादि के उपभोग को स्थिर मान लेना उत्तम नहीं अधम विचार है जो दूसरे की स्त्री को अपनी समझ बठेगा उसका निरादर निश्चित है। साथ ही 'प्रभु की से अभिप्राय प्रभु की पत्नी तथा अपनी से अभिप्राय अपनी पत्नी से है। किंतु इन शब्दों से किसी अलंकार की स्पष्ट सिद्धि नहीं। अतः वस्तु रूप ध्वनि होती है। दूसरे दोहे में भौतिक आकर्षण की प्रबलता, प्रसक्ता एवं घातकता पर भक्ति की विजय व्यंग्य है। इसका माध्यम है 'नयन बाण तथा चरन-कमल का रूपक अलंकार। बाण से बचन के प्रसंग में भगत भगत को भी दौड़ते-दौड़ते या भागते भागते इत्यादि शब्दों से व्यक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि वह भागत भागत' के साथ ही भक्त भक्त का द्योतन कर रहा है। कुल मिलाकर दोहे में बड़ा उदात्त व्यंग्यार्थ व्यंजित है। अतः यहाँ अभिधा मूला संलक्ष्य क्रम व्यंग्य की शब्दालंकृत्युत्थित अलंकार ध्वनि का सौन्दर्य अपनी सहज सजधज से उपस्थित है।

अर्थशक्ति संभवा संलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि

जहाँ संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि किसी शब्द विशेष पर निर्भर न करके अर्थ की शक्ति द्वारा व्यंजित होती है वहाँ अर्थशक्ति संभवा ध्वनि कहलाती है। शब्द विशेष के स्थान पर उसका पर्याय रख देने से व्यंग्यार्थ में किसी प्रकार का व्याघात उपस्थित नहीं होता—

रहिमन अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेय।
जाहि निकारो गेह ते कस न भेद कह दे॥ १५५—पृ० १६

यहाँ अभिधार्थ है कि आँसू के निकलने से हृदय का दुःख प्रकट हो जाता है जिसे घर से निकाल दिया जाय वह भेद कह ही देगा। किंतु इसके व्यंग्यार्थ क्रम से कई निकलते जाते हैं। भारी से भारी दुःख में भी हम दूसरों के सम्मुख अपने आँसुओं पर नियंत्रण रखना चाहिए। रोने का अर्थ है संसार के सामने दुःख का ढोल पीटना। हम अपने घर से किसी को नहीं निकालना चाहिए। सगे सम्बन्धियों मित्रों एवं भेद जानने वालों को अपने से अलग नहीं होने देना चाहिए इत्यादि इत्यादि। यहाँ यदि आँसू नयन आदि के स्थान पर इन शब्दों के पर्यायवाची रख दिए जाएँ तो भी ध्वन्यार्थों में कोई अंतर नहीं आएगा। अतः इस दोहे में अर्थशक्ति संभवा अभिधा मूला व्यंग्य ध्वनि है। इसी प्रकार दूसरा दोहा लीजिए—

प्रीतम छबि नैनन बसी पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि पथिक आप फिरि जाय॥ ११६—पृ० १२

इस दोहे का व्यंग्यार्थ है कि हृदय में किसी सच्चे प्रेमी का अनुराग उत्पन्न होने पर मन संसार की सुंदर से सुंदर वस्तु पर भी आकर्षित नहीं हो सकता है। पारलौकिक दृष्टि से ध्वन्यार्थ होगा कि प्रभु भक्ति में चित्त रमते ही संसार के आकर्षण झूठे पड़ जायेंगे। अथवा भौतिकता से अपनी रक्षा का एकमात्र उपाय है मन में प्रियतम प्यारे परमात्मा की भक्ति उत्पन्न कर लेना। इस दोहे के शब्दों को भी

पर्यायों द्वारा स्थानापन्न करने पर ध्वन्यार्थ वही रहेगा। अतः यहाँ अर्थ सभवा ध्वनि है। इसी प्रकार निम्नलिखित दोहों में बहुत सुन्दर, अर्थशक्ति सभवा सलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि है—

बड़े पेट के भरन को है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथिहिं हहरि के दिये दांत द्वै काढ़ि॥ १२३—पृ० १२
बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुतो, कहु रहीम पहिचानि॥ १२२—पृ० १२
फरजी साह न ह्वै सके गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सीधे चाल सों प्यादो होत वजीर॥ १२०—पृ० १२

यहाँ क्रम से अधिक लोभ लालसा का परिणाम, दीन दुख-कातरता की महत्ता तथा जीवन के सच्चे-सरल मार्ग का सुफल व्यंग्य है।

शब्द अर्थ उभय शक्ति सभवा सलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि

शब्द एवं अर्थ पर पृथक् पृथक् तो सलक्ष्यक्रम व्यंग्य आधारित रहता ही है इन दोनों के सम्मिलित रूप में भी ध्वनि सन्निहित रहती है। जहाँ ध्वन्यार्थ शब्द और अर्थ दोनों की क्षमता पर निर्भर रहता है वहाँ शब्दार्थ उभय शक्ति सभवा ध्वनि रहती है—

शब्द अर्थ द्वहु सक्ति मिलि व्यंग्य कढ़ अभिराम।
कवि कोविद तिहिं कहत हैं 'उभय सक्ति' इहि नाम॥ —का० भिखारीदास

हमारे साहित्य में पानी तथा पानी के पर्यायों से बनने वाले शब्दों की बहुसंख्यक अनेकार्थता प्रसिद्ध है।[1] रहीम के निम्नलिखित सुप्रसिद्ध दोहे में लज्जा सम्मान मर्यादा आदि का महत्व अनेकार्थक पानी (आब चमक जल) शब्द के विशेष प्रयोग से व्यंग्य है। शब्द मध्य मोती मानस आदि के सामान्य अर्थ पर निर्भर है। अतः उभय शक्ति सभवा ध्वनि है—

रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे मोती मानुष चून॥ २०५—पृ० २०

इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं—

कहु रहीम कैसे बनै अनहोनी ह्वै जाय।
मिला रहै औ ना मिलै तासों कहा बसाय॥ ३४—पृ० ४
जो रहीम गति दीप की सुत सपूत की सोय।
बड़े उजेरो तेहि रहे गए अँधेरो होय॥ ७८—पृ० ८

---

१ (क) अपर अमय अरु बारि पुनि पानी पुष्कर होय।
निर दया मति नाम ये सत्या चौतिस जोय॥६॥

(ख) नार द्वार घर जुरि मकर दजुरे जलज उदोत।
ज रुह जल जोरत कमन धि जुरें सागर हान॥३॥

—नन्ददास ग्रन्थावली (नाममाला परिशिष्ट) ना० प्र० स० पृ० १०१ तथा ८८

अर्थशक्ति सभवा ध्वनि के भी बारह भेद प्रभेद किए जाते है। जिनम प्रथमत गणना तीन की है[1]—

१ स्वत -सभवी २ कवि प्रौढोक्ति सिद्ध ३ कविनिबद्धवक्त प्रौढोक्ति।

प्रसिद्ध अर्थ द्वारा व्यक्त ध्वनि को स्वत सभवी तथा कवि कल्पित अर्थ द्वारा व्यक्त ध्वनि को कवि प्रौढोक्ति सिद्ध कहा जाता है। और जहा नायक-नायिकादि पात्र कवि कल्पित उक्ति स ध्वनि व्यक्त करते ह, वहा कवि निबद्ध वक्त प्रौढोक्ति ध्वनि होती है। इनके भी चार चार भेद हैं—

१ वस्तु से वस्तु २ वस्तु से अलकार

३ अलकार से वस्तु ४ अलकार स अलकार

वस्तु से वस्तु ध्वनि का उदाहरण

पुरुष पूज देवरा, तिय पूज रघुनाथ।
कहि रहीम दोउन बने पड़े बैल की साथ॥ ११८—पृ० १२

यहा रामचन्द्रजी आदि प्रत्यक्ष भगवान तथा भूता आदि के पूजन म गृहस्थ का मत वभिन्य तथा दूसरी पक्ति म उसके भसे बैल के साथ से (मत वभिन्य का) दुष्परिणाम व्यग्य है। अत अलकार रहित इस दोहे मे वस्तु स वस्तु व्यग्य है।

वस्तु से अलकार ध्वनि का उदाहरण

कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चचला होय॥ २३—पृ० ३

यहाँ वस्तु ध्वनि (लक्ष्मी चाचल्यादि चाचल्य) पुरुष पुरातनादि के कारण अलकार ध्वनि (रूपक) की व्याख्या पहल ही की जा चुकी है।

अलकार से वस्तु ध्वनि का उदाहरण

भार झोंक के भार मे रहिमन उतरे पार।
प बूडे मझधार मे जिनके सिर पर भार॥ १३३—पृ० १३,

यहाँ प्रथम पक्ति म विद्यमान यमक मे वस्तु (लोकासक्तिपूर्ण जीवन का व्यर्थ विनष्ट होना) व्यग्य है।

अलकार से अलकार ध्वनि का उदाहरण

सनि सकोच साहस सलिल मान सनेह रहीम।
बढत-बढ़त बढ़ि जात है घटत घटत गति सीम॥ २६५—पृ० २६

यहाँ अनुप्रास अलकार प्रकट तथा दीपक अलकार व्यग्य है।

---

१ अर्थशक्त्युद्भवोऽप्यर्थो व्यञ्जक सम्भवी स्वत।
प्रौढोक्तिमात्रात्सिद्धो वा कवे तेनोम्भितस्य वा॥
—काव्य प्रकाश चतुर्थ उल्लास सू० ५४

एवं दरिद्रता में नीरसता ही नीरसता रहती है, रस नहीं होता। उधर धनी का अत्यन्त तिरस्कृत भय हो जायगा बुरी पराभिवांछित। निष्कर्ष रूप मधु का भी तात्पर्य कुछ ऐसा ही है। तात्पर्य यह है कि दीनता की स्थिति अत्यन्त कष्टप्रद होती है, क्योंकि दीन-दुखियों के कष्ट की ओर निष्ठुर समाज ध्यान नहीं देता। केवल भगवान ही उनका रक्षक है। और जब दीनबन्धु भी सब न रहें जैसा कि प्राय होता है तब बेचारे दीनों की दुरावस्था का कहना ही क्या? यह व्यंग्यार्थ है कि दीन दुखियों की कष्टमय दशा पर मनुष्य तो क्या भगवान भी दया नहीं करते।

काव्य कोटियाँ और रहीम

पंडितराज ने काव्य की उत्तमोत्तम, प्रथम, द्वितीय तथा अधम नाम से चार कोटियाँ स्वीकार की हैं जबकि अन्य विद्वान् प्रथम (ध्वनि काव्य) द्वितीय (गुणीभूत व्यंग्य काव्य) तथा तृतीय (अधम या चित्र काव्य) प्रधान रूप से तीन ही कोटियाँ मानते हैं। यहाँ चित्र काव्य विशेष व्याख्येय है क्योंकि इसका तात्पर्य किसी का चित्र प्रस्तुत करने वाला काव्य नहीं अपितु ध्वनि सौन्दर्य विहीन केवल अलंकारराशि की क्रीडा पर आधृत काव्य से है। तीनों कोटियों के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

उत्तम काव्य

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय॥ २३—पृ० ३

प्रीतम छबि नैनन बसी पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि आप पथिक फिर जाय॥ ११६—पृ० १२

रहिमन अँसुवा नयन ढरि जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ॥

मध्यम काव्य

वे रहीम नर धन्य हैं पर उपकारी अंग।
बाँटन वारे के लगे, ज्यों मेहदी को रंग॥ २४८—पृ० २४

सीत हरत तम हरत नित भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रवि को कहा जो घटि लखै उलूक॥ २६६—पृ० २६

चित्र काव्य (अधम काव्य)

रहिमन तुम हमसों करी करी करी जो तीर।
बाढ़े दिन के मीत हो, गाढ़े दिन रघुबीर॥ १२—१६

निष्कर्ष

सकडा वर्षों के निरतर विचार विमश के पश्चात् यह निश्चित हो चुका है कि भारतीय काव्य शास्त्र के अनुसार काव्योत्कप की सर्वाधिक माय कसौटी ध्वनि है। रस, अलकार रीति तथा वक्रोक्ति आदि सभी, किसी न किसी रूप से ध्वनि के सौदय के अतगत समाहित है। ध्वनि की कसौटी पर रहीम का नीति-काव्य बावन तोले पाव रत्ती उतरता है। ध्वनि सम्बधी प्राय सभी प्राचीन नवीन काव्य शास्त्रिया न ध्वनि भेदा केउदाहरण अधिकाशत शृगार के क्षेत्र म जुटाए है, किन्तु रहीम की विशेषता यह है कि ध्वनि के प्राय सभी प्रमुख भेदा के उदाहरण उनके नीति-काव्य म हैं। इसका अभिप्राय यह नही कि रहीम ने किसी लक्षण ग्रथ के ध्वनि विवेचन को दष्टि म रखकर अपने नीति-काव्य का सजन किया था। वास्तविकता यह है कि ध्वनि का सूक्ष्म सौन्य उत्तम काव्य की स्वाभाविक विशेषता है और वह रहीम जस अनुभवी सहृदय, विद्वान एव नैसर्गिक प्रतिभा सम्पन्न कुशल कवि की सृष्टि म सहज ही समाविष्ट हो गई है। ध्वनि, यदि उत्कृष्ट काव्य की कसौटी है, तो रहीम का नीति-काव्य उस पर खरा उतरने वाला कुन्दन है।

विनष्ट होती रहती हैं उसी प्रकार अक्षर तत्व में नाना पदार्थ उत्पन्न होते एवं उसी में लय होते रहते हैं।[1]

उद्धरणीय पाश्चात्य सम्मतियाँ

भारतीयों की प्राचीनकालीन भाषा-सकल्पना इतनी महत् है कि "भारत के भाव की गाथ यह स्पष्ट कर देती है कि संस्कृत ग्रन्थ भारतीय विज्ञान एवं दर्शन की विचारधारा के पूर्ण स्पष्टीकरण हैं।"[2] इसीलिए पाश्चात्य भाषाशास्त्री स्वयं अपनी रोमन, ग्रीक तथा अंग्रेजी भाषा लिपि आदि की असमर्थता[3] तथा अवैज्ञानिकता[4] स्वीकार करते हुए भारत के प्राचीन[5] भाषा शास्त्रियों एवं वैयाकरणों की वैज्ञानिकता[6] का ऋण मानते हैं।[7] इंग्लैंड के महान भाषा वैज्ञानिक जे० आर० फर्थ का कथन उद्धरणीय है—

Our English alphabet and orthography are disgracefully and ridiculously imperfect [8]

---

१ यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिंगा
सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपा ।
तथा क्षराद्विविधाः सौम्यभावाः
प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति ॥—मुण्डकोपनिषद् ॥

२ स्टोरी आफ देवनागरी अक्षरराज—प्रेमकिशोर भटनागर (दिल्ली) पृ० ६६

3 and 4 We Europeans 2500 years later and in a scientific age still employ an alphabet which is not only inadequate to represent all the sounds of our language but even preserves the random order in which vowels and consonents are jumbled up as they were in the Greek adaptation of primitive semetic arrangement of 3 000 years ago —Prof Macdonell *A History of Sanskrit Literature* P 424

५ प्रो० एलन ने पाणिनी महान से भी पूर्व के ६८ भाषा शास्त्रियों की सूची प्रस्तुत की है—देखिए फोनेटिक्स इन एन्शेन्ट इण्डिया लेखक डब्ल्यू० एस० एलन (अनुवाद) पृ० २

6 The most scientific grammar that world has ever produced with its alphabet based on thoroughly phonetic principles was composed in India about 7th and 8th century B C —Goldstuker *Panini and His Place in Sanskrit Literature*

7 Foundation of the science of grammar was laid by the Indians It is a common place of linguist to acknowledge the debt we owe to the Indian grammarians
—H M Lambert *Introduction to the Devnagri script* (Page— forward)

८ वही—प्रारम्भिक फारवर्ड का वही पृष्ठ

अर्थात् अंग्रेजी लिपि एवं वर्ण विद्या गरिमाहीन तथा उपहासास्पद सीमा तक अपूर्ण हैं। इतना ही नहीं विश्वविख्यात भाषाविद् बजामिन ली हुफ का कथन है कि, " जहाँ तक हम जानते हैं आज के रूप में ही, ईसा से कई शताब्दि पूर्व पाणिनी ने इस (भाषा) विज्ञान का शिलान्यास किया था। पाणिनी ने उस युग में वह ज्ञान प्राप्त कर लिया था जो हमें आज उपलब्ध हुआ है। (संस्कृत) भाषा के वर्णन अथवा संस्कृत भाषा के लिपिबद्ध करने के लिए पाणिनि के सूत्र बीजगणित के सूत्रों (फार्मूलों) की भाँति हैं। ग्रीक लोगों ने वस्तुतः इस (भाषा शास्त्र) की अधोगति कर रखी थी। इनकी कृतियों से ज्ञात होता है कि वैज्ञानिक विचारक के रूप में हिन्दुओं के मुकाबले में ये (ग्रीक लोग) कितने निम्न स्तर के थे (और उनकी भ्रान्तिपूर्ण विचारधारा का प्रभाव दो सहस्र वर्षों तक चलता रहा था। वास्तव में १६वीं शताब्दि के प्रारम्भ में जब से पश्चिम ने पाणिनी को प्राप्त किया तभी से आधुनिक वैज्ञानिक भाषा शास्त्र का प्रारम्भ हुआ।[1]

भारतीय भाषा शास्त्र एवं भाषा के इतने समृद्ध होने पर भी संस्कृत का ह्रास हुआ। इस कारण भी कदाचित् भाषाशास्त्र एवं व्याकरण की उन्नति ही थी। व्याकरण के सम्यक् नियमों ने उसे इतना जकड़ लिया कि वह लोकभाषा के विकसित रूप से तालमेल स्थापित न रख सकी। लोकभाषा विकसित होते हुए तथा प्राकृत, पालि अपभ्रंश आदि के सोपानों को पार करती हुई हिन्दी के रूप में उन्नित हुई। हिन्दी भी निरन्तर विकसित होती रही है।[2] वीरगाथा काल की हिन्दी आधुनिक हिन्दी नहीं थी। आज तो उसका रूप मध्ययुगीन भाषाओं से भी सामान्यतः भिन्न दिखाई पड़ता है।

मध्ययुग की साहित्यिक भाषाएँ

हिन्दी साहित्य के मध्ययुग में जिस विपुल साहित्य की सर्जना हुई है उससे हिन्दी का सामान्य पाठक भी अपरिचित नहीं। उस्मान जायसी कबीर नानक सूर तुलसी रहीम रसखान मतिराम बिहारी आलम बोधा ठाकुर पद्माकर सेनापति वृंद आदि सभी महाकवि मध्ययुग के हीरे हैं। यद्यपि कुछ कृतियों में डिंगल राजस्थानी आदि का प्रयोग देखा जा सकता है किन्तु सर्वप्रचलित दृष्टि से प्राधान्य अवधी और ब्रज का ही रहा है। ये ही दो भाषाएँ साहित्यिकों का कण्ठहार थीं। बहुत से समर्थ कवियों ने दोनों भाषाओं का व्यवहार किया है। तुलसी और रहीम ऐसे ही कवि हैं। जिन्होंने दोनों भाषाओं का व्यवहार समान कुशलता एवं दक्षता से किया था।

---

१ भाषाशास्त्र की रूपरेखा डा० उदयनारायण तिवारी (प्र० सं० इलाहाबाद) पृ० १८ पर उद्धरित।

२ अन्य भाषाओं की भी यही कहानी है। ब्लूमफील्ड का कथन है कि— चौदहवीं शताब्दि के चौसर की अंग्रेजी तो (आज की अंग्रेजी) से भिन्न ही है पर तु नौवीं शताब्दि के राजा एल्फ्रेड महान् के समय की अंग्रेजी तो आज किसी भाषा के समान हो गई है।

—संकेत नियानाड ब्लूमफील्ड (मोती बनारसी दास) पृ० २८१

अवधी भाषा

हिन्दी के क्षेत्र में अत्यधिक प्राचीन काव्य भाषाओं में अवधी का स्थान अद्वितीय है। आज भी रायबरेली, लखनऊ, प्रतापगढ़, सीतापुर, मिर्जापुर, बाराबंकी तथा उन्नाव आदि जिलों में अवधी का, जन भाषा के रूप में प्रचलन है। डाक्टर ग्रियर्सन ने अपने सर्वे, बाबूराम सक्सेना ने अपने ग्रंथ 'अवधी भाषा का विकास' तथा विभिन्न भाषा वैज्ञानिकों ने इसके भाषागत रूप पर विस्तार से विचार किया है। प्राचीनकाल के सूफी प्रेमाख्यान काव्यों की तो प्रायः साम्राज्ञी अवधी ही थी। कुतबन, जायसी और मंझन की भाषा में अवधी के स्वाभाविक, सरल एवं अकृत्रिम रूप के दर्शन होते हैं। "जायसी की अवधी भाषा भाषाविदों के लिए स्वर्ग है जहाँ उनकी रुचि की अपरिमित सामग्री सुरक्षित है। मैथिली के लिए जो स्थान विद्यापति का है, मराठी के लिए जो महत्व ज्ञानेश्वरी का है वही महत्व अवधी के लिए जायसी की भाषा[1] का है।' जायसी की सहज एवं अकृत्रिम अवधी में भिन्न परिष्कृत एवं संस्कृत रूप के दर्शन तुलसी के रामचरितमानस में होते हैं। तुलसी ने जिस प्रकार राम के रूप को निखिल भारतीय बनाया उसी प्रकार राम के क्षेत्र (अयोध्या) की भाषा को भी विस्तृत आधार प्रदान किया। रहीम की अवधी इन दोनों रूपों के बीच की कड़ी है। रहीम की अवधी में जायसी की अवधी का अल्हड़पन तथा तुलसी की अवधि का बनाव निखार दोनों ही एक साथ देखे जा सकते हैं। बरवै नायिका भेद की अवधी का मिठास तुलसी एवं जायसी दोनों से अनूठा है—

> भोरहि बोल कोइलिया बढ़वत ताप।
> घरी एक घरि अलिया रहु चुपचाप॥ ब० ना० भेद १२
> चूनत फूल गुलबवा, डार कटील।
> टुटिगो बन्द अगिअवा फटु पट नील॥ ब० ना० भेद १३
> नील मनिन के हरवा, नील सिंगार।
> किए रइनि अँधिअरिआ, धनि अभिसार॥ ब० ना० भेद ७९

रहीम ने अवधी का उपयोग शृंगार निरूपण में ही किया है नीति-कथन में नहीं। हाँ, वैराग्य एवं भक्ति सम्बन्धी बरवों में अवधी का प्रयोग अवश्य है—

> मानुष तन अति दुर्लभ सहजहि पाय।
> हरि भजि कर सत संगति कह्यौ जताय॥ बरवै ५१॥
> ज्यौं चौरासी लखि मे मानुष देह।
> त्यौंही दुर्लभ जग मे सहज सनेह॥ बरवै ५०॥

नीति के दोहों में रहीम ने ब्रज का ही सर्वत्र प्रयोग किया है। यह बात दूसरी है कि किसी दोहे में अवधी की थोड़ी-बहुत झलक दिखाई दे जाय अन्यथा उनके नीति-काव्य की भाषा शुद्ध ब्रज है।

---

१ पद्मावत प्राक्कथन—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पृ० २८

व्रज भाषा

व्रज प्रदेश कृष्णयुगीन भारतवर्ष का चिर विकसित प्रदेश था विष्णुपुराण[1], हरिवंश पुराण[2] तथा भागवत[3] के सन्दर्भ इस कथन के प्रमाण हैं। भारतीय इतिहास में मध्ययुगीन घटना चक्र का क्रम कुछ इस प्रकार चला कि राजनीति सभ्यता एवं संस्कृति का केन्द्र पूर्व की अपेक्षा पश्चिम की ओर सरकता गया। उधर धार्मिक दृष्टि से भी कृष्णभक्ति को बढ़ावा मिलता रहा। परिणाम यह हुआ कि व्रज प्रदेश की भाषा का उत्तरोत्तर अधिकाधिक विकास होता गया। कुछ दिनों तक तो अवधी और व्रज दोनों ही में साहित्य रचना होती रही किन्तु आगे चलकर अवधी पिछड़ गई और केवल व्रज का प्रयोग ही शेष रह गया। यद्यपि साहित्य में आज व्रज के स्थान पर खड़ी बोली का प्रयोग हो रहा है किन्तु अब भी व्रज भाषा एक बड़े क्षेत्र की जन भाषा के रूप में बोली जाती है। मथुरा आगरा अलीगढ़ मैनपुरी तथा एटा जिलों में तो व्रज का एक छत्र साम्राज्य है। आधुनिक व्रजभाषा १ करोड़ २३ लाख जनता के द्वारा बोली जाती है। और लगभग ३८,००० वर्गमील क्षेत्र में फैली है।"[4]

इतने विशाल क्षेत्र का दैनिक कार्य व्यापार चलाने वाली भाषा असमर्थ नहीं हो सकती। और यदि असमर्थ हो तब भी राजाश्रय प्राप्त करने पर वह समृद्ध भाषा से भी बाजी मार लेती है। विश्व साहित्य का इतिहास इस तथ्य का प्रमाण है। अंग्रेजी जर्मन तथा फारसी आदि भाषाओं के विकास में राजाश्रय का भारी योगदान स्पष्ट है। व्रजभाषा भी इस कथन का अपवाद नहीं है। मुगल बादशाहों ने प्रारम्भ से ही स्थानीय भाषा को प्रश्रय प्रदान किया था। अकबर की भाषा नीति चाहे राजनीतिक कारण से हो और चाहे सांस्कृतिक कारण से परन्तु थी अत्यधिक उदार। आगरे का मुगल दरबार व्रज भाषी कवियों का अखाड़ा बन गया था। जहाँ बचे हुए हिन्दू राजाओं की सभाओं में ही कविजन थोड़ा बहुत उत्साहित या पुरस्कृत किए जाते थे, वहाँ अब बादशाह के दरबार में भी उनका सम्मान होने लगा। कवियों के सम्मान के साथ कविता का सम्मान भी यहाँ तक बढ़ा कि अब्दुर्रहीम खानखाना ऐसे उच्चपदस्थ क्या बादशाह[5] तक व्रज भाषा में कविता करने लगे।[6] और जिस भाषा

---

१ विष्णु पुराण २४ ८

२ हरिवंश पुराण ६५ १, १८८ ४२ ६०

३ भागवत १० १ ८ १० ११ १७

४ हिन्दी साहित्य कोश भाग १—(ज्ञानमण्डल, वाराणसी) पृ० ५६५

५ अकबर की कविता का नमूना—

'साहि अकब्बर' एक समै चले कान्ह बिनोद बिलोकन बालहिं।
आहट ते अबला निरख्यो चकि चौंकि चली करि आतुर चालहिं॥
त्यों बडी बेनि सुधारि धरी सुभई छबि यों ललना अरु लालहिं।
चंपक चारु कमान चढ़ावत काम जो हाथ लिए अहि बालहिं॥
—हिन्दी साहित्य का इतिहास—आ० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १९०

६ वही पृ० १८९

म स्वय सम्राट कविता करते हो उसकी उन्नति को कौन रोक सकता था ? वसे भी व्रजभाषा धार्मिक एव साहित्यिक दृष्टि से सम्पन्न हो चली थी। सूर तुलसी और रसखान जसे भक्त कवि और कलाविद् उसकी सेवा मे निरत थे। अत उसका अवधी से आगे निकल जाना स्वाभाविक था।

अवधी और व्रज की एकता

उक्त विवरण से यह तात्पय न समझ लेना चाहिए कि अवधी और व्रज म विराग, वैमनस्य अथवा प्रतिद्वन्द्विता थी। दोना भाषाओ म सहोदराओ जसा स्नेह था। इसलिए कवि अपनी अपनी रुचि के अनुसार कविता करते थे। कुछ कवि तो दोना म समान अधिकार से कविता करत थे। इतना ही नही कुछ विद्वान अवधी एव व्रज के नितान्त विलगाव को ही स्वीकार नही करते। पाश्चात्य विद्वान प्रो० जूलिस तथा भारतीय विद्वान डा० रामदत्त भारद्वाज दोना भाषाओ की एकता मे विश्वास रखत ह और उनकी पृथकता के प्रचार का जाज ग्रियसन की करतूत मानते हैं।[1] जो हो, दोना भाषाओ म अनेक सम्पक सत्र होत हुए भी याकरणिक सरचना म पर्याप्त भिन्नता है किन्तु रहीम के समय म अकबरी दरबार के सभी कवि व्रज को अपना चुके थ।

रहीम की व्रज भाषा

व्यक्तित्व के प्रसग म यह स्पष्ट किया जा चुका है कि रहीम नाना भाषाविद थे। जो व्यक्ति तुर्की और फारसी जसी दो एकदम पृथक भाषाओ म गति उपलब्ध कर सकता है उसके लिए हिन्दी की ही न्दे बोलियो म कविता करना कोई कठिन नही था। इसीलिए रहीम न जिस सरलता एव स्वाभाविकता के साथ व्रज को अपनाया है वह उनके भाषा वशारदय का स्वत प्रमाण है। व्रजभाषा के उत्कृष्ट से उत्कृष्ट कवि के काव्य म रहीम के दोहा को रख दीजिए उनकी भाषा का सहज सौन्दय अलग ही दिखाई देगा। उनका शब्द चयन स्वत बोल उठता है उनकी वण योजना स्वत चमक उठती है। ऐसा सारल्य ऐसी अकृत्रिमता तथा इस प्रकार की स्वाभाविक सम्पन्नता अन्यत्र दुलभ है।

तत्सम शब्द बहुला व्रज भाषा

रहीम लोक एव शास्त्र दोना म ही रुचि रखत थ। भाषाओ के तो अद्भुत पारखी थ ही। हिन्दी की नाना बोलियो के अतिरिक्त सस्कृत काव्य-क्षमता भी कम न थी। अत व्रज भाषा म कविता करत हुए सस्कृत के शुद्ध शब्दो का प्रयोग स्वाभाविक है। उनके जस ऊँचे समाज म परिष्कृत भाषा का प्रयोग निश्चित ही अधिक होता होगा। यही कारण है कि रहीम के नीति काय म तत्सम व न्दा का प्रयोग कुछ कम नही है। परन्तु य शब्द सरल सामान्य एव दनिक प्रयोग क शब्द हैं और इस प्रकार से शुद्ध होत हुए भी क्लिष्ट एव कृत्रिम नही जान पडत।

---

१ गोस्वामी तुलसीदास डा० रामदत्त भारद्वाज (दिल्ली १९६२) पृ० ५३

निम्नलिखित दोहों के मोटे शब्दों में यह तथ्य स्पष्ट हो सकता है—

> मनसिज माली की उपज कही रहीम नहिं जाय।
> फल श्यामा के उर लगे फूल श्याम उर आय॥ १३६—पृ० १४
> भूप गनत लघु गुनिन को गुनी गनत लघु भूप।
> रहिमन गिरि तें भूमि लौं लखौं तो एकै रूप॥ १३७—पृ० १४
> यद्यपि अवनि अनेक हैं कूपवंत सरि ताल।
> रहिमन मानसरोवरहिं मनसा करत मराल॥ १५१—पृ० १५

तद्भव शब्द बहुला ब्रज भाषा

रहीम की भाषा में तद्भव शब्दों का प्रयोग भी कम नहीं है। ये शब्द यद्यपि अपने लोक प्रचलित रूप में प्रयुक्त हुए हैं किन्तु मूल उद्गम की दृष्टि से ये संस्कृत समाज के ही शब्द हैं। इन शब्दों का प्रचार प्रायः अर्द्ध शिक्षित या अल्प शिक्षित समाज में अधिक रहता है। ब्रज की भूमि में आज भी शुद्ध शब्द बहुला भाषा बोलने वाले गाँव में उपहास का विषय बनते देखे जा सकते हैं किन्तु ये ही शब्द यदि अपने तद्भव रूप में प्रयुक्त होते तो सर्वत्र समादृत होते हैं। रहीम भी इस स्थिति से अपरिचित न होंगे। इसीलिए उन कवि की भाषा में ऐसे शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक है। निम्नलिखित दोहों में तद्भव शब्द बहुला भाषा की सरलता से देखा जा सकता है—

> दुरदिन परे रहीम कहि दुरथल जयत भागि।
> ठाढ़े हूजत घूर पर जब घर लागत आगि॥ ९८—पृ० १०
> दीरघ दोहा अरथ के आखर थोड़े आहिं।
> ज्यों रहीम नट कुण्डली सिमिटि कूद चढ़ि जाहिं॥ ९९—पृ० १०

देशज विदेशज शब्द बहुला ब्रज भाषा

रहीम के नीति-काव्य में तीसरे प्रकार की ब्रज भाषा का नमूना उन दोहों में देखा जा सकता है जिनमें देशज तथा विदेशज शब्दों का बाहुल्य है। विदेशज शब्दों से अभिप्राय अरबी फारसी एवं तुर्की इत्यादि के ऐसे शब्दों से है जो उस युग के मुस्लिम समाज में खूब घुल मिल गए थे। साथ ही लश्कर में सामान्य ग्राम्य समाज से आए हुए सिपाहियों की कमी न थी। वे अपने साथ कुछ क्षेत्रीय शब्द भी लाए थे। इन्हें ही देशज शब्द कहा जा रहा है। देशज विदेशज शब्द बहुला भाषा वाले दोहे संख्या में अत्यल्प हैं। दो दोहे देखिए—

> फरजी साह न ह्वै सके गति टेढ़ी तासीर।
> रहिमन सीधो चाल सों प्यादो होत वजीर॥ १२०—पृ० १२
> रौल बिगाड़े राज कू, मौल बिगाड़े माल।
> सनै सनै सरदार की चुगल बिगाड़े चाल॥ २४३—पृ० २४

रहीम की प्रतिनिधि ब्रज भाषा

प्रस्तुत प्रसंग में ब्रज भाषा की तीन श्रेणियों के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं—तत्सम शब्द-बहुला, तद्भव शब्द-बहुला एवं देशज विदेशज शब्द बहुला। परन्तु इन

म से किसी को भी रहीम की प्रतिनिधि भाषा नहीं कहा जा सकता। प्रतिनिधि भाषा इन तीनों श्रेणियों का सम्मिलित रूप है। उसमें न देशी विदेशी शब्दों का तिरस्कार है और न तद्भव-तत्सम शब्दों की भरमार। वह सामान्य सभ्य समाज में बोली जाने वाली भाषा का रूप है जो किसी भी अति से मुक्त है। रहीम की प्रतिनिधि भाषा में सभी प्रकार के प्रचलित शब्दों का कुछ ऐसा प्रयोग हुआ है कि पढ़ते समय सामान्य पाठक को उनके देशी विदेशीपन अथवा तद्भव-तत्सम रूप का ज्ञान ही नहीं होता। निम्नलिखित उदाहरण हमारे कथन की पुष्टि करेंगे—

उरग तुरग नारी नृपति, नीच जाति हथिग्रार।
रहिमन इन्हें सँभारिए पलटत लगे न बार॥ १४—पृ० ०
करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन हजूर।
मानहु टेरत बिटप चढ़ि मोहि समान को कूर॥ ०५—पृ० ०
हाथ न जाकी छाह ढिग फल रहीम अति दूर।
बढ़िहू सो बिनु काज ही जसे तार खजूर॥ २७०—पृ० ०६

खड़ी बोली के प्रयोग

अवधी और ब्रज भाषाओं के अतिरिक्त रहीम के नीति-काव्य में कुछ ऐसे भी प्रयोग मिलते हैं जो इन दोनों से पर्याप्त भिन्न हैं। ऐसे प्रयोग आधुनिक खड़ी बोली के सन्निकट पड़ते हैं। यह बात चाहे कितनी ही आश्चर्य की हो किन्तु है सत्य कि खड़ी बोली का बड़ा सुष्ठु प्रयोग अमीर खुसरो ६०० वर्ष पूर्व ही कर चुके थे। यदि उन्हीं के प्रयोग सूत्रों को पकड़कर कविगण आगे बढ़ते तो हिन्दी भाषा के विकास का इतिहास आज कुछ और ही होता। अस्तु रहीम के प्रसंग में भी तथ्य थोड़े बहुत इसी प्रकार हैं। उनका मदनाष्टक यद्यपि संस्कृत हिन्दी की खिचड़ी भाषा में लिखा गया है[1] किन्तु हिन्दी के प्रयोग भाषागत दृष्टि से विचारणीय हैं। वे खड़ी बोली के न होते हुए भी, उसके समीप अवश्य हैं। 'चाद की रोशनाई', 'कान्हा वंशी बजाइ', 'अहह ! ब्रज ललना को किस तरह फेर देखा', 'जरद बसन वाला गुल चमन देखता था', 'परम प्यार सावरे का मिलाओ' इत्यादि प्रयोग खड़ी बोली के हैं।[2] मदनाष्टक का दूसरा पद तो बहुत ही साफ खड़ी बोली जैसा है—

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चलन वाला चादनी में खड़ा था।
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला॥

—रहीम रत्नावली पृ० ७३

---

१ इति वदति पठानी मनमथागी विरागी।
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी॥ —रहीम रत्नावली पृ० ७४

२ वही (मदनाष्टक) पृ० ७३

उर, प्रभु दृग नभ सर, नारी, भजुन विष अमृत, राहु मास मीन, कपि यद्यपि, अवनि अनेक, मराल अम्यास, तुरग, व्यवहार निर्जीव दीन, कुटिल समय वमन कज्जल जिह्वा कालिमा दरिद्रतर पाडव, रथवाहक, नलराज परम गति, कामाग्नि, धाम, जलज, नीच प्रसग बहु भेषज राग मृग अनाथ, नाथ, अगम्य, बान, मग्न, मन तुरग पावक प्रेम पथ याचकता न्दिस सम गुरु भू वृथा, वित्त, सुन्दर, अधम, बिन्दु तथा सिंधु इत्यादि इत्यादि।

प्रमुख तद्भव शब्द

आवरज मीत अगनित, सतगत अकास बखान निहचल पवित पून पछी, सरन, सनमान, दसन निसा लिलार जनम जम, हाथ नन धरम सत हत सीत, अगुन, अगुनी गुन देस तुरत भौत आगुर मारग पाँवन पाह विप्राि दूध पूरन दुरदिन कुआँ पाताल चाम काम छन्द दडा कुम्हार, परनाम नाव दाँत लस, चित बासन ठाकर पान रन इच्छक स्याम पापान पसु सभू बास, सौन, सौन क्लेस उपदेस दुरबल किसान मोर, काज नाव सुजन मुक्ता हार, कठपूतरी मरजाद घर मिताई सहसन छिमा उपाव करए, सपति उरज, बाय, स्वारथ थिर धुआ जीरन लछमन लाज जदपि सुजस इत्यादि।

प्रमुख देशज तथा विदेशज शब्द

यारो यारी ओछो किरकिरी सुरमा फजीहत मुस्किल पाँसा गरज गरज हुजूर कागज गर खरच खर, खून खाँसी खुसी, बतौरी आटा, दमरी प्यादे वजीर बलाय दाग अनखाय, हूक, गली नाम बाप गल मामिला स्याह नाद गल खस इज्जत, चिथडन गली सिलसिला अजीम पडा दिल, ढेंकुली, रौल माल चुगल सरदार नगाडा, मुकाम सलाम लसकरी लसकर जगीर सौदा साहब तथा हैरान इत्यादि।

रहीम की भाषागत विशेषताएँ

इन सूचियाँ के देखने से रहीम की शब्द चयन क्षमता क्षेत्र विस्तार तथा अभिरुचि का पर्याप्त ज्ञान हो सकता है। शुद्ध तत्सम शब्दावली के प्रति उनका मोह तथा उपयुक्त देशी विदेशी शब्दो के प्रति अतिरस्कार भाव रहीम की भाषा नीति की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं। शब्दो का प्रयोग करते समय रहीम उनके व्याकरण सम्मत रूप तथा अर्थ क्षमता आदि को सदव सम्मुख रखत हैं। शब्द चयन म प्रसगानुकूलता का जितना ध्यान रहीम रखत हैं उतना बहुत कम कवि रख पाय हैं। उनकी भाषा म शिष्टता एव नतिकता का अश भी बहुत बडी मात्रा म विद्यमान रहता है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य द्रष्टव्य विशेषताए भी हैं।

प्रवाह

रहीम के जितने भी दोहे प्राप्त है उनमे और चाहे कोई दोष खोज निकाला जाय किन्तु प्रवाह रद्धता का उदाहरण प्राप्त करना कठिन है। सभी दोहा की भाषा

सी स्वाभाविक गति से प्रवाहित है मानो वह अपना अभीष्टार्थ प्राप्त किए बिना विराम लेना उचित नहीं समझती। एक श ~ के पश्चात् दूसरे और दूसरे के पश्चात् तीसरे पर से होती हुई भाषा इस प्रकार निर्बाध रूप म गतिमान रहती है जसे स्वच्छ तथा समतल राजपथ पर यान के पहिए। न किसी बडौल श द का पत्थर बीच मे आता है और न अनावश्यक सधि-समासादि की ककडे। शब्द चयन इतना सुथरा, इतना आकार-बद्ध तथा इतना सुयस्त है कि प्रवाहमानता की दृष्टि से रहीम की भाषा अपने म अपना उदाहरण स्वय ही है। रहीम का प्रत्यक दोहा हमारे कथन की पुष्टि करता प्रतीत होगा।

मीलित वर्ण योजना

रहीम की भाषा मे प्रवाह के साथ ही वर्णों का ऐसा सुखद सयोजन है जिसको पढते समय, वाणी न केवल निर्बाध गति स आगे बढती है अपितु उसकी ध्वनि से एक विशेष तरलता भी निकलती रहती है। यह तरलता उनका मीलित-वण योजना एव श द सगठन का प्रतिफल है। उनके अधिकाश दोहो मे वर्णों का क्रम इस प्रकार सजाया गया है कि वे परस्पर असम्बद्ध होते हुए भी सुसम्बद्ध तथा पृथक होत हुए भी अपृथक प्रतीत होत हैं। जसे जलतरग-वादक का प्रत्यक प्याला एक विशेष क्रम से रखा होता है वैसे ही रहीम के श द कुछ इस प्रकार के वर्णों से निर्मित है कि पढते समय की झकार निकलती चली जाती है। कुछ पक्तिया प्रस्तुत हैं—

ससि की सीतल चादनी सुदर सबहि सुहाय। २६४—पृ० २६
सीत हरत तम हरत नित भुवन भरत नहि चूक॥ २६६—पृ० २६
अच्युत चरण तरगिनी शिव सिर मालति माल। १—पृ० १
ससि सकोच साहस सलिल, मान सनेह रहीम।
बढत बढत बढि जात है घटत घटत घटि सीम॥ २६८—पृ० २६

सगीत एव लय

प्रवाह एव मीलित-वण-योजना का अन्तिम फल ही सगीत है। उक्त दोना गुणो के कारण रहीम की भाषा से सगीत एव लय की कुछ ऐसी लहरिया निकलती है जो अपने मूल रूप म छन्दा के बधन के अतिरिक्त श द-सरचना से भी सम्बद्ध है। दिल्ली प्रादेशिक साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित रहीम जयन्तिया पर हमने कई बार, रहीम के दोहा का ऐसा गायन सुना है कि जनता भाव विभोर हो उठती थी। सगीत की दृष्टि स दोहो से अधिक अवकाश घनाक्षरियो सवया एव पदा आदि अन्य छन्दा म रहता है। और रहीम के छन्द लय एव सगीत के भण्डार हैं। उस सगीत का श्रेय भी परम्परागत गति-यति से अधिक रहीम के श द चयन का है। हिन्दी ही नही रहीम के श्लोका को भी भक्त जब भाव विभोर होकर गात हैं तो तल्लीनता का जादू सा छा जाता है। भक्ता के मुख से 'रत्नाकरोस्ति सदन ' इत्यादि श्लोक को सुनकर हमने स्वत उस तल्लीनता का आस्वाद प्राप्त किया है।

असमस्त शब्दावली

रहीम, जीवन-जगत के कवि हैं। जीवन-जगत का गम्भीर ज्ञान यानी नीति का सरल शब्दों में चुभता हुआ वर्णन रहीम की अपनी विशेषता है। न वे पचीदा दार्शनिक सिद्धान्तों के चक्कर में पड़े हैं और न वाग्वैदग्ध्य-भरी अभिव्यक्तियों के फेर में। सौन्दर्य सज्जा की घुमावदार अभिव्यक्ति भी उन्हें पसन्द नहीं। यही कारण है कि उनकी शब्दावली सरल सीधी एवं असमस्त है। लम्बे-लम्बे समास रहीम की भाषा में नाम मात्र को भी प्राप्त नहीं होते। असमस्त शब्दावली रहीम के शब्द चयन की उल्लेखनीय विशेषता है। अनेकानेक शब्दों का एक में संगुम्फन करना रहीम की रुचि के प्रतिकूल था। दोहावली के सम्पूर्ण दोहों पर दृष्टि डाल जाइए, शायद ही कोई पंक्ति ऐसी मिले जिसमें दो-तीन शब्दों के समास एक साथ प्रयुक्त हुए हों। 'अच्युत चरन तरंगिनी' इत्यादि प्रथम दोहे को छोड़कर शेष सभी दोहे असमस्त पदावली से मुक्त हैं। सभी शब्दों का अलग अलग विन्यास एक ऐसी विशेषता है, जो समय से समय कवियों में भी कम ही देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए दो दोहे प्रस्तुत है—

> रहिमन व्याह बियाधि है सकहु तो जाहु बचाय।
> पायन बेड़ी परत हैं ढोल बजाय बजाय॥ २०९—पृ० २१
> रहिमन बहु भेषज करत ब्याधि न छांडत साथ।
> खग मृग बसत अरोग बन हरि अनाथ के नाथ॥ २१०—पृ० २१

शब्दों का लघु आकार

असमस्त पदावली के प्रयोग से ही मिलती जुलती रहीम की भाषा की अन्य विशेषता है—लघु शब्दों का प्रयोग। रहीम अनेक शब्दों को मिलाकर लम्बे-लम्बे शब्द बनाने के पक्ष में तो थे ही नहीं वे पृथकतः भी लम्बे एवं बड़े आकार के शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे। काव्य जीवन के आरम्भ से ही लघु आकृति के शब्दों के प्रति उनका आकर्षण देखा जा सकता है। सम्पूर्ण दोहावली को खोजने पर भी ■ वर्णों से अधिक का कोई पद शायद ही हाथ लगे। अमरबेलि सरनागति भवसागर करमहीन जैसे पांच वर्णों से युक्त शब्द भी दस-पन्द्रह से अधिक नहीं होंगे। इतना ही नहीं चार वर्णों के शब्द भी कम ही हैं। सम्भवतः चार वर्ण ही उनके शब्द चयन की सीमा थी। अधिकांश शब्द तो दो या तीन वर्णों के ही हैं। रहीम ने कदाचित अपने नाम—रहिमन अथवा रहीम—तीन चार वर्णों को ही अपने वर्ण समूह की सीमा बना लिया था। दोहे सोरठे और बरवै जैसे छोटे छन्द में असमस्त शब्दों के द्वारा केवल दो तीन वर्णों से युक्त छोटे छोटे शब्दों में अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त कर देना बहुत बड़े कवि-कौशल की अपेक्षा रखता है। ऐसे शब्द शिल्पी अधिक नहीं मिलेंगे। रस सिद्धि के समान शब्द सिद्धि भी सामान्य विशेषता नहीं है। इस विशेषता ने रहीम के प्रत्येक दोहे को एक सुन्दरमाला बना दिया है जिसमें छोटे शब्द हरसिंगार या मौलिश्री के फूलों की भांति अलग अलग बड़े कौशल से पिरोए गए हैं। इनमें से एक

भी पुष्प और सभी अर्थों में कलिका तक को, माला के मूल सौंदर्य के नष्ट किए बिना इधर-उधर नहीं किया जा सकता। लघु आकार के शब्दों की बहार देखिए—

खैर खून खाँसी खुसी बैर प्रीति मद पान।
रहिमन दाबे ना दबे जानत सकल जहान॥ ४७—पृ० ५
समय लाभ सम लाभ नहिं समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक॥ २५८—पृ० २५
नैन सलोने अधर मधु कहौ रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लोन पर अरु मीठे पर लोन॥ ११२—पृ० ११

सरल शब्दावली

रहीम का शब्द चयन आकार एवं लाघव की दृष्टि से ही नहीं अपितु अर्थ एवं प्रयोग की दृष्टि से भी सरल है। इधर उधर बिखरे भाव एवं उपकरण जिस प्रकार उनकी कल्पना को प्रेरित करते थे उसी प्रकार दैनिक जीवन में जन सामान्य द्वारा प्रयुक्त शब्द ही उनकी काव्य प्रतिभा को प्रदीप्त करते थे। यही कारण है कि उनके काव्य का पठन तथा समझने के लिए शब्द-कोश के पन्ने उलटने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस दृष्टि से हम रहीम को बेताज का शब्द कह सकते हैं। यहाँ भी रहीम की एक विशेषता है और वह है उनका अर्थ गौरव। रहीम सामान्य शब्द का कुछ इस प्रकार से प्रयुक्त करते हैं कि उन पर जितना विचार कीजिए उतना ही अर्थ-सौन्दर्य निखरता प्रतीत होता है। साथ ही आस्वाद रम्य से रम्यतर होता जाता है। उजेला-अँधेरा, सपूत-कपूत तन मन छाया माया दीपक दसा ओट चोट आदि सभी शब्द ऐसे सामान्य तथा सरल हैं कि बच्चे को भी उनका अर्थ जानने में कठिनाई नहीं होती किन्तु रहीम उन्हीं के प्रयोग से रस ध्वनि, अलंकार, नीति तथा गाम्भीर्य भरने में कमाल कर जाते हैं—

जो रहीम गति दीप की कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगे बढ़े अँधेरो होय॥ ७७—पृ० ८
जो रहीम मन हाथ है तो तन कहुँ किन जाहि।
जल में जो छाया परे, काया भीजति नाहिं॥ ७९—पृ० ८
जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट ओट।
समय परे ते होत है वाही पट की चोट॥ ८०—पृ० ८

आयास हीनता

रहीम की भाषा के सम्बन्ध में ऊपर जितनी भी विशेषताएँ गिनाई गई हैं वे सभी आयासहीन एवं स्वाभाविक हैं। एक शब्द के पश्चात दूसरा सरल सामान्य संक्षिप्त शब्द इस प्रकार अनायासन आता चला जाता है, जिस प्रकार किसी ऊँचे स्रोत वाले फुहारे से जल। शब्द और अर्थ की ऐसी अनायास सिद्धि सूर तुलसी नन्ददास आदि दो चार कवियों को छोड़कर अन्यों को प्राप्त नहीं। दुर्भाग्य यह रहा कि रहीम

का जीवन अन्य भमेला में उलभा रहा। यदि वे भी हिन्दी के अन्य महान कवियों की भाँति केवल भक्त, कवि या गायक रह होते तो हिन्दी काव्य वाटिका की सुषमा ही कुछ और होती। जिस प्रकार एक सूर न बन पर हिन्दी वात्सल्य भाव रस का प्राप्त हो गया है कौन जाने रहीम की लेखनी से निकले पुष्कल नीति वर्णन के लिए भी काव्य शास्त्रियों को एक पृथक नीति रस की सम्भावनाओं पर विचार करना पड़ता। परन्तु बलिहारी अकबर की बुद्धि की जिसने उनकी शक्ति का अधिक मात्रा राजनीति में विकसित कराया। जो हो यहाँ हमारा विषय भाषा की प्रयासहीनता है और उस दृष्टि से रहीम की पदावली को देखने पर उसकी सफलता असंदिग्ध है। उनकी यही प्रयासहीन भाषा सामने आते ही आबाल, वृद्ध सभी का मन मोहित कर लेती है। मानो यह कथन रहीम के लिए किया गया था कि वह कविता एवं वनिता दोनों ही व्यर्थ हैं जो अपने पद विन्यास मात्र से रसिकों के हृदय हरण में समर्थ न हो—

तया कवितया किं वा तया वनितया च किम्।
पद विन्यास मात्रेण यया नापहृतं मनः॥

रहीम परखिया, रहीम सँवरिया

रहीम की भाषा के प्रसंगानुरूप शब्द चयन मधुर ललित वर्ण योजना गतिमान प्रवाह असमस्त विन्यास लघु आकार तथा व्यावहारिक पद प्रयोग को देखकर हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि उनकी जैसी सरल सुघरी एवं अर्थगर्भित भाषा समस्त हिन्दी संसार यहाँ तक कि सूर तुलसी तक के काव्य में सर्वत्र सुलभ नहीं है। शब्द चयन की सतर्कता के सम्मुख सामान्यतः यदि कोई ठहरता है तो केवल नन्ददास। किन्तु नन्ददास भी शब्दों के लघु आकार तथा चुस्त प्रवाह का वह निर्वाह सर्वत्र नहीं कर पाए हैं जैसा कि रहीम ने नीति-काव्य में है। उनके नीति काव्य को देखकर हम निःसंकोच कह सकते हैं कि रहीम को शब्द चयन शिल्प में कमाल हासिल था। इस क्षेत्र में उनकी प्रतिभा अद्वितीय थी। अन्य कवि सायास शब्द घड़ते हैं तो नन्ददास सायास शब्द जड़ते हैं, किन्तु रहीम उन्हें निरायास ही पकड़ लेते हैं। उनकी पकड़ भी कुछ ऐसी सधी एवं सँवरी हुई है कि कविता स्वतः प्रभावशाली बन जाती है। शब्द चयन के क्षेत्र में रहीम की पकड़ तथा परख बहुत ही सँवरी हुई है। अतः हम कह सकते हैं कि—

और कवि घड़िया नन्ददास जड़िया।
रहीम परखिया, रहीम सँवरिया॥

भाषा सम्बन्धी निष्कर्ष

रहीम की भाषा के अनेकानेक गुणों को देखते हुए निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि उनकी भाषा अत्यन्त प्रौढ़ तथा सक्षम है। उन्हें ब्रज तथा अवधी दोनों पर ही समान अधिकार प्राप्त है। इसीलिए आचार्य चतुरसेन ने अपने इतिहास

में उनकी तुलना गोस्वामी तुलसीदास से की है।[1] डा० श्यामसुन्दरदास ने भी उन्हें तुलसी के समकक्ष सिद्ध किया है।[2] शुक्ल का अभिमत भी यही है।[3] अतः स्पष्ट है कि अवधी तथा व्रज दोनों भाषाओं पर रहीम का अधिकार सर्वमान्य है। खड़ी बोली के प्रयोगों की दृष्टि से भी उनके काव्य का अध्ययन उपयोगी सिद्ध होगा। इतना ही नहीं यह भी सर्वमान्य है कि उन्हें देश विदेश की अनेक भाषाओं पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था। रहीम के अतिरिक्त इतनी अधिक भाषाओं में पूर्ण अधिकार एवं लाघव के साथ कविता करने वाला कदाचित कोई अन्य कवि तत्कालीन भारत में विद्यमान नहीं था।

अभिव्यक्ति एवं अभिव्यक्ति कौशल

अपने हृदय के भावों को व्यक्त करना मानव की मूलभूत प्रवृत्ति है ठीक वैसी ही, जैसी क्षुधा और रति। क्षुधा की प्रवृत्ति ने मानव के कृषि-व्यापारादि को जन्म दिया तथा रति ने विभिन्न प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों एवं सुविधाओं वस्तुओं को। इसी प्रकार अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति से ही भाषा कला साहित्य तथा काव्य आदि की प्रेरणा प्राप्त हुई। अन्यान्य प्राणियों की तुलना में मानव की सबसे प्रमुख विशिष्टता उसकी अभिव्यक्ति क्षमता ही है। अभिव्यक्ति की ललक ने ही उसे मूर्तिकार, चित्रकार, संगीतकार तथा साहित्यकार बनाया है। साहित्य में अभिव्यक्ति एवं अभिव्यक्ति-कौशल का महत्त्व असंदिग्ध है। एक ही तथ्य एवं कथ्य को विभिन्न व्यक्ति अभिव्यक्ति कौशल की विभिन्नताओं के कारण विभिन्न प्रकार से व्यक्त करते हैं। इसीलिए उनके प्रभाव की सीमा भी भिन्न रहती है। यही कारण है कि प्रत्येक सजग साहित्यकार, अपनी अभिव्यक्ति के प्रति सजग रहा है। प्राचीन-नवीन तथा पौरस्त्य-पाश्चात्य सभी विद्वानों ने अभिव्यक्ति कौशल के सम्बन्ध में अपने अपने ढंग से विचार व्यक्त किये हैं।

भारतीय मत—रीति एवं वक्रोक्ति

साहित्य में दो ही महत्त्वपूर्ण शब्द हैं—क्या और कैसे। क्या का सम्बन्ध काव्य एवं साहित्य में वर्णित विषय से है और कैसे का वर्णन की प्रणाली से। अंग्रेजी में इन्हीं को मैटर और मैनर कहा जाता है। काव्य शास्त्रीय शब्दावली में यही भाव-पक्ष तथा कला-पक्ष है। कला पक्ष प्रधान कैसे भाव पक्ष प्रधान क्या से कुछ कम महत्त्व नहीं रखता। सच बात तो यह है कि कुछ कवि-कलाकार केवल अभिव्यक्ति कौशल के कारण ही अमर हैं। आचार्य-वामन ने तो स्पष्ट ही रीति को काव्य की आत्मा घोषित किया था—रीतिरात्मा काव्यस्य॥ रीति से उनका अभिप्राय था पदों की विशेष रचना-कौशल—विशिष्टा पद रचना रीतिः॥ स्पष्ट है कि वामनाचार्य ने क्या और कैसे में अधिक महत्त्व कैसे को प्रदान किया है।

१ हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास आचार्य चतुरसेन पृ० ८८३
२ हिन्दी साहित्य डा० श्यामसुन्दरदास (१९५२ प्रयाग) पृ० २ ?
३ हिन्दी साहित्य का इतिहास आ० रामचन्द्र शुक्ल (२४वां सं०) पृ०

रस' का योग भी उसमें हुआ। महत्त्व प्रदान करता है। सुकुमार। उन्होंने शैली को कवि की प्रतिभा के आधार पर काव्य-भेद से स्थापित कर रीति प्रकार रीति इत्यादि सभी को स्वतन्त्र भेद न विवेचन करके विचित्र कवि कर्म कौशल का महत्त्व देते हुए वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया। वक्रोक्ति की परिभाषा देते हुए उन्होंने लिखा—

'वक्रोक्तिः प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा कीदृशी? वैदग्ध्यभङ्गीभणितिः। वैदग्ध्यं विदग्धभावः कविकर्मकौशलं तस्य भङ्गी विच्छित्तिः तया भणितिः। विचित्रैवाभिधा वक्रोक्तिरित्युच्यते।'

अर्थात् प्रसिद्ध कथन से भिन्न विचित्र अभिधा अर्थात् वर्णन शैली ही वक्रोक्ति है। यह कैसी है? वैदग्ध्यपूर्ण शैली द्वारा उक्ति (ही वक्रोक्ति है)। वैदग्ध्य का अर्थ है विदग्धता—कवि कर्म-कौशल उसकी भंगिमा या शोभा (चारुता) उसके द्वारा उस पर आश्रित उक्ति। (इस प्रकार) विचित्र अभिधा (वर्णन शैली) ही वक्रोक्ति है।[1] सामान्यतया इसे अभिव्यक्ति-कौशल कहलाता है।

संस्कृत शास्त्रों में अभिव्यक्ति कौशल को ही शैली कह दिया जाता है। जिसका तात्पर्य है प्रणाली अथवा पद्धति। कुल्लूक भट्ट ने मनुस्मृति के एक श्लोक की टीका करते हुए शैली का प्रयोग इसी अर्थ में किया है—'प्रायेण आचार्याणामियं शैली स्वमतेनाभिधायविशेषणं विवक्षति।' आजकल शैली प्रायः अंग्रेजी के स्टाइल शब्द का पर्याय बन गया है।

पाश्चात्य विचारक तथा स्टाइल

पाश्चात्य विचारकों ने स्टाइल (शैली) पर विस्तार से विचार व्यक्त किए हैं। यह विचार-परम्परा निश्चित ही बहुत प्राचीन है। प्लेटो के रिपब्लिक में शैली पर विचार हुआ है। उसने शैली का सौन्दर्य सरलता में सन्निहित माना है।[2] ग्रीक ही नहीं लैटिन लेखकों का मत भी यही था। जर्मन में यह कथन प्रसिद्ध है कि मनुष्य जो कुछ भी बोलता अथवा लिखता है उसकी शैली से ही उस व्यक्ति विशेष को जाना जा सकता है।[3] वाल्टर रेले का निष्कर्ष है कि शैली में व्यक्तित्व का अंतिम प्रकटी

१ हिन्दी वक्रोक्ति जीवित—१/१० की वृत्ति प० ४१
2 Beauty of style and harmony and grace and good rhythm depends on simplicity
—Plato *The Republic Book III* 400 D
3 (a) Generally speaking an author s style is a faithful copy of his mind If you would write a lucid style let there first be light in your own mind and if you would write a grand style you aught to have a grand character —*Goethe*
(b) Style is a mans own it is a part of his nature —*Buffon*
(c) Style is only the frame to hold our thought It is like the sash of a window if heavy it will obscure the light
—*Emmons—The New Dictionary of Thought* (*New york* 1951) P 671

ण उसकी शैली ही करती है।[1] अंग्रेजी विचारकों को यही मत विशेष मान्य रहा है। ाफ्ट महोदय का यह कथन बहुमान्य है—"समुचित शब्दों का समुचित स्थान पर ोग ही शैली की सच्ची परिभाषा है।[2] किन्तु शैली का सम्बन्ध मात्र शब्द विधान सीमित कर देना अन्याय होगा। मुरे महोदय ने अपने 'शैली की समस्या' नामक मे वैयक्तिकता—निर्वैयक्तिकता तथा विशेष एवं व्यक्तिगत भावों आदि की छाया भी उत्तम शैली की कृति के लिए आवश्यक माना है। डा० श्यामसुन्दरदास जी ली की विशेषता इस बात में मानते हैं कि हम अपनी भाषा को अपने भावों चारों और कल्पनाओं को अधिकाधिक प्रभावशाली बना सकें।[3] डा० त्रिगुणायत मत में भाव पोषण एवं रस चर्वणा की दृष्टि से भी शैली का महत्त्व है। 'भावों के यक उपादान के रूप में यह रस-संचार करने में भी सहायक होती है। भाव सौन्दर्य ी सार्थकता शैलीगत सौन्दर्य पर ही निर्भर है। सुन्दर शैली के अभाव में भावों का हज सौंदर्य भी विकृत हो जाता है।"[4]

ली—एक निष्कर्ष

अतः स्पष्ट है कि शैली भावाभिव्यक्ति की रीति को कहते हैं। यह वह ाधन है जिससे कला तथा साहित्य में वर्णित भाव या विचार के प्रभाव तथा रसा-वादन में सहायता मिलती है। शैली में वैयक्तिकता का प्रश्न सर्वोपरि है। यही कारण कि शैली से व्यक्तित्व भी अभिव्यञ्जित हो जाता है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति का अभिव्यक्ति कौशल भिन्न होता है शैली पृथक होती है—अस्त्यनेको गिरा मार्ग सूक्ष्म भेद परस्परम्॥[5]

रहीम के नीति काव्य की विभिन्न शैलियाँ

जिस प्रकार विभिन्न व्यक्तियों की शैलियाँ भिन्न भिन्न होती हैं उसी प्रकार एक ही व्यक्ति भाव विचार विषय तथा परिस्थिति अनुसार विभिन्न शैलियों में अपने विचार व्यक्त करता है। कभी वह सरल एवं सामान्य शैली अपनाता है तो कभी अलङ्कृत एवं उदात्त। कहीं वह प्रश्न द्वारा अपनी बात को स्पष्ट करता है तो कहीं उदाहरण द्वारा। कहीं वह प्रत्यक्ष उपदेश दे सकता है और कहीं मात्र तथ्यों का आकलन कर सकता है। कहीं वह भाव अथवा विचार का विवरण देकर अपने को अभिव्यक्त करता है तो कहीं वस्तुओं की मात्र गणना ही उसे अभीष्ट होती है। हाँ इतना अवश्य

1 This (style) is the ultimate and enduring revelation of personality —W Releigh *Style* P 2

2 Proper words in a proper place makes the true definition of style —Jonathan Swift *The Oxford Dictionary of Quotation* (*Second Edn*) P 520

३ साहित्यालोचन डा० श्यामसुन्दरदास (१६वीं आवृत्ति) पृ० २३१

४ शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (भाग १) डा० गोविन्द त्रिगुणायत पृ० ६१

५ काव्यादर्श आचार्य दण्डी १/४०

है कि इन विभिन्नताओं में एक विशेषरूपता बनी रहती है। और उसे सहज ही पहचाना भी जा सकता है। उदाहरणार्थ यदि हम रहीम को ही लें तो ज्ञात होगा कि उक्त सभी शैलियों में रहीम ने कविता की है किन्तु फिर भी सरलता, शब्दावृत्ति तथा असमस्त शब्दावली आदि से रहीम के दोहों को हजारों में पहचाना जा सकता है।

१ सर्वाधिक प्रिय दृष्टान्त शैली

नीति काव्य के सृजन में कवियों को कुछ शैलियाँ विशेष प्रिय रही है। उपदेशात्मक, संख्यात्मक एवं वर्णनात्मक शैलियाँ ऐसी ही हैं। इनमें भी सर्वाधिक प्रिय है दृष्टान्त शैली। संस्कृत का नीति काव्य इस दृष्टि से बहुत समृद्ध है रहीम भी अपनी बात को दृष्टान्त देकर पुष्ट करने के माहिर थे। दृष्टान्त अथवा उदाहरण द्वारा अपने कथ्य को पुष्ट करने का नाम ही दृष्टान्त शैली है। अलंकार शास्त्र में इन दोनों का अस्तित्व पृथक् पृथक् है किन्तु शैली की दृष्टि से इनमें कोई तात्विक भेद नहीं। रहीम के दृष्टान्त चयन का क्षेत्र नितान्त व्यापक तथा विस्तृत है। एक ओर यह उनके विस्तृत ज्ञान का द्योतक है और दूसरी ओर सच्चे हिन्दुत्व धर्म का परिचायक। उनके अधिकांश दृष्टान्त महाभारत, रामायण, पुराण आदि के प्रसंगों पर आधृत हैं। हिन्दू ग्रंथों के अतिरिक्त दृष्टान्त चयन प्रकृति, दैनिक जीवन, अन्य प्रवृत्ति, मनोविज्ञान एवं सामान्य जन जीवन के क्षेत्रों से भी किया गया है। निम्नलिखित उदाहरणों से यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा—

प्रकृति सम्पति भरम ? (धरम) गँवाइ कै हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम ससि रहत है दिवस अकासहिं माँहि॥
२६३—पृ० २६

जीवन स्वारथ रचत रहीम सब, औगुन हू जग माँहि।
बडे बडे बैठे लखे पथ रथ कूबर छाँहि॥
२५८—पृ० २५

रामायण राम न जाते हरिन सँग सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहूँ होत आपुने हाथ॥
२३७—पृ० २३

महाभारत जो पुरुषारथ ते कबहुँ संपति मिलत रहीम।
पेट लागि वराट घर, तपत रसोई भीम॥
७१—पृ० ७

पुराण छिमा बडन को चाहिए छोटन को उत्पात।
का रहीम हरि को घट्यो जो भृगु मारी लात॥
२५५—पृ० ६

२ उपदेशात्मक शैली

धर्म के क्षेत्र में उपदेश परक छन्दों का सृजन सामान्य प्रवृत्ति है। अधिकांश सन्तों के वचन कदाचित् इसीलिए काव्य की गरिमा से मण्डित नहीं समझे जाते। नीति के क्षेत्र में उपदेशात्मक छन्दों का प्रणयन कुछ कम नहीं हुआ। अपभ्रंश भाषा के

जन कवियों की अधिकतर कृतियाँ उपदेशात्मक ही हैं।[1] नीति के काव्यत्व पर आघात करने वाला का सबसे बड़ा सहारा कदाचित यही है। परन्तु यह तथ्य प्रायः भुला दिया जाता है कि उपदेशों में भी कवि प्रतिभा द्वारा सरसता तथा कलात्मकता लाई जा सकती है। हमारे कवि की यही विशेषता है। उनकी उपदेशात्मक शैली की तीन धाराएँ हैं—विध्यात्मक अर्थात् विधि या धन रूप में ठोस क्रियात्मक संदेश देने वाली शैली, निषेधात्मक अर्थात् किन्हीं क्रियाओं के आचरण का निषेध करने वाली या ऋणात्मक शैली और तीसरी विधि निषेध दोनों का साथ साथ निर्वाह करने वाली शैली। तीनों के उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं—

रहिमन रिस को छाड़िकै, करौ गरीबी भेस।
मीठो बोलो न चलो सबै तुम्हारो देस॥ २२६—पृ० २०
रहिमन वहाँ न जाइए, जहाँ कपट को हेत।
हम तन ढारत ढेंकुली सींचत अपनो खेत॥ २३०—पृ० २३
रहिमन अनी न कीजिए गहि रहिए निज कानि॥ १६०—पृ० १६

३ तथ्य कथनात्मक शैली

किसी तथ्य को सीधे सादे ढंग से व्यक्त कर देना तथ्य कथनात्मक शैली है। नीति कथनों में अधिकांश कथन इस शैली में भी प्राप्त होते हैं। अतः यह भी नीति-काव्य की प्रमुख शैली है। इस शैली में विशेष विदग्धता अथवा वचिव्य नहीं होता। इसीलिए अधिकांश नीति काव्य को नीरस होने का अपयश भोगना पड़ा है। रहीम के नीति काव्य में तथ्य कथनात्मक शैली का बहुत अधिक उपयोग नहीं हुआ है। जहाँ हुआ भी है वहाँ कवि सहज प्रतिभा के बल पर कथनों को नितांत नीरस होने से बचा गया है—

खर खून खाँसी खुसी बैर प्रीति मदपान।
रहिमन दाबे ना दबैं जानत सकल जहान॥ ४७—पृ० ५
जे सुलगे ते बुझि गये बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के बुझि-बुझि कै सुलगाहिं॥ ६६—पृ० ७

४ वर्णनात्मक शैली

तथ्य कथनात्मक शैली का दूसरा रूप वर्णनात्मक शैली है। दोनों में अन्तर इतना है कि पहले प्रकार में कवि की आत्मा कुछ रमती प्रतीत होती है जबकि दूसरे में कवि रचिता नहीं जान पड़ता। अतः कथन फल अदायगी मात्र होने के कारण

1 वैराग्य सार के अधिकांश दोहे विशेषत: १४, ५४, ७७, ३१, ८७ तथा ७१ आदि सावधम्म दूहा के अनेक दोहे विशेषत: १०८, १२६, १३०, १३३ आदि तथा 'उपाम रमायण' के अधिकांश दोहे नीरस उपदेश ही हैं परन्तु मानवता के लिए वैराग्य का संदेश इनकी अविस्मरणीय विशेषता है।

बात प्राय नीरस ही रहती है। रहीम के नीति काव्य म इस प्रकार के दोहे बहुत अधिक नहीं हैं परन्तु हैं अवश्य—

अब रहीम मुसकिल पडी गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठ मिलै न राम॥ ६—पृ० १

५ प्रश्न शैली

प्रश्न पूछकर नीति कहने की शैली अत्यन्त प्राचीन तथा प्रसिद्ध है। संस्कृत कवियों ने इस शैली म विपुल नीति काव्य का सृजन किया है। उन्होंने कहीं तो सम्पूर्ण छन्द म केवल एक ही प्रश्न पूछा है और कहीं एकाधिक। कहीं सम्पूर्ण छन्द म प्रश्नों ही प्रश्नों द्वारा नीति निवचन किया गया है। ये प्रश्न छन्द के आरम्भ म भी हो सकते हैं अन्त म भी और बीच मे भी। प्रश्न इस प्रकार रखे जाते हैं कि वे स्वत अपना आशय व्यक्त कर देते ह। और इस प्रकार प्रश्न के माध्यम स ही कवि का लक्ष्य पूरा हो जाता है। छन्द के आदि मध्य अन्त म विन्यस्त प्रश्न शैली के क्रमश तीन दोहे निम्नलिखित हैं—

अधम बचन ते को फरयो बैठ ताड की छाँह।
रहिमन काम न आय है ये नीरस जग माँह॥ २—पृ० १
कहि रहीम धन बढ़ि घटे, जात धनिन की बात।
घट बढ़ उनको कहा घास बेचि जे खात॥ २६—पृ० २
कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू क्यो न चचला होय॥ २३—पृ० २

६ प्रश्नोत्तर शैली

जहा प्रश्न के साथ साथ उत्तर भी सन्निहित रहता है वहाँ प्रश्नोत्तर शैली होती है। हनुमन्नाटक म इस शैली का बहुत सुन्दर विनियोग हुआ है। जिज्ञासा उत्पन्न करने तथा तुरन्त ही उसका शमन प्राप्त हो जाने के कारण सामान्य पाठक की दृष्टि स यह शैली बडी उपादेय रही ह। रहीम का निम्नलिखित दोहा प्रश्नोत्तर शैली का सुन्दर उदाहरण ह—

धूर धरत निज सीस पर कहु रहीम कहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी सोई ढूढत गजराज॥ १०६—पृ० ११

७ सवाद शैली

प्रश्नोत्तर शैली की ही एक भिन्न विधा सवाद है। प्रश्नोत्तर शैली वहाँ होती है जहाँ प्रश्न करने तथा उत्तर देने वाला व्यक्ति एक ही विशेषत कवि स्वय होता है। दूसरी ओर जहा प्रश्न कोई और करता है तथा उत्तर कोई और देता है वहाँ शैली के प्रश्नोत्तरों को सवाद कहा जाता है। धार्मिक जगत म यह शैली खूब प्रचलित रही है। अनेक ऐसे ग्रथ प्राप्त होते हैं जिनम शिष्य प्रश्न करते हैं और गुरुजी उत्तर देते हैं। ऐसे ग्रथो की शैली सवाद शैली ही है। लौकिक ग्रथो म भी

इस शैली का प्रचुर प्रयोग मिलता है। नाटकों का तो आधार ही संवाद है। तुलसी और केशव के लक्ष्मण परशुराम तथा रावण अंगद संवाद प्रसिद्ध ही हैं। मुक्तक काव्यों में इस शैली के लिए कम ही अवकाश रहता है। प्रश्नोत्तर शैली के उदाहरण में प्रस्तुत 'धूर धरत' आदि दोहे के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि गोस्वामी तुलसीदास ने उक्त दोहे के प्रथम दो चरण लिखकर रहीम के पास भेजे थे और अंतिम दो चरणों की पूर्ति रहीम ने की थी। यदि यह किंवदन्ती सत्य है तो यह दोहा संवाद शैली के ही अन्तर्गत रखा जायगा।

८ तर्क शैली

जब कवि अपने किसी कथन या सिद्धान्त की पुष्टि के लिए तर्क प्रस्तुत करता है तब वहाँ तर्क शैली का विधान रहता है। खण्डन मण्डनात्मक ग्रंथों में इसी शैली का बोलबाला देखा जाता है। नैतिक सिद्धान्तों को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए इस शैली का अवलम्बन लाभप्रद सिद्ध होता है। रहीम के दोहों में भी इस पद्धति का व्यवहार देखा जा सकता है—

रहिमन भेषज के किए, काल जीत जो जात।
बड़े बड़े समरथ भए, तौ न कोउ मरि जात॥ २१३—पृ० २१
जो अनुचित कारी तिन्हैं लगे अंक परिनाम।
लखे उरज उर बेधियत, क्यों न होय मुख स्याम॥ ६८—पृ० ७

अंतिम दोहे का तर्क भी कितना मीठा है।

९ अलंकृत शैली

कवि की सौन्दर्य चेतना जब अपनी सृष्टि को सजाने के लिए शब्द और अर्थ का विशेष विधान रचती है तब वहाँ शैली अलंकृत हो जाती है। नीति जैसे उपयोगी किन्तु तथाकथित शुष्क विषय में सुरुचि प्रभाव तथा चमत्कार उत्पन्न करने के लिए अलंकृत शैली का विधान और भी आवश्यक है। यही कारण है कि समर्थ कवि अपने नीति-कथनों और नीति ही क्या सभी विषयों के लिए उपमा रूपक, दृष्टान्त यमकादि का प्रयोग करते हैं। रहीम की वाणी स्वभावतः ही अलंकृत है। विशेषता यह है कि यह अलंकरण आयासजन्य न होकर अपने सहज रूप में प्रयुक्त हुआ है। निम्नलिखित दोहे अनुप्रास, यमक तथा रूपक आदि की स्वाभाविक अकृत्रिम एवं सौम्य आभा से आभासित हैं—

ससि सँकोच साहस सलिल मान सनेह रहीम।
बढ़त-बढ़त बढ़ि जात हैं घटत घटत घटि सीम॥ २६५—पृ० २५
रहिमन अपने पेट सों बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अनखाये रहे तो सों को अनखाय॥ १६२—पृ० १६
रहिमन यह तन सूप है लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़ि जान दे गरुए राखि बटोर॥ २१६—पृ० २२

रहिमन राज सराहिए ससि सम सुखद जो होय ।
कहा बापुरो भानु है तप्यो तरयन खोय ॥ २०८—पृ० २२

१० संख्यात्मक शैली

नीति कथन के क्षेत्र में वस्तुओं की एक दो तीन चार इत्यादि संख्याएँ गिनाकर उनके गुण धर्म स्वभाव इत्यादि कहने की परम्परा पर्याप्त प्राचीन है। संस्कृत के अनेक कवियों ने यह शैली अपनाई है। संख्याओं का स्पष्ट उल्लेख होने के कारण इस शैली का यह नाम दिया गया है। मनस्वी चाणक्य ने एक स्थान पर निरन्तर सात श्लोकों में बीस तक संख्या गिनाकर विभिन्न पशुओं के गम्भीर गुणों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।[1] हिन्दी के मध्ययुगीन कवियों ने भी अनेक स्थलों पर नीति कथन में इस शैली का उपयोग किया है।[2] रहीम के कुछ दोहों में संख्यात्मक शैली देखी जा सकती है—

एक साधे सब सधे, सब साधे सब जाय ।
रहिमन मूलहि सींचिबो फूलहि फलहि अघाय ॥ १६—पृ० ३
ये रहीम फीके दुवो जानि महा सतापु ।
ज्यों तिय कुच आपन गहे आप बड़ाई आपु ॥ १५५—पृ० १४
रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहचानि ।
परबस परे परोस बस परे मामिला जानि ॥ १६१—पृ० १८
अरज गरज मान नहीं रहिमन ए जन चारि ।
रिनिया राजा मागता काम आतुरी नारि ॥ ६—पृ० २

११ परिगणनात्मक शैली

संख्यात्मक शैली से मिलती जुलती एक शैली परिगणनात्मक शैली है। इस शैली में भी दो चार छः वस्तुओं को गिनाकर उनके गुण स्वभाव आदि के सम्बन्ध में मत व्यक्त किया जाता है। अन्तर केवल इतना है कि संख्यात्मक शैली की भाँति दो चार छः आदि संख्यात्मक शब्दों का उल्लेख नहीं रहता। रहीम के भी कुछ दोहे परिगणनात्मक शैली में लिखे गए हैं—

उरग तुरग नारी नृपति नीच जाति हथियार ।
रहिमन इन्हें सँभारिए पलटत लगे न बार ॥ १८—पृ० २

---

१ चाणक्य नीति—अध्याय ६ श्लोक १६ से २२ तक।

२ राजा तिया सनार चिड़िया रोवक आग जल ।
पाँसा सापिन हार ए दस होंइ न आपन ॥ आलम — (माधवानल काम कदला)
पूत कपूत कुलच्छनि नारि लराक परोस लजावन सारो ।
बंधु कुबुद्धि पुरोहित लम्पट चाकर चोर अतीथ धुतारो ॥
साहब सूम अराक तुरंग किसान कठोर दिवान नकारो ।
ब्रह्म भनै सुनु साह अकब्बर बारहो बांध समुद्र में डारो ॥ (ब्रह्म कवि बीरबल)

यह रहीम मान नहीं दिल से नवा न होय।
चीता, चोर कमान के, नए ते अवगुन होय॥ १७८—पृ० १८

१२ अन्योक्ति शैली

अन्योक्ति का शाब्दिक अर्थ है—अन्य के प्रति कही गई उक्ति। जहाँ साधर्म्य के कारण उक्ति का विशेषार्थ प्रस्तुत वर्णित वस्तु के अतिरिक्त किसी अन्य पर घटित होता है वहाँ अन्योक्ति मानी जाती है। यह रीति कवियों की प्रिय शैली है। संस्कृत में तो इसी शैली में पूरे के पूरे ग्रंथ रचित हो चुके हैं। गणपति जगन्नाथ वीरेश्वर सोमनाथ विजयगणि नीलकण्ठ आदि अनेक कवियों ने अन्योक्ति शतक व अन्यापदेश शतक जैसे अनेक नीति ग्रंथों का प्रणयन किया है। बाबा दीनदयाल गिरि इत्यादि हिन्दी कवियों ने उसी परिपाटी का अनुसरण किया है। किन्तु हिन्दी में अन्योक्ति का इतना प्रचार रहीम के बाद की घटना है। रहीम के नीति काव्य में कुछ ही दोहों में अन्योक्ति शैली प्रयुक्त हुई है। बाज (स्वामिभक्त सेवक) से सम्बन्धित दो दोहे देखिए—

रहिमन बहरी बाज गगन चढ़े फिर क्यों गिरे।
पेट अधम के कारने, फेर आय बधन परे॥ १६३—पृ० १६
काम न काहू आवई मोल रहीम न लेइ।
बाजू टूटे बाज को साहब चारा देइ॥ ३७—पृ० ४

पान[1] स्वान (देसी)[2] तबला[3] खजूर[4] इत्यादि कतिपय अन्य विषयों पर भी रहीम ने अन्योक्तियाँ लिखी हैं।

१३ प्रतीकात्मक शैली

सश्लिष्ट एवं गहन भावों को प्रतीकों द्वारा व्यक्त करने की परम्परा आदि कालीन है। वैदिक वाङ्मय में प्रतीकों का प्रयोग अलभ्य नहीं। प्रकृति के लिए वृक्ष तथा आत्मा के लिए पक्षी के प्रतीक प्रसिद्ध ही हैं। लौकिक, संस्कृत तथा प्राकृत अपभ्रंश आदि में प्रतीकों का प्रयोग निर्विवाद है। नाथों सिद्धों तथा संतों ने अपनी योग एवं अध्यात्म विषयक चर्चा में प्रतीकों का प्रयोग खुलकर किया था। नीति काव्य में प्रतीकों का प्रयोग इतना प्रचलित तो नहीं रहा, परन्तु उसका सर्वथा अभाव भी नहीं। रहीम ने अपने नीति काव्य में यत्र-तत्र प्रतीकात्मक शैली अपनाई है। उन्होंने विपरीत स्वभाव के लिए बेर-केर मानव शरीर के लिए कागद को पूतरा (कागज का पुतला) का प्रयोग किया है। इसी प्रकार ढाक सामान्य स्थिति का चौरा कपटपूर्ण व्यवहार का मउला सच्चे प्रेम तथा चातक एकनिष्ठता का प्रतीक है। एक ही साथ अनेक प्रतीकों की योजना लीजिए—

सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीति न धीम।
पै मराल को मानसर एक ठौर रहीम॥ २५६—पृ० २८

---

१ से ४ रहीम रत्नावली दोहा सं० २० १०८ १६६ तथा २७० इत्यादि
५ मु० उपनिषद—३ १ १

१६ सम्बोधनात्मक शैली

तारायनि ससि रैन प्रति, सूर होहि ससि गैन।
तदपि अँधेरो है सखी ! पीउ न देखे नैन। ११—पृ० ७८

१७ प्रबोधनात्मक शैली

पन्नग बेलि पतिव्रता रिति सम सुनो सुजान।
हिम रहीम बेली दही सत जोजन दहियान॥ ११३—पृ० ११

१८ आत्म प्रबोधनात्मक शैली

रहिमन अपने पेट सों बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अनखाय रहे तो सों को अनखाय॥[1] १६२—पृ० १६

१९ रहस्यात्मक शैली

रहिमन बात अगम्य की कहन सुनन की नाहि।
जे जानत ते कहत नहिं कहत ते जानत नाहि॥ २११—पृ० २१

२० कूट शैली

चरन छुए मस्तक छुए तेउ नहिं छाडत पान।
हियो छुवत प्रभु छोडि दै कहु रहीम का जान॥ ५२—पृ० ६

२१ निर्णयात्मक शैली

नाद रीझि तन देत मृग नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु ते अधिक रीझहु कछु न देत॥ ११०—पृ० ११

निष्कर्ष

रहीम के नीति काव्य में प्रयुक्त विविध शैलियों का अध्ययन कर लेने के पश्चात सहज ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उन्होंने अपने नीति कथन के लिए अनेक कविजनोचित शैलियों का प्रयोग किया है। संख्या की दृष्टि से सर्वाधिक दोहे सुबोध शैली में लिखे गए हैं। यदि शैली की सुबोधता एवं सुगमता को काव्य की कसौटी मान लिया जाय तो कोटी के चार छः कवि भी सम्भवतः रहीम के सम्मुख ग्रन तक न टिक सकेंगे। किन्तु मात्र सुबोधता ही तो रहीम की शैली का गुण नहीं। सुबोधता के साथ ही स्वाभाविक अनुकरण, उक्तिवैचित्र्य शैली वैविध्य तथा सत्य और सुन्दर के साथ शिव का विचार विनियोग निश्चित ही रहीम को उत्तम शैलीकार के रूप में काव्य जगत के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। अतः निस्संकोच कहा जा सकता है कि अभिव्यक्ति-कौशल की दृष्टि से रहीम का काव्य सर्वथा प्रौढ़ पुष्ट एवं स्थापनीय है। निश्चित ही वे श्रेष्ठ शैलीकार थे।

[1] सम्बोधनात्मक शैली में किसी दूसरे का सम्बोधन किया जाता है। प्रबोधनात्मक शैली में दूसरे का सम्बोधन करने के साथ उपदेश अथवा प्रबोधन का भाव रहता है। आत्मप्रबोधनात्मक शैली में सम्बोधन आदि अपने लिए होते हैं।

६

छन्द-विधान एवं अलंकार-सौन्दर्य

छंद भारतीय वाङ्मय का अत्यन्त गौरवपूर्ण अंग है। छंद का जितना व्यवस्थित, सूक्ष्म एवं विस्तृत अध्ययन भारत में हुआ है उतना विश्व की प्राचीन अर्वाचीन किसी भी भाषा में कदाचित् आज तक नहीं हो पाया। प्राचीनता की दृष्टि से तो यह कथन और भी अधिक सत्य है। कारण छंद का प्रयोग विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में ही प्राप्त हो जाता है। कीथ, ब्लूमफील्ड तथा नित्यबन्धु शास्त्री की वैदिक पदानुक्रमणिकाओं में छंद और उसके व्याकरणिक रूपों के अनेक प्रयोग सुगमतापूर्वक देखे जा सकते हैं। छंद की बहुलता के कारण ही वैदिक भाषा को छन्दस् की संज्ञा दी गई थी। श्रौतसूत्र, निदान सूत्र, ऋक्प्रातिशाख्य तथा निरुक्त में वैदिक छंदों का सुंदर विवेचन किया गया है। वैदिक वाङ्मय में छंद का इतना महत्त्व होने के कारण ही छंद को वेदांगों में सम्मिलित किया गया है। इन वेदांगों (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छंद, ज्योतिष और व्याकरण) में सबसे पहले छंद की गणना करते हुए, पाणिनीय शिक्षा में उसे वेद के चरण की संज्ञा दी गई है—छंदः पादौ तु वेदस्य।[1]

छंद का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ

निघण्टु में 'छंद' को 'प्रसन्न करने' के अर्थ में एक पृथक् धातु ही मान लिया गया है। वैसे सामान्यतः 'छंद' शब्द की व्युत्पत्ति 'छंद' धातु से है,[2] इसका अर्थ है आच्छादित करना, आवृत करना, रक्षा करना, व्यवस्थित करना तथा प्रसन्न करना आदि। छंद का कार्य भी यही है। छंद द्वारा आच्छादित और व्यवस्थित होने पर कवि के विचार सुरक्षित, अमर, पठनीय एवं प्रसन्नताप्रद हो जाते हैं। कदाचित् इसीलिए सायणाचार्य ने कहा था—'अपमृत्युं वारयितुं माच्छादयतीति छन्दः'॥ इस प्रकार और भी बहुत से उल्लेख हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में देवताओं द्वारा मृत्यु भय के कारण अपने

१ छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुः निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥ —पा० शि०, ४१ ४२

२ निरुक्त, ७ १२

आत्मा का रूप में देख लेने का वर्णन है। छायेव सूर्याबिम्बस्य विधौ प्रतिष्ठा ॥
महामुनि यास्क का स्पष्ट कहना है कि दुर्गाचार्य ने छन्दों को यह आवरण माना है जिस
ओट पर छन्दता प्रशस्त प्राप्त करते हैं—

यदभिरात्मानमाच्छादयन् यथा सूर्याबिम्बम् तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् ॥

छंद शास्त्र का समारम्भ—शेष-गरुड़ कथा

यद्यपि आचार्यों में छन्द के रूप में सम्बन्ध का प्रवर्तन ही शौनिक सम्प्रदाय में छन्दों की विस्तृत योजना की गई होगी और आगे चलकर छन्द शास्त्र एक स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित हुआ होगा। इस शास्त्र के आदि आचार्य पिंगल माने जाते हैं उन्हीं के नाम पर पिंगल शास्त्र छन्द शास्त्र का पर्याय बन गया है। किन्तु पिंगल से पूर्व भी शेष जी द्वारा गरुड़ को छन्द शास्त्र पढ़ाया जाना प्रसिद्ध है। हिन्दी विश्वकोश में यह कथा विस्तार से वर्णित है।[1] कहते हैं कि जब एक बार शेषनाग गरुड़ जी द्वारा पकड़ लिए गए तो उन्होंने अपने खाए जाने से पूर्व अपनी विशेष विद्या (छन्द शास्त्र) को प्रकाश में लाने की इच्छा प्रकट की और विद्या दान के कारण गरुड़ को सब छन्दों का विचार बताते हुए अन्त में भुजंग प्रयाति छन्द का लक्षण बताते हुए शास्त्र चातुर्य और लाघव से अपने भागने की सूचना देकर समुद्र में निमग्न हो गए। गरुड़ जी द्वारा धोखा खाने का आरोप लगाये जाने पर शेष जी ने समुद्र में से ही (भुजंग प्रयाति-लक्षण बताने के समय) अपने द्वारा कथित पूर्व सूचना रूप वाक्य का स्मरण करा दिया—चतुर्भिर्मकारैः भुजंग प्रयातिः।[2]

पिंगल का आदि आचार्यत्व—संदिग्ध

लोक में भी यह प्रसिद्ध है कि पिंगल महोदय नाग के अवतार थे। वृत्तरत्नाकर में फनपति भाषक तथा वृत्त विचार में फनपति कहते अयान आदि नाम इसी लोक प्रसिद्धि के सूचक हैं। हमारा अनुमान है कि छन्द शास्त्र पिंगलाचार्य से भी पूर्व अव्यवस्थित रूप में विद्यमान था। नाग एक ही समय के (पिंगल पूर्व) आचार्य रहे होंगे। पिंगल द्वारा छन्द शास्त्र को व्यवस्थित रूप दिया गया होगा और उन्हीं के द्वारा अध्ययन अध्यापनादि का विशेष प्रसार एवं प्रचार होने के कारण लोक में उन्हीं की प्रसिद्धि आदि आचार्य के रूप में हो गई होगी। ऐसा अन्य प्रसंगों में भी होता है। महर्षि वाल्मीकि से भी पूर्व च्यवन ऋषि अपनी रामायण लिख चुके थे[3] परन्तु आदि कवि के रूप में वे ही प्रसिद्ध हैं। सांख्य दर्शन सम्बन्धी विचार अपने मूल रूप में महर्षि कपिल से भी प्राचीन है[4] किन्तु उन्हें व्यवस्थित रूप देने के कारण ही महर्षि

१ हिन्दी विश्वकोश—खण्ड ४ (ना० प्र० स० काशी) पृ० ३०५
२ कदाचित पाठकों को रहीम बीरबल खेल की भीम्रायम भीम्रायम घटना का स्मरण हो जाय।
३ देखिए—बी० वर्धाचार्य कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास', अश्वघोष एवं वाल्मीक प्रसंग।
४ देखिए—वाचस्पति गैरोला कृत भारतीय दर्शन, सांख्य दर्शन प्रसंग।

कपिल को सांख्य दर्शन का प्रवर्तक माना जाता है। इसी प्रकार पूर्व रूप से विद्यमान होने पर भी छन्द शास्त्र के प्रवर्तन का श्रेय आचार्य पिंगल को ही प्राप्त है।

छन्द शास्त्रीय परम्परा और हिन्दी

परवर्ती छन्द शास्त्रीय संस्कृत आचार्यों की सूची बहुत लम्बी है।[1] संस्कृत की पश्चात्वर्ती प्राकृत अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओं में भी छन्द शास्त्र के ग्रन्थ प्रणीत होते रहे हैं। यह परम्परा गुजराती, मराठी तथा हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं में भी यथावधि वर्तमान है। इन भारतीय भाषाओं में छन्द शास्त्रीय परम्परा की दृष्टि से हिन्दी परम्परा कहीं अधिक सम्पन्न है। 'हिन्दी की तरह सम्भवतः किसी भी आधुनिक भारतीय भाषा में छन्द शास्त्र का विकास नहीं हुआ।'[2]

हिन्दी के प्राचीन,[3] अर्वाचीन[4] सभी विद्वान पूर्ववर्ती संस्कृत प्राकृत आदि के आचार्यों का उल्लेख करते हुए इस क्षेत्र को परिवर्धित और परिभाषित[5] करते रहे हैं। सुखदेव मिश्र ने तो अपने ग्रन्थ 'वृत्तविचार' में फनिंद मुनि अर्थात् पिंगलाचार्य के साथ भाम और अगस्त, ऐसे दो आचार्यों का उल्लेख किया है[6], जिनके नाम सामान्यतया अन्यत्र देखने सुनने में नहीं आते। हाँ अत्याधुनिक काल में आकर छन्द का महत्व समाप्त होता जा रहा है। और यदि यही प्रगति रही तो हिन्दी में छन्द तथा छन्द शास्त्र केवल पुरातत्वीय अथवा परीक्षोपयोगी विषय ही रह जायगा। क्रियात्मक काव्य प्रणयन में छन्द का नितान्त बहिष्कार होना असंभव नहीं परन्तु यह एक दुर्भाग्यपूर्ण प्रतिवाद के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा।

रहीम की दृष्टि से छन्द और विशेषतः बरवै का महत्त्व

आज की स्थिति चाहे जो हो परन्तु रहीम के समय में छन्दों का महत्व असंदिग्ध था। छन्द रहित कविता की कल्पना भी उस युग में नहीं की जा सकती थी।

---

१ देखिए—हिन्दी विश्वकोष (ना० प्र० सभा काशी) खण्ड ४ [illegible] छन्दशास्त्र प्रसंग।

२ हिन्दी साहित्य कोश (ना० म० वाराणसी) भाग १—पृ० २६३

३ प्राकृत भाषा संस्कृत लखि बहु छन्दो ग्रंथ।
दास कियो छन्दार्णव भाषा रचि शुभ ग्रंथ॥ छन्दार्णव ७

४ इस ग्रंथ को हमने श्रीयुत भट्ट हलायुध के सटीक प्राचीन संस्कृत छन्द शास्त्र श्रुतबोध, वृत्तरत्नाकर, छन्दोमंजरी वृत्तदीपिका छन्दसार संग्रह इत्यादि ग्रन्थों के आधार से बनाया है —जगन्नाथ प्रसाद भानु छन्द प्रभाकर (भूमिका)

५ किसी रचना के प्रत्येक पद में मात्राओं अथवा वर्णों की नियत संख्या, क्रम योजना एवं यति के विशेष विधान पर आधारित नियम को 'छन्द' कहते हैं।
—डा० ओमप्रकाश शास्त्री काव्यालोचन, पृ० २८८

६ वेद अंग है छन्द ताते पढ़ियत प्रात नित।
भाषत कवि कुल चन्द भाम अगस्त फनिंद मुनि॥ व० वि० ।

रहीम ने स्वत अपनी बहुविध छन्द रचना का उल्लेख किया है। इतना ही नहीं उन्हें काव्य के लिए सर्वथा नवीन छन्द बरवै को जन्म देने का श्रेय भी प्राप्त है। अत स्पष्ट है कि रहीम काव्य प्रणयन के लिए छन्द को अत्यन्त आवश्यक उपकरण मानते थे। भक्ति के उस युग में रीति विषयक नायिका भेद की स्वाविष्कृत सर्वथा नवीन छन्द बरवै में रचना करना रहीम की आचार्यत्व क्षमता का प्रमाण है। बरवै नायिका भेद के प्रारम्भ में उन्होंने बरवै के महत्व का बखान स्वयं किया है —

कवित कह्यो दोहा कह्यो तुल न छप्पय छन्द।
विरच्यो यही विचारि कै, यह बरवा रस कंद ॥१॥
बेधक अनियारो बड़ो, समुझें चतुर सुजान।
सुनत जात चित्त चाव पै यह बरवै के बान ॥२॥

१ बरवै-लक्षण और रहीम के बरवै

छन्दों को विशेषत, वैदिक और लौकिक दो प्रधान वर्गों में विभाजित किया जाता है। लौकिक छन्दों के भी पुन दो भेद हैं—मात्रिक छन्द और वार्णिक छन्द। मात्रिक छन्द तीन वर्गों में विभाजित है—सम मात्रिक अर्ध सममात्रिक और विषम मात्रिक। बरवै अर्द्ध सममात्रिक छन्द है। अर्धसम का अर्थ है—जिसके चारों चरण न पूर्णत विषम हों और न पूर्णत सम। सममात्रा तथा विषम मात्रा दोनों के समन्वय से इस छन्द का निर्माण किया गया है।

सभी जानते हैं कि बरवै छन्द के आदि जनक रहीम हैं। अत प्राचीन संस्कृत पिंगल शास्त्र में इसके लक्षण का प्रश्न ही नहीं उठता। हिन्दी में भी रहीम पूर्व इसके अस्तित्व की विद्यमानता न होने के कारण किसी प्रकार का लक्षण निर्माण असंभव था। परवर्ती आचार्यों ने बरवै के लक्षण अवश्य लिखे हैं—विषम बारह बरवै सम बिन जात अर्थात् बरवै के विषम (१ और ३) चरणों में बारह बारह तथा सम (२ और ४) चरणों में सात-सात (निन) मात्राएँ होती हैं और अन्त में जगण (। ऽ ।) आता है। वैसे तो इस नियम के अपवाद भी हैं किन्तु सामान्यतया यही क्रम उचित बैठता है—उदाहरणार्थ बरवै नायिका भेद का प्रथम दोहा प्रस्तुत है—

ऽ ऽ । । । । ऽ । । । । ऽ ।
बंदौं देवि सरदवा, पद कर जोरि।
। । । । ऽ । । । । । । ऽ ।
बरनत काव्य बरवा, लगइ न खोरि ॥

इसी काव्य का अन्तिम बरवै भी देखिए—

। । । । । । । । ऽ । । । । ऽ ।
बिहँसत भौंहं चढ़ाय धनुष मनोज ॥[1]

[1] तुलनीय—भृकुटी कुलत सावन सखी, कर चलाय मुसकाय।
गाढ़ें गहे उरोज पिय बिहँसी भौंह चढ़ाय ॥ —मतिराम

।। ।। ।।।। ऽ ।ऽ।
लावत उर उपटनवा ऐंठि उरोज। ११६

रहीम अन्यतम प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे प्रशासकत्व, सेनानायकत्व तथा वीरत्व के साथ ही कवित्व प्रतिभा का समावेश कुछ कम विचित्र बात नहीं। कवित्व के साथ आचार्यत्व और शास्त्रकार के गुण भी उनके व्यक्तित्व में विद्यमान थे। काश उनका अवसर मिला होता। बरवै छन्द का निर्माण तो अपने में महत्वपूर्ण है ही, साथ ही हिन्दी से सर्वथा भिन्न फारसी भाषा में बरवै छन्दों का सर्जन, शैली की दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है। मात्रादि की पूर्ण शुद्धि के साथ उन्होंने कतिपय बरवै फारसी में भी लिखे हैं। उदाहरणार्थ दो बरवै लीजिए—

दिलबर जद बर जिगरम तीर निगाह।
तपीदा जां मी आयद, हरदम आह॥ ६५—पृ० ७१
क गोयम अहवालम पेश निगार।
तनहा नजर न आयद, दिल लाचार॥ ६६—पृ० ७१

२ मालिनी और रहीम

संस्कृत कवियों को कतिपय छन्द अपेक्षाकृत अधिक प्रिय थे। मालिनी छन्द उन्हीं छन्दों में से है। पिंगलाचार्य ने इस समवृत्त वार्णिक छन्द का लक्षण—मालिनी ना म्यौ य (७ १८) दिया है। तात्पर्य यह है कि नगण न य-य—से मालिनी बनती है। बाद में ८ ७ वर्णों का नियम विकसित हुआ। भरत ने इसी को 'नान्दीमुख' की संज्ञा दी थी।[1] हिन्दी में इस छन्द का विशुद्ध प्रयोग करने वाले कवि इने गिने ही हैं। रहीम ने नीति ग्रन्थ में तो इस छन्द का प्रयोग नहीं किया हां उनका मदनाष्टक मालिनी में ही रचित है—

न न म य य
।।। ।।। ऽऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ
शरद निशि निशीथे चांद की रोशनाई।
सघन बन निकुंजे कान्ह बंशी बजाई॥
रति पति सुत निद्रा साइयां छोड़ भागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥ म०॥

३ सवैया और रहीम

सवैया ब्रज भाषा का अत्यन्त लाड़ला छन्द है। सवैया के धनी रसखान के सवैये वस्तुतः रस की खान ही हैं। तुलसी की कवितावली के सवैये भी बड़े टकसाली हैं। इस छन्द में २२ से २६ वर्णों तक का विधान है। आकृति (२२ वर्ण) विकृति (२३) वर्ण) संस्कृति (२४ वर्ण) अतिकृति (२५ वर्ण) एवं उत्कृति (२६ वर्ण) के सभी वृत्तों को सवैया की संज्ञा दी जाती है। यह एक लयमूलक छन्द है। मध्य युग में रसा शृ

[1] नाट्य शास्त्र १५ ७३

तथा भक्ति के लिए सवैय के एक से एक सुन्दर प्रयोग उपलब्ध हैं। रहीम के सवैयों में भक्ति और शृंगार के साथ नीति विषयक सवैये भी देखे जा सकते हैं। वर्णक्रम एवं वर्ण संख्या के अनुसार सवैये के अनेक भेद हो सकते हैं। इन में प्रायः छः अधिक प्रसिद्ध हैं। इन छः में भी विशेष प्रयोग चार का ही होता है। रहीम के काव्य से चारों प्रकार के सवैया के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(क) मत्तगयन्द सवैया

विकृति जाति का २३ वर्णों के प्रत्येक चरण वाला वह छन्द जिसमें वर्ण सात भगण तथा दो गुरु के क्रम से विन्यस्त रहते हैं मत्तगयन्द कहलाता है। भाग्य के महत्व का परिचायक रहीम का निम्नलिखित सवैया मत्तगयन्द ही है—

भ भ भ भ भ भ भ गुरु

ऽ।। ।।ऽ।। ।। ।।ऽ।। ।। ऽ

दीन चहैं करतार जिन्हें सुख सो तो रहीम टरे नहिं टारे।
उद्यम पौरुष कीने बिना धन आवत आपुहिं हाथ पसारे॥
दैव हँसे अपनो अपना बिधि के परपंच न जात बिचारे।
बेटा भयो वसुदेव के धाम औ दुंदभि बाजत नंद के द्वारे॥[1]

मत्तगयन्द का एक अन्य उदाहरण दीजिए—

भ भ भ भ भ भ भ गुरु

।। ।। ।। ।। ।। ।। ।।

जानि हुती मनि मोहन में मन मोहन का नहि के ललचानो।
नागरि नारि नई ब्रज की उनहूँ नंदलाल को रीझिबो जानो॥
जानि अनेक निरखि चितै तब भाय रहीम यहै उर आनो।
ज्यों कमनैत दमानक में फिरि तीर सों मारि लै जात निसानो॥[2]

(ख) सुन्दरी सवैया

[illegible] सवैया [illegible] वर्णों का आकृति जाति का वह छन्द है जिसके चरणों में [illegible] [illegible] जाते हैं। [illegible] माधवी नाम भी दिया है। [illegible] रहीम का सुन्दरी सवैया प्रस्तुत है—

स स स स स स स स

।। ।। ।। ।। ।। ।। ।। ।।

पुतरी अतुरीन कहूँ मिलि कै लगि लागि गयो कहुँ काहु करैटो।
हिरदै दहिबे सहिबे ही को है कहिबे को कहा कछु है गहि फेटो॥

---

१ [illegible] रहीम रत्नावली पृ० [illegible]

सूधे चितै नन हाहा करें हू रहीम सु तो दुख जात न मेटो।
ऐसे कठोर सो औ चित चोर सों कौन सी हाय घरी भइ भेंटो ॥[1]

(ग) किरीट सवैया

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में वर्ण आठ भगण के क्रम से रखे गए हों, वह किरीट सवैया कहलाता है। जानकी जीवन को जन ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाचत औरहि इत्यादि कवितावली (७, २६) का प्रसिद्ध सवैया किरीट ही है। कवि रसखान का सर्वप्रसिद्ध सवैया—मानुष हौं तु वही रसखानि—इत्यादि भी किरीट सवैये का सुन्दर उदाहरण है। लाज और मौन की उमंग भरी कचोट का प्रत्यक्ष रहीम की किरीट सवैया लीजिए—

भ भ भ भ भ भ भ भ
S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I
सौंहिह ऐसो रहीम कहा इन नैन अनोखे धु नेह कि नाधन।
ओट भये रहते न बने कहते न बने बिरहानल राधन ॥
पुंयन प्यारे सों भेंट भई सुख मौन कुसंग मिलो अपराधन।
स्याम सुधानिधि आनन को मरिये सखि सूधे चितवे को साधन ॥[2]

(घ) दुर्मिल सवैया

यह सस्क्त जाति का वह छन्द है जिसके प्रत्येक चरण में आठ सगण होते हैं। जानकी प्रवास प्रसंग पर आधारित भाग्य की प्रबलता का वर्णन रहीम ने दुर्मिल सवैये में किया है। अन्तिम पंक्ति की शब्दक्रीडा भी ध्यान देने योग्य है। ऐसी मायासमाधता रहीम के काव्य में अन्यत्र कदाचित ही मिले। सवैया इस प्रकार है—

स स स स स स स स
I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S
जिहि कारन बार न लाये कछू गहि संभु-सरासन दोय किया।
गये गेहहिं त्यागि के ताहि समै सु निकारि पिता बनवास दिया ॥
कहे बीच रहीम रह्यो न कछू जिन कीनो हुतो उन हार हिया।
बिधि यों न सिया रसवार सिया कर बार सिया पिय सार सिया ॥[3]

३ घनाक्षरी और रहीम

कवित्त, मनहरण अथवा घनाक्षरी हिन्दी के मुक्तक वार्णिक छन्दों में सर्वाधिकप्रिय छन्द है। प्रसिद्धि की दृष्टि से यह सवैये के समान ही है। अपने आकार के कारण रस प्रपंच की पूर्ण सामग्री को एक ही स्थान पर उपस्थित कर देने में अत्यन्त

१ से ३ रहीम रत्नावली क्रमशः पृ० ७७, ७८

समर्थ है। यही कारण है कि रौद्र, वीर, वीभत्स तथा शृंगार आदि प्राय सभी रसों के लिए इस छन्द का प्रयोग सफलतापूर्वक किया गया है। गेयता की दृष्टि से भी यह उपयोगी है। अन्त में गुरु ठीक रहता है। वर्णों का गुरु-लघु स्थिति के किसी नियम विशेष में आबद्ध न होने के कारण इसका प्रयोग बड़ी सुगमता एवं सरलता से किया जाता रहा है। घनाक्षरी ब्रज भाषा का अपना छन्द है। सूर में सूर-सागर प्रयोग प्राप्त नहीं होते। किन्तु सूर और उनके समसामयिक तथा परवर्ती कवियों में अद्वितीय द्रुत गति से प्रसिद्ध हुआ है। सूफियों और सन्तों को छोड़कर प्राय अधिकांश भक्तिकालीन कवियों ने घनाक्षरियाँ लिखी हैं। रीतिकाल में तो इसका प्रचलन और भी अधिक हो गया था। भारतेन्दु, रत्नाकर, हरिऔध, गुप्त तथा सनेही प्रभृति अनेक स्वनामधन्य बड़े-बड़े कवियों ने इस छन्द को सहर्ष अपनाया है। सारांश यह है कि— यह हिन्दी का राष्ट्रीय छन्द माना जा सकता है।[1]

गठन की दृष्टि से इसे मुक्तक छन्द का एक भेद माना गया है। इसके प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण, १६, १५ पर यति तथा अन्त में गुरु रहता है। रहीम की सामान्य प्रवृत्ति इतने बड़े छन्दों की ओर नहीं थी किन्तु वे [illegible] थे। अपने काव्य कानन को घनाक्षरी की सानन्द वर्षा से वंचित क्या रखते। शृंगार, भक्ति तथा नीति में प्रत्येक विषय से सम्बद्ध एक-एक घनाक्षरी प्रस्तुत है—

(क) शृंगार घनाक्षरी

अति अनियारे मानो सान दे सुधारे महा
बिष के बिषारे ये करत परघात हैं।
ऐसे अपराधी देख अगम अगाधी यहै
साधना जो साधी हरि हिय में अन्हात हैं।
बार बार बोरे याते लाल लाल डोर भये
तोहू तो रहीम थोरे बिधि ना सकात हैं।
घाइक घनेरे दुख दाइक हैं मेरे नित
नैन बान तेरे उर बेधि बेधि जात हैं।[2]

(ख) भक्ति घनाक्षरी

पट चाहे तन पेट चाहत छदन मन
चाहत है धन जेती संपदा सराहिबो।
तेरोई कहाय के रहीम कहै दीनबंधु
आपनी बिपत्ति जाय काके द्वार काहिबो।
पेट भर खायो चाहे उद्यम बनायो चाहे
कुटुम जियायो चाहे काढ़ि गुन लाहिबो।

१ हिन्दी साहित्य कोश भाग १—पृ० ३८
२ रहीम रत्नावली पृ० ७७

जीविका हमारो जो प औरन के कर डारो,
ब्रज के विहारी तो तिहारी कहा साहिबो ।[1]

(ग) नीति घनाक्षरी

बडेन सों जान पहिचान क रहीम काह,
जो प करतार ही न सुख देनहार है ।
सीतहर सूरज सों नेह कियो यही हेत
ताऊ प कमल जारि डारत तुषार है ।
क्षीर निधि माँहि धस्यो नकर के सीस बस्यो
तऊ ना कलक नस्यो ससि मे सदा रहे ।
बडो रिझवार है, चकोर दरवार है,
कलानिधि सो यार तऊ चाखत अँगार है ॥[2]

४ पद

भक्ति युगीन काव्य धारा म पद का स्थान नितान्त महत्वपूर्ण है। कृष्ण भक्ति धारा क अधिकांश कवियो न पदो का प्रयोग बहुत अधिक मात्रा म किया है। विद्यापति सूर अष्टछाप के अन्य कवि तथा मीरा इत्यादि का काव्य पदो के आधार पर ही निर्मित है। राम भक्ति धारा क कवियो न भी पदो की रचना की है। तुलसी की गीतावली तथा विनय पत्रिका म उत्कृष्टतम पद देखे जा सकते हैं। सिद्ध नाथा तथा सन्तो म भी पद शैली का प्रचुर प्रयोग रहा है। ज्ञानगीता म भी पद का परिपाटी अक्षुण्ण है। पद किसी छन्द विशेष का नाम न होकर गेय शैली विशेष का नाम है जिसका मुख्य आधार उसकी प्रथम पक्ति अथवा टेक होती है। वतमान प्रसग म रहीम के केवल दो ही पद प्राप्त होते हैं। ये दोनो पद रहीम की भजन प्रतिभा के प्रत्यक्ष परिचायक है। इन्ह पढकर भान होता है कि रहीम यदि केवल पद ही लिखत तो निश्चित ही व सूर-तुलसी स कम सफल न होते। प्राप्त दोनो पद समुद्धृत हैं—

छबि आवन मोहन लाल की।
काछे काछनि कलित मुरली कर पीत पिछौरी साल की ॥
बक तिलक केसर को कीने दुति मानो बिधु बाल की।
बिसरत नाहि सखी मो मन ते चितवनि नयन बिसाल की ॥
नीकी हँसनि अधर सधरनि की छबि छीनी सुमन गुलाल की।
जल सो डारि दियो पुरइन पर डोलनि बोलनि मुकुता माल की।
आप मोल बिन मोलनि डोलनि बोलनि मदन-गोपाल की।
यह सरूप निरख सोई जान इस रहीम क हाल की ॥[3]

१ स ३ रहीम रत्नावली पृ० ३४ ३६

कमल दल नैननि की उनमानि ।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते मंद मंद मुसुकानि ॥
यह दसननि दुति चपला हू ते महा चपल चमकानि ।
बसुधा की बस करी मधुरता सुधा पगी बतरानि ॥
चढ़ी रहे चित उर बिसाल की मुकुतमाल थहरानि ।
नृत्य समय पीताम्बर हू की फहरि फहरि फहरानि ॥
अनुदिन श्री वृन्दावन ब्रज ते आवन आवन जानि ।
अब रहीम चित ते न टरति है सकल स्याम की बानि ॥[1]

५ छप्पय

यह विषम मात्रिक छन्द है। और जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है छः पद से युक्त होता है। यह एक संयुक्त छन्द है जो रोला (११ + १३) तथा उल्लाला (१५ + १३) के योग से बना है। छप्पय में पहले चार चरण रोला के तथा अन्तिम दो चरण उल्लाला के होते हैं। प्रथम चार चरणों में लय का चढ़ाव तथा अन्तिम दो में उतार रहता है। यही कारण है कि यह वीर रस के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। अपभ्रंश काल तथा आदि काल में अधिक प्रचलित रहने का कारण भी यही है। भूषण सूदन तथा पद्माकर इत्यादि ने इसका पर्याप्त प्रयोग किया है। तुलसीदास जी ने भक्ति के लिए भी इसे प्रयुक्त किया था। रहीम ने स्वयं नायिका भेद के प्रारम्भ में छप्पय लिखने का उल्लेख किया है—कविन कह्यो दोहा कह्यो तुम न छप्पय छन्द। किन्तु खेद है कि उनके लिखे छप्पय प्राप्त नहीं होते। उनका केवल एक छप्पय रहिमन विलास तथा रहीम रत्नावली (पृ० ८२) में प्रकाशित है और यह भी रहीम के अपने ही श्लोक का अनुवाद है। रहीम ने इसका पद्यानुवाद भी किया है। प्रस्तुत छप्पय इस प्रकार है—

कबहुँक खग मृग मीन कबहुँ मरकट तन धरि कै ।
कबहुँक सुर नर असुर-नाग मय आकृति करि कै ॥
नटवत लख चौरासि स्वांग धरि धरि मैं आयो ।
हे त्रिभुवन के नाथ रीझ को कछू न पायो ॥
जो हो प्रसन्न तो देहु अब मुकति दान माँगहुँ बिहँसि ।
जो पै उदास तो कहहु इमि मत धरु रे नर ! स्वांग अस ॥[1]

रहि० वि० पृ० ७३ ॥

---

१ आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्ण या भूमिका ।
व्योमाकाश खखाम्बराब्धिवसुवत् त्वत्प्रीतयेऽद्यावधि ॥
प्रीतिस्तव यदि चेन्निरीक्ष भगवन् स्वप्रार्थितं देहि मे ।
नोचेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वतादृशी भूमिका ॥ रहीम रत्ना०, पृ० ८१

यह भाव अन्य कवियों का भी बहुत पसन्द आया
तथा एक अज्ञात कवि के छप्पय प्राप्य भी हैं।[२]

६ सोरठा

सोरठा अर्द्ध सम मात्रिक छन्द है। इसके प्रथम और तृतीय अर्थात सम चरणों में ११—११ तथा द्वितीय एवं चतुर्थ अर्थात विषम चरणों में १३—१३ मात्राएँ होती हैं विषम चरणों के अन्त में लघु रहता है और सम चरणों के आदि में जगण (।ऽ।) नहीं आता। सामान्यतः पहले तीसरे चरण में ही तुक मिलती है, दूसरे और चौथे में नहीं। ऐसे भी सोरठे देखने में आते हैं जिनके चारों चरण तुकान्त होते हैं।[३] परन्तु यह अपवाद ही समझना चाहिए। सामान्यतः सभी ने इस दोहे का उल्टा छन्द स्वीकार किया है। प्राकृत पैंगलम् में सोरठे के साथ अप सोरठा एवं सौराष्ट्र का और उल्लेख है। इसे भी दोहे का विपरीत कहा गया है।[४] प्राकृत पैंगलम में सोरठे का उल्लेख इसकी प्राचीनता का प्रमाण है। इतना ही नहीं स्वयंभू की रामायण[५] सिद्धों के काव्य तथा नाथों की वाणियों[६] में सोरठे के फुटकर रूप कहीं कहीं प्राप्त होते रहे हैं। हिन्दी में तो चन्द्रबरदाई[७] केवल दो स्थानों पर जायसी[८] कबीर[९] सूर[१०] तुलसी[११], बिहारी[१२] भारतेन्दु[१३] मैथिलीशरण गुप्त[१४] तथा प्रसाद[१५] आदि सभी प्राचीन नवीन कवियों ने सोरठा की रचना की है।

१ रहीम रत्नावली पृ० ८१—पाद टिप्पणि
२ वही पृ० ७६
३ लिखकर लोहित लेख डूब गया है दिन अहा।
व्योम सिंधु में सखि देख तारक बुद बुद दे रहा। — साकेत
४ प्राकृत पैंगलम १ १७०
५ हिन्दी काव्यधारा—राहुल सांकृत्यायन पृ० ११८
६ हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास भाग—१ (ना० प्र० स० वाराणसी) डा० भोलाशंकर व्यास का लेख पृ० ३६२
७ गोरखबानी डा० बड़थ्वाल—पृ० १७६
८ चन्द्रबरदाई और उनका काव्य डा० त्रिवेदी पृ० २४१
९ अखरावट में दोहे सोरठे एक के बाद एक के क्रम से हैं।
१० कबीर ग्रन्थावली —डा० श्यामसुन्दरदास (साखी) २० ८ २८ ३०
११ सूरसागर—स० आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी पद स० ३८४८
१२ रामचरितमानस प्रारम्भिक वन्दना प्रसंग तथा दोहावली ...
१३ बिहारी—डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (चतु० स०)
२०४ २०७
१४ मुद्राराक्षस द्वितीय अंक
१५ साकेत नवम सर्ग
१६ काननकुसुम (चित्रकूट)

खेद का विषय है कि अन्य छन्दों विशेषतः दोहा अथवा आदि अन्य छन्दों के अनुपात में सोरठे का प्रयोग हिन्दी में बहुत ही कम है। इतना ही नहीं शास्त्रकार दोहे का लक्षण कहने के उपरान्त सोरठे के सम्बन्ध में काफी कुछ लिखने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं करते। उदाहरण के लिए रत्नाकर जी ने 'कविवर बिहारी' नामक ग्रंथ में दोहे का बहुत ही सूक्ष्म और सारगर्भित विवेचन किया है। उन्होंने भ्रमर, भ्रामर, शरभ, श्येन, मंडूक, मर्कट, करभ और नर इत्यादि १ प्रकार के दोहों का जाति में वर्गबद्ध किया है। वर्ण क्रम की दृष्टि से तो भेद के २२ २४ ६७ ४६ रूपों की गणित सङ्कलित चर्चा लगभग बारह पृष्ठों में की है[1] किन्तु बेचारे सोरठे पर चार पंक्तियाँ भी नहीं लिखी गई। कदाचित इसका कारण भी यही है कि बिहारी के मात्र सौ में [illegible] दोहा की सतसई में सोरठों की संख्या मान से अधिक नहीं है। हिन्दी में चाहे इस छन्द का प्रयोग उतना अधिक न हुआ हो किन्तु हिन्दीतर भाषाओं में सोरठा बहुत अधिक प्रचलित रहा है। सच पूछिए तो सोरठा मूलतः दोहे का उलटा करके पढ़ने की सौराष्ट्र देश की एक विधि मात्र थी। इस सम्बन्ध में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद का निम्नलिखित कथन उद्धरणीय है—

दोहे को विपर्यस्त करके सौराष्ट्र देश में विशेष प्रकार की पद्धति प्रचलित हुई। और उसका नाम सोरठा पड़ गया। यह नाम ही बतला देता है कि इस प्रकार की शैली का मूल स्थान कहाँ था। वैसे ही जैसे सोरठा राग अपने मूल स्थान का पता देता है।[2]

सोरठे का सम्बन्ध सौराष्ट्र से हो या न हो हमारे चरितनायक का सम्बन्ध सौराष्ट्र, गुजरात, अहमदाबाद तथा समस्त दक्षिण से बराबर रहा है। सोरठे का प्रयोग भी उनके काव्य में हिन्दी के अनेक कवियों से अधिक है। कहते हैं कि उन्होंने एक पृथक ग्रंथ 'शृंगार सोरठ' की रचना की था। आज उनके शृंगार सम्बन्धी कुछ ही सोरठे प्राप्त हैं। शृंगार के छः सोरठे रहीम रत्नावली में प्रकाशित हैं—

।ऽ   । ।।   । ऽ।   ।   । ।।
गई आगि उर लाय आगि लेन आई जो तिय।
लागी नहीं बुझाय भभकि भभकि बरि बरि उठै ॥ ॥१॥
तुरुक गुरुक भरिपूर डूबि डूबि सुर गुर उठै।
चातक जातक दूरि देह दहै बिन देह को ॥२॥
दीपक दिए छिपाय नवल बधू घर लै चली।
कर बिहीन पछिताय कुच लखि जिन सीसै धुनै ॥३॥
पलटि चली मुसकाय दुति रहीम उपजाय अति।
बाती सी उसकाय, मानो दीनी दीप की ॥४॥

---

१ कविवर बिहारी—जगन्नाथदास रत्नाकर (प्र० सं०) पृ० [illegible]

२ हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग २)—आ० विश्वनाथप्रसाद मिश्र पृ० ७६६

३ जो पर अधिक बल न होने कारण मात्रा ह्रस्व (जु) है।

यक नाहीं यकपीर हिय रहीम होती रहै।
काहू न भई सरीर रीति न वेदन एक सी ॥५॥
रहिमन पुतरी स्याम मनहुँ जलज मधुकर लस।
कैधौं सालिग्राम रूपे के अरघा धरे ॥६॥[1]

लगभग इतने ही सोरठे नीति सम्बन्धी भी हैं—

ओछे को सतसंग रहिमन तजहु अँगार ज्यों।
तातो जारे अंग सीरे पै कारो लगै ॥२७१॥
रहिमन मोहिं न सुहाय अमी पियावै मान बिनु।
जिनके अगनित मीत हमैं गरीबन को गनै ॥२७२॥
रहिमन जग की रीति मैं देख्यो रस ऊख मे।
ताहू मे परतीति जहाँ गाँठ तँह रस नहीं ॥२७३॥
रहिमन नीर पखान बूड़ै पै सीझै नहीं।
तैसे मूरख ज्ञान बूझै पै सूझै नहीं ॥२७४॥
रहिमन बहरी बाज गगन चढ़ै फिर क्यों तिरै।
पेट अधम के काज, फेर आय बंधन परै ॥२७५॥
रहिमन मोहि न सुहाय अमी पियावै मान बिनु।
बरु विष देय बुलाय मान सहित मरिबो भलो ॥२७६॥
सिंधु भी सिंधु समान को अचरज कासों कहै।
हेरनहार हेरान, रहिमन अपने आपते ॥२७७॥

इन सोरठों के अतिरिक्त बाबू ब्रजरत्नदास ने 'रहिमन विलास' में दो सोरठे और दिए हैं—

रहिमन मन की भूल सेवा करत करील की।
इन ते चाहत फूल जिन डारन पत्ता नहीं ॥ रहि० वि०—पृ० २८
चूल्हा दीन्हो बार नात रह्यो सो जरिगयो।
रहिमन उतरे पार भार झोंकि सब भार में ॥ रहि० वि०—पृ० २८

७ दोहा इतिवृत्त और विशेषता

अर्ध-सममात्रिक छन्दों में दोहे का स्थान सर्वप्रमुख है। अर्ध सममात्रिक ही नहीं अपितु हिन्दी के सम्पूर्ण छन्दों को एक स्थान पर एकत्रित कर लिया जाय तो सम्भवतः दोहों की कुल संख्या हिन्दी में प्रयुक्त किसी भी छन्द से अधिक सिद्ध होगी। कहते हैं कि—'दोहा ही वह प्रथम छन्द है जिसमें तुक का (सर्वप्रथम) उपयोग हुआ। दोहे के अनुकरण से ही शायद अन्य अपभ्रंश छन्दों में तुक का प्रयोग (आरम्भ)

---

१ रहीम रत्नावली पृ० ८०
२ वही पृ० २६ २७

हुआ।[1] दोहे का आरम्भ कब से हुआ यह तो कहा नहीं जा सकता किन्तु इतना अनुमान है कि १५०० वर्ष से कम की आयु नहीं है। विक्रमोर्वशी[2] में प्राप्त दोहे को यदि प्रक्षिप्त न माना जाय तब तो दोहे का अस्तित्व कालिदास से प्राचीनतर सिद्ध होगा। इतना तो निश्चित है कि दोहा अपभ्रंश में ही नहीं प्राकृत में भी था। प्रबन्ध चिन्तामणि का निम्नलिखित दोहा इस कथन का प्रमाण है—

पहल्ला ताव न अनुसरह, गोरी मुहकमलस्स।
अदिट्ठो पुनि उन्नमई पडिपयली चन्दस्स॥[3]

डा० धर्मवीर भारती का कथन है कि — प्राकृत अपभ्रंश साहित्य में दोहा छन्द की परम्परा सम्भवतः सबसे प्राचीन और सब से अधिक व्यापक है।[4] अपभ्रंश में तो दोहे की व्यापकता एवं महत्ता निर्विवाद ही सर्वमान्य है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने दोहे को अपभ्रंश का अत्यन्त लाडला छन्द माना है।[5] आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के अनुसार 'श्लोक कहने से संस्कृत की रचना का बोध मिलता है और गाथा कहने से प्राकृत का, वैसे ही 'दूहा' (दोहा) कहने से अपभ्रंश का।[6] तत्कालीन कवियों ने दोहे का गुणगान भी किया है। सिद्ध सरहपा (९वीं शती) ने स्वयं आमुख से कहा था—

णउ णउ दोहाछन्दे कहवि ण किम्पि गोप्य।

अपभ्रंश के परवर्ती विद्वान एवं कवि यत्र तत्र दोहे का गुण गान करते रहे हैं। इतना होने पर भी दोहे का स्वरूप शताब्दियों तक निश्चित न हो पाया था। गार्सां द तासी महोदय ने दूह या दोहे को मुसलमानी कविता का छन्द बता दिया है। परन्तु यह कथन ऐतिहासिकता तथा तुलनात्मक दृष्टि से भी बहुत उपयुक्त नहीं जान पड़ता। दोहा अपने नाम से ही अपनी दो पंक्तियों के स्वरूप की घोषणा करता है। अतः उसकी व्युत्पत्ति 'द्विपदा' शब्द से मानना तर्कसंगत ही है। इन दो पदों या चार चरणों के निश्चय मात्र से काम नहीं चलता क्योंकि दोहे का स्वरूप मात्रिक है और दोहे की मात्राओं का निश्चित मानकीकरण अपभ्रंश काल में तो क्या हिन्दी के आदि काल तक में नहीं हो पाया था।

---

१ मात्रिक छन्दों का विकास — डा० शिवनन्दनप्रसाद (पटना १९६४) पृ० ४११ पर उद्धृत आ० द्विवेदी का कथन

२ मैंह जानिग मियलोयणी णिसयरु कोई हरेइ।
जाव णा णाव जालि सामल धारा हरु बरसेइ॥ वि० उ० अंक ४

३ हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी (तृ० सं०) ९८ पृ० से उद्धृत।

४ सिद्ध साहित्य—डा० धर्मवीर भारती—पृ० २९१

५ हिन्दी साहित्य का आदिकाल (तृ० सं०) पृ० ५७

६ बिहारी—आ० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (चतु० सं०) पृ० ८०

७ हिंदुई साहित्य का इतिहास—गार्सां द तासी (अनु० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय) पहला संस्करण पृ० २८

यद्यपि प्राकृत पैंगलम में भ्रमर भामर आदि दोहे के २३ सूक्ष्म भेद किए गए थे और उसके विषम सम चरणों में क्रमश: १३, ११ मात्राओं का विधान कर दिया था[1] किन्तु इस नियम की सच्चाई के साथ पालन भक्तिकाल तक में नहीं होता था। संतों के दोहों में मात्राओं की न्यूनाधिकता स्पष्ट है। सूफी कवियों की स्थिति भी यही है। मृगावती (रचना काल १५०३ ४) में १३, ११ मात्राओं वाले दोहे खोजने पर ही मिलेंगे। हाँ वहाँ दोहों के विषम चरणों में १६, १८ मात्राओं का बहुत प्रयोग अवश्य सरलता से मिल जाता है। इतना ही नहीं वहाँ १५ और १७ मात्राओं वाले विषम चरण भी देखने को मिलते हैं।

पश्चात्वर्ती कृति पद्मावत में भी यही अव्यवस्था है। एक दो, दस बीस नहीं पचासियों दोहों की ऐसी सूची बनाई जा सकती है जिनके प्रथम और द्वितीय चरणों में १६, ११ मात्राएँ हैं। पद्मावत के प्रसिद्ध भाष्यकार वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसे दोहे का एक प्राचीन भेद ही स्वीकार कर लिया है जो १३, ११ मात्राओं वाले दोहे के प्रचार के पश्चात् खटकने लगा था। अतः धीरे धीरे समाप्त हो गया। उनका कथन है कि दोहे के अनेक भेदों में से यह (१६, ११ मात्राओं वाला) भी एक मान्य भेद हिंदी काव्य में उस समय स्वीकृत था जिसकी परम्परा मुल्ला दाऊद के समय (१३७८ ई०) से जायसी के काल तक अवश्य विद्यमान थी।[2] अग्रवाल जी की मान्यता यदि १६, ११ मात्राओं से सम्बंधित स्वीकृत हो भी जाय तब भी काम नहीं बनता क्योंकि वहाँ अन्य व्यवस्थाएँ भी हैं। पद्मावत में १२, ११ मात्राओं के दोहों की भी कमी नहीं। उदाहरणार्थ एक दोहा प्रस्तुत है—

रूपवंत मनि माथे चंद्र घटि वह बाढ़ि।
मेदनि दरस लुभानी अस्तुति बिनवै ठाढ़ि॥ पद्मा० १२

अग्रवाल जी ने जिस मुल्ला दाऊद की चर्चा की है उसकी कृति चन्दायन में यह अव्यवस्था कदाचित सबसे अधिक है। वहाँ तो ११, ११; ११, १२; १, १२ तथा १७, ११ आदि मात्राओं के अनियमित दोहे भी बड़ी मात्रा में हैं।[3] १६, ११ मात्रा वाले दोहे तो बहुत अधिक हैं ही। तात्पर्य यह है कि भक्तिकाल तक में भी दोहे की मात्राओं का मानकीकरण ठीक से नहीं हो पाया था। यहाँ तक कि मानस में ऐसे प्रयोग देखे जा सकते हैं जिनमें १३, ११ मात्राएँ नहीं हैं। उदाहरण के लिए निम्न-लिखित दोहे का विषम पद १२ ही मात्राओं का है—

भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाइ॥[4]

---

1 प्राकृत पैंगलम १७८
2 पद्मावत—सम्पा० वासुदेवशरण अग्रवाल (प्राक्कथन) पृ० १८
3 चन्दायन—सम्पा० परमेश्वरीलाल गुप्त (प्र० सं) पृ० ५८४
4 रामचरितमानस—बालकाण्ड दो० सं० २०३

[दो]हा और रहीम

हमारा यह तात्पर्य कदापि नहीं कि भारत में [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] ... [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कविता [illegible] होय है और वे हैं तुलसी और रहीम। [illegible] [illegible] है। [illegible] केवल इतनी ही है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। किन्तु [illegible] भी है ये प्राय [illegible] बिहारी और [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भाषा और [illegible] [illegible] और भाव [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लिया है। रहीम [illegible] [illegible] कुछ [illegible] [illegible] लिया है कि [illegible] [illegible] [illegible] के प्रति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] होती हुई समाप्त हो गई और [illegible] [illegible] [illegible] हो गया। [illegible] दोहे में [illegible] क्षमता भी आ गई कि वह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का उत्तरदायित्व निभा सका। उन [illegible] के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि—

> सतसइया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
> देखत के छोटे लगें घाव करें गम्भीर।

बिहारी के दोहों की सबसे बड़ी विशेषता है भाव की [illegible]। वे [illegible] से बड़े भाव को थोड़े से थोड़े शब्दों में कहने अथवा सागर को गागर में भरने में माहिर थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि स्वयं रहीम को भी इस कला में समान हासिल था और इसी की ओर उन्होंने सब का ध्यान आकर्षित करते हुए दोहे की उपमा नट के उस छोटे कुण्डल से दी थी जिसमें वह अपने सारे शरीर को [illegible] [illegible] सुन्दरता के साथ पार करता है। उनके लिए दोहे का सौन्दर्य अर्थगत था कुछ ऐसा अर्थगत कि उसे जितनी निकटता से देख उतना ही और अधिकाधिक आकर्षक [लगत]ा हो—

> दीरघ दोहा अरथ के आखर थोरे आहिं।
> ज्यों रहीम नट कुण्डली सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं। ६६ —पृ० १०
> रूप कथा पद चारु पट, कचन दोहा लाल।
> ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्म गति मोल रहीम बिसाल।[1] २४१ —पृ० २६

रहीम काव्य का प्रधान छन्द

दोहा रहीम काव्य का प्रधान छन्द है। कवित्त, सवैयों तथा अष्टक आदि के फुटकर वृत्तों का योग पचास के लगभग है। बरवों की संख्या अवश्य चौगुनी से अधिक है। नायिका भेद के ११४ तथा फुटकर बरवों की १०५ संख्या मिला देने पर योग २१६ रहता है जबकि फुटकर दोहों की संख्या (नगर शोभा को मिलाकर) लगभग सवा चार सौ है। अतः निश्चित ही दोहा ही रहीम द्वारा सर्वाधिक प्रयुक्त छन्द है।

1 तुलनीय—ज्यों ज्यों निहारिये नियरे ह्वै नैनन,
त्यों त्यों खरीसी निकसत निकाई है।

विषय की दृष्टि से भक्ति, वैराग्य तथा शृंगारादि की अपेक्षा अधिकता नीति के दोहों की है। प्राप्त दोहों में नीति के दोहे अन्य विषयों (जिनमें से ९०% शृंगार के हैं) की तुलना में डेढ़ गुने के लगभग हैं।

रहीम सतसई—ग़ालिब ये ख़याल अच्छा है

रहीम रत्नावली में प्राप्त ५० फुटकर छन्द, २१९ बरवै तथा ८२० दोहों का जोड़कर योग ६६१ बनता है। कहते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी दोहावली का प्रतिनिधि दोहा मित्रता प्रमाण के रूप में रहीम को लिखा है। इसी प्रकार एक-एक दोहा जहाँगीर कवि तथा मानसिंह को आदर देने के लिए भी लिखा गया था और भी एक-दो फुटकर छन्द इधर-उधर प्रकाशित मिलते हैं। उदाहरणार्थ 'सुनिये विटप प्रभु' इत्यादि छन्द रहीम के नाम से प्रसिद्ध है परन्तु याज्ञिक जी ने उसे सम्पादित नहीं किया है।[1] आलोना नखशिख आदि नाक पर आधारित एक अन्य छप्पय भी रहीम लिखित बताया जाता है। कहने का तात्पर्य है कि रहीम के छन्दों की संख्या अन्ततोगत्वा ७०० तक पहुँच जाती है। नगर शोभा प्रसंग पर श्री याज्ञिक द्वारा पृथक् से उद्धृत १६ बरवै हमारे अनुमान में रहीम के ही हैं। यदि न भी माना जाय तब भी रहिमन विलास में के १० दोहे, २ सोरठे तथा ३ बरवै रहीम रत्नावली के अतिरिक्त हैं। इधर डा० समरबहादुरसिंह ने ग्रंथान्त में जो बरवै जोड़े हैं उनमें भी प्रक्षिप्त बरवै अधिक हैं। अतः कुल मिलाकर हमारे पास रहीम के छन्दों की संख्या बिहारी सतसई से कम तो किसी प्रकार नहीं है। सभी स्वीकार करते चले आ रहे हैं कि रहीम ने किसी सतसई की रचना की थी। अतः जब तक हिंदी-साहित्य संसार को उसके उपलब्ध होने का सौभाग्य प्राप्त न हो तब तक इन्हीं छन्दों को रहीम सतसई समझ संतोष करने के लिए बाध्य है—

दिल के बहलाने को ग़ालिब ये ख़याल अच्छा है।

सतसई परम्परा और रहीम

सतसई का अर्थ है—सात सौ मुक्तक छन्दों का संग्रह। अपने आस्वाद अथवा वस्तु-बोध के लिए पूर्वापर छन्द निरपेक्ष रचना को मुक्तक कहते हैं। इस रचना

---

१ सुनिये विटप प्रभु पहुप तिहारे हम
राखिये हमें तो सोभा रावरी बढ़ाई हैं।
तजि हो हरष तो बिरष हैं न चारो कछु
जहाँ जहाँ जैहें तहाँ दूनो छवि पाइ हैं।
सुरन चढ़ेंगे सुर-नरन चढ़ेंगे हम
सुकवि रहीम हाथ हाथ ही बिकाई हैं।
देस में रहेंगे परदेस में रहेंगे
काहू भेष में रहेंगे पर रावरे कहाइ हैं॥

—अब्दुर्रहीम खानखाना डा० समरबहादुरसिंह प

प्रक्रिया का आदि उत्स तो विद्वानों ने वेदों में खोज लिया है।[1] किन्तु उनके किसी संख्या क्रम से संग्रहीत करने की परम्परा उतनी प्राचीन नहीं है। डा० श्यामसुन्दर दास के अनुसार सतसई लिखने का आदिम प्रारम्भ सातवाहन की गाथा सप्तशती ने ही उपस्थित किया था।[2] किन्तु हिन्दी में रहीम से पहले किसी सतसई का उल्लेख नहीं मिलता। तुलसी के नाम पर जो सतसई प्रचलित है उसे अधिकांश विद्वान प्रामाणिक नहीं मानते। बिहारी, मतिराम आदि की और जितनी भी सतसइयाँ हैं वे सभी पश्चाद्वर्ती हैं। अतः स्पष्ट है कि क्रान्तदर्शी रहीम ने ही हिन्दी में सतसई परम्परा का समारम्भ किया था। यह बात दूसरी है कि दुर्भाग्य से उनकी सतसई आज हम प्राप्त नहीं किन्तु हिन्दी में सतसई परम्परा के श्रीगणेश का श्रेय रहीम को ही प्राप्त रहेगा। नीति शृंगार विषयक दोहों के उन जैसे रचयिता के लिए सतत इकहत्तर वर्ष के दीर्घ जीवन में सतसई लिख डालना किसी प्रकार भी सन्दिग्ध नहीं है।

छन्द सम्बन्धी निष्कर्ष

निष्कर्ष यह है कि रहीम ने अपने भाव प्रकाशन के लिए कवित्त, सवैया, छप्पय, सोरठे तथा दोहे इत्यादि विभिन्न छन्दों का सफल प्रयोग किया है। दोहे छन्द के मान संवर्धन में रहीम का स्थान अद्वितीय है। स्वरूप को निखारने में गोस्वामी तुलसीदास तथा खानखाना रहीम का योग-दान अविस्मरणीय रहेगा। वस्तुतः सिद्धों ने दोहे की तुतली वाणी से रहस्य की कुछ बातें कहलाईं और नाथों ने उसकी कुमारोचित स्वच्छन्दता से कुछ अस्पष्ट वचन कहलाए। ढोला मारू तथा सन्देशरासक ने उसे यौवन प्रेम और संयोग वियोग के मधुमय अनुभव दिए। कबीर आदि सन्तों ने उसे कल्याणकारी उखाड़ पछाड़ सिखाई। किन्तु तुलसी ने मर्यादा एवं भक्ति की पुनीत गम्भीर ऊँच नीच को समझाकर उसके अन्तर्भाव को एक नया मोड़ प्रदान किया। रहीम ने नीति और शृंगार का परिधान पहनाकर उसके व्यक्तित्व को कुछ ऐसा ठोस रूप में जन समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया कि वह वर्तमान एवं भविष्य के प्रत्येक भावना का भार वहन करने में सर्वथा सक्षम सफल एवं सक्षम हो गया। सरस नीरस लौकिक पारलौकिक कोमल कठोर किसी भी परिस्थिति में अपने सन्तुलित चार चरणों पर अडिग एवं सफल रूप से खड़े होने की क्षमता प्राप्ति के लिए दोहा तुलसी और रहीम के चार चरणों की सदैव वन्दना करता रहेगा।

---

1 भारतीय मुक्तक परम्परा डा० रामसागर त्रिपाठी (दिल्ली १९६०) पृ० १८६
2 सतसई सप्तक डा० श्यामसुन्दरदास भूमिका पृ० ।
3 प्राप्त दोहों में शृंगार के दोहे बहुत कम हैं। सम्भव है कि रहीम रचित सतसई में से किसी ने शृंगार के दोहे निकालकर नीति आदि के दोहों का एक छोटा सा संग्रह किया हो और अब वही प्राप्त है, शृंगार का भाग लुप्त हो गया है। रहीम ने सतसई न लिखी हो इस प्रकार का अनुमान करना वृथा प्रतीत होता है।
रहीम रत्नावली—भूमिका पृ० [illegible]

यद्यपि आज तक रहीम रचित सुप्रसिद्ध सतसई प्राप्त नहीं हो सकी है किन्तु दोहा का सात सौ की संख्या में संकलित करके सतसई लिखने की जो परम्परा हिन्दी में प्रचलित रही है उसके संस्थापन का श्रेय रहीम को ही प्राप्त है। इतना ही नहीं हिन्दी के शृंगार-नीति भक्ति मुक्तक काव्य परम्परा में रहीम का योगदान सर्वथा सराहनीय है।

रहीम के नीति काव्य का अलंकार-सौन्दर्य

अलंकार का शाब्दिक अर्थ है गहना आभूषण अथवा सौन्दर्य सज्जा के उपकरण शरीर गृह वस्त्र इत्यादि अपनी प्रत्येक वस्तु को सुन्दर बनाना, अथवा बनाने का प्रयत्न करना मानव की प्रमुख आकांक्षा रही है। इसी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार वह वाणी को भी अधिक सुन्दर बनाने का प्रयत्न करता है। वाणी अथवा काव्य-सौन्दर्य की साधना के उपकरण ही अलंकार हैं। ये उपकरण किसी न किसी रूप में उतने ही पुराने हैं जितनी मानव की साहित्य चेतना। सौभाग्य से मानव की इस थाती का प्राचीनतम लिखित रूप भारतीयों के पास वेद में सुरक्षित है। इसलिए विद्वान अलंकारों का आदि उस वेद में खोजते हैं। कुछ महानुभावों को इस बात से चिढ है कि इस प्रकार के प्रयत्न वेद से क्यों आरम्भ किये जाते हैं? हमारा विनम्र उत्तर है कि जब मानवता की प्राचीनतम निधि है ही वेद और वेद में कोई वस्तु पद अथवा भाव विद्यमान है तब उस भाव वस्तु अथवा शब्द विशेष के आदि स्थान का निर्देश करना कोई पाप तो नहीं।

अलंकार और अलंकार शास्त्र

विद्वान् मानते हुए इतना कह देना आवश्यक है कि वेदों की भाषा अलंकृत है। वेद के अर्थ का सम्यक अध्याहार करने के लिए अलंकार का ज्ञान अपेक्षित है। कदाचित इसीलिए स्वामी दयानन्द सरस्वती तक को अपने ग्रंथ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के अन्तिम अध्याय में अलंकारों पर विचार करना आवश्यक हो गया था। वैसे भी उपमादि शब्दों का प्रयोग ऋग्वेद[1] में है निरुक्त[2] में उनकी व्याख्या भी देखी जा सकती है। यास्काचार्य ने निरुक्त में अपने पूर्ववर्ती आचार्य गार्ग्य के उपमा निरूपण का सम्यक उल्लेख किया है। पाणिनि के सूत्रों कात्यायन के वार्तिक तथा पतंजलि के महाभाष्य में अलंकार सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली का उल्लेख है। आद्याचार्य भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के षोडश अध्याय का नामकरण ही अलंकार-लक्षण है। और अग्निपुराण में बड़े प्रभावशाली शब्दों में रस के साथ अलंकार के महत्त्व की भी घोषणा की गई है और कहा गया है कि अर्थालङ्काररहिता विधवेव भारती। आगे चल कर चन्द्रालोक प्रणेता जयदेव ने तो और भी जोरदार समर्थन किया है। उनका

१ ऋग्वेद १ ३१ १५ तथा ५ ३ ३८ ६
२ निरुक्त, अध्याय ३

कथन है कि जो शब्दार्थ विशिष्ट काव्य को अलंकार रहित मानते हैं वे अग्नि को उष्णता से रहित क्यों नहीं मान लेते—

अंगी करोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती॥चन्द्रालोक १ ८॥

हिन्दी में महाकवि केशव इसी परम्परा के आचार्य थे—

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिन न बिराजई कविता वनिता मित्त॥ कवि प्रिया ५ १॥

यद्यपि वर्तमान कवियों की कविता में अलंकार का महत्व समाप्त-सा है किन्तु आधुनिक विद्वान भी सिद्धान्त रूप में केशव के स्वर में स्वर मिलाते हुए अलंकारों का महत्व स्वीकार करते रहे हैं। गुलाबराय जी की मान्यता थी कि—'अलंकार भी शैली की उत्कृष्टता में सहायक होते हैं। वे इतने ऊपरी नहीं हैं जितने कि समझे जाते हैं। उनका भी रस से सम्बन्ध है। इन की भी उत्पत्ति हृदय के उसी उल्लास से होती है जिससे कि काव्य मात्र की—(नारी के भौतिक अलंकारों को धारण करने में भी एक मानसिक उल्लास है। उसके अभाव में विधवा स्त्री अलंकार नहीं धारण करती।)—इसीलिए हृदय का ओज उल्लास अलंकारों के मूल में माना जाएगा। अलंकार रसानुभूति में भी सहायक होते हैं।[1] कविवर पंतजी ने बहुत पहले अलंकारों को भावों की अभिव्यक्ति का द्वार माना था। उनके मत में अलंकार वाणी के हास अश्रु स्वप्न और हाव भाव हैं।[2] डा० ओमप्रकाश शास्त्री के अनुसार — अलंकार एक शुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। जिसका सम्बन्ध भाव सामान्य की उद्दीप्त अवस्था से होता है। अलंकार का सम्बन्ध मनोविज्ञान से सीधा है और अलंकार मनोविज्ञानाश्रित होकर पाठक की बुद्धि एवं हृदय को अपने चमत्कार से भावावेश में लीन कर देते हैं।[3] किन्तु अलंकारों के सम्बन्ध में इतनी उच्च धारणा प्राचीन नवीन सभी विद्वानों की नहीं है। अलंकार सम्प्रदाय के विद्वानों ने ही काव्य में अलंकारों को इतना महत्व प्रदान किया है अन्यों ने नहीं। हाँ इतना अवश्य है कि भारत की काव्य शास्त्रीय परम्परा में अलंकारों पर युगों युगों तक सूक्ष्म विचार हुआ है और यही कारण है सम्प्रति काव्य शास्त्र को अलंकार शास्त्र के ही नाम से पुकारा जाता रहा है। डा० विजयेन्द्र स्नातक का यह कथन नितान्त सत्य है कि आचार्यों की गवेषणात्मक प्रवृत्ति और अतिशय अध्यवसाय के कारण भारतीय अलंकार शास्त्र को आज विवेचनात्मक साहित्य में प्रमुख स्थान प्राप्त है।[4]

काव्य में अलंकारों का स्थान

अलंकार सम्प्रदाय के आदि आचार्य भामह से लेकर आज तक के समस्त अलंकार समर्थकों के युग-युगान्तर के प्रयत्नों के पश्चात् भी अलंकार को काव्य की

१ सिद्धान्त और अध्ययन (छठा सं०) पृ० २३१
२ पल्लव श्री सुमित्रानन्दन पंत—भूमिका
३ काव्यालोचन—डा० ओमप्रकाश शर्मा शास्त्री (प्र० सं०) पृ ७६
४ हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६६

आत्मा का स्थान प्राप्त नही हो सका। यद्यपि सम्पूण काय-सौन्य को अलकार मे समाहित करने का प्रबल आग्रह व्यक्त किया गया था।[1] किन्तु अततोगत्वा अलकार को मूल शोभाकारक धम न मानकर उन्हे मात्र शोभा म अभिवद्धि करने वाले धम ही स्वीकार किया गया—

शब्दाथयोरस्थिरा ये धर्मा शोभातिशायिन ।
रसादीनुपकुवतिऽलकारास्तेऽङ्गदादिवत ॥—साहित्य दपण

अथात् शब्दाथ के अस्थिर धम तथा अगादि के समान सौदय म अतिशयता लाने वाले रसादि के उपकारक धर्मों को अलकार कहते हैं। पाश्चात्य विचारक क्रोचे ने अलकार को शोभा के लिए बाहर से जोडी हुई वस्तु माना है स्वत अनुभूत आन्तरिक प्रक्रिया नही।[2] आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने भी इस मत का पुष्ट किया है।[3]

तात्पय यह है कि काय के नित्य धम रसभावादि ह और अनित्य धम अलकार। काव्या म भाव विचार और कल्पना उसकी अन्तरात्मा के मुख्य स्वरूप कहे गए हैं, और वास्तव मे काय की महत्ता इन्ही के कारण प्रतिपादित तथा यजित होकर स्थिरता धारण करती है। अलकार इस महत्ता को बढा सकते हैं उसे अधिक सुदर और मनोहर बना सकते ह परन्तु भाव विचार तथा कल्पना का स्थान ग्रहण नही कर सकते और न उनके आधिपत्य का विनाश करके उनके स्थान के अधिकारी हो सकते हैं।[4] बात स्पष्ट है कि आभूषण उसी को शोभा देते हैं जिसमे जान है यौवन की ऊष्मा है स्वास्थ्य की लालिमा है मुर्दे का उससे कोई सम्बध नही। ठीक इसी प्रकार अलकार काय मे वही शोभित होते ह जहाँ रस भाव एव विचार आदि का सौदय विद्यमान हो। जब कथ्य ही जानदार हो तो भाषा चाहे कुछ भी क्या न हो शैली चाहे कसी भी क्या न हो, सब निष्प्राण ही रहगी। अलकार भी अन्ततोगत्वा भावाभियक्ति की शैली ही है और कुछ नहीं। डा० भगीरथ मिश्र ने अलकारा के प्रयाग की परिस्थितियाँ पर विचार करते हुए यही निष्कष निकाला है कि अलकार सुष्ठु अभियजना प्रणाली ही है।[5] हमारे विचार से अभियजना का सौदय मूल रूप स उसकी निश्छलता आयासहीनता एव स्वाभाविकता पर निभर रहता है।

रहीम द्वारा प्रयुक्त अलकार

रहीम के अलकरण विधान की सबसे बडी विशेषता यही है कि उसम कही भी अस्वाभाविकता कृत्रिमता तथा अतिशयता नही है। उनके अलकार चाहे शब्द-मूलक हो अथवा अथ मूलक, चाहे सादश्य मूलक हो और चाहे विरोध मूलक, सभी

1 सौदयमलकार—काव्यालकार सूत्र १ १ २
२ Croce Aestretic—Expression and Rhetoric—P 113
३ चिन्तामणि आ० रामचन्द्र शुक्ल—भाग २ पृ० १७३
४ साहित्यालोचन—डा० श्यामसुदरदास (१०वा स०) पृ० २४०
५ काव्य शास्त्र—डा० भगीरथ मिश्र (चतु० स०) पृ० १४७

प्रकार से स्वाभाविक हैं सहज हैं, अनारोपित हैं। उन्होंने भारी भरकम अलंकारों का कहीं प्रयोग नहीं किया। निम्नलिखित विवरण इस तथ्य को प्रकट करने में सहायक होंगे—

१ शब्दालंकार—अनुप्रास

ससि की सीतल चांदनी सुन्दर सर्बाह सुहाय।
लगे चोर चित में लटी घटि रहीम मन आय॥ २६४—पृ० २६

ससि सँकोच साहस सलिल मान सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात हैं घटत घटत घटि सीम॥ २६८—पृ० २६

यहाँ स्वरों की नियमता होते हुए भी स ट घ ब, इत्यादि व्यंजनों की समता एवं आवृत्ति के कारण अनुप्रास की सुन्दर छटा विद्यमान है। साथ ही यह भी देखा जा सकता है कि यहाँ अनुप्रास की योजना में कोई विशेष आग्रह पूर्ण प्रयत्न नहीं किया गया। यदि ऐसा होता तो कवि प्रथम दोहे के प्रथम चरण में 'की' के स्थान पर 'सा' तथा तृतीय चरण में 'लगे' के स्थान पर 'चले' इत्यादि रखकर वर्णावृत्ति को और बढ़ा सकता था। इसी प्रकार द्वितीय दोहे के द्वितीय चरण में मान के स्थान पर सान (शान शौकत) तथा 'जाता है' के स्थान पर 'बाढ़त' इत्यादि कर सकता था। किन्तु उसे यह अभिप्रेत नहीं क्योंकि वह सहज अलंकरण प्रवृत्ति का ही परिपोषक है। निम्नलिखित पंक्तियों में भी यह प्रवृत्ति है—

सीन हरत तम हरत नित, भुवन भरत नहि चूक। २६६—पृ० २५
खर खून खाँसी खुसी, बैर प्रीत मद पान। ४७—पृ० ५
रहिमन कठिन चितान ते, चिता को चित चेत। १७०—पृ १७

२ यमक अलंकार

जहाँ शब्दों की भिन्न भिन्न अर्थों में अनेक बार आवृत्ति हो वहाँ यमक अलंकार होता है—

टूटे सुजन मनाइए जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिर फिर पोइए टूटे मुक्ताहार॥ ८५—पृ० ६

रहिमन अपने पेट सो, बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अनखाय रहे तो सो को अनखाय॥ १३६—पृ० १६

प्रथम दोहे में सुजन के साथ टूटे का अर्थ किन्हीं कारणों से पृथक हो जाना तथा मुक्ताहार एवं सौ बार के साथ टूटे का अर्थ है भंजन होना या टूट कर टुकड़े टुकड़े हो जाना। दूसरे दोहे में तृतीय चरण के अनखाय का अर्थ है 'बिना भोजन किए हुए तथा चतुर्थ में अनखाय का अर्थ है बुरा मानना अथवा घृणा करना इत्यादि। अतः यहाँ शब्दों के पृथक पृथक बार पृथक पृथक अर्थों में प्रयुक्त होने के कारण 'यमक' अलंकार है। इसी प्रकार अग्रलिखित पंक्तियाँ भी यमक अलंकार की उदाहरण हैं—

भार झोंक के भार मे रहिमन उतरे पार ॥[1] १३३—पृ० १३
रहिमन तुम हम सों करो करी करी ज्यों तोर ॥[2] १९२—पृ० १९

३ श्लेष अलकार

श्लिष धातु का अर्थ है चिपका हुआ। जहा शब्द के एक अर्थ के साथ उसका दूसरा अर्थ भी साथ साथ चिपका रहता है वहा श्लेष अलकार होता है। यमक अलकार म एक शब्द बार-बार पृथक पृथक अर्थ म प्रयुक्त होता है परन्तु श्लेष म शब्द एक ही बार प्रयुक्त होते हुए भी इस कौशल मे विन्यस्त रहता है कि उससे एकाधिक अर्थ की प्राप्ति होती है—

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो करे बढ़े अँधेरो होय॥ ७७—पृ० ८
रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानस चून॥ २०५—पृ० २०

यहा प्रथम दोहे म बारे और बढ़े के दो दो अर्थ हैं। बारे के अर्थ हैं, जलाने पर तथा बचपन म बढ़ने का अर्थ है बुझ जाने पर तथा आयु म बढ़ने पर। इसी प्रकार दूसरे दोहे म पानी शब्द के जल चमक, इज्जत (नम्र) तीन अर्थ हैं। अत एक शब्द के साथ दो तथा तीन से अधिक अर्थ चिपके रहने के कारण ये दोहे श्लेष अलकार के प्रसिद्ध उदाहरण हैं। इसी प्रकार निम्नलिखित दोहा म गुन तथा पुरुष पुरातन के दो दो अर्थ लिए गए हैं—एक तो गुण का शुभ गुण तथा दूसरा रस्सी। इसी प्रकार पुरुष पुरातन भगवान विष्णु तथा वृद्ध व्यक्ति—

गुन तें लेत रहीम जन, सलिल कूप तें काढि।
कूपहुँ ते कहुँ होत है मन काहू को बाढि॥ ५०—पृ० ८
कमला थिर न रहीम कहि यहि जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू क्यों न चचला होय॥ २३—पृ०३

४ पुनरुक्ति प्रकाश

जहाँ भाव का अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए एक ही शब्द का एक ही अर्थ म अनेक बार प्रयोग किया जाय वहाँ पुनरुक्ति प्रकाश अलकार माना जाता है। यह अलकार रहीम के काव्य म प्रचुर मात्रा म प्रयुक्त हुआ है—

कछु रहीम केतिक रही केतिक गई बिहाय॥ ३२—पृ० ६
काज परे कछु और है काज सरे कछु और॥ ३६—पृ० ४
रहिमन दाह प्रेम के बुझि बुझि के सुलगाहि॥ ६६—पृ० ७
पावन बरा परत है ढोल बजाय बजाय॥ २०९—पृ०२०

---

१ भार = बोझ तथा भड़भूजे का भाड़
२ करी = किया तथा हाथी

७ अर्थालंकार

अलंकार चमत्कार जहां अर्थ पर निर्भर रहता है वहां अर्थालंकार की व्याप्ति रहती है। किसी शब्द विशेष का पर्यायवाची रख देने पर भी जहां अलंकार विशेष के निर्वाह में बाधा उपस्थित न हो वहां अर्थालंकार होता है उक्ति चमत्कार तथा काव्य-सौंदर्य निखार में अर्थालंकारों का महत्वपूर्ण योगदान है। अग्निपुराण में शब्द सौंदर्य की मनोहरता के लिए अर्थालंकारों को आवश्यक माना गया है—

> अलंकरणमर्थानामर्थालंकार इष्यते।
> तं विना शब्दसौन्दर्यमपि नास्ति मनोहरम् ॥ अ० पु० ३४३ ॥

रहीम का प्रिय अर्थालंकार—दृष्टान्त

यों तो अर्थालंकारों की संख्या शताधिक है किन्तु काव्य में सामान्यतः प्रयुक्त होने वाले अलंकार इतने अधिक नहीं है। रहीम के काव्य में प्रयुक्त अर्थालंकारों में सबसे प्रमुख अलंकार दृष्टान्त है। प्रयोगाधिक्य को देखकर यदि कह दिया जाय दृष्टान्त रहीम की काव्य शैली की एक प्रमुख विशेषता है तो कोई अत्युक्ति न होगी। यह अलंकार रहीम के काव्य में इतना अधिक है कि अलंकार संग्रह कर्त्ताओं को कहीं अन्यत्र भटकने की आवश्यकता नहीं। उदाहरण के लिए टेकचन्द शास्त्री ने अपनी 'अलंकार पारिजात' में दृष्टान्त अलंकार के छः उदाहरण दिए हैं। इन में से पांच रहीम के हैं।[1] रहीम दोहावली का कोई पृष्ठ उठा लीजिए, उसी में दृष्टान्त अलंकार के दो चार दोहे अवश्य मिल जायेंगे।

निम्नलिखित दोहे जन-समाज में बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं—

> बिगरी बात बनै नहीं लाख करौ किन कोय।
> रहिमन फाटे दूध को मथे न माखन होय ॥ १२६—पृ० १३ ॥
> रहिमन अंसुवा नयन ढरि जिय दुख प्रकट करेय।
> जाहि निकारो गेह तें कस न भेद कहि देय ॥ १६४—पृ० १६ ॥
> जे गरीब पर हित करै ते रहीम बड़ लोग।
> कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग ॥ १६४—पृ० ७ ॥
> प्रीतम छबि नैनन बसी पर छबि कहां समाय।
> भरी सराय रहीम लखि, आपु पथिक फिरि जाय ॥ ११६—पृ० १२ ॥
> गुरुता फबै रहीम कहि फबि आई है जाहि।
> उर पर कुच नीके लगे अनत बतौरी आहि ॥ ५१—पृ० ५ ॥

यहाँ प्रत्येक दोहे में दो समान वाक्य हैं और दोनों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव है। अतः ऊपर के सभी दोहे दृष्टान्त अलंकार के सुन्दर उदाहरण हैं।

---

१ अलंकार पारिजात—प्रो० टेकचन्द शास्त्री (नई दिल्ली १९५६) पृ० १२०

इस गौरव के अनुसार उपमा को अर्थालंकार वर्णन में अधिकांशतः प्रथम स्थान प्राप्त होता रहा है। भूषण त्रिपाठी ने शिवराज भूषण में इस तथ्य का उल्लेख भी किया है—

भूषण सब भूषननि मे उपमहि उत्तम चाहि।
यात उपमहि आदि दे, बरणत सकल निवाहि॥

आचार्य केशवदास ने प्रथम स्थान न देते हुए भी उसका विस्तृत वर्णन किया है। उपमा भेद अनेक हैं मैं बरणें इक्वीस। संस्कृत में तो भेदाभेद प्रपंच और भी अधिक है। काव्य प्रकाश में पूर्णोपमा के छः तथा लुप्तोपमा के उन्नीस भेद गिनाये गये हैं।[1] इतना होते हुए भी मूल भेद दो ही हैं—पूर्णोपमा तथा लुप्तोपमा। हम भेदाभेद के फेर में न पड़ते हुए रहीम के नीति काव्य से उपमा के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

रहिमन राज सराहिये, ससि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है तप्यौ तरयन खोय॥ २२४—पृ० २२
धरती की सी रीति है सीत घाम अरु मेह।
जसी परे सो सहि रहे त्यों रहीम यह देह॥ १०६—पृ० ११
अमृत ऐसे वचन मे रहिमन रिस की गांस।
जसे मिसिरिहु म मिली निरस बाँस की फाँस॥ ८—पृ० १।

यहा ससि सम सुखद राज्य धरती की सी रीति तथा अमृत ऐसे वचन में उपमा अलंकार है। रहीम ने एक दोहा में शरीर की उपमा कागज के पुतले से दी और उसके वायु लगने पर आश्चर्य प्रकट करते हुए जरा सी नमी में घुल जाने की सम्भावना से शरीर की क्षणभंगुरता व्यक्त की है। एक अन्य दोहे में उन्होंने मन को प्रभु (राजा) और नेत्रों को दीवान के दीवान जैसा माना है—

कागज को सो पूतरा सहजहि मे घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो सोऊ खेंचत बाय॥ १३५—पृ० ६
मन सो कहाँ रहीम प्रभु, दृग सो कहा दिवान।
देखि दृगन जो आदर, मन तेहि हाथ बिकान॥ १६०—पृ० १६

१० रूपक अलंकार

वाचक शब्द और साधर्म्य के अभाव में उपमेय और उपमान का एक रूप हो जाना ही रूपक है। इसमें उपमेय पर उपमान का अभेद आरोप रहता है—

उपमा औ उपमेइ ते वाचक धरम मिटाई।
एक करि आरोपिए सो रूपक कहि जाइ। का० निर्णय पृ० २४४

यद्यपि विद्वानों ने रूपक की परिभाषाएं अपनी अपनी मान्यताओं के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार से दी हैं किन्तु अभेद सादृश्य पर सभी का मतैक्य है। सभी ने अलंकार संसार में रूपक व्यापार का विशेष महत्व स्वीकार किया है भामह ने तो

---

१ काव्य प्रकाश पृ० ४४३—४६०

रूपक का निरूपण उपमा से भी पूर्व किया है। दण्डी ने उपमा और रूपक का भेद निर्णय करते हुए लिखा है कि गुण, क्रिया, द्रव्य आदि किसी भी प्रकार से उत्पन्न सादृश्य उपमा है किन्तु उपमान और उपमेय का सर्वथा भेद मिटने पर रूपक हो जाता है।[1] रहीम के नीति काव्य में कुछ रूपक बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं—

मनसिज माली की उपज कहि रहीम नहिं जाय।
फल श्यामा के उर लगें, फूल श्याम उर आय॥ १३६—१८
कह रहीम इक दीप ते, प्रकट सब दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरे दृग दीपक जरु दोय॥ २७—पृ० ३
कहि रहीम जग मारियो नैन-बान की चोट।
भगत भगत कोउ बचि गये चरन कमल की ओट॥ २८—पृ० ॥

इन दोहों में क्रमशः मनसिज पर माली का, दृग पर दीपक का तथा नैन पर बाण का अभेद आरोप किया गया है। अतः तीनों दोहों में रूपक का सन्निवेश है। इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियों में भी रूपक की छटा देखी जा सकती है—

बिरह रूप घन तम भयो अवधि आस उद्योत॥ २४७—पृ० २८
रहिमन यह तन सूप है लीजै जगत पछोर॥ २१६—पृ० २५

११ निदर्शना अलंकार

दो वाक्यों में असमता होते हुए भी जब ऐसा सम्बन्ध स्थापित किया जाता है कि उसमें साम्य प्रतिभासित होने लगे तब निदर्शना अलंकार होता है। दोनों वाक्यों का महत्वपूर्ण ऐक्य फल सादृश्य पर निर्भर रहता है। फल सापेक्ष्यता ही इसे दृष्टान्त से अलग करती है। दृष्टान्त के समान यहाँ बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव नहीं रहता परन्तु निदर्शना में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव न होने पर भी दोनों वाक्य एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। रहीम के नीति काव्य में निदर्शना का प्रयोग भी कुछ कम नहीं है—

थोथे बादर क्वार के ज्यों रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये करें पाछिली बात॥ ६१—पृ० ६
जे रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं लिपटे रहत भुजंग॥ ७४—पृ० ८

यहाँ क्वार के बादलों एवं निर्धन हुए धनी पुरुषों तथा दूसरे दोहे में उत्तम प्रकृति पुरुषों एवं चन्दन वृक्षों में कोई रूप अथवा बिम्ब प्रतिबिम्बगत साम्य न होते हुए भी फल साम्य स्थापित किया गया है। पहले का फल है थोथा प्रदर्शन तथा दूसरे का फल है विकार मुक्तता। अतः यहाँ निदर्शना के सम्यक् दर्शन होते हैं।

१२ अर्थान्तरन्यास अलंकार

किसी विशेष कथन का सामान्य द्वारा अथवा सामान्य कथन का विशेष द्वारा समर्थित करने पर अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है—

---

१ काव्यादर्श २ १८ तथा ६६

सामाय वा विनेषो वा तदयेन समथ्यते ।
यत्तु सोऽर्थातरयास साधर्म्येणेतरेण व ॥ का० प्रका १० १०६

रहीम के काय म अथान्तरयास अलकार का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा म है—

(सामाय)—छोटे सों सोहै बडे कहि रहीम यह रेख ।
(विनेष)—सहसन को हय बाँधियत ल दमडी की मेख ॥ ५६—पृ० ८
(विनेष)—कौन बडाई जलधि मिलि गग नाम भो धीम ।
(सामान्य)—केहि की प्रभुता नहि घटी पर घर गए रहीम ॥ ४३—प० ४

१३ स्वभावोक्ति अलकार

किसी स्वभाव, वस्तु-व्यापार अथवा विचार का स्वाभाविक किन्तु प्रभावशाली ढग स वणन करना स्वभावोक्ति अलकार कहलाता है । रहीम के अधिकाश दोहे निश्चित ही स्वाभाविक एव सहज हैं । दो एक उदाहरण प्रस्तुत हैं—

जाल परे जल जात बहि तजि मीनन को मोह ।
रहिमन मछरी नीर को तऊ न छाडत छोह ॥ ६१—प० ६
काह करौं बकुण्ठ बसि कल्पतरु की छाह ।
रहिमन ढाक सुहावनो जो गल प्रीतम बाह ॥ ३८—प० ४
कहि रहीम सपति सग, बनत बहुत बहु रीत ।
विपति कसौटी जे कसे सोही साँचे मीत ॥ ३१—प० ४

१४ लोकोक्ति अलकार

छद म जहा अभीप्सित अथ का किसी लोकोक्ति द्वारा समर्थित कराया जाय वहा लोकोक्ति अलकार माना जाता है । भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए इसका प्रभाव अत्यन्त प्राचीन है—

पात पात को सींचिबो बरी बरी को लौन ।
रहिमन ऐसी बुद्धि को कहा बरगो कौन ॥ ११७—प० १२
कसे निबह निबल जन करि सबलन सौं गर ।
रहिमन बसि सागर विषे, करत मगर सो बर ॥ ४१—प० ४
सब को सब कोऊ कर क समान क राम ।
हित रहीम तब जानिये जब कछु अटक काम ॥ २५०—प० २८

यहा पर रेखाकित पद-समूह म लोकोक्तिया होने से लोकोक्ति अलकार है ।

१५ दीपक अलकार

वण्य और अवण्य के एक ही धम का एक ही साथ एक क्रिया द्वारा आख्यान दीपक अलकार कहलाता है । एक ही धम द्वारा प्रस्तुत एव अप्रस्तुत का प्रकाशन उसी प्रकार होता है जिस प्रकार एक दीपक द्वारा अडोस पडोस की वस्तुओं का प्रकाशमान होना ।

रहिमन पानी राखिये बिनु पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे मोती मानुष चून॥ २०१—पृ० २०
उरग तुरग नारी नृपति नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हें सँभारिये पलटत लगै न बार॥ १६—पृ० ३
ससि सकोच साहस सलिल मान सनेह रहीम
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है घटत घटत घटि सीम॥ २९४—पृ० २९

यहाँ प्रथम दोहे में पानी शब्द [illegible] (शब्द) जाना गया यहाँ [illegible] दिखाया गया है।

१६ परिकर अलंकार

विशेषण के साभिप्राय प्रयोग को परिकर कहते हैं। इस परिकर (साभिप्राय) के प्रयोग में व्यवसाय एवं चमत्कार की प्रधानता रहती है। निम्नलिखित दोहे में रहीम ने दीनता के लिए दिव्य शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रयोग से दोहे के [illegible] तथा अभिप्रेत भाव पर तो प्रकाश पड़ता ही है, साथ में प्रभु गर्वित [illegible] दीनता की [illegible] से साथ और भरी दीनता के निरादर की ओर भी संकेत है—

दिव्य दीनता के रसहि को जानै जग अंधु।
भली बिचारी दीनता दीनबंधु से बंधु॥ ९३—पृ० १०॥

इसी प्रकार निम्नलिखित दोहे में गंगा के विशेषणों का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकर का सुन्दर प्रयोग है —

अच्युत चरण तरंगिणी शिव सिर मालति माल।
हरि न बनायो सुरसरी कीजो इंदव भाल॥ १—पृ० १

१७ परिकरांकुर अलंकार

जिस प्रकार साभिप्राय विशेषण के प्रयोग में परिकर अलंकार होता है उसी प्रकार साभिप्राय विशेष्य के प्रयोग में परिकरांकुर अलंकार रहता है। ऊपर के दोनों दोहों में बंधु तथा हरि सुरसरि आदि शब्द साभिप्राय प्रयुक्त हैं। अतः ये दोहे परिकरांकुर के भी उदाहरण हैं। निम्नलिखित सुप्रसिद्ध दोहे में पुरुष पुरातन वधू तथा चंचला आदि शब्द बहुत ही साभिप्राय प्रयुक्त हैं—

कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों चंचला होय।

कतिपय अन्य अलंकार

इन प्रमुख रूप से प्रयुक्त अलंकारों के अतिरिक्त रहीम के नीति-काव्य में कतिपय अन्य अलंकारों का प्रयोग भी देखा जा सकता है। कुछ के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१८ सहोक्ति

जहाँ सह साथ तथा संग इत्यादि शब्दों के प्रयोग से सहभाव का चमत्कार हो वहाँ सहोक्ति अलंकार माना जाता है—

रहिमन नाचन सग बसि लगन कलंक न ताहि।
दूध कलारिन हाथ लखि मन समझहिं सब ताहि ॥ २०२—पृ० २०

१९ असंगति

जहाँ कार्य एवं कारण की भिन्नता से चमत्कार उत्पन्न किया जाता है वहाँ असंगति होती है।

फल श्यामा के उर लगे, फल श्याम उर आहि ॥ १२९—पृ० १४

२० विशेषोक्ति

कारण रहते हुए भी कार्य का न होना विशेषोक्ति है—

रहिमन कबहुँ बड़ेन के नहीं गर्व को लेस।
भार धरे संसार को तऊ कहावत सेस ॥ १७१—पृ० १७

२१ रूपकातिशयोक्ति

जहाँ केवल उपमान का ही कथन करके उपमेय का प्रकट किया जाय वहाँ रूपकातिशयोक्ति होती है। रहीम ने केवल कागज के पुतले का ही वर्णन करके, शरीर की क्षण भंगुरता सिद्ध की है—

ते रहीम अब कौन हैं ऐती खचत बाय।
लस कागद को पूतरा नमी माहिं घुल जाय ॥ ८९—पृ० ९

२२ सार

पूर्वकथित वस्तुओं का उत्तरोत्तर अपकर्ष अथवा उत्कर्ष प्रकट करना सार कहलाता है—

रहिमन वे नर मर चुके जे कहुँ माँगन जाय।
उनते पहिले वे मुए जिन मुख निकसत नाहिं ॥ २६४—पृ० २३।

२३ पर्याय

दो वस्तुओं में परस्पर एक ही क्रिया अथवा समान सम्बन्ध का वर्णन पर्याय अलंकार है—

मीठो भावे लोन प अरु मीठे प लौन ॥ ११२—पृ० ११

२४ परिसंख्या

जहाँ कोई वस्तु अन्य स्थानों से हट कर एक ही में वर्णित रहती है वहाँ परिसंख्या अलंकार होता है—

यद्यपि अवनि अनेक हैं कूपवंत सरि ताल।
रहिमन मान सरोवरहिं मनसा करत मराल ॥ १५१—पृ० १८

२५ अनन्वय

जहाँ उपमान और उपमेय का एक ही वस्तु में कथन हो वहाँ अनन्वय अलंकार कहा जाता है—मानसिंह की सराहना करते हुए रहीम ने कहा था—

हरि सम हैं, हर एकदन रवि द्वादश विधि मान।
तोसों तुही जहान में भेद महीपति मान ॥ १०—पृ० ७३
यह दोहा अनन्वय अलंकार का भी उदाहरण है क्योंकि कवि की दृष्टि में ससार में मानसिंह के उपमान (समता) का अभाव है।

२६ अतिशयोक्ति

विषय (उपमेय) का अत्यन्त बढ़ा चढ़ाकर किया गया वर्णन अतिशयोक्ति है। जड्डा कवि की प्रशंसा में कहा गया रहीम का निम्नलिखित दोहा अतिशयोक्ति ही है—

धर जड्डी अम्बर जड्डा जड्डा महड्ड जोय।
जड्डा नाम अलाहदा और न जड्डा कोय ॥ पृ० ७८

२७ उत्प्रेक्षा

उपमेय की उपमान में सम्भावना प्रकट करना उत्प्रेक्षा है। मनु जनु मानो जानो प्राय आदि शब्द उत्प्रेक्षा वाचक माने जाते हैं—

करत निपुनई गुन बिना रहिमन निपुन हजूर।
मानहु टेरत बिटप चढ़ि मोहि समान को कूर ॥ २५—पृ० ३ ॥

२८ काव्यलिंग

किसी वस्तु का कथन या अर्थ का काल्पनिक उक्ति अथवा प्रमाण द्वारा समर्थन करना काव्यलिंग है।

रहिमन देख बड़ेन को लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवै सुई कहा करै तरवारि ॥ १६७—पृ० २० ॥

२९ सम

समान वस्तुओं के सगठन सम्बन्ध एवं वर्णन में सम अलंकार माना जाता है—
नयन सलौने अधर मृदु इह घाटि कहि कौन ॥ ११२—पृ० ११ ॥

३० विपरीत

जहाँ हित साधक ही अहित साधन करता दिखाया जाय वहाँ विपरीत अलंकार होता है। इस अलंकार का लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत करने वाले एकमात्र आचार्य केशव ही हैं—

जो रहीम दीपक दसा तिय राखत पट ओट।
समय परे ते होत है वाही पट की चोट ॥ ८०—पृ० ८ ॥

३१ तदगुण

अपने रग रूप, गध एव गुण का त्याग करके, पास की किसी वस्तु का गुण ग्रहण कर लेना तदगुण है।

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन ॥ २२—पृ० ३ ॥

३२ अतद्गुण

संसर्ग में रहते हुए भी समीपस्थ वस्तुओं का गुण ग्रहण न करना अतद्-गुण है—

रहिमन जो तुम कहत हो, संगत ही गुन होय।
बीच उखारी रस भरा, रस काहे ना होय॥ १८७—पृ० १९॥

३३ मीलित

समान धर्मा एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में सर्वथा मिल कर खो जाना मीलित अलंकार है।

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रंग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदो चून॥ २०८—पृ० २१॥

३४ उन्मीलित

अतिशय सादृश्य भाव एवं समान धर्मा होने के कारण एक दूसरे में विलीन होते हुए भी कारण विशेष से अन्तर स्पष्ट हो जाना उन्मीलित अलंकार है—

दोनों रहिमन एक से जौ लौं बोलत नाहि।
जान परत है काक पिक ऋतु वसंत के माहि॥ १०१—पृ० १०

३५ उल्लास

जहाँ एक के गुण या दोष से दूसरे में गुण या दोष का उत्पन्न होना सिद्ध किया जाय, वहाँ उल्लास अलंकार होता है—

वे रहीम नर धन्य हैं पर उपकारी अंग।
बाटन वारे के लगै ज्यों मेंहदी को रंग॥ २४८—पृष्ठ २४

३६ अनुज्ञा

दोष वाले पदार्थ को अनुकूल समझ कर उसी की इच्छा करना अनुज्ञा है—

रहिमन रजनी ही भली पिय सों होय मिलाप।
खरो दिवस केहि काम को, रहिबो आपुहि आप॥ २२१—पृ० २२

३७ अधिक

आधार से अध्याय के अधिक या बड़े होजाने पर अधिक अलंकार होता है। श्रीकृष्ण का हाथ आधार तथा गोवर्धन आधेय है—

जो रहीम करिबो हुतो ब्रज को इहै हवाल।
तो काहे कर पर धर्यो गोवर्धन गोपाल॥ ७६—पृ० ८

३८ उत्तर अथवा प्रश्नोत्तर

हाजिर जवाबी के इस अलंकार में प्रश्न का चमत्कारी उत्तर दिया जाता है—

धूर धरत निज सीस पर कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूंढत गजराज॥ १०७—पृ० ११

३९ उदात्त

महापुरुष के उदात्त चरित्र एवं समृद्धि सम्पत्ति इत्यादि का अतिशयपूर्ण वर्णन उदात्त अलंकार के अंतर्गत आता है—

> मांगे मुकरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ।
> मांगत आगे सुख लह्यो ते रहीम रघुनाथ॥ १४६—पृ० १५

४० ललित

प्रस्तुत का प्रश्न। अप्रस्तुत की विशेष चर्चा करते वक्त इस अलंकार में अभीष्ट वस्तु का स्पष्ट रूप न कहकर उसके प्रतिबिम्ब मात्र का ही उल्लेख किया जाता है। रहीम ने दोहावली के प्रथम दोहे में गंगाजी के प्रति अपनी श्रद्धा का प्रतिबिम्ब मात्र ही छन्दोबद्ध किया है—

> अच्युत चरण तरंगिनी शिव सिर मालति माल।
> हरि न बनायो सुरसरी कीजो इन्दव भाल॥ ९—पृ० १

४१ विभावना

कारण के निषेध होने पर भी फल की प्राप्ति विभावना है—

> करत निपुनई गुन बिना रहिमन निपुन हजूर।
> मानहु टेरत विटप चढ़ि मोहि समान को कूर॥ २५—पृ० ३

४२ विनोक्ति

एक के बिना दूसरे के असुन्दर होने तथा न भी होने पर विनोक्ति अलंकार माना जाता है। ऊपर के दोहे में 'बिना' शब्द का स्पष्ट प्रयोग है। अतः यहाँ विनोक्ति भी है।

४३ अलंकार संसृष्टि

एक ही छंद में एक से अधिक शब्दालंकारों, अर्थालंकारों अथवा दोनों प्रकार के अलंकारों की स्थिति निरपेक्ष प्रयोग संसृष्टि है। संसृष्टि में अलंकारों की स्थिति, तिल-तण्डुल न्याय से मानी जाती है। अर्थात् विद्यमान एकाधिक अलंकार स्वतः स्पष्ट रहते हैं। उन्हें खोजने के लिए मिले हुए श्वेत चावलों (तण्डुल) को काले तिलों से पृथक् करने के समान किसी सक्षम प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। इसीलिए काव्य प्रकाश में 'यथासम्भवमन्योन्य निरपेक्षतया' वाक्यांश का प्रयोग किया गया है। रहीम के नीति काव्य से कुछ उदाहरण लीजिए—

> (यमक + रूपक) कहि रहीम जग मारियो, नैन बान की चोट।
> भगत भगत कोउ बचि गये चरन कमल की ओट॥ २८—पृ० ३
>
> (पुनरु० + अनन्वय) नैन सलोने अधर मधु कहि रहीम घटि कौन।
> मीठो भावै लौन पै, अरु मीठे पर लौन॥ ११२—पृ० ६
>
> (रूपक + उत्प्रे०) बिरह रूप घन तम भयो अवधि आस उद्योत।
> ज्यों रहीम भादों निसा, चमकि जात खद्योत॥ २४७—पृ० २४

४५ अलंकार संकर

एक ही छन्द में अनेकाधिक अलंकारों के नीर क्षीर विवेक से मिले रहने पर अलंकार संकर[1] माना जाता है। इन्हें पृथक् पृथक् करने के लिए विशेष बौद्धिक प्रयास अपेक्षित रहता है। काव्यप्रकाशकार ने संकर अलंकारों की स्थिति, अंगांगिभाव से मानी है—अङ्गाङ्गित्व सङ्कर ।[2] कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(रूपक + असंगति) मनसिज माली की उपज, कही रहीम नहिं जाय ।
फल श्यामा के उर लगे फूल श्याम उर आय ॥ १३६—पृ० १४

(दृष्टान्त + श्लेष) कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय ।
पुरुष पुरातन की वधू क्यों न चंचला होय ॥ २३—पृ० ३

(विभा० + असंगति) करत निपुई गुन बिना रहिमन निपुन हजूर ।
मानहु टेरत बिटप चढ़ि मोहि समान को कूर ॥ २५—पृ० ३

इन दोहों में क्रमशः रूपक, दृष्टान्त तथा विभावना तो सरलतापूर्वक समझ में आ जाते हैं किन्तु क्रमशः असंगति, श्लेष तथा (पुन:) असंगति को खोजने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। इसीलिए इन्हें अलंकार संकर के अन्तर्गत रखना उचित होगा।

अलंकार सम्बन्धी निष्कर्ष

इस अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि रहीम यद्यपि सहज स्वाभाविक शैली के कवि है, किन्तु फिर भी उनकी कविता अलंकार सौन्दर्य से किसी प्रकार भी विपन्न नहीं। उनके काव्य में अलंकार उतनी ही सजधज से वियस्त हैं जितने कि किसी अन्य महाकवि की कृति में। हाँ इतना अवश्य है कि रहीम ने किसी भी दोहे में, किसी अलंकार को बरबस ठूंसने का प्रयत्न नहीं किया और न ही किसी अलंकार का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए किसी छन्द की रचना की। हम रहीम को अलंकार-समावेश के लिए प्रयत्नपूर्ण तत्परता के प्रति कहीं भी सचेष्ट नहीं पाते। उनकी कविता-कामिनी न तो सामान्याओं की भांति आपादमस्तक आकारों से लदी है और न विधवाओं की भांति सवथा अलंकार विहीना ही है। शिष्ट कुल ललनाओं की भांति सहजरूपेण अमलकृत है और अलंकार भी (अपह्नुति-भ्रम-एकावली आदि की भांति) भारी भरकम न होकर सरल एवं स्वाभाविक हैं।

---

१ काव्य प्रकाश (आ० विश्वेश्वर व्याख्या) डा० नगेन्द्र पृ० ५५२
२ वही सूत्र २०७—पृ० ५५४

१०

शब्द-शक्ति मुहावरे तथा गुण-दोष

शब्द शक्ति विवेचन भारतीय चिंतन-परम्परा की विश्व-वाङ् मय को महत्व पूर्ण देन है। यहाँ अत्यन्त प्राचीन काल से शब्द तथा अर्थादि के प्रसंग में सूक्ष्मतम विवेचन होता रहा है। यह विवेचन न्याय मीमांसा व्याकरण तथा काव्य शास्त्र के अन्तर्गत आज भी उपलब्ध है। शब्द का दूसरा नाम पद भी है। न्याय में पद के प्रमाण का, मीमांसा में पद समूह (वाक्य) का तथा व्याकरण में पद विन्यास का विशेष विवरण रहता है। कदाचित् इसीलिए न्याय को प्रमाण शास्त्र मीमांसा को वाक्य शास्त्र तथा व्याकरण को 'पद शास्त्र' कहा जाता है। काव्य शास्त्र तो विद्या ही पद लालित्य की है। पद तथा पदार्थ विवेचन के लिए काव्य शास्त्र न्याय और मीमांसादि की अपेक्षा व्याकरण से अधिक सम्बद्ध है। काव्यशास्त्र का शब्द शक्ति विवेचन भी व्याकरण पर आधारित है।

शब्द शक्ति की परिभाषा

भारतीय व्याकरण की अत्यन्त मौलिक स्थापना उसका स्फोट सिद्धान्त है। सर्वप्रथम महामुनि पातंजलि ने स्फोट का प्रयोग किया था। स्फोट ही अर्थ का स्फोटक है—स्फुटयर्थोऽस्मादिति स्फोटः। स्फोट से ही किसी शब्द ध्वनि तथा नाद के अर्थ का ज्ञान होता है। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने स्फोट तथा नाद में व्यंग्य व्यंजक सम्बन्ध स्वीकार किया है—व्यंग्यव्यंजक भावेन तथैव स्फोटनादयोः ॥[1] यद्यपि नैयायिक इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते। किन्तु व्याकरण उसकी चिन्ता न करते हुए, सदैव से स्फोट को नित्य तथा इसी आधार पर शब्द को भी नित्य मानता चला आया है। शब्द के साथ अर्थ का सम्बन्ध भी नित्य माना जाता रहा है।[2] अर्थ के ले

१ —वाक्य पदीय—१ ६८

२ (क) सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे—महाभाष्य वृत्ति १ १

(ख) एकस्यवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ।—वाक्य पदीय २ ३१

(ग) वागर्थाविव सपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।—कालिदास (रघुवंश)

(घ) गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न॥—*तुलसी (मानस)*

(ङ) शब्द और अर्थ को नित्य इसीलिए कह सकते हैं कि मनुष्य में शब्दज्ञान और उसके द्वारा अर्थ घोषित करने की शक्ति स्वाभाविक है और कालक्रम में विकसित हो जाती है।

—डा० गुलाबराय (सिद्धान्त और अध्ययन पृ० २३८)

चलने की क्रिया का सम्पादन करने अथवा ज्ञान कराने के कारण ही शब्द को 'पद' संज्ञा दी गई है—पद्यन गम्यते ज्ञायते योऽर्जनेति पदम।[1] पद अथवा शब्द के उच्चारण से लेकर उसके अर्थ-बोधन होने तक की जो भी प्रच्छन्न एवं परोक्ष प्रक्रिया अथवा व्यापार है उसे ही पारिभाषिक शब्दावली में शक्ति की संज्ञा दी गई है। इसी से शब्द-पद-वाक्य तथा प्रसगादि का अर्थ के साथ निश्चित सम्बन्ध स्थापित होता है। शब्दादि का निश्चित अर्थ से सम्बन्ध स्थापित कराने वाला व्यापार ही शब्द शक्ति कहलाता है—शब्दार्थ सम्बन्ध शक्ति।

सख्या

शब्द शक्तियों की सख्या के सम्बन्ध में संस्कृत विद्वानों में पर्याप्त मतभेद तथा वाद विवाद चलता रहा है। कुछ विद्वान शब्द की केवल एक ही शक्ति मानते हैं और वह है अभिधा। कुछ विद्वान दो शक्तियां मानते हैं और कुछ तीन। इस सम्बन्ध में विशेष झझट ध्वनि की सकल्पना के पश्चात् प्रारम्भ हुआ। कारण यह था कि काव्य शास्त्रियों का एक बहुत बड़ा वर्ग ध्वनि को मान्यता देना नहीं चाहता था। अत वे व्यजना को फूटी आखो नहीं देख सकते थे। परन्तु लक्षणा मान लेने पर उन्हें सिद्धान्तत व्यजना तक जाना ही पड़ता था। अत न रहे बास न बजे बासुरी, के अनुसार उन्होंने व्यजना को भी अमान्य घोषित कर दिया और शब्द की एक ही शक्ति अर्थात् अभिधा की भरपूर वकालत की। मुकुल भट्ट जैसे विद्वान द्वारा समूचा ग्रथ अभिधावृत्ति मातृका, अभिधा की स्थापना के लिए ही लिखा गया था। सभी मीमासक अभिधावादी थे। अनुमान है कि भट्ट लोल्लट भी अभिधा के ही हिमायती थे। उन्होंने कहा था कि जिस प्रकार एक ही बाण कवच को तोड़कर वक्ष को छेदता हुआ अन्त में प्राण हर लेता है उसी प्रकार अभिधा-व्यापार भी दीर्घातिदीर्घतर है—सोऽयमिषोरिव दीर्घदीर्घतरो व्यापार। महिम भट्ट, आचार्य कुन्तक, भोज तथा उनके टीकाकार रत्नेश्वर आदि विद्वानों ने अभिधा का ही समर्थन किया है। प्राचीन हिन्दी आचार्यों में देव तथा आधुनिक विद्वानों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रबल अभिधा समर्थक रहे हैं। देव का निम्नलिखित कथन सर्वथा उद्धरणीय है—

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन।
अधम व्यजना रस विरस, उलटी कहत नवीन॥ शब्द रसायन

यह सब कुछ होते हुए भी ध्वनि का पक्ष इतना प्रबल पुष्ट एवं तर्क सम्मत था कि अभिधावादियों की एक न चल सकी और आज प्राय सर्वत्र यही माना जाता है कि शब्द की तीन शक्तियां हैं—अभिधा लक्षणा तथा व्यजना। सब ने मूलत अभिधा की स्वीकृति दी तथा उसी का वर्णन पहले किया गया। काव्य निर्णय के प्रथम दोहे में प्रकारान्तर से यही स्वीकृति है—

पद वाचक औ लाच्छनिक व्यंजक तीन विधान।
ताते वाचक भेद कों पहलें करौं बखान॥—भिखारीदास

1 शुक्ल यजु० प्रतिशाख्य ३ २

उनका वाच्यार्थवर्णन प्रसंग का निम्नलिखित दोहा और भी महत्वपूर्ण है—

अनेकार्थ हू सबद में एक अर्थ की भक्ति।
तिहि वाच्यारथ को कहैं सज्जन अभिधा-सक्ति॥—भिखारीदास

अभिधा और उसकी व्याख्या

अभिधा का शाब्दिक अर्थ है—नाम। किसी वस्तु का नाम लेते ही उसका निश्चित अर्थ, व्यापार, गुण अथवा आकृति हमारे सम्मुख आ जाती है। उदाहरणार्थ गौ शब्द कहते ही टांग पूंछ वाले पशु विशेष की एक ऐसी आकृति हमारे मस्तिष्क के सम्मुख उपस्थित होती है जो निश्चित ही हाथी अथवा सिंह आदि शब्दों के द्वारा आभासित आकृति से भिन्न है। यही अर्थ उस शब्द का मुख्य अर्थ अथवा अभिधेयार्थ अथवा वाच्यार्थ होता है। इसी मुख्यार्थ का द्योतन कराने वाले शब्द-व्यापार को अभिधा की संज्ञा दी गई है—स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते।[1] मम्मटाचार्य ने शब्द व्यापार विचार आदि छोटे से प्रकरण ग्रंथ में मीमांसकों के अर्थ का खण्डन करके वैयाकरण सम्मत अर्थ की प्रबल पुष्टि की है। महान वैयाकरण भर्तृहरि ने अभिधान एवं अभिधेय के सम्बन्ध नियमन को अभिधा कहा था।[2] इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए उद्भट आदि काव्य शास्त्रियों ने अपने अपने प्रकार से अभिधा को परिभाषित किया है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार शब्दार्थ का प्रथम बोध कराने वाली शब्द की प्रथम शक्ति अभिधा है—तत्र संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाऽभिधा॥ रस गंगाधर में ना शक्ति और अभिधा को पर्यायवाची ही मान लिया गया है। हिन्दी आचार्यों ने अभिधा की परिभाषाएं इसी आधार पर की हैं। प्रतापसिंह जी की काव्यार्थ कौमुदी का निम्नलिखित दोहा देखिए—

मुख्य अर्थ को बोध जहं होय शब्द व्यापार।
तासों अभिधा कहत हैं, वाच्य कर्म निरधार॥

अभिधा के भेद

सामान्यतया अभिधा के भेद नहीं माने जाते किन्तु कतिपय विद्वानों ने अभिधा के तीन भेद स्वीकार किए हैं—

(१) रूढ़ि
(२) यौगिक
(३) योग रूढ़ि

रूढ़ि अभिधा के अन्तर्गत वे शब्द रखे गए हैं जो अपनी रचना में प्रकृति प्रत्यय आदि की दृष्टि से अविच्छिन्न एवं अखण्डित हैं तथा निश्चित अर्थ में रूढ़ हो चुके हैं। घड़ा घर राजा राम इत्यादि ऐसे ही शब्द हैं। इन्हें घ+र तथा रा+जा

---

१ काव्य प्रकाश—२ ११
२ वाक्य पदीय—२ ४०८

इत्यादि में तोड़ने से कुछ अर्थ न निकलेगा और अखण्डित रहते हुए वही अर्थ निकलेगा जो प्रसिद्ध एवं रूढ़ है। दूसरे भेद अर्थात् यौगिक का अर्थ है एक से अधिक पदों के योग से बने शब्द जैसे पाठक पाचक इत्यादि। इन्हें पाठ+अक तथा पच+अक में तोड़ने पर भी वही प्रसिद्ध अर्थ निकलेगा अर्थात् पाठ करने वाला तथा पाक करने वाला। योग रूढ़ि में वे शब्द आते हैं जो दो या दो से अधिक शब्दों से बने हैं और दो या दो से अधिक अर्थ देने की क्षमता रखते हुए भी केवल एक ही अर्थ में रूढ़ हो गए हैं जैसे पंकज वारिज, जलज आदि। जो पंक+ज तथा वारि+ज से बने हैं और जल में उत्पन्न होने वाले कृमि दुर्गन्ध सिवार आदि अर्थ देने की क्षमता रखते हुए भी केवल मात्र कमल के अर्थ में रूढ़ हो चुके हैं। पंडितराज ने रसगंगाधर में अभिधा के एक चौथे भेद की चर्चा उन शब्दों के लिए की है जो यौगिक तो हैं परन्तु एक से अधिक अर्थ में रूढ़ हैं जैसे पयोधर (उरोज तथा बादल) निशात (घर तथा प्रभात) एवं अश्वगंधा (घोड़े की बू वाली तथा असगंध की जड़ी) इत्यादि। किन्तु यह भेद मान्य नहीं। मान्य केवल तीन ही भेद हैं और हमारी सम्मति में तो अभिधा का अपना गौरव उस एक और अखण्ड रूप ही में है। वह एक अखण्ड तथा सर्वप्रथम शब्द शक्ति है। अतः उसके भेद प्रभेदों में पड़ना व्यर्थ है।

रहीम और अभिधा व्यापार

रहीम सत्य और तथ्य प्रिय भावुक जीव थे। वे अपने काव्य में दूर की कौड़िया लाने के फेर में नहीं पड़े। यद्यपि हमें उनके काव्य में लक्षणा व्यंजना आदि के प्रायः सभी रूप प्राप्त हुए हैं किन्तु सच पूछा जाय तो रहीम अभिधा के ही कवि हैं। उनका समस्त काव्य और विशेषतः नीति-काव्य अधिकांश रूप में अभिधा व्यापार पर आधारित है। अभिधा शब्द शक्ति के उदाहरण में उनके नीति-काव्य के अधिकांश दोहे प्रस्तुत किए जा सकते हैं। पाठक को दोहों का अर्थ समझने में या कथ्य का आत्मसात करने के लिए किसी प्रकार की मगजपच्ची नहीं करनी पड़ती। अधिकांशतः उनका सीधा सरल अर्थ सब की समझ में आसानी से आ जाता है।

अमर बेल बिनु मूल की प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि खोजत फिरिए काहि॥ ७—पृ० १

प्रस्तुत नीति के इस दोहे में 'मूल' 'प्रभु' इत्यादि शब्द अखण्ड अथवा रूढ़ 'प्रतिपालत' शब्द प्रकृति प्रत्ययादि के संयोग के कारण यौगिक तथा 'अमर बलि' एक विशिष्ट लता के अर्थ में रूढ़ हुआ योग रूढ़ शब्द है। इस अभिधा प्रधान दोहे में रहीम ने प्रभु विश्वास का सन्देश दिया है। दो अन्य दोहे लीजिए—

जब लगि वित्त न आपुनो तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अम्बुज अम्बु बिनु रवि नाहिन हित होय॥ ५८—पृ० ६
जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं लिपटे रहत भुजंग॥ ३८—पृ० ८

यहाँ उत्तम विप चन्दन मित्र रवि आदि शब्द रूढ हैं। ऐसे ही शब्दों का प्रयोग रहीम की भाषा शली का प्रतिनिधि गुण है। कुसग प्रकृति आदि शब्द यौगिक हैं और अम्बुज योग रुढि हैं जिसका अर्थ केवल कमल में रूढ हो गया हैं। वसे तो भुजग शब्द भी अनेकार्थी है। कोश में इसके साप जार, पति सीसा अश्लेषा नक्षत्र आठ की सख्या तथा विदूषक आदि अनेक अर्थ गिनाए गए हैं।[1] किन्तु यहां केवल एक ही अर्थ सर्प में सीमित है। अर्थ परिसीमन के अनेक कारण हैं। आचार्य विश्वनाथ ने मुख्यार्थ सकेत ग्रहण के व्याकरण उपमान कोश आप्तवाक्य व्यवहार वाक्यशेष विवृति तथा सान्निध्य—आठ कारण गिनाए हैं।[2] उपयुक्त उदाहरण में भजग का सर्प अर्थ चन्दन के सान्निध्य से जाना गया है। कु उपसर्ग व्याकरण में बुरे के लिए आता है अत कुसग का, बुरी सगति अर्थ व्याकरण के कारण प्राप्त हुआ है। रहीम अपने शब्दों का चयन कुछ इस प्रकार से करते है कि वे प्राय अपने रूढ अर्थ में ही सीमित रहते हैं। पाठक को कोष खोलने अथवा व्याकरण उठाने की आवश्यकता ही नहीं पडती किन्तु इस सरलता एव स्वाभाविकता में भी सहृदयों पर मार करने वाला न जाने क्या जादू भरा रहता है—

> रहिमन अँसुवा नयन ढरि जिय दुख प्रगट करेइ।
> जाहि निकारो गेह तें कस न भेद कहि देइ।। १६५—पृ० १६
> रहिमन तीन प्रकार ते हित अनहित पहचानि।
> परबस परे पडोस बस परे मामला जानि।। १६१—पृ० १६

लक्षणा—लक्षण और व्याख्या

शास्त्र लोक व्यवहार तथा काव्य में हम ऐसे असख्य प्रयोग देखते हैं जिनका अभिधा द्वारा साकेतिक अर्थ करने पर प्रयोक्ता के वास्तविक अभिप्राय तक नहीं पहुचा जा सकता। इसलिए ऐसे वचनों में मिलते जुलते अर्थ का अध्याहार कर लिया जाता है। महाभाष्यकार पतजलि ने प्रयोगादाय्यायाम सूत्र का भाष्य करते समय गगायाघोष अर्थात् गगा में आभीरों की बस्ती का उदाहरण दिया था। तब से यह उदाहरण इतना प्रचलित हुआ कि लक्षणा का निरूपण करते समय प्राय सभी साहित्य शास्त्रियों ने इसका प्रयोग किया है। गगा में बस्ती कहने पर शाब्दिक अर्थ होगा गगा में अर्थात् गगा की धार में बस्ती। परन्तु धार के बीच में कोई बस्ती टिक नहीं सकती। अत वाक्य का अर्थ होगा गगा के किनारे पर बस्ती। इसी प्रकार सभा में शेर दहाड रहा है से किसी निर्भीक व्यक्ति के भाषण करने तथा कलिंग वीर है से कलिंग देश के निवासियों की वीरता अभिप्रेत है। कारण न शेर सभा में उपस्थित

---

१ बृहत हिन्दी कोश (ज्ञानमण्डल वाराणसी) तृ०स० —पृ० १०१७

२ शक्ति ग्रह व्याकरणोपमान—
कोशाप्तवाक्याद व्यवहारतश्च।
वाक्यस्य शेषाद्विवृतेवदन्ति
सान्निध्यत सिद्धपदस्य वृद्धा। साहित्य दर्पण

होकर दगाह सकता है और न कोई देश (उसकी भूमि, जड प्रकृति तथा सीमा इत्यादि) वीर हो सकती है। इसी प्रकार 'सरला गऊ है तथा 'सुनील बैल है से सरला की सरलता तथा सुनील की मूखता का ज्ञान होता है। य अर्थ उक्त कथनों के प्राकृत, वास्तविक अथवा मुख्य अर्थ नही आरोपित अर्थ हैं। लक्षणा मे ये अमुख्य अथवा आरोपित अर्थ ही सन्निहित रहते है—

प्रयोजनाच्च मुख्येन अमुख्योऽर्थो लक्ष्यते यत
स आरोपित शब्द व्यापार सान्तराय निष्ठो लक्षणा।[1]

आचार्य मम्मट ने लक्षणा का वणन करते हुए, उसे निम्नलिखित रूप म परिभाषित किया है—

मुख्यार्थ बाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत सा लक्षणारोपिता क्रिया।[2]

अर्थात् मुख्यार्थ का बाध होने पर उसके साथ सम्बन्ध रखने वाला, रूढि अथवा प्रयोजन विशेष म जो अन्य अर्थ लक्षित होता है वह आरोपित व्यापार लक्षणा कहलाता है। अन्य आचार्यों के मत भी प्राय यही है—

मुख्यार्थ बाधे तद्युक्तो ययाऽन्योऽथ प्रतीयते।
रूढे प्रयोजनाद्वाऽसौ लक्षणा शक्तिरर्पिता॥ सा० दपण
मुख्यार्थानुपपत्तौ तद्योगे रूढितोऽथवाऽपि फलात।
अन्योऽर्थो यदि लक्ष्यो भवति तदालक्षणाऽभिमता॥—एकावली

हिन्दी विद्वानो के अपने विवरणो न संस्कृत आचार्यों का ही आधार बनाया है। ऐसे अनेक लक्षणों का एक ही स्थान पर उपयोगी विवेचन विद्वान लेखक डा० राममूर्ति त्रिपाठी ने लक्षणा और उसका हिन्दी-काव्य म प्रसार नामक ग्रंथ म किया है। वहीं स सवश्री सोमनाथ भिखारीदास तथा भानु के उदाहरण प्रस्तुत है—

मुख्यारथ को छोडि क, पुनि तिहि के ढिग और।
कहै जु अथ सुलक्षणा वृत्ति कहत कवि मौर॥—रस पीयूष
मुख्य अथ के बाध तें शब्द लाक्षणिक होत।
रूढ़ि और प्रयोजनवती, द्व लक्षणा उदोत॥—काव्य निणय
मुख्य अथ के बाध तें, पुनि ताही के पास।
और अथ जाते बन कहैं लक्षणा तास॥—काव्य प्रभाकर

हिंदी संस्कृत के सभी लक्षणो को देखने से स्पष्ट है कि लक्षणा के लिए तीन तत्त्व आवश्यक है—

१ मुख्य अथ अथवा अभिधेय अथ म बाधा।
२ उसी स मिलते जुलते किसी अन्य अथ की प्रतीति।
३ इस अथ की किसी रूढि अथवा वक्ता के प्रयोजन के आधार पर सिद्धि।

१ काव्य प्रकाश—द्वितीय उल्लास, पृ० ५२
२ वही सूत्र १२ पृ० ५१

[illegible]

[illegible]

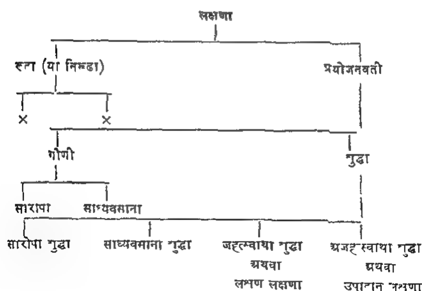
[illegible]

मुश्किल नहीं है। [illegible] भी [illegible] है। [illegible] प्रकार [illegible] लक्षणा व्यापार का विनियोग कुछ कम नहीं है। [illegible] के प्रमुख भेदों की दृष्टि से रहीम के [illegible] का अध्ययन करें।

लक्षणा के भेद

लक्षणा के भेद प्रभेदों पर [illegible] तथा [illegible] ने बड़े [illegible] ढंग से विचार किया है। साहित्य शास्त्रियों ने यहाँ भी [illegible] का ही साथ दिया है। [illegible] लक्षणा के अनेक भेद किए हैं। उनकी [illegible] साहित्य दर्पण जैसे [illegible] ग्रंथ में भी है। किन्तु इस विस्तार में न केवल अतिव्याप्ति है अपितु चमत्कार हीनता भी है। जैसा कि पूर्वोद्धृत परिभाषाओं से स्पष्ट है कि लक्षणा के मूल भेद दो ही हैं— रूढ़ा (निरूढ़ा) तथा प्रयोजनवती। प्रारम्भ में रूढ़ा के भेद नहीं किए गए थे। पश्चात्वर्ती आचार्यों ने रूढ़ा के दो भेद माने—गौणी और शुद्धा। साहित्यदर्पणकार ने इसके भी प्राय भेद प्रभेद करते हुए उनकी संख्या सोलह तक पहुँचा दी। परन्तु रूढ़ा का भेद वर्णन व्यर्थ का श्रम है। रूढ़ा में कोई चमत्कार नहीं होता। रूढ़ शब्द को देखते ही हम उसके इङ्गित अर्थ की प्रतीति होती है उसके वास्तविक अर्थ पर तो ध्यान ही नहीं जाता।

प्रयोजनवती लक्षणा गुण सादृश्य के आधार पर दो प्रकार की होती है—गौणी एवं शुद्धा। गौणी के भी विषय एवं विषयी (उपमेय और उपमान) की उपस्थिति एवं अनुपस्थिति के आधार पर सारोपा एवं साध्यवसाना नामक दो भेद किए जाते हैं। उधर प्रयोजनवती शुद्धा के चार भेद होते हैं—आरोप्य एवं आरोप्यमान दोनों की विद्यमानता के आधार पर प्रथम भेद सारोपा शुद्धा और द्वितीय साध्यवसाना शुद्धा। तीसरा और चौथा भेद मूल अर्थ से युक्ति एवं मुक्ति के आधार पर क्रमशः जहत्स्वार्था शुद्धा एवं अजहत्स्वार्था शुद्धा है। अप्पय दीक्षित ने अपने ग्रंथ 'वृत्तिवार्तिक' में इन दोनों के बीच का एक तीसरा भेद जहदजहत्स्वार्था की कल्पना की है। किन्तु नागेश भट्ट इस प्रकार की संभावना का खण्डन पहले ही कर चुके थे। कारण, यह किसी न किसी रूप में अन्य दो भेदों में ही समाहित हो जाता है। इस प्रकार शुद्धा और गौणी के अतिरिक्त चार प्रकार की शुद्धा और दो प्रकार की गौणी कुल मिला कर लक्षणा के आठ प्रमुख भेद होते हैं। चाहे तो इसमें से भी नागेश भट्ट के उक्त मत के आधार पर सारोपा शुद्धा तथा साध्यवसाना शुद्धा की छुट्टी कर सकते हैं क्योंकि वे भी किसी न किसी प्रकार से सारोपा गौणी और सारोपा साध्यवसाना से सम्बद्ध हो ही जाती है। अतः सब प्रमुख भेद छः ही रह सकते हैं। प्रचलित परम्परानुसार आठों भेदों को निम्नलिखित तालिका द्वारा सरलता से समझा जा सकता है—



रूढा (या निरूढा) लक्षणा और रहीम

शब्द और अर्थ का अध्ययन करने के पश्चात् भाषा विज्ञान इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि देश काल परिस्थिति प्रवाह प्रयोगादि के अनुसार शब्दों के अर्थ में

प्रसार सकोच उत्कर्ष अपकर्षादि होते रहते हैं।[1] प्राचीनकाल में कुशल का अर्थ कुशा घास को उखाडकर लाने की योग्यता अथवा क्षमता रखने वाला था किन्तु अब कुशल का कुशा से कोई सम्बन्ध नहीं है। अब इसका अर्थ है दक्ष। इसी प्रकार प्रवीण वीणा बजाने में निपुण से प्रत्येक कार्य की निपुणता में तथा अनुकूल किनारे किनारे से आगे आकर भाव साहचर्य के अर्थ में रूढ़ हो गया है। आचार्य मम्मट ने कर्म कुशल तथा आचार्य विश्वनाथ ने साहसी कलिंग आदि प्रयोगों को रूढ़ा के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है। चोर चौकन्ने हो गए, पंजाब लड रहा है तथा गांधी को पढ़ो इत्यादि प्रयोग आधुनिक समाज में रूढ़ हो चुके हैं। यहाँ चौकन्ने का अर्थ चार कान वाला न होकर सतर्क, पंजाब का अर्थ प्रान्त विशेष न होकर उसके निवासी तथा गांधी का अर्थ हाड मांस वाला व्यक्ति विशेष न होकर उसकी विचारधारा या गांधी जी के दर्शन से है। कालान्तर में प्रसिद्ध उपमान प्रतीक मुहावरे आदि अपने मूल प्रयोग से हटकर एक निश्चित अर्थ में रूढ़ हो जाते हैं। अतः रूढ़ा समय सापेक्ष है। जो शब्द आज नवीन है वह कालान्तर में रूढ़ि बन सकता है जो पहले नया था आज रूढ़ है। यही क्रम आदि काल से चला आ रहा है। यहाँ तक कि वेद तक में अनेक शब्द किसी अर्थ विशेष के लिए रूढ़ हो चुके थे। तमसोमा ज्योतिर्गमय इत्यादि में तम का अज्ञान, ज्योति का ज्ञान, मृत्यु का विनाश तथा अमृत का शाश्वतत्व आदि के अर्थ में प्रयोग रूढ़िगत ही है।

रहीम के काव्य में रूढ़ा लक्षणा का प्रचुर प्रयोग है। उनके द्वारा प्रयुक्त मुहावरा लोकोक्तियाँ तथा प्रतीकों के अधिकांश प्रयोगों को रूढ़ा के ही उदाहरण समझना चाहिए। निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं—

(क) जो रहीम मन हाथ है तो तन कहु किन जाय ॥ ७९—पृ० ८

(ख) जो विषया सतन तजी मूढ ताहि लपटाय ॥ ८३—पृ० ९

(ग) रीतहि सम्मुख होत है भरी दिखावै पीठ। १०८—पृ० १८

(घ) रहिमन थोरे दिनन को कौन करे मुख स्याह ॥ १९८—पृ० १९

इन पंक्तियों में क्रमशः मन का हाथ में होना इन्द्रिय निग्रह के विषयों से लिपटना उनमें संलग्न रहने के पीठ दिखाना विमुख होने के तथा मुख स्याह करना अपराधी होने के रूढ़िगत अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। दूसरी ओर मन का शरीर से बाहर निकलकर हाथ में आ जाना तथा निराकृति विषयों में लिपट जाना भौतिक एवं लौकिक दृष्टि से अपने शाब्दिक अर्थ में असम्भव है। अतः अर्थ की बाधा भी स्पष्ट है। कहने का तात्पर्य यह है कि उक्त सभी पंक्तियों में रूढ़ा लक्षणा है। इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियों में भी रूढ़ा के सुप्रसिद्ध शास्त्रीय प्रयोग देखे जा सकते हैं—

करत निपुनई गुन बिना रहिमन निपुन हजूर।
मानहु टेरत बिटप चढ़ि मो समान को कूर॥ २५—पृ० ,

बसि कुसंग चाहत कुसल यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटि समुद्र की रावन बस्यो परोस ॥ १२७—पृ० १३

1 भाषा विज्ञान डा० श्यामसुन्दर दास (तृ० सं०) पृ० २४७ से २४९

२ प्रयोजनवती लक्षणा और रहीम

रूढ़ा लक्षणा के अतिरिक्त लक्षणा का दूसरा मूल भेद प्रयोजनवती लक्षणा है। यहाँ लक्ष्यार्थ की सिद्धि किसी रूढ़ अथवा प्रसिद्धि के कारण नहीं अपितु वक्ता के विशेष प्रयोजन के कारण उपलब्ध होती है। मुख्य अर्थ के बाधित होने पर जो उससे मिलता-जुलता अर्थ लगाया जाता है उसमें वक्ता का विशेष प्रयोजन सन्निहित रहता है। इसलिए इसका नाम प्रयोजनवती रखा गया है। अतः स्पष्ट है कि रूढ़ा एवं प्रयोजनवती का अन्तर इतना ही है कि रूढ़ा का आधार कोई रूढ़ि अथवा जन प्रसिद्धि होता है जबकि प्रयोजनवती का आधार कवि का विशेष प्रयोजन या तात्पर्य है। मम्मट तथा विश्वनाथ दोनों ने ही 'गंगा में घर' को इसके उदाहरण में प्रस्तुत किया है क्योंकि वहाँ वक्ता का उद्देश्य गंगा की धार का सामीप्य प्रकट करता है। सर पर चढ़े रहना, छाती पर सवार रहना आदि वर्तमान प्रयोग भी ऐसे ही हैं। किसी व्यक्ति की वीरता कायरता लम्बाई तथा मूर्खता आदि प्रकट करने के लिए उसे शेर गीदड़ ऊँट तथा बैल बताने में भी प्रयोजनवती ही सन्निहित रहती है।

प्रयोजनवती जब रूप आकार धर्मादि की समता अर्थात् गुण सादृश्य पर आधारित हो तब गौणी कहलाती है—गुणतः सादृश्यसम्भवा प्रवृत्ति निमित्त ॥ एकावली ॥ साहित्य दर्पण के अनुसार इसका प्रमुख आधार है दो नितान्त भिन्न वस्तुओं में सादृश्य की अतिशयता के कारण भेद का दिखाई न देना। मुख का चन्द्रमा तथा कर का कमल कहने में गुण सादृश्य के कारण गौणी ही होती है। गुण सादृश्य से विशुद्ध (भिन्न) सम्बन्धों के आधार पर शुद्धा नाम दिया जाता है। ये सम्बन्ध कई हो सकते हैं जैसे गंगायामघोष में सामीप्य कर मुही वणी म (उगनिया के लिए कर के प्रयोग के कारण) अगागिभाव सम्बन्ध तथा बढ़ई का काम करने वाले ब्राह्मण को भी बढ़ई कहना तात्कर्म्य सम्बन्ध है। पूर्व निर्दिष्ट विभिन्न भेद प्रभेदों के आधार पर रहीम के नीति काव्य का अध्ययन निम्नलिखित है।

सारोपा गौणी प्रयोजनवती लक्षणा और रहीम

सारोपा का अर्थ है आरोप को साथ रखने वाली। जिस लक्ष्यार्थ में आरोप्य (उपमेय) और आरोप्यमान (उपमान) साथ साथ प्रयुक्त होते हैं उसे सारोपा कहते हैं। आचार्य मम्मट ने उपमेय और उपमान के लिए विषयी एवं विषय का प्रयोग करते हुए यही लक्षण दिया है -सारोपान्या तु यत्रोक्तौ विषयी विषयस्तथा।[1] कविवर भिखारीदास ने सारोपा का लक्षण देते हुए लिखा है—

> और थापिए और कहँ बयो हूँ समता पाइ।
> सारोपा सो लच्छना कहँ सकल कविराय ॥ —काव्य निर्णय

यह आरोप जब ऊपर लिखे गौणी लक्षण के अनुसार सादृश्य सम्बन्ध पर आधारित रहता है तब गौणी सारोपा कही जाती है। शेखर कवि ने सारोपा का जो

१ काव्य प्रकाश २ ११

लक्षण किया है वह वास्तव में गौणी सारोपा का लक्षण है—

जहँ जाको आरोप ते दोउ पद पाइए।
सदृश वस्तु कहि ओप सारोपा सो लक्षणा ॥—रसिक विनोद

रहीम के नीति काव्य में आरोप्य और आरोप्यमान की सादृश्याधारित सहव्याप्ति अनेक दोहों में देखी जा सकती है। सुन्दरियों के नेत्र-बाणों से सुरक्षित रहने का एकमात्र उपाय वे भगवान के चरण-कमलों की ओट को समझते हैं। दृग रूपी दो दो दीपकों के जलते हुए भी स्नेह को छुपा सकना रहीम की सम्मति में असंभव है। कामदेव के घोड़े पर सवार होना अग्नि-पथ की यात्रा के समान खतरनाक है—

कहु रहीम जग मारियो नैन बान की चोट।
भगत भगत कोउ बचि गये चरन कमल की ओट ॥ २८—पृ० ३
कहु रहीम एक दीप तें प्रगट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै दृग दीपक जुरी दोय ॥ ३०—पृ० ३
रहिमन मन तुरग चढ़ि चलिबो पावक माहि।
प्रेम पथ ऐसो कठिन सब कोउ निबहत नाहि ॥ २१७—पृ० २१

यहाँ भेदकता के गुण के कारण नैन पर बाण का, पवित्रता कोमलता सुन्दरतादि गुणों के कारण चरण पर कमल का, प्रकाशकतादि गुण के कारण दृग पर दीपक का तथा चांचल्य गुण के कारण कामदेव पर तुरग का आरोप किया गया है। अत गौणी लक्षणा स्पष्ट है। साथ ही उपमेय और उपमान दोनों ही साथ साथ उपस्थित हैं। अत सारोपा भी है। कुल मिलाकर ये दोहे सारोपा गौणी लक्षणा के सुन्दर उदाहरण हैं। वस्तुत सारोपा लक्षणा शक्ति और रूपक अलंकार प्राय एक ही वस्तु है। अत ये दोहे रूपक अलंकार के भी उदाहरण हैं।

साध्यवसाना गौणी प्रयोजनवती लक्षणा और रहीम

अवसान का अर्थ है समाप्ति और अध्यवसान का अर्थ है पूरी प्रकार से समाप्ति। कभी कभी कवि अतिशय एकता का चमत्कारिक आख्यान करने के लिए उपमेय का सर्वथा अध्यवसान करके केवल उपमान की विद्यमानता से अपना प्रयोजन सिद्ध करता है। इस अवसर पर साध्यवसाना रहती है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार विषयी के द्वारा तिरोहित (निगीर्ण) हुई विषयवस्तु की उसी से तादात्म्य प्रतीति साध्यवसाना है।[1] रसगंगाधर के हिन्दी व्याख्याकार पुरुषोत्तम चतुर्वेदी के शब्दों में विषय और विषयी में से एक को दबा कर दूसरे को उसमें अभेद मान लेना अध्यवसान कहलाता है। यह जहाँ हो वहाँ अध्यवसाना है। किन्तु इस परिभाषा में केवल मात्र विषयी की उपस्थिति पर बल न दिया जाने से परिभाषा अपूर्ण रह गई है। पण्डितराज द्वारा उद्धृत पंक्ति है "पुर हिमकर सौध शिखर चन्द्रमुखी विराजत।" अर्थात् इस पुर के महलों की छतों पर चन्द्रमाओं की पंक्ति विराजमान हो रही है। प्रकृति में केवल एक ही चन्द्रमा के होने से चन्द्रमा की पंक्तियों का उपर्युक्त अर्थ बाधा उपस्थित

1 साहित्य दर्पण २ ९

कर रहा है। वस्तुत कवि का तात्पर्य चन्द्रमुखी सुन्दरियों की पंक्तियों से है। कथन केवल उपमान का है उपमेय का सर्वथा अध्यवसान है। और चूंकि चन्द्र एवं मुख में गुण सादृश्य है अत गौणी भी है। इस प्रकार यह पंक्ति गौणी साध्यवसाना लक्षणा की है।

रहीम ने भी कुछ दोहों में केवल उपमान को कहकर ही अपना अभिप्राय सिद्ध किया है। वे शरीर को कागज के पुतले जैसा क्षणिक मानते हैं जो केवल मृत्यु रूपी रात्रि की नमी (ओस) पाते ही घुल जाता है। आश्चर्य यह है कि यह पुतला वायु चखता है—

कागद को सो पूतरा, सहजहि मे घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो सोऊ खेंचत बाय॥ ३५—पृ० ६
स रहीम अब कौन है ऐसो खचत बाय।
इस कागद को पूतरा, नमी माहि घुल जाय॥ ८९—पृ० ६

यहां उपमेय शरीर की सर्वथा परिसमाप्ति तथा क्षणभगुरतादि के गुण सादृश्य पर आधारित केवल उपमान अर्थात् कागज के पुतले का वर्णन है। अत इन दोहों में गौणी साध्यवसाना का सौन्दर्य है।

सारोपा शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा और रहीम

यह निवेदन किया जा चुका है कि सादृश्येतर सम्बन्धों में शुद्धा होती है। वे भाले घुसे चले आ रहे हैं तथा इन लाल टोपियों ने तंग कर रखा है इत्यादि में भालों से तात्पर्य भाले लिए आक्रमणकारियों तथा लाल टोपियों से तात्पर्य उन्हें धारण करने वाले पुलिस के सिपाहियों से है। निश्चित ही यहां विषय एवं विषयी में धार्य धारक सम्बन्ध है। अत ये वाक्य शुद्धा सारोपा के अच्छे उदाहरण हैं। रहीम के निम्नलिखित दोहों पर ध्यान देने से ज्ञात होगा कि उनके दोहों में लक्षणा के इस भेद का सफल एवं सुष्ठु प्रयोग हुआ है। दो० इस प्रकार हैं

रहिमन यह तन सूप है लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़िजान दे गरुए राखि बटोर॥ २१६—पृ० २२
विरह रूप धन तम भयो अवधि आस उद्योत।
ज्यों रही भादों निसा चमकि जात खद्योत॥ २४७—पृ० २४
मनसिज माली की उपज, कहि रहीम नहि जाय।
फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर आय॥ १३६—पृ० १४
कहि रहीम सम्पत्ति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
विपति कसौटी जे कसे, सोही साचे मीत॥ ३१—पृ० ८

इन सभी दोहों में उपमान और उपमेय दोनों की विद्यमानता होने के कारण सारोपा है। साथ ही तन पर सूप के विरह पर तम के अवधि आस पर उद्योत के मनसिज पर माली के विपत्ति पर कसौटी के आरोप से यह सिद्ध है कि आराप्य तथा आरोप्यमान में सादृश्य गुण से भिन्न सम्बन्ध है। अत शुद्धा है। कुल मिलाकर दोहों में शुद्धा सारोपा का सुन्दर विनियोग हुआ है।

साध्यवसाना शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा और रहीम

साध्यवसाना का लक्षण ऊपर दिया जा चुका है। यहाँ इस सम्बन्ध में इतना उल्लेखनीय और है कि साध्यवसाना में रूपणा तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकार माना जाय एक ही है यद्यपि रूपकातिशयोक्ति में भी केवल उपमान द्वारा ही उपमेय का बोध करा दिया जाता है—रूपकातिशयोक्तिरन्यादृरूप्य रूपक मध्यमम्। दास जी ने साध्यवसाना के लक्षण देने के पश्चात्[1] उसका एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

बरनि कहा बिछावती फिरि फिरि सेज कृसानु।
सुंघै न मेरे प्राण धन चहत काम बहु जानि॥

दासजी के ब्रजभाषा तिलक टीकाकार ने इसे शुद्धा साध्यवसाना का ही उदाहरण माना है[2] जो सर्वथा उचित है क्योंकि यहाँ प्रिय उपमान के साथ सेज पर बिछाये जाने वाले फूलों के लिए कृशानु (अग्नि) का सुन्दर प्रयोग हुआ है। शुद्धा सारोपा के प्रसंग में उद्धृत मानिक मोती क्योंकि दोहे के तीसरे चरण में श्यामा के उरोज के लिए मात्र उपमान फल (श्रीफल) का उल्लेख है। अतः यहाँ साध्यवसाना ही है। एक दोहे में रहीम ने चिन्ता के लिए सादृश्य से भिन्न अन्तर्दाह (आन्तरिक अग्नि) का प्रयोग किया है किन्तु चिन्ता का उल्लेख न होने के कारण यहाँ भी शुद्धा साध्यवसाना है।

अंतर दाव लगी रहे धुआँ न प्रगट सोय।
कै जिय जाने आपुनो जा सिर बीती होय॥ २१—पृ० ३१

इसी प्रकार भक्ति निवेदनात्मक निम्नलिखित दोहे में भी प्रकारान्तर से शुद्धा साध्यवसाना ही है—

मुनि नारी पाषाण ही कपि पशु गुह मातंग।
तीनों तारे रामजू तीनों मेरे अंग॥ १४८—पृ० १५

जहत्स्वार्था शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा और रहीम

जहत्स्वार्था की व्युत्पत्ति मूलक अर्थ होगा छोड़ दिया है अपना अर्थ जिसने ऐसी। जहाँ लक्ष्यार्थ सिद्धि के लिए मुख्यार्थ का साथ बिलकुल छोड़ दिया जाता है वहाँ जहत्स्वार्था लक्षणा होती है। इसी का दूसरा नाम लक्षण लक्षणा है। यहाँ भी लक्षण से तात्पर्य मूल अर्थ के त्याग—स्वसमर्पणम्—से है। गंगा में घरती का प्रसिद्ध उदाहरण जहत्स्वार्था का भी उदाहरण है क्या वहाँ मैं अपना अर्थ खोकर तट

---

१ जाकी समता कहन को, यहै मुख्य कहि देइ।
साध्यवसाना लच्छना, बिय नाम नहीं लेइ॥ काव्य निर्णय, पृ० २५।

२ बरनि सखी का कृसान फूल को औरु प्राणधन पति का कह्यौ प सखी फूल और पति सूँघे न कह्यौ, जातै साध्यवसाना लच्छना कहिये। यहा केवल आरोप्यमान रहवे सो साध्यवसाना और सादृश्य-सम्बन्ध के न रहने के कारन शुद्धा प्रयोजनवती है॥—वही पृ० २५

पर का अर्थ धारण कर लेता है। विपरीतायक प्रयोगों म जहत्स्वार्था ही काय करती है। किसी अनर्थकारी को देखकर यह कहना कि 'आपने तो मेरा बड़ा उपकार किया है अथवा किसी वज्र मूर्ख को वृहस्पति का अवतार बना देना, जहत्स्वार्था ही है। रहीम के नीति-काव्य म इस प्रकार लाक्षणिक प्रयोग बहुत अधिक हैं।¹ कुछ पंक्तियाँ लीजिए—

फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर आय। १३९—पृ० १४
प्रथम वचन ते को फल्यो, बठ ताड की छाँह॥ २—प०१
जसी सगत बठिए तसोई फल लीन। २२—प० ३
देखि दगन जो आदर, मन तेहि हाथ बिकान। १४०—प० १४
जो रहीम पगतर परो, रगरि नाक अरु सीस। ८१—प० ८

यहाँ क्रमश फूल ने अपने सुमन का, फल्यो तथा फल न पेड़ पर लगने वाले फल का, बिकन न विक्रय का तथा रगडन न घिसन का अर्थ एकदम छोड़ कर प्रसन्न होने, उत्तम परिणाम प्राप्त करने, आधीन होने तथा दय प्रगट करने का अर्थ ग्रहण किया है। अत यहा जहत्स्वार्था है। सभी पंक्तियों के आधार सादृश्येतर होने के कारण शुद्धा से सम्बद्ध हैं। अत इन पंक्तियों म जहत्स्वार्था शुद्धा का सुदर विलास देखा जा सकता है।

अजहत्स्वार्था शुद्धा प्रयोजनवती और रहीम

जिस प्रकार जहत्स्वार्था का अर्थ है अपने अभिधेयार्थ को छोड़ने वाली उसी प्रकार अजहत्स्वार्था का अर्थ है अपने अर्थ को न त्यागकर उससे सम्बद्ध रहने वाली। लक्षणा के भेद म अर्थबाध होने हुए भी थोड़ा बहुत अपने मूल अर्थ से सम्बन्ध रहता ही है। इसीलिए इसे उपादान लक्षणा भी कहते हैं। उप अर्थात् थोड़ा तथा आदान अर्थात् लेना अथवा बनाए रखना। अत स्पष्ट है कि जिन लाक्षणिक प्रयोगों म शब्द अपने अभिप्रेत अर्थ की सिद्धि के लिए भिन्न अमुख्य अर्थ का ग्रहण करते हुए भी मूल से सर्वथा पृथक नहीं हो जाता वहा अजहत्स्वार्था होती है। यहा आधार और आधेय भाव की प्रमुखता रहती है। कदाचित इसलिए सोमनाथ न कहा था—

आधार रु आधेय को जहाँ जानिए भाउ।
तहाँ उपादान कहत हैं रसिक सुबुद्धि सुभाउ॥—रसपीयूष

मम्मट ने इस का उदाहरण कुन्ता प्रविशन्ति अर्थात् भाले चले आ रहे हैं दिया है। यहाँ भाले से तात्पर्य है भाले धारण किए हुए व्यक्ति। विश्वनाथ न अजहत्स्वार्था का उदाहरण दिया है— 'कौआ से दही की रक्षा करो'। वहा कौआ के साथ अन्य सभी दधि भक्षी पक्षियों से अभिप्राय है। बाबू गुलाबराय न द्वार रुकाए रहना को शुद्धा उपादान लक्षणा के उदाहरण म प्रस्तुत किया है और बताया है कि द्वार का अर्थ न केवल दरवाजा अपितु घर आगन सभी कुछ है। हम समझते हैं कि कुर्सी को

१ रहीम रत्नावली दोहा स० ६६ ७९, ८१ ८३ १३४, १४० १५६ १५९ २२९ तथा २५३

सलाम है तथा 'गाधी टोपी जीत गई' इत्यादि वाक्या म सुदर अजहत्स्वार्था है क्योकि कुर्सी का अथ है कुर्सी स सम्बद्ध अधिकारी तथा गाधी टोपी स अभिप्राय है उसके धारक काग्रेस पार्टी के सदस्य।

लक्षणा का यह रूप रहीम के काव्य म सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ है। उन्होने लाक्षणिक प्रयोगो म पाठक को कुछ इस प्रकार का मसाला प्रदान किया है कि वह सरलतापूर्वक लाक्षणिकता का आस्वाद लेते हुए वास्तविक प्रयोजन तक पहुँच जाता है। रहीम दोहावली का शायद ही ऐसा कोई पृष्ठ हो जिसम अजहत्स्वार्था के उदाहरण न खोजे जा सक। यहाँ उदाहरण के लिए कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत है—

टूटे स्वजन मनाइए जो टूटें सौ बार। ८५—पृ० ६
ऊगत जाही किरन सो अथवत ताही भाँति। १५—पृ० २
कहि रहीम धन बढि घटे जात धनिन की बात। २९—पृ० ३
कौन बडाई जलधि मिलि, गग नाम भो धीम। ४३—पृ० ४
जिहि प्रबल दीपक दुरयो हन्यो सो ताही गात। ६२—पृ० ७
जसे दीपक तम भखै कज्जल वमन कराय। १७६—पृ० १८
भावी काहू ना दही भावी दह भगवान। १३४—पृ० १३

इन सभी उदाहरणो म रेखाकित शब्दो के अथ बाधित हैं। सम्बन्धी शीशे के बनन नही जो टूटेंगे। अत टूटन का अथ होगा पृथक होना नाराज होना इत्यादि। उगता है बीज, किन्तु सूय के अथ म उसका अथ होगा निकलना चढना उन्नत होना। बात क पर नही जो जायगी अत बात जान का अथ है सम्मान का चल जाना या समाप्त होना। धीमी गति या चाल होती है नाम नही अत नाम के साथ उसका अभिप्राय है अस्तित्व का विलय। हनना मारने या वध करने के लिए प्रयुक्त होता है। दीपक के साथ उसका प्रयोग बाधित है। अत यहाँ सम्याथ है बुझना। भखन का अथ भक्षण करना खाना परन्तु दीपक जसा जड पदाथ क्या खा पायगा। अत यहाँ अभिप्राय समाप्त करना हरना इत्यादि। दहन का अथ है जलना। भाग्य या भावी अग्नि नही जो जला डालगी। अत यहाँ दहन का प्रयोजन उन सभी कष्टो पीडाओ आपत्तियो म है जो जलन स अनुभव हो सकती हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि य सभी प्रयोग बाधित होत हुए भी किसी न किसी प्रकार अपने मुख्याथ स सम्बद्ध ह। य सम्बन्ध भी सादृश्य स भिन्न ह। अत निश्चित ही इन प्रयोगो म शुद्धा अजहत्स्वार्था ह।

इस अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि रहीम का नीति काव्य लाक्षणिक प्रयोगो स भरपूर है। शब्द शक्तियो के दरबार म लक्षणा के परिवार के लिए जुटाए गए सभी आसनो पर रहीम के शब्द अपनी स्वाभाविक सजधज एव गरिमा मय आभा के साथ आसीन हो सकते हैं।

रहीम के काव्य का व्यजना सौन्दय

अभिधा और लक्षणा शक्तियो का क्षेत्र सीमित है। इन दोनो की काय समाप्ति के पश्चात शब्द की जिस तीसरी शक्ति का सहारा लिया जाता है उसे व्यजना कहते

हैं। जिस अर्थ को न अभिधा पाती है न लक्षणा खोल सकती है उसे व्यंजना निर्दिष्ट कर देती है। व्यंजना का अर्थ ही है विशिष्ट अंजन। जिस प्रकार आँख में अंजन लगाने से धुंधलापन समाप्त हो जाता है और दूर के उपकरण अथवा पास की सूक्ष्म वस्तुएँ स्पष्ट दिखाई पड़ने लगती हैं उसी प्रकार व्यंजना शक्ति से काव्य में निहित सूक्ष्म अर्थ-सौंदर्य प्रगटित हो जाता है। डॉ० भोलाशंकर व्यास के अनुसार 'यह (व्यंजना) वह शक्ति है जो पहले से ही विद्यमान किन्तु गूढ़ सौंदर्य को उसी प्रकार प्रगट कर देती है जिस प्रकार अवगुण्ठन के हटने पर रमणी-मुख चमकने लगता है।'[1] यह कथन कुछ उसी प्रकार का है जिस प्रकार ध्वनिकार ने ध्वनि के सम्बन्ध में कहा था। वस्तुतः — ध्वनि की स्थापना का अर्थ व्यंजना की स्थापना ही है।[2] इसीलिए व्यंजना से प्राप्त अर्थ को ध्वन्यर्थ भी कहते हैं। ध्वन्यर्थ के अतिरिक्त उसे सूच्यार्थ, आक्षेपार्थ, प्रतीयमानार्थ आदि नाना संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है। यह विशिष्ट अर्थ न केवल शब्द में अपितु अर्थ में भी सन्निहित रहता है। इस तथ्य का उल्लेख आचार्य विश्वनाथ ने व्यंजना की परिभाषा के साथ ही कह दिया था—

विरता स्वभिधाद्यासु ययार्थो लभ्यते परः।
सा वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च॥

अर्थात् अभिधादि शक्तियों के निवृत्त हो जाने पर जिस अन्य अर्थ का बोध होता है उस वृत्ति को व्यंजना कहते हैं। और वह न केवल शब्द में अपितु अर्थादि में भी रहती है। यह स्मरणीय है कि अभिधा एवं लक्षणा दोनों शब्दाधारित शक्तियाँ हैं जबकि लक्षणा शब्द से साथ अर्थाधारित भी है।

नागेश भट्ट तथा अप्पय दीक्षित का व्यंजना-विवेचन

व्यंजना विवेचन में नागेश भट्ट तथा अप्पय दीक्षित के योगदान का अपना ही महत्व है। उन्होंने पहिले ही स्पष्ट कर दिया था कि व्यंजना हमें मुख्य अर्थ से सम्बन्ध रखने वाले अर्थ के साथ ही उससे सम्बन्ध न रखने वाले अर्थ का भी समझा देती है। इसीलिए व्यंजना द्वारा प्राप्त अर्थ सूक्ष्म से सूक्ष्मतर एवं मधुर से मधुरतर होना हुआ आगे बढ़ता है। हाँ इतना अवश्य है कि व्यंजना सहृदयहृदयानुरंजक व्यापार है जो वक्ता एवं श्रोता दोनों की विशिष्ट प्रतिभा पर आधारित रहता है। नागेश ने तो इसे न केवल सहकारी अपितु परम्परया कारण तक कह दिया था। सत्य भी यही है। क्योंकि प्रतिभा एवं विशेष ज्ञान के अभाव में व्यंजना सम्भव ही नहीं है। इसीलिए इन प्रतापसिंह ने अधिक से अधिक अर्थ-बाहुल्य को व्यंजित करने वाली शक्ति कहते हुए तिय-कटाक्ष से उपमित किया था—

जहाँ शब्द ते अर्थ बहु अधिक अधिक दरसाय।
तिय कटाक्ष सौं व्यंजना कहत सकल कविराय॥—काव्यार्थ कौमुदी

---

1 ध्वनि सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त—भाग १ डा० भोलाशंकर व्यास (ना० प्र० स० काशी) पृ० १८१

2 हिंदी ध्वन्यालोक डा० नगेन्द्र, प्रस्तावना, पृ० २८

इन तथ्यों को एक प्राचीन उदाहरण से समझा जा सकता है। किसी ने कहा 'सूर्य डूब गया'। अभिधा सूर्य का डूबना बताकर समाप्त हो गई। किन्तु सूर्य कोई व्यक्ति नहीं जो डूबेगा। अतः लक्षणा ने रूढ़ि एवं जन प्रसिद्धि का सहारा लेकर बता दिया कि सन्ध्या हो गई। यहीं शक्ति द्वय का व्यापार समाप्त है। अब व्यंजना का कार्य क्षेत्र प्रारम्भ हुआ और उसने वक्ता एवं श्रोतादि की विभिन्नता से अनेक अर्थ हमारे सम्मुख उपस्थित कर दिए। यदि वक्ता वर्णि मनावलम्बी है तो अर्थ लगा — चलो सन्ध्या करें। यदि सगुणोपासक निष्ठावान भक्त है तो समझेगा—'आनन्द कन्द भक्तवत्सल भगवान की आरती उतारें'। यदि मुसलमान है तो यही शब्द मगरिब की नमाज अदायगी का संकेत देंगे। यदि विद्यार्थी है तो अर्थ होगा पाठ बन्द करो। यदि गृहिणी है तो समझेगी—सन्ध्या दीप जलाने का समय हो गया। यदि कुलटा है तो अभिसारादि की तैयारी का अर्थ लगेगी। यदि चोर है तो अर्थ होगा—सेंध कुम्बल आदि के लिए ठौर-ठिकाना खोजो। मजदूर है तो तात्पर्य होगा काम बन्द करो इत्यादि इत्यादि। एक ही वाक्य से उत्तर गीत अर्थ से पृथक इतने अधिक इतने सूक्ष्म और इतने व्यंग्यपूर्ण अर्थ व्यंजना ही दे सकती है। इसीलिए आचार्य भिखारीदास ने कहा था—

सूधो अर्थ जु वचन को तिहि तजि औरे बैन।
समुझि परै तिहि कहत हैं सक्ति बिंजना ऐन ॥—का० निर्णय

व्यंजना के भेद

यह सिद्ध हो चुका है कि व्यंजना का कार्य क्षेत्र अभिधा और लक्षणा के समान केवल शब्द तक सीमित नहीं है अपितु शब्द और अर्थ दोनों तक विस्तृत है। इसी आधार पर व्यंजना के दो प्रमुख भेद किए गए हैं—शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना। शाब्दी व्यंजना सामान्यतः शब्द पर आधारित रहती है और आर्थी व्यंजना अर्थ पर। न शब्द के बिना अर्थ का अस्तित्व सम्भव है और न अर्थ के बिना शब्द का। डा० भागीरथ मिश्र का कथन है कि शब्द और अर्थ गत ये दो भेद कहने को हैं। क्योंकि आर्थी में भी शब्द है और शाब्दी में भी अर्थ है। और जब दोनों में शब्द अर्थ हैं, तो फिर शाब्दी और आर्थी भेद क्या महत्त्व रखते हैं।[1] डा० सत्यदेव चौधरी का कथन भी उल्लेखनीय है— इन दोनों भेदों का अभिप्राय यह नहीं है कि शाब्दी व्यंजना में केवल शब्द ही और आर्थी व्यंजना में केवल अर्थ ही व्यंग्यार्थ के प्रतिपादन में व्यंजक होते हैं अपितु दोनों अवस्थाओं में शब्द और अर्थ व्यंजक होकर एक दूसरे के सहायक बनते हैं। हाँ शाब्दी व्यंजना में व्यंजक शब्द की प्रधानता रहती है और व्यंजक अर्थ की गौणता और आर्थी व्यंजना में व्यंजक अर्थ की प्रधानता रहती है और व्यंजक शब्द की गौणता। यह प्रधानता ही शाब्दी अथवा द्वितीय उल्लास के आर्थी नामों का कारण है।[2] यह कथन नितान्त उचित है। स्वयं मम्मट ने भी

१ काव्यशास्त्र डा० भागीरथ मिश्र पृ० २१५
२ भारतीय काव्यशास्त्र डा० सत्यदेव चौधरी पृ० ७२

द्वितीय उल्लास के अंत में स्वयं यह संकेत कर दिया है—

> यत सोऽर्थांतरयुक् तथा।
> अर्थोऽपि व्यञ्जकस्तत्र सहकारितया मत ॥[1]

शाब्दी व्यंजना

जहाँ व्यंग्यार्थ किसी शब्द विशेष पर निर्भर रहता है वहाँ शाब्दी व्यंजना होती है। उस शब्द विशेष के स्थान पर यदि उसका पर्यायवाची शब्द रख दिया जाय तो व्यंजना समाप्त हो जाती है। स्पष्ट है कि ऐसा तभी होगा जब शब्द अनेकार्थक हो। आर्थी व्यंजना के लिए इस प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है। यह भाषा की निजी सौंदर्य सम्पत्ति है तथा कवि के शब्द चयन कौशल की विशेष अपेक्षा रखती है। इसीलिए दूसरी भाषा में शाब्दी व्यंजना युक्त कविता का अनुवाद करना यदि एकदम असम्भव नहीं तो नितान्त कठिन अवश्य ही हो जाता है। कहा नहीं जा सकता कि बाबर जैसे शब्द शिल्प कुशल कवि की तुर्की कृति का फारसी अनुवाद करते समय रहीम ने बाबर की शब्द व्यंजना युक्त पंक्तियों के अनुवाद में सौंदर्य निर्वाह किस प्रकार किया होगा। परन्तु उनके निजी काव्य में शाब्दी व्यंजना का निर्वाह कुछ दोहों में बहुत ही सुंदर हुआ है। एक उदाहरण लीजिए—

> कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
> पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय ॥ २३—पृ० ३

यहाँ लक्ष्मी का चांचल्य वर्णित है किन्तु उसमें आगे भी कुछ व्यंजना है जो वृद्ध विवाह के दुर्गुण व्यक्त कर रही है। ऐसा पुरुष पुरातन शब्द के विशेष प्रयोग के कारण संभव हुआ है। विष्णु एवं वृद्ध आदि अनेकार्थक इस शब्द के स्थान पर यदि हरि पुण्डरीकाक्ष, कमलापति अथवा वृद्ध बूढ़ा आदि शब्द रख दिये जाएँ तो ध्वनि सौन्दर्य नष्ट हो रहेगा। अतः शब्दाधारित होने के कारण यहाँ व्यंजना शाब्दी है, आर्थी नहीं। इसी प्रकार निम्नलिखित दोहों में भी भगत (प्रभु भक्त तथा भागते भागते) और गुन (गुण या रस्सी) आदि दो अर्थ रखने वाले शब्दों के प्रयोग के कारण शाब्दी व्यंजना है। क्रमशः कपट वासना के ऊपर भक्ति का तथा दुराव के ऊपर बुद्धि कौशल का महत्व व्यंग्य है। दोहे इस प्रकार हैं—

> कहि रहीम जग मारियो, नैन बान की चोट।
> भगत भगत कोउ बचि गयो, चरन कमल की ओट ॥ २८—पृ० ३
> गुन ते लेत रहीम जन सलिल कूप ते काढ़ि।
> कूपहुँ ते कहुँ होत है मन काहू को बाढ़ि ॥ ५०—पृ० ५

श्लेष अलंकार तथा शाब्दी व्यंजना

श्लेष अलंकार और शाब्दी व्यंजना दोनों ही अनेकार्थक शब्द के प्रयोग पर आधृत हैं। अन्तर केवल यह है कि श्लेष अलंकार में कवि को शब्द के एकाधिक अर्थ

1 काव्य प्रकाश उल्लास २ सूत्र ३८ पृ० ८१

स्वत वांछित रहते हैं, जबकि शाब्दी व्यंजना में ऐसा प्रायः नहीं होता। श्लेष युक्त छन्द में भाव पूरा ही नहीं हो सकता यदि शब्द के दोनों अर्थ न लिए जाँय। किन्तु शाब्दी व्यंजना में यह अनिवार्यता नहीं। हम रहीम के काव्य से ही दोनों का अन्तर स्पष्ट कर सकते है। रहीम का निम्नलिखित सुप्रसिद्ध दोहा लीजिए—

ज्यो रहीम गति दीप की कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगे बढे अँधेरो होय॥ ७८—पृ० ८

यहाँ दीपक तथा कपूत का सम्बन्ध सिद्ध ही नहीं होगा जब तक कि बारे (बचपन तथा बालना) तथा बढे (आयु में बढ़ने तथा बुझने) के दोनों अर्थ न लिए जाय। अतः यहाँ दोनों अर्थ कवि का स्वतः वांछित है। इसी प्रकार उनका दूसरा दोहा लीजिए—

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे मोती मानस चून॥

उनके 'रहिमन पानी राखिए ... इत्यादि दोहे में जब तक पानी के तीनों अर्थ—चमक हया (मान) तथा जल न लेंगे कवि द्वारा गिनाये गये क्रमशः मोती मानस और चून का उल्लेख ही अर्थ प्रद न होगा। अतः यहाँ भी श्लेष अनिवार्य है और उसकी अनिवार्यता कवि को अपेक्षित है। दूसरी ओर ऊपर ध्वनि प्रसंग के दोहों के भगत भगत तथा गुन आदि शब्दों के दोनों अर्थ न भी करें तब भी अर्थ में कोई बाधा उत्पन्न न होगा। हाँ यदि सहृदय पाठक इनका दूसरा अर्थ भी लें तो विशेष काव्य चमत्कार आह्लाद और आनन्द आयेगा। 'कमला थिर न रहीम ... इत्यादि दोहे में तो पुरुष पुरातन के दोनों अर्थ करने पर इस काव्यानन्द की सीमा नहीं रहती। हम समझते है कि श्लेष तथा शाब्दी व्यंजना का अन्तर स्पष्ट करने के लिए यह विवेचन पर्याप्त है।

शाब्दी व्यंजना अर्थ निश्चयन और रहीम

काव्य शास्त्र में शाब्दी व्यंजना के प्रसंग में (कहीं कहीं अभिधा प्रसंग में भी) उन व्यापारों का भी उल्लेख किया गया है जिनके कारण अनेकार्थी शब्दों का एक ही अर्थ में निश्चयन होता है। ये कारण प्रायः चौदह माने गए हैं। हिन्दी में यत्र-तत्र यह संख्या कम भी है। उदाहरणार्थ काव्य निर्णय में तेरह हो है।[1] डा० भागीरथ मिश्र ने बारह ही वर्णित किए हैं।[2] काव्य प्रकाश तथा वाक्य पदीय में इन चौदहों का संयोग विप्रयोग साहचर्य विरोधिता अर्थ प्रकरण लिंग अन्य शब्द सन्निधि सामर्थ्य औचित्य देश काल (पुल्लिंग-स्त्रीलिंग रूप) व्यक्ति और स्वर के क्रम से गिनाया गया है।[3] इनमें से प्रमुख को इस प्रकार समझा जा सकता है—

---

1 काव्य निर्णय सम्पा० प० जवाहरलाल चतुर्वेदी। पृ० १४ से १८

2 काव्यशास्त्र डा० भागीरथ मिश्र पृ० १४

3 संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्य विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः॥
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥

१ संयोग और विप्रयोग

'शंख चक्र-युक्त हरि' तथा 'शंख चक्र रहित हरि' क्रमशः संयोग, विप्रयोग के प्रसिद्ध उदाहरण हैं। क्योंकि बन्दर, यम, चन्द्र, सिंह, पानी, किरण, पवन, सर्प, शुक, दादुर, अश्व, सूर्य तथा विष्णु आदि के अर्थों में प्रयुक्त[1] हरि जब शंख चक्रादि के रहित एवं सहित के साथ प्रयुक्त होता है तो उसका अर्थ विष्णु ही होगा कुछ और नहीं। रहीम रत्नावली के प्रथम दोहे में अच्युत चरण तरंगिणी आदि के साथ आया हरि शब्द भी तोता, बन्दर आदि अर्थ ग्रहण नहीं दे सकता। अतः निम्नलिखित दोहा संयोग द्वारा अर्थ नियामकता का सुन्दर उदाहरण है—

> अच्युत चरण-तरंगिनी, शिव सिर मालति माल।
> हरि न बनायो सुरसरी कीजो इन्दव भाल॥ १—पृ० १

२ साहचर्य और विरोध

अनेकार्थक शब्द किसी अर्थ प्रसिद्ध नाम धर्मादि के साथ अथवा उनके विरोध में प्रयुक्त होने पर एक ही अर्थ में निबद्ध हो जाता है। अनेकार्थक राम[2] शब्द राम लक्ष्मणौ आदि प्रयोगों में दाशरथि राम का अर्थ देता है और रामार्जुन आदि प्रयोगों में विरोध के कारण (अर्जुन के विरोधी) कार्तवीर्य अर्जुन के अर्थ में नियन्त्रित हो जाता है। रहीम के निम्नलिखित दोहे में राम का अर्थ हिरण मारीच के साहचर्य से केवल भगवान राम होगा, परशुराम अथवा बलराम, घोड़ा तथा वरुण इत्यादि नहीं—

> राम न जाते हिरन संग सीय न रावन साथ।
> जो रहीम भावी कतहुँ होति आपुन हाथ॥ २३७—पृ० २३

३ अर्थ और प्रकरण

अनेकार्थक शब्द किसी अर्थ (प्रयोजन) विशेष अथवा प्रकरण (प्रसंग) विशेष के कारण एक ही अर्थ में नियन्त्रित हो जाते हैं। ठूँठ खूँटा तथा शिवादि अनेक अर्थों के लिए प्रसिद्ध स्थाणु शब्द 'स्थाणुं भज भवच्छिदे' अर्थात् संसार से पार उतरने के अभिप्राय में केवल शिव का ही अर्थ देगा। रहीम के इस दोहे में प्रयुक्त 'पय' शब्द अपने प्रयोजन विशेष से ही मात्र दूध का अर्थ देता है पानी का नहीं और व्याल शब्द केवल सर्प का अर्थ देता है सिंह, विष्णु, हाथी, ठग आदि का नहीं क्योंकि प्रकरण स्वाति की बूँद से सम्बद्ध है—

---

१ इन्द्र चन्द अरविंद अलि कपि केहरि आनंद।
कंचन काम-कुरंग दन धनुष दंड-नभ चंद॥
पानी पावक पवन पथ गिरि-गज नाग नरिंद।
ये हरि द्वारक मुकुट मनि हरि ईश्वर गोविंद॥ नन्ददास ग्रंथ पृ० ५३

२ रामः पशु विशेषे स्याज्जामदग्न्ये हलायुधे।
राघवे धार्मिके श्वेते मनोज्ञेऽपि च वाच्यवत्॥

रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हूं, साप सहज धरि खाय॥ २३६—पृ० २२
मुक्ता कर कर धूर कर चातक जीवन जाय।
ये तो बडो रहीम जल, व्याल वदन विष होय॥ १४७—पृ० १८

रहीम ने और भी अनेक दोहा म अनेकार्थक श दा का प्रयोग किया है जहां अर्थ विशेष शास्त्र-वर्णित अनेक कारणा स एक ही अर्थ म परिसीमित हो गया है। सर सूखे पच्छी उडे [1] रहिमन दीन अनाथ को,[2] तन सनेह कसे दुर [3] लपटे रहत भुजग[4] आदि प्रयोग ऐसे ही है।

शाब्दी व्यजना के भेद

कहीं-कहीं पर एक अर्थ का निश्चय करान वाले उक्त चौदह कारणा को शा दी व्यजना के भेद मान लिया गया है। परन्तु वह भ्रम है। शा दी व्यजना के तो अभिधा एव लक्षणा के आधार पर प्रयुक्त दो भेद होते हैं जिन्हे अभिधामूला शा दी व्यजना तथा लक्षणामूला शा दी व्यजना कहा जाता है। अनेकार्थी शब्द को एक अर्थ म मे सन्निहित हो जाने के पश्चात् भी बिना किसी अर्थ बाधा के उन्ही श दा से अन्य सूक्ष्म अर्थ का ध्वनन भी महाकवियों की वाणी से होता रहता है। उस सूक्ष्म अर्थ का ध्वनन कराने वाली शक्ति को अभिधा मूला शाब्दी व्यजना कहते है।

अभिधा मूला शाब्दी व्यजना और रहीम

रहीम के दोहा म व्यजना व्यापार अभिधा पर भी आधारित है। बिना किसी अर्थ बाध के निम्नलिखित दोहा से क्रमश दीना की एकनिष्ठ प्रभु भक्ति तथा शठ शाठ्य समाचरेत की नीति ध्वनित होती है। अत य दोहे अभिधा मूला शा दी व्यजना के उदाहरण हो सकते हैं—

सर सूखे पच्छी उड़ और सरन समाहि।
दीन हीन बिनु पच्छ के कहु रहीम कँह जाहि॥ २५७—पृ०२५
रहिमन लाख भली करो अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हू, साप सहज धरि खाय॥ २२९—पृ० २२

२ लक्षणा मूला शाब्दी व्यजना और रहीम

मुख्य अर्थ क बाधित होन पर किसी प्रयोजन विशेष के कारण लाक्षणिक शब्द पर आधारित व्यग्यार्थ की प्रतीति कराने वाली शब्द शक्ति को लक्षणा मूला शा दी व्यजना कहते हैं। चाहे काव्य प्रकाश क आधार पर प्रयोजनवती लक्षणा क कुल बारह भेद मान या काव्य-दर्पण क आधार पर चौसठ, उतन ही भेद लक्षणा मूला के

१ से ४ तक क्रमश दोहा सख्या २५७ २५२ २७ ७४ तथा सर=सरोवर, तीर चिता-सरकण्डा अनाथ=दीन मातृ पितृ विहीन, राजा हीन सनेह=तन प्रम भुजग=साप जार। पति।

भी होग। अत उन प्रसगा मे दिए हुए जितने भी शाब्दी व्यजना युक्त उदाहरणो से व्यग्याथ की सिद्धि हो वे प्राय सभी लक्षणा मूला शाब्दी व्यजना के उदाहरण होगे। अधिक फेर म न पडते हुए हम दो दाहे प्रस्तुत करना चाहगे—

कह रहीम जग मारियो नन बान की चोट।
भगत भगत कोउ बच गये, चरन कमल की ओट॥ २८—पृ० २
गुन ते लेत रहीम जल सलिल कूप ते काढि।
कूपँहु ते कहूँ होत है मन काहू को गाढि॥ ५०—पृ० ५

यहा प्रथम दोह म प्रभु की भक्ति एव शरण का तथा द्वितीय मे मानवीय गुण तथा कौशल का महत्त्व व्यग्य है। साथ ही अनेकार्थक शब्द भगत एव गुन के प्रयाग के कारण व्यजना शाब्दी है। कहने का तात्पय है कि उक्त दोहा मे लक्षणा मूला शाब्दी व्यजना सरलता से देखी जा सकती है।

आर्थी व्यजना और उसके भेद

जिस प्रकार प्रमुखत शब्द पर आधारित व्यजना को शाब्दी कहा जाता है उसी प्रकार प्रमुखत अथ पर आधारित व्यजना को आर्थी कहा जाता है। वक्ता, बोधव्य, काकु वाक्य, वाच्य, अन्यसन्निधि, प्रस्ताव देश, काल तथा चेष्टा आदि दस आधारा पर अथ की विलक्षणता प्राप्त होती है। अत आर्थी व्यजना के दस भेद हो जात हैं। इनम से प्रमुख को रहीम के काव्य से समझा जा सकता है।

१ वक्तवशिष्टय पूर्ण आर्थी व्यजना और रहीम

रहिमन राज सराहिए, ससि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है तपी तरयन सोय॥ २२८—पृ० २२

वसे ता यह दोहा सामाय है किन्तु जब यह ज्ञात हो जाय कि कहने वाला जहाँगीर के शासनकाल स दुखी व्यक्ति रहीम है ता इससे उसक राज्यकाल मे प्रजा की कष्ट पूण स्थिति व्यजित होती है। रहीम के अन्य दोहा म भी यह व्यग्याथ देखा जा सकता है—

रहिमन अब वे बिरछ कह, जिनकी छाँह गभीर।
बागन बिच बिच देखियत सेहुड कुज करीर॥ १६३—पृ० १६

२ बोद्धव्य वशिष्टय पूण आर्थी व्यजना और रहीम

चित्रकूट मे रमि रह रहिमन अवध-नरेस।
जा पर विपदा पडत है सो आवत यहि देस॥ ५४—पृ० ६

यहाँ आर्थिक सहायता की याचना व्यग्य है और वह विशेषकर बोद्धव्य अर्थात रीवाँ नरेश पर आधृत है। उनके पास इस दोह का लकर (निधनता के कारण अपने द्वार आये का दान द सकन म असमर्थ) रहीम का याचक गया था। और उसे रीवा नरेश स एक लाख का दान प्राप्त भी हुआ था। दोह की दूसरी पक्ति स यही व्यजना निकलती है कि विपत्ति पडने पर लाग आकर देश म आकर त्राण शरण प्राप्त करत रहे हैं। अत इस याचक का कष्ट भी आप (रीवां महाराज) निवारण करें।

३ काकुवशिष्टय पूर्ण आर्थी व्यंजना और रहीम

जे गरीब पर हित करें ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग॥ ६८—पृ० ७

काकु का अर्थ है (विशेष प्रकार की) कण्ठ ध्वनि। यहाँ प्रश्न सूचक 'कहा' का विशेष प्रकार से बोलने पर नकार की व्यंजना होती है अर्थात् सुदामा जैसा दरिद्री क्या राजाधिराज कृष्ण की मित्रता के योग्य था—कदापि नहीं। निम्नलिखित दोहे में भी भौंरे के हरजाईपन का तिरस्कार 'कहाँ' के काकु ही से किया गया है—

धनि रहीम गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनत बसि, कहा भौंर को भाय॥ १०४—११

इसी प्रकार अन्य भेदों के उदाहरण भी खोजे जा सकते हैं। किन्तु भेद प्रभेद की सीमा नहीं। दस भेदों में से प्रत्येक में वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ के आधार पर तीन तीन भेद और हो जाने के कारण व्यंजना के कुल भेद तीस हो जाते है। परन्तु बात तीस पर ही समाप्त नहीं होती। अर्थ-व्यंजना की नई पुरानी अनन्त सम्भावनाएं हो सकती है। उन्हें तीस से गुणा करने पर न जाने कितने भेद बन सकते है।[1] अतः उस सब के पचड़े में न पड़ते हुए मूल आर्थी व्यंजना के सौन्दर्य से आपूरित दो दोहे प्रस्तुत हैं। इनमें नीच पुरुषों का स्वभाव और उनका लक्षण व्यंग्य है। राजा महाराजा एवं अधिकारियों को सावधान किया गया है कि वे नीचों को बहुत ऊँचे पद प्रदान न करें क्योंकि उन्हें प्राप्त कर वे उल्टे ही चलेंगे।

जो रहीम ओछो बढ़ै तो अति ही इतराय।
प्यादे से फरजी भयो टेढ़ो टेढ़ो जाय॥ ८५—पृ० ८
फरजी साह न ह्वै सकै गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सीधे चाल सो प्यादो होत वजीर॥ १२०—पृ० १२

एक अन्य दोहा भी लीजिए—

सौदा करो सो करि चलो रहिमन याही घाट।
फिर सौदा पहो नहीं दूरि जान है बाट॥ २६१—पृ० २५

मूलतः इस दोहे में संसार की असारता, जीवन की क्षण भंगुरता, मानव देह की बहुमूल्यता, चौरासी लाख योनियों की दूरी की भयंकरता अथच परोपकारनिरतता तथा धर्म परायणता के लिए संदेश व्यंग्य है। किन्तु इसी दोहे का श्रोता अथवा वक्ता कोई मनचला युवक हो तो व्यंग्यार्थ शृंगार परक होगा। इसी प्रकार स्थान यदि

१ होत अरथ विजकन को दस विधि सुअ विसेखि।
पहलें व्यक्ति विसेस पुनि है बोधव्य सु लेखि॥
काकु विसेसो वाक्य अरु, वाच्य विसेस गिनाई।
अनसनिधि प्रस्ताव पुनि दस काल नव भाई॥
है चेष्टा सु बिसस पुनि दसम भेद कवि राइ।
इनके मिल मिल करि, भेद अनंत सलाइ॥ काव्य निर्णय पृ० ३३

सामान्य बाजार है तो और अर्थ होगा, वेश्यालय है तो और अर्थ होगा, गंगा तट है तो और अर्थ होगा तथा आयाराम गयाराम की धारासभा है या संसद भवन है तो व्यंग्यार्थ निश्चित ही कुछ और गुल खिलायगा। कहने का तात्पर्य है कि वक्ता, श्रोता आदि ऊपर गिनाए दस आधारों पर इसके अर्थ की व्यंजनाएँ भिन्न भिन्न हो सकती है और भी ऐसे अनेक दोहे रहीम के नीति काव्य से प्रस्तुत किये जा सकते हैं। विस्तारभय से केवल एक छन्द प्रस्तुत करते हैं। खुशामदियों से घिरे जहाँगीर का राज्य करके मुगल साम्राज्य पर प्राण न्यौछावर करने वाले सर्वथा योग्य एवं वीर सेनापति रहीम ने अपने को पूर्ववत् आदर सम्मान एवं महत्व प्राप्त न होता देख कर ही कदाचित् निम्नलिखित छन्द लिखा होगा—

सुनिये विटप प्रभु ! पहुप तिहारे हम
राखिये हमें तो सोभा रावरी बढ़ाइ हैं।
तजिहो हरप तो विरख हैं न चारो कछू
जहां जहां जहैं तहां दूनी छबि पाइ हैं।
सुरन चढ़ेंगे सुर-नरन चढ़ेंगे हम
सुकवि 'रहीम' हाथ हाथ ही बिकाइ हैं।
देस में रहेंगे परदेस में रहेंगे
काहू भेष में रहेंगे प रावरे कहाइ हैं॥

इस छन्द से रहीम की विनय साम्राज्य के प्रति उत्तरदायित्व निभाने की अनन्य स्वामि भक्ति अन्य कहीं चले जाने पर भी समादर प्राप्त करने की क्षमता पर आधारित घुड़की आदि अनेक अर्थ व्यंजित हैं। अतः यह छन्द आर्थी व्यंजना का सुन्दर एवं सटीक उदाहरण है। और अधिक उदाहरणों के लिए निम्नलिखित दोहों को प्रस्तुत किया जा सकता है—

करम हीन रहिमन लखो धँस्यौं बड़े घर चोर।
चिंतत ही बड़ लाभ के जागत ह्वै गो भोर॥ २६—पृ० ९
काम न काहू आवई मोल रहीम न लेइ।
बाजू टूटे बाज कों साहब चारा देइ॥ ७—पृ० ८
रहिमन थोरे दिनन को कौन करै मुख स्याह।
नहीं छलन को पर तिया नहीं करन को ब्याह॥ १९४—पृ० १८

यहां क्रमशः दृष्टातिरेक का हानि राज्योपाय तथा पत्नीव्रत के भाव व्यंग्य हैं।

शब्द शक्ति सम्बन्धी निष्कर्ष

शब्द शक्तियों के काव्य शास्त्रीय विवेचन और उन शक्ति में रहीम के नीति काव्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि रहीम के नीति काव्य में [illegible] का जितना सूक्ष्म और शास्त्रसिद्ध विनियोग हुआ है उतना अन्य काव्य नीति [illegible] में [illegible] दुर्लभ है। नीति जैसे विषय में [illegible] का ऐसा नपा-तुला और [illegible] उत्कृष्ट काव्य कौशल का प्रमाण है। यदि रहीम रीतिकार [illegible]

दोहा भी इस प्रकार सजग रह होते तो स्वसिद्ध एवं परसिद्ध होने के साथ ही उत्कृष्ट नीति सिद्ध कवि भी मान गए थ। नायिका भेद तथा नखशिख वर्णन ग्रन्थ के प्रयोग म उनकी भाषागत प्रतिभा तो पहले ही सिद्ध है।

मुहावरे लोकोक्तियाँ तथा रहीम का नीति-काव्य

मनुष्य युगों स अपनी भाषा को समृद्ध करने का उपक्रम करता रहा है। इसके लिए वह जाने अनजाने नाना शब्द रूपों एव पद प्रयोगों का व्यवहार करता रहा है। कुछ सशक्त शब्द प्रयोग लोक म अत्यन्त प्रचलित होने के कारण विभिन्न रूपों म रूढ हो गए हैं। इन्हीं प्रयोगों न कालान्तर म लोकोक्तियों एव मुहावरों का रूप धारण कर लिया है युग युगों तक प्रचलित रहने के कारण इनमे मानव की नीति-रीति अनुभव अभ्यास मान्यताए एव धारणाएँ समाहित हो गई हैं। अतः नीति का कवि तथा नीति का अध्येता दोनों ही मुहावरों की उपेक्षा नहीं कर सकते। 'यह (लोकोक्ति) सामान्य जनता का नीतिशास्त्र है। लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान क घनीभूत रत्न हैं जिनम बुद्धि और अनुभव की किरण फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है। लोकोक्तियाँ प्रकृति क स्फुलिंग (रेडियो एक्टिव) तत्वों की भाँति अनवरत किरणें बाँटा और चमकाता रहती हैं। लोकोक्ति साहित्य ससार क नीति साहित्य (विज्डम लिट्रेचर) का प्रमुख अंग है। सासारिक व्यवहार-पटुता और सामान्य बुद्धि का जसा निदर्शन कहावतों म मिलता है वसा अन्यत्र दुलभ है।'[1] इस उद्धरण स लोकोक्ति तथा नीति का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। वस तो यदि सूक्ष्म दृष्टि स देखा जाय तो लोकोक्ति तथा मुहावरों म अन्तर दिखाई देगा[2] किन्तु सामान्यतया दोनों का एक ही प्रकार स और प्राय एक ही अर्थ म व्यवहृत किया जाता है। हमारा दृष्टिकोण यहाँ सामान्य ही है।

मुहावरे और तथ्य—मणिकांचन संयोग

रहीम असे उत्कृष्ट नीति कवि एव सशक्त अभिव्यंजना शिल्पी क लिए मुहावरों का तिरस्कार असम्भव था। अपनी विषय सीमा के अन्तगत उन्हें जब अवसर मिला तभी उन्होंने मुहावरों का प्रयोग किया। वे सामान्य मुहावरे के प्रयोग स गभीर तथ्यों की अभिव्यक्ति करन म सिद्धहस्त थ। सामान्य प्रयोग के साथ ही कुछ एसी गभीर बात कह जाते थ कि उसके सयोग म स्वय मुहावरे की भी शोभा बढ जाती है मुहावरे के सयोग से तथ्य भी स्पष्टतर हो जाता है। मुहावरे और तथ्यों का यह मणिकांचन सयोग दखत ही बनता है। उदाहरण क लिए हम एक दोहा ल सकते है जिसमे व शरीर की क्षणभगुरता चित्रित करना चाहते हैं। किन्तु उन्होंने संतों की भाति 'पानी केरा बुद्बुदा' बताकर परम्परागत रीति नहीं अपनाई है। वे उस धूल म मिलने तथा अन्त धूर की धूर स स्पष्ट करते हैं।

---

१ हिन्दी साहित्य कोश (ज्ञानमण्डल) पृ० ६६३

२ विशेष अध्ययन के लिए देखिए—कहावत कोश—सम्पा० डा० माधव (वि० रा० प० पटना) भूमिका (ड)

रहिमन ठठरी धूर की रही पवन तें पूरि।
गांठ युक्ति की खुलि गई, अन्त धूरि की धूरि ॥ १८६—पृ० १९

शरीर क्या है? पृथ्वी तथा पवन आदि तत्त्वों का संघात। रहीम ने उस धूर की गठरी की संज्ञा दी है। यदि बाहर तीव्र पवन चल रहा हो तो गठरी की धूर तभी तक सुरक्षित रहती है जब तक कि उसकी गांठ बंधी हुई है। ज्योंही गांठ खुलेगी धूल उड़ जाएगी। शरीर भी इसी प्रकार है। जब तक युक्ति की गांठ नहीं खुलती तभी तक कुशल है। इस प्रकार दोहे से ध्वनि निकलती है कि यदि युक्ति तक और दूरदर्शिता से काम न लिया गया तो यह जीवन व्यर्थ है। इस गंभीर भाव को कवि ने 'अन्त धूर की धूर' जैसे मुहावरे का सहारा लेकर बड़ी सरलता के साथ व्यक्त कर दिया है। प्राणों की बाजी लगाना तथा सागर में रहकर मगरमच्छ से बैर आदि मुहावरों के प्रयोग देखिए—

यह न रहीम सराहिए, देन लेन की प्रीत।
प्रानन बाजी राखिए, हार होय कै जीत ॥ १५२—पृ० १५
कसे निबहैं निबल जन करि सबलन सों बैर।
रहिमन बसि सागर विषै करत मगर सों बैर ॥ ८१—पृ० ४

रहीम के एक छन्द में एकाधिक मुहावरे

ऊपर के दोहों में केवल एक एक मुहावरा प्रयुक्त हुआ है किन्तु ऐसे भी दोहे हैं जिनमें एक से अधिक मुहावरे प्रयुक्त हैं। ये प्रयोग किसी मन की मौज अथवा मस्तिष्क की सनक का प्रतिफल नहीं अपितु विषय की आवश्यकता तथा अभिव्यक्ति कौशल के अनिवार्य अंग बन कर आए हैं—

रहिमन करि सम बल नहीं मानत प्रभु की धाक।
दांत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक ॥ १७२—पृ० १७
जो रहीम ओछो बढ़ै तौ अति ही इतराय।
प्यादे सो फरजी भयो टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥ ८५—पृ० ८
दुख नर सुनि हांसी करैं धरत रहीम न धीर।
कही सुनै सुनि सुनि करैं, ऐसे वे रघुबीर ॥ ६७—पृ० १०

यहाँ प्रथम दोहे में धाक मानना, दांत दिखाना, नाक घिसाना तीन मुहावरों का प्रयोग है। तीनों में हाथी का दैन्य प्रदर्शन व्यक्त है। साथ ही सूंड का नीचा करके तथा पृथ्वी का मर्दन चलने की हाथी की आदत के वर्णन में जहाँ एक ओर कवि की आम्भिक कल्पना ऐसी ज्ञान रखती है वहीं क्रिया द्वय विशेष में अपने ही अनुकूल अर्थ लगाने (इण्टरप्रिटेशन) की शक्ति भी प्रकट है। दूसरे दोहे में ओछों का बढ़ना, अत्यन्त इतराना तथा टेढ़ा टेढ़ा जाना आदि प्रयोग मुहावरे ही हैं। और उनका प्रयोग इतना सरल तथा सटीक हुआ है कि दोहा जन-जन की जिह्वा पर चढ़ गया है। इसी प्रकार तीसरे दोहे में हंसी करना 'धीर न धरना' आदि भी प्रसिद्ध मुहावरे ही हैं।

पूरे छन्द मे मुहावरे ही मुहावरे

ऊपर के दोहा म मुहावरा के एकाधिक प्रयोग व उदाहरण देखे गए हैं किन्तु रहीम के नीति काव्य म कतिपय दोहे ऐसे भी मिलते हैं जिनम मुहावरा ही मुहावरो का प्रयोग हुआ है । और य प्रयोग भी न विषय सौन्दय की दष्टि से अनुचित हैं और न अभिव्यजना कौशल की दष्टि से । मजे की बात तो यह है कि सामान्य-पाठक को यह ध्यान भी नही आता कि यहा कवि मुहावरे का जादू चला रहा है । उदाहरण लीजिए—

एकहि साधे सब सधे सब साधे सब जाय ।
रहिमन मूलहि सींचिबो फूलहि फलहि अघाय ॥ १९—पृ० २
पात पात को सींचिबो, बरी बरी मे लोन ।
रहिमन ऐसी बुद्धि को कहो बरगो कौन ॥ ११७—पृ० १२
भार झोंकि के भार मे रहिमन उतरे पार ।
प बूडे मझधार मे जिनके सिर पर भार ॥ १३३—पृ० १३

इन छन्दा मे एक का साधना सब का साधना मूल सींचना अघा कर फूलना फलना पात पात का सींचना बरी बरी म नोन देना बुद्धि का बरना भाड भोकना आदि सभी प्रयोग तो महावरे हैं और सभी स्वाभाविक हैं । कही दूर तक भी यह गध नही आती कि कवि न अपने मुहावरेदानी की कलाबाजियां दिखाने क लिए मुहावरो का दगल जुटाया है । सभी सहज हैं सभी सरल ह स्वाभाविक और विषय अनुकूल है । इतन अधिक अर्थात तीन तीन और चार चार मुहावरा का दोह क चार चरणा म इस स्वाभाविकता के साथ विनियोग कर देना रहीम को मुहावरे प्रयोग का कुशल शिल्पी सिद्ध करता है ।

मुहावरो के समकक्ष कुछ नये प्रयोग

रहीम की भाषा म प्रचलित मुहावरा का प्रयोग तो प्रचुर मात्रा म है ही साथ ही ऐसे भी प्रयोग है जिनको मुहावरा की भांति प्रयोग म लाया जा सकता है । ऐसे प्रयोगा म प्राय व सभी गुण हैं जा मुहावर अथवा लोकोक्ति म होने चाहिए । ऐसे समस्त प्रयोगा को सग्रह करन पर एक लम्बी सूची तयार होन की सम्भावना है । हम उदाहरणस्वरूप कुछ प्रयोग प्रस्तुत करत हैं—

जागीर खाना—

सब पहाव लसकरी सब लसकर कँह जाँय ।
रहिमन सेल्ह जोइ सहे सोई जगीर खाय ॥ २५१—पृ० २४

नयन पर क रन—

भलो भयो घर त छुट्यो हस्यो सीस परिखेत ।
काक काक नयत हम अपन पेट के हेत ॥ १२०—पृ० १३

दाँव न अपन हाथ—

निज कर क्रिया रहीम कहि सिधि भावी के हाथ ।
पाँसे अपने हाथ म दाँव न अपने हाथ ॥ १११—पृ० ११

थोथे बादर क्वार के—

थोथे बादर क्वार के ज्यो रहीम घहरात।
धनी पुरुष निधन भये, कर पाछिलो बात॥ ६१—पृ० ९

यहा जगीर खाना पुरस्कार प्राप्त करने के अर्थ म, नवत पेट के हेतु, आजीविका के लिए गिडगिडाने के अर्थ म, दाव न अपने हाथ फल प्राप्ति भाग्याधीन होने के अर्थ मे तथा थोथे बादर क्वार के—अधजल गगरी छलकत जाय के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। सरलता, सक्षिप्तता अर्थवत्ता तथा विदग्धता आदि गुणो के कारण य प्रयोग मुहावरो के समान ही चल निकलने की शक्ति रखते है।

मुहावरो से प्रेरित विषय

लोकोक्तियो मुहावरो तथा उनसे मिलते-जुलते शब्द प्रयोगो के अतिरिक्त रहीम ने बहुत कुछ दोहे मुहावरो की विषय वस्तु से प्रेरित होकर भी लिखे है। उनमे यद्यपि मुहावरे का स्पष्ट प्रयोग नही हुआ किन्तु उनके पीछे कोई न कोई मुहावरा बोलता प्रतीत होता है। सीख वाको दीजिए जाको सीख सुहाय 'अधे के आगे रोना' पठ उठना आदि मुहावरो से प्रेरित निम्नलिखित दोहे अवलोकनीय है—

मनकीहीं बातें कर जागत ही रहि सोय।
ताहि सिखाय जगायिबो रहिमन उचित न होय॥ ३—पृ० १
जो रहीम पगतरि परो रगरि नाक अरु सीस।
निठुरा आगे रोइबो, आसु गारिबो खीस॥ ८१—पृ० ८
सौदा करो सो करि चलो रहिमन याही घाट।
फिर सौदा पहो नहीं दूर जान है बाट॥ २६१—पृ० ०५

कतिपय अन्य मुहावरे

ऊपर के विवरण म प्रयुक्त मुहावरो, लोकोक्तियो एव तदानुकूल प्रयोगो के अतिरिक्त अन्य बहुत से मुहावरो का प्रयोग उनके नीति काव्य म हुआ है। दोहो के पठन मात्र से निरायासन प्रभावित करने वाले कतिपय प्रयोग निम्नलिखित हैं।

इन प्रयोगो का दयन म स्पष्ट हो जाता कि रहीम का मुहावरो। प्रेम सहज। स्वाभाविक था। उ होन अपने भाव, विषय एव वणन कौशल के अनुरूप ही प्रचलित मुहावरो का प्रचुर प्रयोग किया है। य मुहावरे उनके ज्ञान मान अनुभव। बाहुल्य एव सामाजिक सम्पक की दुहाई न्त प्रतीत होत हैं। इनकी लघुता एव उपयुक्तता ने इनके प्रभाव को और भी बना दिया है। प्रमुख मुहावरे इस प्रकार हैं—

[illegible] की [illegible] करना[1] [illegible] पतिरग पढ़ना[2] [illegible] [illegible] मिसरी म [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाना[4] [illegible] (मारना [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हृदय म भीर [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाना [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दीठ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जानवर [illegible] म [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो जाना[illegible] हाथ का (स) जाना[illegible] [illegible] [illegible] होना[illegible] [illegible] (चोर) की [illegible] (चोर) हो जाना[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही ठौर होना[illegible] इत्यादि इत्यादि।

मुहावरे सम्बन्धी निष्कर्ष

निष्कर्ष यह है कि रहीम ने अपने काव्य म मुहावरा का प्रचुर प्रयोग किया है। उनके आधे स अधिक दोहे मुहावरेदार भाषा म लिखे गये हैं। कहीं कहीं तो एक ही दोहे म एक स अधिक अर्थात् दो-तीन यहाँ तक कि चार चार मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। किन्तु य प्रयोग अपने सच्चे अर्थों म मुहावरे ही हैं मुहावरों की

१ स ८७ तक रहीम रत्नावली दोहा सख्या (क्रमश) २ ४ ६ ७ ८ १३ १४, १७ १६ २१ २४ २५ २५ २८ २६, ३० ३१ ३२ ३३ ३४, ३५ ३६ ३७, ३६ ४० ४२ ४५ ४४ ४५ ४७ ४६ ५१ ५३, ५५, ५८ ६१ ६३, ६७ ६६ ७१ ७६ ८२ ८३ ८५ ६७ ६८ ६६ १०३ ११४ ११७ ११६, १२० १२२, १२३ १२५ १२६ १३२ १३३ १३४ १३७ १३८ १४० १४४ १४२ १४५ १४६ १६०, १६३ १६८ १७२ १७३ १७५ १७८ २०७ २०६, २१२ २१४ २१७ २२२ २२३ २३१, २३६ २३७ २४४, २४६, २५० २५६।

गुमायन नहीं। लोकोक्ति की संख्या मुहावरों से कम है। मुहावरे अथवा लोकोक्तियां जो भी हैं सरल, सहज, स्वाभाविक और विषयानुकूल हैं। एक भी भारी भरकम मुहावरा अथवा लोकोक्ति उनके काव्य में खोज निकालना कठिन है। उनकी सरल स्वाभाविक भाषा में छोटे छोटे मुहावरों के प्रचुर प्रयोग ने चार चांद लगा दिए हैं। वस्तुतः सरल, मुहावरेदार और चुभती हुई भाषा लिखने में रहीम बेजोड़ हैं। वे सादा बयानी के उस्ताद तथा सहज सुलभ सरस काव्यात्मक अभिव्यक्ति के आदर्श हैं।

गुण और उसकी परम्परागत परिभाषा

गुण सामान्य जन जीवन का परिचित शब्द है किन्तु काव्य शास्त्र में लोक के सामान्य अर्थ से सम्बद्ध रहता हुआ भी अपना विशिष्ट अर्थ रखता है। काव्य शास्त्र में गुण विवेचन भरत से ही आरम्भ हो गया था। उन्होंने गुणों को अभावात्मक तत्त्व अर्थात् दोषों का विपर्यय माना था—गुण विपर्ययाद् एषाम् माधुर्यौदार्यलक्षणा। डा० नगेन्द्र के निष्कर्ष के अनुसार भरतमुनि के मत में यह वैपरीत्य सामान्य है, विशिष्ट नहीं।[1] इसके पश्चात् काव्य शास्त्र की लम्बी परम्परा में गुण की सम्यक् परिभाषा सर्वप्रथम आचार्य वामन ने दी थी। इनसे पूर्व आचार्य दण्डी ने गुण को भी शोभा विधायक होने के कारण एक प्रकार से अलंकार रूप ही मान लिया था।[2] किन्तु वामनाचार्य ने इस भ्रम का निराकरण किया और बताया कि शब्द और अर्थ के वे धर्म जो काव्य की शोभा सम्पन्न करते हैं गुण कहलाते हैं। वे ओज प्रसाद आदि हैं—यमक उपमा आदि नहीं क्योंकि ये अकेले काव्य शोभा उत्पन्न नहीं कर सकते। इसके विपरीत ओज प्रसादादि अकेले ही काव्य को शोभा सम्पन्न कर सकते हैं। वे नित्य हैं उनके बिना काव्य में शोभा नहीं आ पाती।[3] निष्कर्ष यह है कि वामन ने काव्य शास्त्र में प्रथम बार अत्यन्त निर्भ्रान्त शब्दों में गुणों की स्थापना की और उन्हें काव्य के (नित्य) शोभा कारक धर्म घोषित किया—काव्य शोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः। ध्वनिकार ने इस स्थापना को थोड़ा मोड़ देकर गुणों को अंगी नहीं अंग मानकर अंगी अर्थात् इसके आश्रित धर्म बताया—तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः॥ इसी मान्यता को स्वीकार करते हुए आचार्य मम्मट ने लक्षण को और स्पष्ट करते हुए आत्मा के शौर्यादि (गुणों) की भांति रस के उत्कर्षकारी अचल स्थित धर्म को गुण बताकर परिभाषित किया है—

> ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
> उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥—का०प्र० ८ ६६

---

१ भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका (भाग २) पृ० ४७

२ शोभाकरत्व हि अलंकार लक्षण, तल्लक्षणयोगात तेऽपि (श्लेषादयो दशगुणा अपि) अलंकाराः—वही पृ० ५८

३ काव्यालंकार सूत्र ३ १

रहीम और माधुर्य

माधुर्य का शब्दार्थ है मधुरता। भरतमुनि के लिए माधुर्य का अर्थ श्रुति मधुरता था।[1] गुण के वास्तविक प्रतिष्ठापक आचार्य वामन ने माधुर्य को शब्द के रूप में समास-साहित्य तथा अर्थ के रूप में उक्ति वैचित्र्य से सम्बद्ध किया है।[2] भामह का लक्षण भी यही है—श्रव्यं नातिसमस्तार्थं काव्यं मधुरमिष्यते।[3] मम्मट ने काव्य प्रकाश के आठवें समुल्लास में आह्लादकता तथा चित्त की द्रुति का कारण मानकर माधुर्य का विशेष सम्बन्ध शृंगार से स्थापित किया है और करुण, विप्रलम्भ तथा शान्त में तो उसे अतिशय चमत्कारोत्पादक माना है—

आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुतिकारणम्। सूत्र ८९
करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्॥ सूत्र ९०

माधुर्य का इन्हीं रसों में प्रयोगौचित्य आचार्य विश्वनाथ को भी मान्य है। चित्त की द्रुति तथा आह्लाद भी उन्हें स्वीकार है—चित्त द्रवी भावमयोह्लादो माधुर्यमुच्यते॥ उन्होंने माधुर्य-कौशल पर भी विचार किया है और बताया है कि माधुर्य में ट वर्ग को छोड़कर क से म तक तथा मूर्ध्य और अल्प वर्णों का प्रयोग ही विहित है।[4] भिखारी दास जी ने अटवर्ग की संज्ञा दी है—

अनुस्वार औ वर्ग युत सबै बरन अटवर्ग।
अच्छर जामें मृदु परें सो माधुर्य निसर्ग॥ का०नि०,उल्लास १९

कहने का तात्पर्य यह है कि रेफ (अर्द्ध रकार) समास संयुक्ताक्षर तथा ट वर्ग से रहित तथा अनुस्वार एवं मृदु वर्णों से युक्त शब्दावली के प्रयोग में माधुर्य गुण रहता है। यह शृंगार करुण तथा शान्त रस के लिए विशेषतः उपयुक्त है।

रहीम के काव्य के सम्बन्ध में पहले ही निवेदन किया जा चुका है कि समस्त असमस्तता उनकी काव्य शैली तथा शब्द-संगठन की प्रथम विशेषता है। सच पूछिए तो रहीम दीर्घ समासों के दुश्मन हैं। जहाँ तक ट वर्ग तथा संयुक्ताक्षरों का सम्बन्ध है वह भी उनके काव्य में नाम मात्र को ही प्रयुक्त हुआ है। 'घटत घटत अति सीम' 'वठि ताड़ की छाँह' तथा 'मडए तर की गाँठ' जैसी ट वर्गयुक्त शब्दावली का प्रयोग प्रयास करने पर ही कहीं कहीं देखने को मिलता है—कहुँ कहुँ वृष्टि शारदी थोरी॥ दोहावली के पौने तीन सौ दोहों में से पौने तीस दोहे भी ट वर्ग बहुला शब्दावली से संयुक्त नहीं मिलेंगे। जिन दोहों में ट वर्ग का प्रयोग हुआ है वहाँ और भी अन्य वर्णों के साथ ट ठ ड आदि का प्रयोग मध्यमान (औसत) १.३० से अधिक नहीं होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि रहीम के काव्य में ट वर्ग बहुला शब्दावली का प्रयोग प्रायः नाममात्र का ही है। कहीं-कहीं तो यह प्रयोग कुछ ऐसे कौशल एवं

१ नाट्यशास्त्र पृ० १८ १०१
२ काव्यालंकार सूत्रवृत्ति ३ १ २१ तथा ३ २ ११
३ भामह काव्यालंकार पृ० २ ३
४ साहित्य दर्पण ८ १, ३

चमत्कार से हुआ है कि वे अपनी स्वाभाविक कणकटुता छोड़कर प्रीति और मिठास उत्पन्न करते प्रतीत होते हैं। निम्नलिखित दोहों में 'बकुण्ठ, उमेठें' तथा 'मीठ' आदि शब्द हमारे कथन की पुष्टि करेंगे—

काह करों बकुण्ठ ल कल्पवच्छ की छाह।
रहिमन ढाक सुहावनो जो गल प्रीतम बाह॥ ३८—पृ० ८
कुटिलन सङ्ग रहीम कहि साधू बचते नाहि।
ज्यो नना सना कर उरज उमेठे जाहि॥ ४०—पृ० ४
मन सलोने अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन।
मीठो भाव लौन प अरु मीठें प लौन॥ ११२—पृ० ११

ये दोहे अपने माधुर्य के लिए रसिक समाज में अत्यन्त प्रसिद्ध रहे हैं। कविरत्न नवनीत चतुर्वेदी ने अपने रहिमन शतक में इन पर सुन्दर कुण्डलिया भी प्रकाशित की थी।[1] शब्द प्रयोग के अतिरिक्त रस की दृष्टि से भी रहीम का काव्य शान्त तथा शृंगार से विशेषत सम्बद्ध है। अत रसौचित्य के कारण भी उनके काव्य का गुण माधुर्य ही ठहरता है। इतना होते हुए भी रहीम ने विहारी आदि की भाँति माधुर्य के सभी लक्षणों को पूरा करने मृदु वर्णों का ठूसने और ट वर्ग को जानबूझकर बहिष्कृत करने का प्रयास नहीं किया है।[2] यही कारण है कि उनके मधुरतम दोहों में भी आवश्यकतानुसार ट ठ ड आदि का थोड़ा बहुत प्रयोग देखने को मिल ही जाता है—

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अग।
बाँटनवारे क लग ज्यो मेहदी को रग॥ २४८—पृ० २४
रहिमन मन तुरग चढ़ि, चलिबो पावक माहि।
प्रेम पथ ऐसो कठिन सब कोउ निबहत नाहि॥ २१७—पृ० २

यहाँ रहीम यदि बरबस माधुर्य लाने के फेर में होते तो बाँटनवारे के स्थान पर पीसनवारे तथा चढ़ि' और कठिन के स्थान पर भी अन्य शब्द रख सकते थे। किन्तु

१ (क) उरज उमेठे जाहि कुच्छ परसग न कीज।
रावण हित मारीच मरण निश्च करि लीज।
नीति नित्य परिहरो पिशुनता अग कुटिल की।
जउ लौं पार बसाय, सग कीज न कुटिल की॥३२॥
—रहिमन शतक (मथुरा स० १९८१) पृ० १२

(ख) मीठे हू पर लौन सलौने पर ज्यों मीठो।
बिन मीठे पर लौन लौन बिन मीठो सीठो॥
कहे 'नीति' कविराज बात दोउन सों हौंन।
कहु रहीम घट कौन अधर मधु नन सलौन॥९३॥ —वही पृ० ३२

२ अजन रजन हू बिना खजन गजन नन।—बिहारी

उनकी सरस्वती धारा तो निरायास प्रवाहित होती थी। उसमें आयास तथा कृत्रिमता के लिए कोई स्थान न था। इन दोहों की सहज मधुर काव्य विदग्धता का आस्वाद लीजिए—

मनसिज माली की उपज कहि रहीम नहिं जाय।
फल स्यामा के उर लगें फूल स्याम उर आय॥ १३९—पृ० १४
प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि आप पथिक फिरि जाय॥[1] ११६—पृ० १२

ओज गुण और रहीम

जिस प्रकार माधुर्य का सम्बन्ध चित्त की द्रुति से है, उसी प्रकार ओज का सम्बन्ध चित्त की दीप्ति से है। ओज वहीं होता है जहां पर चित्त प्रदीप्त हो। यही कारण है कि इसकी स्थिति वीर रस बीभत्स रस तथा रौद्र रस में अधिक मानी जाती है।[2] शब्द संघटना की दृष्टि से यह माधुर्य के विपरीत है। ओज गुण में ट ठ ड ढ द्वित्व आदि का प्रयोग और दीर्घ समासों से विनष्ट संयुक्ताक्षरों का प्रयोग होता है।[3]

जैसा कि माधुर्य के प्रसंग से स्पष्ट है कि रहीम के नीति-काव्य में उक्त शैली का प्रयोग नहीं के बराबर है। अतः स्पष्ट ही रहीम के काव्य में ओज का अभाव है। वैसे यह रहीम जैसे वीर सेनापति तथा ओजस्वी व्यक्ति के स्वभाव के विपरीत है। रहीम ने वीर रसात्मक कुछ काव्य लिखा अवश्य होगा परन्तु ओज यह कथन कोरी

१ दोनों दोहों पर पं० नवनीत चतुर्वेदी की कुण्डलिया—

(क) मनसिज माली की उपज कहि रहीम ना जाय।
फूल स्याम के उर लगे फल स्यामा उर आय।
फल स्यामा उर आय लगत गोरे मदकारे।
स्यामा हृदय अति फूल होति लख आनन्द भारे॥
कहि नवनीत विचित्र वाटिका विधि ख्याली की।
रहिमन उपज अनूप यहै मनसिज माली की॥
—रहिमन शतक पृ० १२

(ख) प्रीतम छबि नैनन बसी पर छबि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि आप पथिक फिरि जाय।
आप पथिक फिरि जाय यहाँ पै जग न कोई।
ज्योंही चलनि चकोर चन्द तजि तकै न कोई।
प्रिय नवनीत अनूप रूप की रासि रही फबि।
इन नैनन में बसी लसी यह प्रीतम की छबि॥—रहिमन शतक, पृ० २

२ दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति॥ सूत्र ९१
बीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च॥ सूत्र ९२
—काव्य प्रकाश अष्टम् समुल्लास

३ साहित्य दर्पण ८ ४६

कल्पना ही कहा जायगा। परन्तु प्राप्त काव्य के आधार पर निष्कर्ष यही निकलता है कि रहीम में ओज गुण का अभाव है। एक दो उदाहरण अवश्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं जैसे

> धरे न धीर रहीम कहि बनि सबिवरन पान।
> हतो अवश कुरुहिन सहै न तरवर मान॥ २० — पृ० ३
> धर रहसी रहमी धरम गयजासी नरसाण।
> अमर बिसम्भर ऊपर राणा महसो राण॥ १० — पृ० ७८

इन दोनों दोहों की शैली यद्यपि ओजपूर्ण है किन्तु प्रसंग ओज के बहुत अनुकूल नहीं पड़ता। सच बात तो यह है कि एक दो स्थलों पर जहाँ ओज की गुंजाइश थी वहाँ भी रहीम ने उसका उपयोग नहीं किया। कृष्ण मुरारी की कथा वाला प्रसंग ऐसा ही था। यह स्थिति निम्नलिखित दोहे की है—

> भलो भयो घर तें छुट्यो हस्यो सीस परि खेत।
> काके काके नवत हम अपन पेट के हेत॥ १४२—पृ० १९

अतः स्पष्ट है कि इस ओजस्वी योद्धा की काव्यकृतियों का ओज की दृष्टि से अध्ययन करने पर प्रायः निराश ही होना पड़ेगा। कदाचित् इसका कारण यह भी है कि रहीम शृंगार और शान्त रस के कवि हैं वीर रौद्रादि के नहीं।

प्रसाद गुण और रहीम

प्रसाद व्याप्ति का गुण है। इसका विस्तार प्रायः सभी रसों में रहता है। वैसे प्रसाद का शाब्दिक अर्थ है प्रसन्नता। किन्तु गुण के सन्दर्भ में इसका अभिप्राय आरम्भ से ही सरलता से सम्बद्ध है। आचार्य भरत ने स्व छता सरलता तथा सहज ग्राह्यता को प्रसाद गुण कहा था।[1] आचार्य मम्मट ने दो विरोधी तत्त्व अग्नि और जल का उदाहरण देकर प्रसाद की व्याख्या की है—

> शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः।
> व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः॥ सूत्र ९०

अर्थात् सूखे ईंधन में अग्नि के समान अथवा स्वच्छ (धुले हुए वस्त्र में) जल के समान जो चित्त में सहसा व्याप्त हो जाता है, वह सर्वत्र (सब रसों में) रहने वाला गुण प्रसाद कहलाता है। हिन्दी टीकाकार आचार्य विश्वेश्वर के अनुसार— यहाँ अग्नि और जल के दो उदाहरण देने का अभिप्राय यह है कि जब वीर रौद्र आदि उग्र रसों में प्रसाद गुण होता है तब वह शुष्क इंधन में अग्नि के समान चित्त में व्याप्त होता है और जब शृंगार-करुण आदि कोमल रसों में होता है तब स्वच्छ वस्त्र में जल के समान चित्त में व्याप्त होता है।[2] कहने का तात्पर्य है कि प्रसाद की व्याप्ति कोमल-कठोर सभी परिस्थितियों में है।

---

१ नाट्यशास्त्र १७ ९८

२ काव्य प्रकाश—सम्पा० डा० नगेन्द्र पृ० ४९०

रहीम का समग्र काव्य प्राय प्रसाद गुण का काव्य है—सरल, स्वच्छ और सर्वग्राह्य। न कोश की आवश्यकता है और न सन्दर्भ ग्रन्थों की। यदि प्रसाद गुण का आदर्श बताना हो तो रहीम के काव्य को पूरी निर्भीकता के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रसाद की ही परियाप्ति के कारण पाठक वर्ग प्रारम्भिक कक्षाओं मे रहीम के दोहों से परिचय प्राप्त कर लेता है और जन्म भर उन्हें दोहराता गाता एव गुनगुनाता रहता है। प्रसाद के ही कारण रहीम काव्य की पहुँच अपढ जनसमाज तक मे है। तात्पर्य यह है कि सुधी समालोचकों एव प्राध्यापकों से लेकर अनपढ ग्रामीणों एव कोमल मति बालकों तक पुस्तकों से लेकर हृदयों तक महलों से लेकर झोपडियों तक तथा काव्य गोष्ठियों से लेकर खेत खलिहानों तक रहीम के काव्य की जो पहुँच है उसके अन्य प्रमुख कारणों में से एक प्रसाद गुण पूर्णता भी है। नीति शृगार, वैराग्य तथा भक्ति किसी भी विषय के दोहे को उठा लीजिए उसकी अजली प्रसाद के प्रसाद से आपरित मिलेगी। उदाहरण के लिए, कुछ अपवादों को छोडकर कोई भी छन्द लिया जा सकता जैसे—

> रहिमन विपदा हू भली, जो थोरे दिन होय।
> हित अनहित या जगत मे जान परत सब कोय ॥ २३ —पृ० २३
> रहिमन तीन प्रकार तें हित अनहित पहिचानि।
> पर बस परे परोस बस परे मामिला जानि ॥ १८१—पृ० १६

निष्कर्ष यह है कि रहीम के नीति काव्य में ओज का अभाव माधुर्य की पर्याप्त विद्यमानता तथा प्रसाद का सर्वत्र प्रभाव है।

रहीम के नीति काव्य मे वृत्ति एव रीति

वृत्ति एव रीति विवेचन काव्य शास्त्र का एक प्रमुख अग रहा है। वस्तुत वृत्ति भिन्नार्थक शब्द है जो स्वभाव आचरण, जीविका चक्कर (सूत्र एव ग्रथादि की) व्याख्या तथा रचना शैली आदि अनेक अर्थों मे प्रयुक्त होता है। काव्य शास्त्र मे इसका विशेष सम्बन्ध अन्तिम अर्थात् रचना शैली से है। प्राय यही अर्थ रीति का भी है। रीति-सम्प्रदाय के प्रतिस्थापक आचार्य वामन ने तो रीति की परिभाषा ही 'विशिष्टापद रचना रीति' कह कर दी है। इसीलिए रीति और वृत्ति को सामान्यतया एक ही माना जाता रहा है। आचार्य वामन वृत्ति को रीति का अग मानते थे। प्रसिद्ध हिन्दी ग्रन्थ रस रहस्य के रचयिता कुलपति ने रीति और वृत्ति को पर्याय के रूप मे स्वीकार किया है। उन्हें अपने पूर्वाचार्यों का समर्थन भी प्राप्त है। मम्मट ने काव्य प्रकाश के नवम समुल्लास मे दोनों को एक ही घोषित किया है—एतास्तिस्रो वृत्तय वामनादीना मत वदर्भीगोडी पाञ्चाल्याख्या रीतयो मता। मम्मट ने तो वृत्ति और रीति का नाम भेद करने को गतानुगतिका अथवा भेडधसान तक कह दिया था।[1] यद्यपि वृत्ति और रीति का अन्तर क्रमश लघु से लघुतर होता हुआ आज समाप्तप्राय हो गया है किन्तु

---

१ काव्यालकार १ ३२

दोनों में सूक्ष्म अन्तर अवश्य था। वृत्ति का सम्बन्ध मनोदशा से अधिक था और रीति का विन्यास अथवा वर्णसंघटना से। और चूंकि ये दोनों ही तत्त्व गुण विवेचन के आधार हैं। अतः वृत्ति और रीति की व्याख्या प्रायः गुणों के पश्चात् ही हुई है। देव ने परम्परा से हटकर रीति और गुण का वर्णन एक ही रूप में किया है। वस्तुतः गुणों के आधार पर ही वृत्तियों एवं रीतियों का विभाजन किया गया प्रतीत होता है जो अपने मूल में रस से सम्बद्ध हैं। आनन्दवर्धनाचार्य ने स्पष्ट ही कह दिया है—

रसाद्यनुगतत्वेन व्यवहारोऽस्य नन्दयो।
औचित्यवान यस्ता एता वृत्तयो द्विविधा (त्रिविधा) स्मृता॥
—ध्वन्यालोक

अतः जो उदाहरण माधुर्य, ओज तथा प्रसाद के हैं वे ही वृत्तित्रय अर्थात् मधुरा (उपनागरिका) परुषा और कोमला के भी हैं। स्मरण रहीम का काव्य भी अपवाद नहीं है। अतः जैसा कि उनके गुण विवेचन से स्पष्ट है कि उनके काव्य में माधुर्य एवं प्रसाद गुण अथच मधुरा तथा कोमला वृत्तियों की ओर विशेषतया कोमला वृत्ति की ही प्रधानता है।

यों तो ये ही उदाहरण रीतित्रय अर्थात् वदर्भी गौडी तथा पांचाली में भी हैं किन्तु फिर भी इन्हें समास बहुलता के आधार पर वर्गीकृत माना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वदर्भी रीति का अर्थ है समास रहित शब्दावली गौडी का अर्थ है समास युक्त शब्दावली और पांचाली का अर्थ है कहीं समस्त कहीं असमस्त शब्दावली। यद्यपि खोजने पर उदाहरण तीनों ही रीतियों के प्राप्त हो सकते हैं किन्तु रहीम का काव्य प्रधानतः वदर्भी अर्थात् समास रहित रीति का ही काव्य है जिसे आचार्यों ने एक स्वर से सर्वोत्तम घोषित किया है।[1] रहीम के काव्य से हम उसके मनमाने उदाहरण एकत्रित कर सकते हैं—

रहिमन मनहि लगाय के देखि लउ किन कोय।
नर को बसि करिबो कहा नारायन बसि होय॥ २१६—पृ० ?
यह न रहीम सराहिए देन लेन की प्रीत।
प्रानन बाजी राखिए हार होय के जीत॥ १८०—पृ० ?

---

१ काव्यालंकार सूत्र वृत्ति १।२।११ साहित्य दर्पण ६
२ (क) नारायण यति होय दोष को एक सताव।
भक्ति भाव दृढ़ कर वही तन्मयता पाव॥
कहै नीति कवि प्रीति सहित वारों तन मन धन।
चातक ज्यों लौ लाय स्वातघन देखो रहिमन॥ रहिमन शतक पृ० २८
(ख) हारि होय के जीत प्रीति परतीत नसाव।
पहले देय उधार फेरि मागन को आव॥
कहै नीति रस रीति नसावन जान लहु धन।
लेन-देन की बात मित्र सों कर न रहिमन॥ रहिमन शतक पृ० १४

रहीम के नीति काव्य में दोष

मम्मटाचार्य ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्य प्रकाश' के प्रथम सूत्र में काव्य का लक्षण देते हुए उसे 'अदोषौ' अर्थात दोष रहित रचना माना है—तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि ॥ मम्मट से भी पूर्व भोजराज ने अपने काव्य-लक्षण में पहला शब्द 'निर्दोष' रखा था।[1] केशव मिश्र द्वारा उद्धृत किसी अन्य विद्वान ने निर्दोषता को ही सबसे बड़ा गुण माना है।[2] माघ का भी कुछ ऐसा ही कथन है—अपदोषतैव विगुणस्य गुणः ॥[3] परन्तु सोचना यह है कि क्या कोई रचना पूर्ण रूपेण 'अदोषौ' हो सकती है? मनुष्य की रचना तो क्या पूर्ण परात्पर परमब्रह्म की सृष्टि में भी दोषों की कमी नहीं है।[4] कदाचित् इसीलिए आचार्य विश्वनाथ तथा पण्डितराज जगन्नाथ ने मम्मट के 'अदोषौ' आदि की बुरी तरह से खिचाई की है। उन्होंने उत्तम ध्वनि काव्य के उदाहरण—'न्यक्कारो ह्ययमेव मे यदरयः ...' इत्यादि में भी विधेयाविमर्श दोष विद्यमान माना है। विश्वनाथ ही क्या आज भी विद्वान, ध्यान से देखने पर अच्छे से अच्छे काव्य में दोषोद्भावना कर लेते हैं। बच्चन जी के मस्त होकर गाते समय उनकी निम्नलिखित पंक्ति पर सभी रस विभोर होकर झूम उठते हैं। परन्तु डा० त्रिगुणायत ने अपने ग्रन्थ के दोष वर्णन प्रसंग में इस पंक्ति में भी परिणाम सापरिग्रह नामक रस-दोष गिनाया है।[5] पंक्ति यह है—

इस पार प्रिये ! मधु है तुम हो
उस पार न जाने क्या होगा ?

अतः स्पष्ट है कि चाहे वाल्मीकि हो अथवा कालिदास, भारवि हो या भट्टि, कबीर हो या हाफिज, शेक्सपीयर हो या मिल्टन, सूर हो या तुलसी, सभी की रचनाओं में दोष हैं और रहीम भी इस नियम के अपवाद नहीं।

शब्द दोष और रहीम

काव्य में शब्द का महत्त्व स्वतः सिद्ध है। शब्द ही वह साधन है जिस पर चलकर अर्थ, चमत्कार तथा आनन्द हम तक पहुँचते हैं। जहाँ काव्यानन्द में प्रतिरोध

---

१ निर्दोषं गुणवत् काव्यं अलंकारैरलंकृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति ॥ —सरस्वती कण्ठा १/२

२ दोषः सर्वात्मना त्याज्यो रसहानिकरो हि सः।
अन्यो गुणोऽस्तु मा वास्तु महान् निर्दोषता गुणः ॥
—भारतीय साहित्य शास्त्र—प्रथम खण्ड बलदेव उपाध्याय (द्वि० सं०)
पृ० ६२० पर उद्धृत

३ माघ ९/१२

४ काँटे कुलिश कीट का कुसुम में कोई नहीं काम था।
काटे से कमनीय कंज कृति में क्या है न कोई कमी ॥ —प्रियप्रवास ८ २०

५ शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त—प्रथम भाग
—डा० गोविन्द त्रिगुणायत (प्र० सं०) १५२

विलम्वन अथवा विधान उत्पन्न हो वहाँ शब्द दोष माना जाता है। श्रुतिकटुत्व च्युत संस्कृति निरर्थकता, पुनरुक्तत्व, अधिकपदत्व आदि अनेकानेक शब्द दोष काव्य शास्त्र में गिनाए गए हैं—

१ श्रुति कटुत्व

काव्य का प्रीतिकर होना निश्चित ही उपयोगी है। इसके विरुद्ध जब काव्य में शब्द प्रयोग अनावश्यक रूप से कर्ण कटुता उत्पन्न करने वाला होता है तो वहाँ श्रुति कटुत्व दोष हो जाता है।

अड न बौड रहीम कहि देखि सचिक्कन पान।
हस्ती ढक्का कुल्हडिन सहैं ते तरवर आन॥ ४ —पृ० ३

यहाँ टकार के अनावश्यक प्रयोग को सरलता से हटाया जा सकता था। उसकी अतिशयता से व्यर्थ ही कान फाड़ने वाली टवर्ग ध्वनि की भरमार है। अतः यहाँ श्रुति कटुत्व दोष है।

२ ग्राम्यत्व

ग्राम्यत्व का सम्बन्ध अपढ़ अशिक्षित तथा गवारों की बोली से है। असंस्कृत गवारू शब्दों का साहित्यिक रचनाओं में प्रयोग ग्राम्यत्व दोष उत्पन्न करता है। रहीम की रचना में कहीं-कहीं एक दो प्रयोग ऐसे भी दीख पड़ते हैं जिनमें ग्राम्यत्व है।

निम्नलिखित पंक्तियों में अररानी तथा भीत इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी कुछ कुछ ऐसा ही है—

भीत गिरी पाखान की अररानी वहि ठाम। १३६—पृ० १४
रहिमन जाके बाप को पानी पियत न कोय॥ १८४—पृ० १८
ढेर मे डडा डाल के सहै नाद ल सेंड॥ १७६—पृ० १८

३ असमर्थता

प्रसंगानुकूल शब्दों के प्रयुक्त न होने पर असमर्थता दोष होता है। इस दोष वाले शब्द में इतनी क्षमता नहीं होती कि वह अर्थ की आवश्यकता की पूर्ति कर सके। निम्नलिखित दोहे में प्रयुक्त कूर (क्रूर) शब्द अपने साहित्य अथवा योग्यता के अभाव का अर्थ प्रदान नहीं करता। अतः यहाँ असमर्थता दोष आ गया है—

करत निपुनई गुन बिना रहिमन निपुन हजूर।
मानहु टेरत विटप चढि मोहि समान को कूर॥ ७४—पृ० ३

इसी प्रकार उत्साह भी उन्नति का अर्थ देने में असमर्थ है—

रहिमन अपने गोत को सब चहत उत्साह॥ १६१—पृ० ८

४ च्युत संस्कृति

व्याकरण के संस्कार से च्युत शब्दों के प्रयोगों में च्युत संस्कृति दोष होता है। सीधे शब्दों में च्युत संस्कृति दोष का अर्थ है व्याकरणिक अशुद्धि। यह दोष लिंग वचन संधि आदि कई प्रकार का हो सकता है—

सर्वनाम बिपति कसौटी जे कसे, सो ही साँचे मीत ॥
वचन यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय ।
बैर प्रीति अभ्यास जस, होत होत ही होय ॥ १८३—पृ० १८

यहाँ प्रयुक्त एक वचन 'सो ही' शब्द में च्युतसंस्कृति है क्योंकि 'जे' के कारण बहुवचन अर्थात् 'ते' होना चाहिए था। इसी प्रकार बैर, प्रीति, अभ्यास तथा यश आदि बहुत से तत्वों के लिए एक वचन 'यह' भी अशुद्ध है।

५ अप्रयुक्तत्व

व्याकरणसिद्ध परन्तु अप्रचलित शब्दों का प्रयोग अप्रयुक्तत्व दोष है। अन्य भाषाओं के अप्रचलित शब्द प्रयोग में उत्पन्न दोष भी अप्रयुक्तत्व के अन्तर्गत आना चाहिए। इसे अप्रचलित भी कहते हैं। रहीम के काव्य में सर्वप्रचलित शब्दों का ही प्रयोग है किन्तु कहीं-कहीं अपवाद स्वरूप एक-दो अप्रचलित शब्द भी देखने में आते हैं। गथ (सम्पत्ति के अर्थ में) तथा अजीम (अजीमुश्शान=महान) आदि अप्रचलित शब्दों के प्रयोग से निम्नलिखित दोहों में यह दोष आ गया है—

रहिमन जग जीवन बडे काहु न देखे नैन ।
जाय दसानन अछत ही कपि लागे गथ लेन ॥ १८—पृ० १८
भावी या उनमान को पाडव बनहिं रहीम ।
तदपि गौरि सुनि बाँझ हैं बरु है सम्भु अजीम ॥ १२५—पृ० १८

६ प्रतिकूलवर्णता

रस भावादि के प्रतिकूल वर्णों के प्रयोग से प्रतिकूलवर्णता दोष आ जाता है। शृंगार के लिए कोमल तथा वीर के लिए कठोर वर्णों का प्रयोग होना चाहिए किन्तु जब इस नियम के विपरीत वर्ण प्रयुक्त हो जाते हैं तो उनमें यह दोष स्वाभाविक ही है। अधर तथा नेत्रों के सौन्दर्य वर्णन के प्रसंग में रहीम ने मृदु मधुर आदि का प्रयोग न करके 'मीठे' का प्रयोग किया है। यहाँ 'ट' 'ठ' के प्रयोग से प्रतिकूलवर्णता आ गई है—

मन सलौने अधर मृदु कहि रहीम घटि कौन ।
मीठो भावै लौन पै अरु मीठे पै लौन ॥ ११२—पृ० ११

अर्थ दोष और रहीम

अर्थ वैभव में सम्बन्धित दोषों को अर्थ-दोष कहा जाता है। भरतमुनि ने आरम्भ में गूढार्थ, भिन्नार्थ, एकार्थ तथा अभिलुप्तार्थादि जो दस दोष गिनाए थे उनमें से अर्थ दोष के रूप में पृथक्तः वर्गीकृत न होते हुए भी अधिकांश दोष अर्थ सम्बन्धी थे। न्यूनाधिकता के बीच दोलायमान होती हुई यह संख्या कुल मिलाकर मम्मट के काल तक तेईस हो गई थी।[1] दास जी ने इन्हीं को आधार बनाकर, अपने काव्य निर्णय के तेईसवें समुल्लास के अधोलिखित छप्पय में बाईस दोषों का

---

१ काव्यप्रकाश ७ ५५-५७

उल्लेख किया है—

> अपुष्टार्थ कष्टार्थ व्याहत पुनरुक्तौ जिय।
> दुष्क्रम ग्राम्य सांदिग्ध अपर निर्हेतु अनवीकृत॥
> नियम अनियम प्रवृत्त विशेष सामान्य प्रवृत्ति कहि।
> साकांक्षा पद अयुक्त सविधि अनुवाद अपवर्तहि॥
> जो विरुद्ध प्रसिद्ध प्रकाशितन सहचर भिन्न असमाप्त पुनि।
> है त्यक्त पुन स्वीकृत-सहित अर्थ दोष बाईस गुनि॥

१ अपुष्टार्थ

जहाँ शब्द विशेष की उपस्थिति से अर्थ की पुष्टता, अपुष्टता में कोई अन्तर न पड़े अर्थात् उसकी उपस्थिति अर्थ की महत्ता में सहायक न होती हो और अनुपस्थिति में कोई बाधा उपस्थित न होती हो, वहाँ अपुष्टार्थ दोष होता है।

> रहिमन कुटिल कुठार ज्यों कर डारत द्वै टूक।
> चतुरन के कसकत रहे समय चूक की हूक॥ १३८—पृ० १३

यहाँ कुठार का विशेषण 'कुटिल' व्यर्थ है। इसके होने न होने से अर्थपुष्टि में कोई बाधा आती नहीं। अतः यहाँ अपुष्टार्थ दोष है।

२ कष्टार्थ

अर्थ के ज्ञान की कठिनता से कष्टार्थ दोष होता है। इस दोष में अर्थ के निकालने के लिए माथापच्ची करनी पड़ती है। रहीम के दोहों में प्रसादपूर्णता होने के कारण यह दोष अपवाद स्वरूप ही मिलता है। जैसे

> रहिमन जा डर निसि परै ता दिन डर सिर कोय।
> पल पल करके लागते देखु कहाँ धौं होय॥ १८५—पृ० १९
> स्वासह तुरिय जो उच्चरै तिय है निहचल चित्त।
> पूत परा घर जानिए रहिमन तीन पवित्त॥ ५६—पृ० २५

३ पुनरुक्तत्व

भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा एक ही अर्थ का कहा जाना पुनरुक्तत्व दोष होता है। शब्दों की पुनरुक्ति न होते हुए भी जहाँ अर्थ की पुनरुक्ति हो जाती है वहीं यह दोष आता है। अंजन देना और सुरमा देना शब्दों का अर्थ एक ही है। अतः निम्नांकित दोहे में पुनरुक्त दोष है—

> अंजन दियो तो किरकिरी सुरमा दियो न जाय।
> जिन आँखिन सों हरि लख्यौ रहिमन बलि बलि जाय॥ १६—पृ० २

४ प्रसिद्धि विरुद्धत्व

प्रसिद्धि के विरुद्ध किसी अर्थ का प्रयोग प्रसिद्धि विरुद्धत्व कहलाता है। रहीम ने पाराशर से लक्ष्मण द्वारा नाज माँगने का उल्लेख किया है जो प्रसिद्ध नहीं है—

> असमय परे रहीम कहि माँगि जात तजि लाज।
> ज्यों लछमन माँगन गए पारासर के नाज॥ १०—पृ० २

५ विद्या विरुद्ध

सुप्रसिद्ध शास्त्रीय कथना अथवा नाना विद्याओं की सिद्ध मान्यताओं से विरुद्ध बात कहना विद्या विरुद्ध दोष है। निम्नांकित दोहे में अवतार शब्द परम्परागत मान्यताओं से मेल नहीं खाता। अत विद्या विरुद्धता का आभास दे रहा है—

रहिमन सुधि सब त भली लग जो बारम्बार।
बिछुरे मानुष फिर मिलें यहै जान अवतार॥ २३४—पृ० २२

६ सहचर भिन्नत्व

उत्कृष्ट के साथ निकृष्ट का अथवा निकृष्ट के साथ उत्कृष्ट का वणन सहचर भिन्नत्व है। यह दोष उन वणनों में होता है जिनमें अच्छी बुरी ऊँची नीची छोटी बड़ी सभी वस्तुओं का एक साथ वणन रहता है। रहीम का दोहा लीजिए—

अरज गरज मान नहीं, रहिमन ये जन चारि।
राजा रिनिया माँगना, काम आतुरी नारि॥ ६—पृ० ४

यहा भिक्षमगा तथा कुलटाओं आदि के साथ ही राजा का भी उपस्थित करने से सहचर भिन्नत्व दोष आ गया है।

७ ग्राम्यत्व

काव्य में गँवारू बात का कथन ग्राम्यत्व दोष है। रहीम ने एक दोहे में पाड़े या भैंस तथा बैल के साथ साथ जुतने की बात कही है—

पुरुष पूजें देवरा तिय पूजें रघुनाथ।
कहि रहीम दोउन बने पड़ें बैल के साथ॥ ११८—पृ० १२

८ प्रकाशित विरुद्धता

कवि जिस अर्थ को प्रकाशित करना चाहता है उसके विरुद्ध अर्थ उपस्थित हो जाने पर प्रकाशित विरुद्धता होती है—

ओछे को सतसग रहिमन तजो अगार ज्यों। × × ×
तातो कारे ना रहो आवो दह भगवान॥ १२६—पृ० १४

यहा कवि कुसग त्याग पर बल देना चाहता है पर तु उसके लिए लिख गया है सतसग जिसका त्याग नहीं जा सकता। अत प्रकाशित विरुद्धता दोष है। इसी प्रकार काहू ना दही का अर्थ होगा किसी को भी नहीं जलाया (या जलाती) जबकि कवि का अभिप्राय इसके विपरीत है। अत यहाँ भी प्रकाशित भिन्नता दोष है।

९ साकाक्षा

आकांक्षा का अर्थ है इच्छा। जहा अर्थ की पूर्ति के लिए किसी पद विशेष की आकाक्षा बनी रहती है वहाँ साकाक्षा दोष होता है। सच पूछिए तो यह कवि की ही आकांक्षा है। वह यह समझ लेता है कि पाठक इस अर्थ तक स्वय पहुँच जायगा। निम्नलिखित दोहे में साकाक्षा दोष का अच्छा उदाहरण कहा जा सकता है। यहाँ

पारस्परिक अभिवादन (सलाम आदि) के प्रसंग में रहीम ने सलाम के साथ केवल राम शब्द का प्रयोग किया है। अब यदि के दिन तक कहने राम की आशा बनी रहती है। अतः यहाँ साकांक्षा दोष है

सब को सब कोऊ करै कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए जब कछु अटकै काम॥[1] ५०—पृ० ८

इसी प्रकार निम्नलिखित दोहे के दूसरे चरण में—'रंग' तथा 'नाग' शब्दों के बाद में 'चाहिए' अथवा 'उचित' आदि के प्रयोग की आकांक्षा बनी हुई है। अतः यहाँ भी साकांक्षा दोष है-

रहिमन उजली प्रकृति को नहीं नीच को संग।
करिया बासन कर गहे कालिख लागत अंग॥ १९८—पृ० १३

रस दोष और रहीम

जिस प्रकार शब्द सम्बन्धी दोष को शब्द दोष और अर्थ सम्बन्धी दोषों को अर्थ दोष कहते हैं उसी प्रकार रस सम्बन्धी दोषों को रस दोष कहा जाता है। इन दोषों की उपस्थिति में रस चर्वणा में बाधा पड़ती है। रहीम के काव्य में प्राप्त प्रमुख रस दोष निम्नलिखित हैं

१ स्वशब्दवाच्य

किसी रस विशेष के विभावादि की पूर्ण योजना करने की अपेक्षा उसके अंगों का स्वतः कथन कर देना स्वशब्दवाच्य है। रहीम शतावली के अन्तिम सोरठे में यही दोष है। कवि ने अद्भुत रस का पूर्ण परिपाक किए बिना आश्चर्य का उल्लेख मात्र कर दिया है—

बिंदु भो सिंधु समान, को अचरज कासों कहैं।
हेरन हार हिरान रहिमन अपुने आप तें॥
२७७—पृ० २७

२ विभावानुभाव कष्ट कल्पना

जहाँ भाव और विभाव आदि का निश्चय करने में कठिनाई पड़े वहाँ यह दोष माना जाता है—

सौदा करौ सो करि चलौ रहिमन याही घाट।
फिरि सौदा पैहो नहीं दूरि जान है बाट॥ २६१—पृ० २१

---

१ पं० नवनीत चतुर्वेदी की कुण्डली में सलाम और राम राम के साथ जुहार शब्द का भी प्रयोग हुआ है और यह पाठान्तर असंगत भी नहीं जान पड़ता।
सब को सब कोई कर राम जुहार सलाम।
हित अनहित तब जानिए, जा दिन अटक काम॥
जा दिन अटक काम पर मालूम सनेही।
दहि वसत प सग रग के जानो तेहि॥
कहै नीति कवि मित्र बन कितने मतलब कौं।
राम राम परनाम कर सब कोई सब कौं॥—रहिमन शतक—पृ० १९

यहाँ आलम्बन का निश्चय करना कठिन है। वश्यागार में खड़ा कामी तथा लोकोपकार भाव में निमग्न सज्जन दोनों ही इस कथन के आलम्बन हो सकते हैं।

३ परिपन्थि साङ्गपरिग्रह

अभीष्ट रस की आवश्यकता के विपरीत सामग्री का उल्लेख परिपन्थि साङ्गपरिग्रह कहलाता है। रहीम के कुछ सम्भ्रधी नीति दोहों में यही दोष है। वहाँ शृंगार की सामग्री के साथ निर्वेद की व्यंजना की गई है। इसीलिए रस परिपाक बाधित है। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

कुटिलन सग रहीम कहि, साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैना करें उरज उमैठे जाहिं॥ ४०—पृ० ४
ये रहीम फीके दुवौ, जानि महा सन्तापु।
ज्यों तिय कुच आपन गहे आप बड़ाई आपु॥ १५६—पृ० १५

निष्कर्ष

इस विवरण से स्पष्ट है कि शब्द शक्ति रीति-वृत्ति एवं गुणादि काव्य शास्त्रीय निकषा पर खरा उतरने वाला रहीम का नीति काव्य भी 'अन्यथा' नहीं है। किसी भी अन्य कवि पुंगव की भाँति उनकी रचना भी अदोषा नहीं हो सकती। हाँ इतना अवश्य है कि ऊपर गिनाए गए दोषों में से अधिकांश दोष केवल दोष दर्शन की दृष्टि से प्रेरित होने पर ही दिखाई देते हैं सामान्यतः नहीं। सामान्य पाठक तो सहज भाव से पढ़ता हुआ उनके काव्य से आनन्द और प्रेरणा ही ग्रहण करता है। उसे दोष का आभास तक नहीं होता। दोष दर्शन तो समालोचक के आयास प्रयत्न का फल ही समझिए। क्योंकि सुन्दरतम काव्य में भी छिद्रान्वेषी दोष खोज ही लेता है। शरीर कितना भी रमणीय क्यों न हो मक्खियाँ वहीं बैठती हैं जहाँ घाव हो—

अतिरमणीये काव्ये पि पिशुनो दूषणमन्वेषयति।
अतिरमणीये वपुषि व्रणमेव हि मक्षिकानिकरः॥[1]

---

१ संस्कृत कवियों की अनोखी सूझ (प्र० सं०) पृ० १२१/१६६

नो चेत्कथ निपततादनयोस्तदय
मोह मुद च नितरा दधते युवान ॥[1]

अर्थात् मृगनयनी के नेत्रो म विद्यमान श्यामता श्वतता रग नही प्रत्युत विष और अमृत हैं। यदि एसा नही तो क्या, जिन युवको पर उसकी दृष्टि पडती है व एक साथ ही मतवाले भी हो उठत है और आनन्द विभोर भी।

इस श्लोक को पढकर बहुत दिनो तक बिहारी को समझे जाते रहने वाला रसलीन का यह दोहा बरबस याद आ जाता है—

अमिय हलाहल मद भरे सेत स्याम रतनार।
जियत मरत भुकि भुकि परत जेहि चितवत इक बार॥

हिन्दी का सामान्य पाठक भी तुलसी के नाम पर सगव निम्नलिखित चौपाई उद्धत करता है—

पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहि ते नर न घनेरे।

किन्तु वास्तव म यह भाव रावुक का है—

परोपदेशे पाण्डित्य सर्वेषा सुकर नणाम।
धर्मे स्वीयमनुष्ठान कस्यचित्तुमहात्मन ॥[3]
—सु० र० भा० ८५/२६

हमारे चरितनायक रहीम न केवल सस्कृत भाषा के ज्ञाता वरन उसके समर्थ कवि भी थ। अत उनके नीति-काव्य पर सस्कृत का प्रभाव पडना स्वाभाविक था। आइए उनके काव्य पर सस्कृत प्रभाव का सक्षिप्त अध्ययन करें।

रहीम के नीति काव्य पर सस्कृत का प्रभाव

सस्कृत साहित्य इतना विशाल तथा व्यापक है कि उसम जीवन का प्राय प्रत्यक परिस्थिति तथा सासारिक व्यवहार की प्राय प्रत्यक वस्तु का वणन प्राप्त है। इस व्यापक साहित्य के नानाभा के काव्य म सस्कृत के भावो का समाहित हो जाना अथवा उनकी सुदूरवर्ती छाया का पड जाना कोई अस्वाभाविक नही। उनका सवथा त्याग तो मानो मस्तिष्क म आय भावो के साथ अत्याचार करके मौलिकता की सनक म अपनी अनुभूति के साथ गद्दारी करना है। हिन्दी म अधिकाश कवियो न ऐसी गद्दारी नही की है। रहीम भी उन्ही म से हैं। अपने कुछ छन्दो म उन्होन सस्कृत भावो अथवा प्रसगो की छाया ग्रहण की है तथा कुछ म उन्हे अत्यधिक अथवा पूण रूप स उतार दिया। छाया ग्रहण के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

एक श्लोक म भावो का प्रभाव दर्शाते हुए कहा गया है कि स्वण मृग का न होना सभी जानत है कि तु फिर भी राम जस बुद्धिमान तथा बहुत महापुरुष भी उस

१ सस्कृत कवियों की अनोखी सूझ जनार्दन भट्ट (दिल्ली १९६३) पृ० ११०/१६६
२ तुलनीय मजा बरसात का चाहो तो आ बठो इन आँखों मे।
सफेदी है सियाही है शफक है, अब्रे बारां है॥
३ सुभाषित रत्न भाण्डागारम आ० रामनारायण (बम्बई १९१७) पृ० ८५/२६

देखकर ललचा गय। अत ज्ञात होता है कि विपत्ति काल के आसन्न होने पर बुद्धि मलिन हो जाती है—

> असम्भव हेम मृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
> प्राय समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसा मलिनी भवन्ति ॥[1]

इसी भाव की छाया लेकर रहीम ने लिखा है—

> राम न जाते हिरन सग सीय न रावन साथ।
> जो रहीम भावी कतहुँ, होति आपने हाथ ॥
>
> —रहीम रत्ना० २३/२३७

भावी अथवा भाग्य के सम्बन्ध में एक अन्य श्लोक प्रसिद्ध है—

> अरक्षित तिष्ठति दैवरक्षित सुरक्षित दैवहत विनिश्यति।
> जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जित कृतप्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति ॥
>
> —शा० पद्धति ४४६

रहीम के निम्नलिखित दोहे में इसी श्लोक की सुदूरवर्ती छाया है—

> रहिमन यह्व भेषज करत व्याधि न छाँडत साथ।
> खग मृग बसत अरोग बन हरि अनाथ के नाथ ॥ —२१/२१०

महाराज भर्तृहरि (नी० श० ७६) ने मैत्री के लिए आत्मत्याग के आदर्श का काव्यात्मक निरूपण दुग्ध जल मिश्रण के उपाख्यान से किया है। दूध ने जल को अपने में मिला लिया। इस मित्रता का बदला जल ने सर्वप्रथम अपने शरीर को जला कर दिया। मित्र की आहुति पर दूध उफन पड़ा किन्तु ज्योंही उसे जल के छींटे मिले वह पुन शान्त हो गया।[1] ज्ञात होता है कि इसी भाव को ध्यान में रखकर रहीम ने निम्न दोहा लिखा था—

> जलहि मिलाय रहीम ज्यों, कियो आप सम छीर।
> अगवहि आपुहि आपु त्यों सकल आँच की भीर ॥
>
> —रहीम रत्ना० ६/६६

रहीम के इस दोहे में न वह विस्तार है और न वह शब्दावली ही। हाँ, श्लोक का अधूरा भाव अथवा उसकी छाया अवश्य है। इस प्रकार के बहुत से श्लोक हम आगे उद्धृत करेंगे। पर अब ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जिनमें रहीम ने न केवल भाव वरन मूल संस्कृत शब्दावली तक को ज्यों का-त्यों ग्रहण कर लिया है। इसे पूर्ण प्रभाव या शब्दानुवाद कहा जा सकता है।

शब्दानुवाद　याचना हि पुरुषस्य महत्त्व नाशयत्यखिलमेव तथाहि।
　　　　　　महा एव भगवानपि विष्णुर्वामनो भवति याचितुमिच्छन ॥

—प्रसंगाभरणम् १७

---

[1] हितोपदेश पृ० १/८८

इस श्लोक का यदि अर्थ लिखना चाहें या शब्दानुवाद करना चाहें तो लगभग ऐसा ही होगा जैसा रहीम का निम्नलिखित दोहा—

रहिमन याचकता गहे बडे छोट ह्वै जात।
नारायण हूँ को भयो बावन अंगुर गात॥

—रहीम रत्ना० २१ २४८

या अन्य उदाहरण लीजिए—

श्लोक विकृतिं नैव गच्छन्ति संगदोषेण साधवः।
प्रवेष्टितं महासर्पैश्चन्दनं न विषायते॥

दोहा जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं लिपटे रहत भुजंग॥

—रहीम रत्ना० ८ ७४

श्लोक दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चांगारः शीतः कृष्णायते करम्॥

—सं० क० अ० सूझ १६३ २४५

दोहा दुर्जन का संसग रहिमन तजहु अंगार ज्यों।
तातो जारे अंग शीतल हूँ कारो करे॥

—रहीम रत्ना० १६ २७०

इस प्रकार के उदाहरण भाव ग्रहण की अंतिम सीमा हैं। इसकी पूर्व सीमा का उल्लेख भी ऊपर हो ही चुका है। इन दोनों सीमाओं के मध्यवर्ती भाग पर ही रहीम के भाव ग्रहण का सबसे अधिक भाग बढा है। निम्नांकित दोहे में रहीम ने संस्कृत के भाव लेकर तथा अपनी ओर से आवश्यकतानुसार कुछ घटा-बढ़ाकर उन्हें हिन्दी जगत् के सम्मुख रखा है।

कुसंगति के दुष्परिणाम को दिखाते हुए एक श्लोक में अवध्य सागर बंधन का कारण रावण का पड़ोस माना गया है—

ध्रुवं ह्यसंगतिरनर्थपरम्पराया हेतुः सतां भवति किं वचनीयमत्र।
लंकेश्वरो हरति दाशरथेः कलत्रं प्राप्नोति बन्धनमसौ किल सिन्धुराजः॥

—हनुमन्नाटक॥

इसी को रहीम के शब्दों में सुनिए—

करि कुसंग चाहत कुसल यह रहीम जिय सोच।
महिमा घटी समुद्र की रावन बसो परोस॥

—रहीम रत्ना० १२ १२३

समुद्र के ही सम्बन्ध में एक संस्कृत अन्योक्ति प्रसिद्ध है—

हेलोल्लासितकल्लोल! धिक्ते सागर! गर्जितम्।
तव तीरे तृषाक्रान्तः पान्थः पृच्छति कूपिकाम्॥

—सं० क० अ० सूझ २०२-२०१

१ नीतिशतक, ७६
२ संस्कृत कवियों की अनोखी सूझ पृ० १६१ २५०

इस श्लोक में उत्ताल तरंगों वाले सागर को इसलिए धिक्कारा गया है कि उसके किनारे आकर भी प्यासा पथिक कूप के गर्त में पूछताछ करता है। इसी भाव पर रहीम का एक दोहा है—

धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है जगत पियासो जाय॥

—रहीम रत्ना० ११ १०४

कहने की आवश्यकता नहीं कि दोहे में जो मार्मिकता है उसके स्थान श्लोक में नहीं होने। एक अन्य श्लोक में कल्पना से काम लेते हुए कहा गया है—

को न याति वशं लोके मुखे पिण्डेन पूरितः।
मृदंगो मुखलेपेन करोति मधुरध्वनिम्॥

—सं० क० म सूभ ७२६ ३६१

अर्थात् टुकड़ा मिलने पर सभी अनुकूल राग गाने लगते हैं। रहीम ने इसी भाव को निम्न प्रकार कहा है—

चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेय।
ज्यों रहीम आटा लगे त्यों मृदंग स्वर देय॥

—रहीम रत्ना० ६-५३

दोहे के प्रथम चरण में चारा प्यारा आदि शब्दों के सयोग से जो कलात्मकता आ गयी है श्लोक से उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

चाणक्य ने बन्धुओं के बीच निर्धन जीवन की गर्हणा की है—

वर वनं व्याघ्रगजेन्द्र सेवितं, द्रुमालयं पत्रफलाम्बुसेवनम्।
तृणेषु शय्या शतजीर्णवल्कलं न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम्॥

—चा० नीति १० १२

इस भाव को रहीम ने अपने शब्दों में निम्न प्रकार कहा है—

बरु रहीम कानन भलो, बास करिय फल भोग।
बंधु मध्य धनहीन ह्वै, बसिबो उचित न योग॥

—रहीम रत्ना० २४ २४५

एक अन्य श्लोक प्रसिद्ध है—

उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥   —पंचत न २ ६

रहीम ने इस भाव को इसी प्रसंग में अपनाते हुए लिखा है—

यों रहीम सुख-दुख सहत, बड़े लोग सहि सांति।
उवत चंद जिहि भाँति सो अथवत ताहि भाँति॥

—रहीम रत्ना० १६ १४८

यहाँ यह दर्शनीय है कि रहीम ने सविता के स्थान पर चन्द्र का प्रयोग करके अपनी स्वतन्त्रता का परिचय दिया है।

भर्तृहरि तथा चाणक्य द्वारा के नीति शास्त्रों में प्राप्त सहस्र के निम्नलिखित श्लोक को तो रहीम ने सामान्य से परिवर्तन के साथ यथावत् स्वीकार किया है—

श्लोक येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥[1]

दोहा रहिमन विद्या बुद्धि नहीं नहीं धरम जस दान।
भू पर जनम वृथा धरै पशु बिन पूछ विषान ॥ रहीम रत्ना० २१ २३२

कहने की आवश्यकता नहीं कि श्लोक में भाव तो सुन्दर है ही, उसकी अभिव्यक्ति भी सुन्दर सुमीलित सरस एवं सरल शब्दावली में हुई है। यहाँ यह तथ्य भी स्पष्ट है कि दोहा लिखते समय रहीम के मस्तिष्क में भर्तृहरि का दूसरा प्रसिद्ध श्लोक 'साहित्य संगीत कला विहीनः इत्यादि भी था और उसी के अन्तिम वाक्यांश— साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनः' को दोहे के चतुर्थ पद में स्थान दिया गया है। इस आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि भर्तृहरि चाणक्यादि के सर्वाधिक श्लोकों की सामग्री का साथ मिलाकर रहीम ने कहीं-कहीं एक ही श्लोक में सजोने का प्रयास भी किया है।

नीति कवि रहीम ने नीति विशारद चाणक्य के साहित्य का भली भाँति अध्ययन किया था। चाणक्य नीति में संकलित श्लोकों के साथ ही चाणक्य सूत्र भी रहीम की दृष्टि के सम्मुख रहे प्रतीत होते हैं। हमारे इस अनुमान का आधार निम्नलिखित दोहा है—

रहिमन नीचन संग बसि लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहि सब ताहि ॥
—रहीम रत्ना० २० २०२

चाणक्य के दो सूत्रों में ठीक यही भाव है—

न दुर्जनैस्सह संसर्गः कर्तव्यः।
शौण्डहस्तगतं पयोऽप्यवमन्येत ॥ चा० सूत्र २१५ २१६

इस प्रकार के पचासों से भी ऊपर सन्दर्भ गिनाये जा सकते हैं। विस्तार भय से हम कुछ ही श्लोक उद्धृत कर रहे हैं—

श्लोक काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः।
वसन्त समये प्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः ॥
—सु० र० भा० २७५ १२०

दोहा दोनों रहिमन एकसे जौं लौं बोलत नाहि।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु वसन्त के माँहि ॥
—रहीम रत्ना० १० १०१

श्लोक चिता दहति निर्जीवं चिन्ता जीवं दहत्यहो।
बिन्दुमात्राधिका चिन्ता चितात्यल्पा हि भूतले ॥
—सु० र० भा० ३९८ ६७०

---

१ चाणक्यनीति १० ७ तथा नीति शतक १३

दोहा रहिमन कठिन चितान ते, चिंता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत॥
—रहीम रत्ना० १७ १६०

श्लोक भद्रं भद्रं कृतं मौनं कोकिलैर्जलदागमे।
वक्तारो दर्दुरा यत्र, तत्र मौनं हि शोभते॥
—सु० र० भा० २३/ ११८

दोहा पावस देखि रहीम मन कोयल साधे मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन॥
—रहीम रत्ना० १० ११७

श्लोक सज्जनैर्यो मतिमता दुर्जनं सख्यवैरयोः।
श्वा भवत्यपकाराय लिहन्नपि दशन्नपि॥
—शा० पद्धति ३६७

दोहा रहिमन ओछे नरन सों बैर भलो न प्रीत।
काटे चाटे स्वान के दुहूँ भाँति विपरीत॥
—रहीम रत्ना० १७ १५६

श्लोक उपकर्तुं यथा स्वल्पः समर्थो न तथा महान्।
प्रायः कूपस्तृषां हन्ति सततं न तु वारिधिः॥
—सु० र० भा० १६८ ६७२

दोहा धनि रहीम जल पंक को लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है जगत पियासो जाय॥ १७-१०५

श्लोक कुर्यान्नीचजनोऽभ्यस्ता न याचा मानहारिणीम्।
बलिप्रार्थनया प्राप लघुतां पुरुषोत्तमः॥
—शार्ङ्गधर प० १२१६

दोहा माँगे घटे रहीम पद कितौ करौ बड़ काम।
तीन पग बसुधा करी तऊ बावने नाम॥ —१८ १४५

संस्कृतेतर भाषाओं का रहीम पर प्रभाव

संस्कृत कवियों के भाव साम्य के साथ ही कुछ दोहे ऐसे भी देखने में आते हैं जिनके भाव पाली प्राकृत तथा अपभ्रंश कवियों के साथ सादृश्य रखते हैं। हमारे देखने में जो स्थल आए हैं उनमें एक-दो निम्नांकित हैं।

पालि से भाव साम्य

याचनं रोदनं आहु पञ्चालानं रथेसभ
यो याचनं पच्चक्खाति तमाहु पटि रोदनं॥ जातक ३
रहिमन वे नर मर चुके जे कहुँ माँगन जाहिं
उनते पहले वे मुए जिहि मुख निकसत नाहिं॥
उक्त दोनों उदाहरणों में दान का भाव प्रायः एक ही जैसी रीति से वर्णित है।

प्राकृत से भाव साम्य

नीति की दृष्टि से प्राकृत एक बहुत ही समृद्ध भाषा है। गाथा सप्तशती की नीति गाथाओं की चर्चा भी की जा चुकी है। उनमें से कई भावों का साम्य रहीम के साथ देखने को मिलता है—

सा जाई त च जल पत्तविसेसण अंतर गरुअ।
अहि मुह पडिअ गरल सिप्पिउहे मुत्तिय होइ ॥[1]

वस्तु विशेष के संसर्ग से एक ही स्वाति जल भिन्न रूप हो जाता है। अहिमुख में पड़ने से गरल तथा सीपी में पड़ने में मोती। ठीक यही भाव रहीम के दोहे में भी है—

मुक्ता कर करपूर कर चातक जीवन जोय।
ए तो बड़ो रहीम जल, व्याल बदन विष होय ॥
—रहीम रत्ना० ९। १४७

कदली सीप भुजग मुख स्वाति एक गुण तीन।
जसी संगति बठिये तसोई फल दीन ॥—र० रत्ना० ३ २२

स्पष्ट है कि इस भाव साम्य का मूल संस्कृत में स्थित है।

अपभ्रंश कवियों से भाव साम्य

वैराग्य सम्बन्धी भावनाओं के क्षेत्र में अपभ्रंश की समृद्धि संस्कृत के ही समान है। जिन्होंने उन ग्रंथों को पढ़ लिया है उनपर अमिट छाप का बने रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं। भावना संधि प्रकरण में एक स्थान पर कहा गया है—

पिय पुण मित्त घर घरणि जाय। इह लोय य सच्च व सुहु सुहाय।
नवि अत्थिय कोई तुह सरणि मुक्ख ॥[2]

रहीम इसी तथ्य को कह रहे हैं—

धन दारा अरु सुतन सो लगो रहे नित चित्त।
नहिं रहीम कोऊ लख्यो, गाढ़े दिन को मित्त ॥
—रहीम रत्ना० १० १०३

१४वीं शती उत्तरार्द्ध के आचार्य मेरुतुंग ने भाग्य की अवश्यम्भावी दुरभिसंधियों से मंज महाराजा को ढाढस बंधाते हुए कहा था कि गुणपुंज रत्नाकर! धैर्य धारण करो चित्त को चिंतित मत करो। विधि जिस प्रकार का ताल बजाता है मनुष्य को तो उसी प्रकार नाचना पड़ता है—

चिंति विसाउ न चितियइ रयणायर गुण पुंज।
जिमि जिमि वायइ विहिपडहु तिमि नच्चि जइ मुंज ॥[3]

---

१ प्राकृत सुभाषित संग्रह बी० एन० शाह (सूरत १६२८) पृ० ४ ०
२ अपभ्रंश साहित्य श्री हरिवंश कोछड़ पृ० २६० पर उद्धत
३ श्री मेरुतुंगाचार्य विरचित प्रबंध चिंतामणि सम्पा० मुनि जिनविजय —(सिंघी जैन ग्रंथमाला सं० १९८३)

दोहा — रहिमन कठिन चितान त, चिता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को, चिता जीव समेत॥
—रहीम रत्ना० १७ १६०

श्लोक — भद्र भद्र कृत मौन कोकिलजलदागमे।
वक्तारो दर्दुरा यत्र, तत्र मौन हि शोभते॥
—सु० र० भा० २३४ ११८

दोहा — पावस देखि रहीम मन, कोयल साधे मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं हमें पूछिहै कौन॥
—रहीम रत्ना० १२ ११७

श्लोक — वजनीयो मतिमता दुर्जन सख्यवरयो।
श्वा भवत्यपकाराय लिहन्नपि दशन्नपि॥
—शा० पद्धति ३६७

दोहा — रहिमन ओछे नरन सों बैर भली न प्रीत।
काटे चाटे स्वान के दुहूँ भांति विपरीत॥
—रहीम रत्ना० १७ १६६

श्लोक — उपकर्तुम यथा स्वल्प समर्थो न तथा महान।
प्राय कूपस्तृषा हन्ति सतत न तु वारिधि॥
—सु० र० भा० १६८ ६७२

दोहा — धनि रहीम जल पक को लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बडाई कौन है जगत पियासो जाय॥ ११ १०५

श्लोक — कुर्यानीचजनोभ्यर्थना न याचा मानहारिणीम।
बलिप्रार्थनया प्राप लघुता पुरुषोत्तम॥
—शाङ्गधर प० १४१४

दोहा — मागे घटे रहीम पद किती करो बड काम।
तीन पग वसुधा करी तऊ बावने नाम॥ —१४ १४५

सस्कृतेतर भाषाओ का रहीम पर प्रभाव

सस्कृत कवियो के भाव साम्य के साथ ही कुछ दोहे ऐसे भी देखने मे आते है जिनके भाव पाली प्राकृत तथा अपभ्रश कवियो के साथ सादृश्य रखते हैं। हमारे देखने मे जो स्थल आए हैं उनमे एक-दो निम्नाङ्कित हैं।

पालि से भाव साम्य

याचन रोदन आहु पचालान रथ सभ
यो याचन पच्चक्खाति तमाहु पटि रोदन॥ जातक ३
रहिमन वे नर मर चुके जे कहुँ माँगन जाहि
उनसे पहले वे मुए जिहि मुख निकसत नाहि॥

उक्त दोनो उदाहरणो मे दान का भाव प्राय एक ही जैसी रीति से वर्णित है।

प्राकृत से भाव साम्य

नीति की दृष्टि से प्राकृत भी बहुत ही समृद्ध भाषा है। गाथा सप्तशती की नीति गाथाओं की चर्चा भी की जा चुकी है। उनमें से कई भावों का साम्य रहीम के साथ देखने को मिलता है—

सा आई त च जल पत्तविसेसण अतर गरुअं ।
अहि मुह पडिअ गरल सिप्पिउहे मुत्तिय होइ ॥[1]

वस्तु विषय के समय से एक ही स्वाति जल भिन्न रूप हो जाता है। अहिमुख में पड़ने से गरल तथा सीपी में पड़ने से मोती। ठीक यही भाव रहीम के शब्दों में भी है—

मुक्ता करै करपूर कर चातक जीवन जोय ।
ए तो बड़ो रहीम जल, व्याल बदन विष होय ॥
—रहीम रत्ना० १८ १४७

कदली सीप भुजग मुख स्वाति एक गुण तीन ।
जैसी संगति बैठिये तैसोई फल दीन ॥—र० रत्ना० ९ २२

स्पष्ट है कि इस भाव साम्य का मूल संस्कृत में स्थित है।

अपभ्रंश कवियों से भाव साम्य

वैराग्य सम्बन्धी भावनाओं के क्षेत्र में अपभ्रंश की समृद्धि संस्कृत के ही समान है। जिन्होंने उन ग्रन्थों का पठन किया है उनपर अमिट छाप का बने रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं। भावना सन्धि प्रकरण में एक स्थान पर कहा गया है—

पिय पुण मित्त घर घरणि जाय । इह लोय प सत्व स सुहु सुहाय ।
नवि अत्थिय कोई तुह सरणि मुक्ख ॥[2]

रहीम इसी तथ्य को कह रहे हैं—

धन दारा अरु सुतन सो लगो रहे नित चित्त ।
नहिं रहीम कोऊ लख्यो गाढ़े दिन को मित्त ॥
—रहीम रत्ना० १० १०३

१४वीं शती उत्तरार्द्ध के आचार्य मेरुतुंग ने भाग्य की अवश्यम्भावी दुरभिसन्धियों से भग्न महाराजा को ढाढ़स बंधाते हुए कहा था कि गुणपुंज रत्नाकर! धैर्य धारण करो चित्त को चिंतित मत करो। विधि जिस प्रकार का ताल बजाता है, मनुष्य को तो उसी प्रकार नाचना पड़ता है—

चिंति बिसाउ, न चिंतियइ रयणायर गुण पुज ।
जिमि जिमि वायइ विहिपडहु तिमि नच्चि जइ भुज ॥[3]

१ प्राकृत सुभाषित संग्रह वी० एम० शाह (सूरत १९५८) पृ० ४ ~
२ अपभ्रंश साहित्य श्री हरिवंश कोछड़ पृ० २६२ पर उद्धृत
३ श्री मेरुतुंगाचार्य विरचित प्रबन्ध चिंतामणि सम्पा० मुनि जिनविजय
—(सिंघी जैन ग्रन्थमाला सं० १६ ३)

भाग्य के बारे में रहीम ने करम तथा मनुष्य को कठपुतली बताते हुए भी यही भाव व्यक्त किया है—

> ज्यों नाचत कठपूतरी करम नचावत गात।
> अपने हाथ रहीम ज्यों नहीं आपुन हाथ॥—रहीम रत्ना० ९८६

प्राकृत कवि ने लक्ष्मी चाञ्चल्य का प्रतिपादन करते हुए उसे प्रत्येक घर में दौड़ता दिखाया है और कहा है कि प्रिय वियुक्त गोरी भला निश्चिन्त बैठ भी कैसे सकती है—

> एत्तहे तेत्तहे वारि घरि लच्छि विसुंठुल धाइ।
> पिअ पब्भट्ठ व गोरडी निच्चल कहिं वि न ठाइ॥
>
> —प्राकृत व्याकरण ४ ४३६ १

कमला अस्थिर के लिए कहा गया रहीम का दोहा भी इसी सन्दर्भ में उद्धृत किया जा सकता है। हाँ पुरुष पुरातन के माध्यम में इस तथ्य की अभिव्यक्ति ने उक्ति को मौलिकता प्रदान करते हुए चार चाँद लगा दिये हैं—

> कमला थिर न रहीम कहि इहि जानत सब लोग।
> पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय॥
>
> —रहीम रत्ना० १ १३

रहीम पर फारसी का प्रभाव

रहीम फारसी के उद्भट विद्वान और उत्तम कवि थे। वे फारसी में कविता करते थे और कविताएँ उस समय के उत्तमोत्तम कवियों की टक्कर की होती थीं।[1] उनके नीति-काव्य पर बहुत फारसी साहित्य का प्रभाव पड़ना भी एक प्रकार से सम्भव था किन्तु हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि रहीम ने एक भी उपमा एक भी स्पष्ट एक भी भाव फारसी के किसी कवि से नहीं लिया। उनका काव्य संस्कृत का ऋणी है फारसी का नहीं। वैसे यदि भाव साम्य खोजना हो चाहे तो थोड़े-बहुत मिलते जुलते एक दो शेर खोजे जा सकते हैं। [illegible] ने [illegible] के [illegible] में एक बड़ी उपयोगी बात कही है—

> अगर शहराज़ रा गोयद शब अस्त ईं।
> बबायद गुफ्त ईनक माहो परवीं॥

इस भाव से रहीम के निम्नलिखित दोहे की तुलना की जा सकती है—

> रहिमन जो रहिबो चहै कहै वाहि के दाँव।
> जो बासर को निसि कहै तो कचपची दिखाव॥

इसी प्रकार अमीर खुसरो तथा रहीम की निम्नांकित पंक्तियाँ भी तुलनीय हैं—

> [illegible] भी [illegible] राज़ [illegible] रा।
> [illegible] निशायद हा बुवद महमान [illegible] रा॥ —खुसरो

---

१ शेरुलअजम (भाग ३) मौलाना शिबली पृ० [illegible]

रहिमन अँसुवा नयन ढरि जिय दुख प्रकट करेय।
जाहि निकारो गेह तें, कस न भेद कहि देय।।
—रहीम रत्ना० १६ १६५

किसी फारसी कवि ने कहा है—"अर सरे फर्जन्द आदम हरचे आयद बे गुज़रद।"
रहीम के शब्दों में यह भाव निम्न प्रकार है—

जसे परे सो सहि रहे कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत है सीत घाम अरु मेह।। रहीम रत्ना० ७ ६८

फारसी काव्य के विशाल भण्डार से और भी ऐसे छन्द उद्धृत करना, जिनसे रहीम का भाव साम्य हो कोई बहुत कठिन कार्य नहीं। किन्तु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है यह भाव साम्य अधिक मात्रा तथा प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त नहीं होता। रहीम ही नहीं अन्य हिन्दी कवि भी यहाँ तक कि सूफी भी विदेशी परम्पराओं तथा फारसी काव्य से इतने प्रभावित नहीं जितने भारतीय परम्पराओं तथा संस्कृत काव्य से। हिन्दुई साहित्य को लेकर गार्सां द तासी महोदय की जो धारणा बनी थी वह आंशिक रूप से ही सत्य हो सकती है और वह भी विशेषत संस्कृत के सम्बन्ध में। उनका कथन निम्नांकित है—"मुझे कहना पड़ता है कि हिन्दुस्तानी साहित्य का एक बहुत बड़ा भाग संस्कृत और अरबी से अनूदित है।"[1]

सारांश यह है कि पाली प्राकृत तथा अपभ्रंश के अनेक छन्दों से मिलते जुलते भाव रहीम के काव्य में वर्तमान हैं। किन्तु इससे हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि रहीम इन सभी भाषाओं के पण्डित थे अथवा उन्होंने उक्त सभी ग्रन्थों को पढ़ा था। वैसे रहीम जैसे विद्या-व्यसनी तथा उदार महापुरुष के लिए यह असम्भव तो नहीं है किन्तु फिर भी हमारा विचार है कि उक्त प्रभाव अपभ्रंशादि से सीधे न आकर संस्कृत माध्यम से आए हैं। निम्न उदाहरण इसके लिए पर्याप्त है—

संस्कृत उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता।। पंचतन्त्र २ ७

प्राकृत उदयम्मि वि अत्थमणे वि धरइ रत्तत्तण दिवस नाहो।
रोहिसु आवईस अ तुल्लच्चिय णूरण सप्पुरिसा।।
—प्राकृत सुभाषित २

रहीम यों रहीम सुख दुख सहत बड़े लोग सहि सांति।
उवत चन्द जिहि भांति सो अथवत ताही भांति।।
—रहीम रत्ना० १६ १५८

इसके अतिरिक्त यह भी सत्य है कि भाव साम्य के लिए सदैव एक दूसरे का अध्ययन ही अनिवार्य नहीं होता। ऐसे अनेक भाव हैं जो प्राचीन भारतीय कवियों तथा यूनान आदि देशों के मध्य लोगों में आश्चर्यजनक साम्य रखते हैं। गंगा सन्निधि का एक श्लोक है—

दुर्जना निलिप्ता दासा अति दुष्टास्तथा स्त्रिय।
ताडिता मार्दव यान्ति नते सत्कार भाजिन।।

---

[1] हिन्दुई साहित्य का इतिहास गार्सां द तासी (अनु० ल० सा० वार्ष्णेय) पृ० ६३

कोवहम बूग्रर का कथन भी यही है—

ए वोमन ए स्पर्नियल एंड ए वालनट ट्री।
द मोर यू बीट द बटर दे बी॥

अतः हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि रहीम ने संस्कृत काव्य से बहुत से भाव, रूढ़ियाँ तथा अन्योक्तियाँ ग्रहण कीं। उनमें से अधिकांश की अभिव्यक्ति में अपनी काव्य प्रतिभा का पूरा पूरा उपयोग भी किया। यही कारण है कि उनके दोहों में बासीपन नहीं है। उनके द्वारा व्यक्त भाव जन मानस पर आज भी उतना ही गहरा प्रभाव अंकित करते हैं जितना वे अपने नव निर्माण के समय करते होंगे। इस यश का श्रेय अकेले रहीम को नहीं वरन् उन समस्त अरबी फारसी प्राकृत अपभ्रंश तथा संस्कृत आदि के कवियों को भी जाना चाहिए जिनसे रहीम का भाव साम्य सिद्ध है अथवा सिद्ध किया जा सकता है। हमारा निवेदन केवल इतना है कि संस्कृत के अतिरिक्त अन्य सभी भाषाओं से भाव साम्य केवल संयोग की बात है और जो है भी वह केवल संस्कृत के माध्यम से। इसी माध्यम के कारण भारत की भिन्न भिन्न भाषाओं में एक विचित्र साम्य स्थापित हुआ है। एक ही भाषा के कवियों में जो भाव सादृश्य दृष्टिगोचर होता है उसमें भी एक बहुत बड़ा हाथ संस्कृत की मध्यस्थता का है। इस अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि आज के युग में किसी नैतिक तथ्य का उद्घाटन कर यह समझ लेना कि इसे कभी कहीं किसी प्रकार, किसी के द्वारा व्यक्त नहीं किया गया कोरा दम्भ है। मौलिकता का अर्थ है किसी नये पुराने तथ्य को अधिक से अधिक प्रभावशाली भाषा में मौलिक रूप से कहना। रहीम ने अधिकांश तथ्यों का उद्घाटन मौलिक रूप में किया था। उनके विचारों की तुलना संस्कृत प्राकृत पालि अपभ्रंश तथा फारसी इत्यादि अनेक भाषाओं के कवियों से की जा सकती है किन्तु प्रभाव उन पर संस्कृत का ही है जो उन जैसे संस्कृत प्रिय व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है। संस्कृत का प्रभाव न केवल रहीम पर परन्तु उक्त सभी भाषाओं के अनेक कवियों पर है। रहीम ने दो चार दोहों का संस्कृत से अनुवाद भी किया है किन्तु अधिकतर उन्होंने संस्कृत श्लोकों के भाव अपने ढंग से व्यक्त किए हैं। भावों की अभिव्यक्तिकरण में कहीं कहीं तो वे मूल श्लोक से प्रभविष्णुता तथा निखार में निश्चित बाजी मार गये हैं। ऐसा कोई उदाहरण प्राप्त नहीं होता जहाँ उन्होंने संस्कृत भावों की हत्या की हो अर्थात् संस्कृत श्लोक के विचार को मूल की अपेक्षा निम्न स्तर पर व्यक्त किया हो। रहीम के नीति-काव्य में संस्कृत के कुछ भाव अधिकांश रूप में दृष्टिगोचर होते हैं जो अधिक व्यवहार में लाये जाने के कारण एक प्रकार से काव्य रूढ़ि या कवि समयों की स्थिति में आ गये थे। जैसे चातक स्वाति के इस भाँति विपरीत, उदधि बड़ाई कौन है जगत् पियासो जाय स्वाति एक गुण तीन परकाज हित सम्पति सुचहि सुजान आदि ऐसे ही भाव हैं जो कवि समय तो नहीं परन्तु उन जैसे ही बन गये थे। इनका प्रयोग रहीम के अतिरिक्त अन्य सभी हिन्दी कवियों ने निरन्तर रूप में किया है।

अंतिम तथ्य विस्तृत विवेचन की अपेक्षा रखता है। रहीम काव्य के संदर्भ में उक्त तथ्य की सिद्धि हिन्दी के विभिन्न कवियों से स्वयमेव हो जायगी। अतः अब हम प्रमुख हिन्दी कवियों से रहीम का भाव साम्य दिखाने की चेष्टा करेंगे। काव्य के इस अध्ययन को कबीर से आरम्भ किया जा रहा है।

कबीर और रहीम का भाव सादृश्य

कबीर का जन्म रहीम से १५७ वर्ष पूर्व हुआ था। उस समय समाज में उनका साहित्य आज की अपेक्षा कहीं शुद्ध रूप में प्रचलित रहा होगा। सम्राट अकबर सन्तों साधु-संन्यासियों तथा उनकी वाणियों का बहुत आदर करता था। अतः सम्भव है रहीम ने कबीर की वाणी को पढ़ा भी हो (तब तक वह संग्रहित हो चुकी होगी) और कबीर पंथियों से सुना भी हो। यह अनुमान अंतःसादृश्य के आधार पर पुष्ट नहीं होता। रहीम का काव्य सन्त कबीर का अनुकरण तो क्या उसमें प्रभावित भी प्रतीत नहीं होता। पं० मायाशंकर याज्ञिक[1] और उन्हीं के अनुकरण पर बाबू ब्रजरत्नदास ने तुलना के लिए कबीर के जिन दोहों को उद्धृत किया है उनमें से एक दो के अतिरिक्त शेष सभी अप्रामाणिक हैं।[2] याज्ञिक जी ने तो अपने द्वारा उद्धृत दोहों के स्रोत (ग्रन्थ) का भी उल्लेख नहीं किया है। बाबू ब्रजरत्नदास ने कबीर वचनावली का नाम निर्देश किया है परन्तु आधुनिक खोजों के आधार पर वे दोहे कबीर के सिद्ध नहीं होते। किन्तु हमारा आशय यह नहीं है कि रहीम और कबीर में भाव साम्य के स्थल खोजे ही नहीं जा सकते। हमारा तात्पर्य तो केवल इतना है कि रहीम के नीति काव्य पर कबीर साहित्य का कोई स्पष्ट या उल्लेखनीय प्रभाव परिलक्षित नहीं होता—यों एक दो दोहे देखे अवश्य जा सकते हैं—

माक्तों के प्रति अपना स्वाभाविक रोष अभिव्यक्त करते हुए कबीर ने कहा—

मारी मरै कुसंग की केरा कांइ बेर।
वह हाले वह चीरई, साक्त संग निबेर ॥[3]

रहीम ने इसके अनुरूप ही संगति के परिणाम चित्रण में इन्हीं उपमानों का प्रयोग किया है—

कहु रहीम कैसे निभै बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने उनके फाटत अंग ॥

—रहीम रत्ना० / ३३

---

१ रहीम रत्नावली पं० मायाशंकर याज्ञिक (तृतीय संस्करण) पृ० ८, ८८

२ हमने इस कथन तथा कबीर सम्बन्धी अपने अध्ययन का आधार डा० पारसनाथ तिवारी की "कबीर ग्रन्थावली" को बनाया है। हमारे विचार में यह सर्वाधिक प्रामाणिक पुस्तक है।

३ कबीर ग्रन्थावली पृ० २१८ २

उपमानो का यह ग्रहण भी कबीर का प्रभाव नही क्योकि विगत पृष्ठो म हम इसी भाव के संस्कृत श्लोक उद्धत कर चुके है। ध्यान देने पर दोनो की उक्तियो म अंतर भी स्पष्ट दिखाई पड जाएगा। कबीर के दोहो म साक्तो की संगति की गहणा है जब कि रहीम की पंक्तियो म मरस नीरस समग का अनौचित्य है। किन्तु एक विचित्र स्थिति भी विचारणीय है। रहीम ने 'उनके रस म डोलन पर उनके अंग फटने' का उल्लेख किया है। क्योकि अंग केले के फटा करते है अत अंग फटने वाला केला हुआ और दूसरा पक्ष बेर रस म डालने वाला' हुआ। वास्तव म ऐसा नही होता। बेर के वृक्ष म काँटे है कठोरता है अत उसका 'रस म डोलना' नही दिखलाया जाना चाहिए था। अस्तु दो दोहे और देखिए—

जालों इहै बडापना ज्यू सरल पेड खजूरि।
पथी छाँह न बीसवे फल लागे ते दूरि॥
—कबीर ग्र था० १८८ ३

होय न जाकी छाह ढिग फल रहीम अति दूर।
बढिहू सो बिनु काज ही जैसे तार खजूर॥
—रहीम रत्ना० २६ २७०

हेरत हेरत हे सखी रहा कबीर हिराइ।
समुद समाना बूद म सो कत हेरा जाइ॥
—कबीर ग्रथा० २१५ १

बिंदु भो सिंधु समान को अचरज कासो कहै।
हेरन हार हरान, रहिमन अपुन आपत॥
—रहीम रत्ना० २७ ४०७

जसा कि हम ऊपर कह चुके है इस प्रकार के दो चार अन्य दोहे श्री याज्ञिक तथा बाबू ब्रजरत्नदास ने उद्धत किये है किन्तु व सब कबीर के नहीं है। कबीर के नाम पर तो ऐसे दोहे भी प्रचलित है जिनम तम्बाकू की निन्दा की गई है[1] जब कि तम्बाकू भारत म सबसे पहले यूरोपीय व्यापारियो ने अकबर को भेंट म भेट किया था। अत उन दोनो दोहो के आधार पर रहीम को कबीर से प्रभावित सिद्ध नही किया जा सकता। किन्तु इस दोहे में—

एक साध सब सधै सब साधे सब जाइ।
उलटि जो सींचे मूल को फूल फल अघाइ॥

---

[1] भाँग तमाखू छूतरा अफ्यू और सराब।
कह कबीर इनको तजे तब पावे दीदार॥
—रहीम र नावली पृ० ८३ पर उद्धृत

[2] हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास आचार्य चतुरसेन पृ० ३६१

यह दोहा श्री तिवारी ने अपनी पुस्तक कबीर ग्रंथावली में दिया है। उन्होंने दो चार पंक्तियों में इसके पाठान्तर का संकेत भी किया है। यह दोहा रहीम के नाम पर भी प्राप्त होता है—

एक साधे सब सधे सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहि सींचिबो फूलहि फलहि अघाय ॥ रहीम रत्ना० २१६

इस प्रकार और भी दो एक छन्द हो सकते हैं। संस्कृत नीति काव्य में तथा मध्ययुगीन अन्यान्य कवियों में अपने पूर्ववर्ती कवियों के कुछ सुन्दर नीति वाक्यों को ज्यों का त्यों ग्रहण करने की परम्परा रही है। अतः हो सकता है कि कबीर के कुछ अत्यन्त प्रचलित छन्द रहीम के काव्य में घुल मिल गए हों। किन्तु सामान्यतः हम रहीम को कबीर से प्रभावित नहीं पाते।

महाकवि सूरदास और रहीम

सूर अपने क्षेत्र के सम्राट हैं। हिन्दी को वात्सल्य भाव से भरना उन्हीं का काम था। कृष्ण काव्य पर उनकी छाप अमिट है। उनके नाम पर हिन्दी साहित्य के एक युग को बहुत ही सौर काल कहते हैं। परन्तु स्वयं सूरदास का जन्म सम्वत निश्चित नहीं है। इतना अवश्य है कि उनकी मृत्यु विट्ठलनाथ जी की मृत्यु (सं० १५८८ ई०) से पहले हुई थी। उस समय तक रहीम अपनी वह आयु अवश्य समाप्त कर चुके होंगे जिसके लिए अंग्रेजी शब्द टीन एजर प्रसिद्ध है। सूर की प्रसिद्धि भी अपने जीवन काल में ही हो चुकी थी। अतः कृष्णभक्ति से प्रभावित रहीम ने सूर के पदों का रस अवश्य लिया होगा। परन्तु रहीम और सूर दोनों के प्रमुख क्षेत्र पृथक पृथक थे।

संस्कृत कवियों में स्वाति बूंद के विभिन्न संसर्गों का भाव प्रसिद्ध है। सूर ने उसी मान्यता के अनुसार लिखा है—

सीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो संगत के फल सूर ॥—सूर

यही भाव रहीम का भी है परन्तु निश्चित ही दोनों कवियों के भाव्य साम्य का आधार संस्कृत है परस्पर कथन नहीं वरं घर सम्बन्धी दोनों के कथनों का कारण भी यही है।

चारों और निधि के हाथ न लगने पर एक भाव साम्य देखिये—

यों भूलो ज्यों चोर भरे घर चारों निधि न लई।
बदलत भोरे भयो पछतानो कर तें छाड़ दई ॥—सूर
करम हीन रहिमन लख्यो धस्यो बड़े घर चोर।
चिन्तत ही बड़ लाभ के जागत ह्वै गो भोर ॥—रहीम

कमल तथा रवि के प्रेम का आधार लेकर कुसमय तथा मित्रता का वर्णन करते हुए सूर ने कहा है—

कुसमय मीत काको कवन।

कमल को रवि परम हित है कहत श्रुति अस वचन।
घटत वारिधि भयो दारुण करत कमलन दहन ॥—सूर

रहीम इसको और स्पष्ट करते हुए धनहीन अवस्था में मित्र इसी प्रकार का प्रयोग करते हैं—

जब लगि वित्त न आपुने तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अम्बुज अम्बु बिन रवि नाहिन हित होय ॥ —रहीम

भाव एक होते हुए भी रहीम के दोहे में कसावट है। सूर ने हिन्दू होते हुए भी छोटी-सी बात के बीच में श्रुतियों का व्यर्थ ही घसीटा है, रहीम ने मुसलमान होते हुए भी ऐसा नहीं किया। वस्तुतः सूर को कथ्य का सम्यक् ध्यान न था।

इन दोनों दोहों के भावों तथा प्रसंगों में कोई अन्तर नहीं है। हाँ रहीम के दोहे में सघनता अवश्य है। यही कारण है कि सूर की तीन पंक्तियों का भाव रहीम की दो पंक्तियों में सफलतापूर्वक भरा जा सका है। कहीं-कहीं इसके उल्टा भी देखने को मिलता है—

हरद चून रंग, पय पानी ज्यों दुविधा दुहु की भागी ॥ —सूर

एकत्व प्रतिपादन में सूर ने एक ही पंक्ति में दो उपमाओं का प्रयोग किया है। किन्तु रहीम पूरे दोहे में केवल हल्दी चूने की ही गाथा गा पाए हैं—

रहिमन प्रीति सराहिए मिले होत रंग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै तजै सफेदी चून ॥ —२१२०८

भावसाम्य होते हुए भी जरदी हरदी और सफेदी तथा तजै शब्दों के प्रयोग से रहीम की पंक्ति में एक प्रकार का ध्वन्यात्मक सौन्दर्य आ गया है जो सूरदास की पंक्ति में नहीं है। इसी प्रकार सूर की पंक्ति—'जो छिपा छरद करि सकल सन्तनि तजी तासु मति मूढ़ रस ठानी'—जैसा भाव निम्नलिखित दोहे से मिलता है—

जो विषया सतन तजी मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन करि स्वान स्वाद सो खात ॥ —रहीम

रहीम ने भी जहाँ कृष्ण की रूपमाधुरी का वर्णन किया है वहाँ सूर की सी वर्ण योजना उन्हीं की सी शब्द रचना, वाक्य विन्यास तथा वर्णन शैली आदि को अपनाया है। उन्हें पढ़कर पहला विचार यही बनता है कि वे सूर के पद हैं। पदों के भाव सौंदर्य आदि की चर्चा हम विस्तार से पहले ही कर चुके हैं। अतः इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि रहीम लिखित नीति के दोहों और सूर के पदों में यद्यपि कहीं-कहीं भाव साम्य दृष्टिगोचर होता है किन्तु इस आधार पर उन्हें सूर साहित्य से प्रभावित सिद्ध नहीं किया जा सकता। दोनों के काव्य में साम्य सामान्यतः संस्कृत काव्य की प्रसिद्ध उक्तियाँ अपनाने के कारण आया है।

तुलसीदास और रहीम

गोस्वामी तुलसीदास के जन्म संवत् के सम्बन्ध में तो बहुत अधिक मतभेद है, परन्तु रहीम तथा उनकी समसामयिकता में किसी को रंचमात्र भी सन्देह नहीं।

रहीम तथा तुलसी का पत्र व्यवहार तथा बरवै के आधार पर बरवै रामायण की रचना भी जगत् प्रसिद्ध है। डा० मानाप्रसाद गुप्त तथा डा० रामकुमार वर्मा ने इतिहास की आड लेकर रहीम तुलसी बरवै सम्प्रेषण पर वमत्य प्रकट किया है उसका उत्तर अब्दुर्रहीम खानखाना में इतिहास पर खोज करते समय डा० समरबहादुर सिंह भली भांति दे चुके हैं।[1] अत रहीम की प्रेरणा से बरवै रामायण की रचना संदिग्ध नहीं। मानस के मंगलाचरण के आधार पर रहीम के फुटकर बरवों का मंगलाचरण हम पहले ही सिद्ध कर चुके हैं। अत यह नहीं कहा जा सकता कि कोई किस से कितना प्रभावित हुआ था। इतना निश्चित है कि रहीम और तुलसी दोनों परस्पर प्रेम भाव रखते थे और दोनों एक-दूसरे के व्यक्तित्व से प्रभावित थे। इतना ही नहीं दोनों में पत्र-व्यवहार भी होता रहता था। इतिहासकार भी यह तथ्य स्वीकार करते हैं।[2] नीति-कथना में भाव साम्य दिखाने के लिए कुछ दोहे उद्धृत हैं—

नीच निचाई नहिं तज सज्जनहू के संग।
तुलसी चदन बिटप बसि विष बिनु भये न भुअग ॥ दोहावली ३३७

तुलसी ने इस दोहे में सर्प पर चन्दन का प्रभाव न पडना दिखाकर नीच के लिए सत्संग की व्यर्थता सिद्ध की है। इसी भाव के विपरीत पक्ष को लेकर रहीम ने सज्जनों के लिए कुसंगति प्रभाव का उल्लेख किया है—

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसग।
चन्दन विष व्यापत नहीं लिपटे रहत भुजग ॥
—रहीम रत्ना० ८ ७४

यह भाव साम्य एक दूसरे के सम्पर्क के कारण नहीं वरन दोनों के संस्कृत श्लोक से प्रभावित होने के कारण है—

घर कीन्हे घर जात है, घर छाडे घर जाइ।
तुलसी घर बन बीच ही राम प्रेम पुर छाइ ॥—दोहावली २८६

तुलसी ने इस दोहे में घर घर की रट लगाकर जो भाव व्यक्त किया है वही भाव रहीम के आत्म चरितात्मक घटना के आधार पर इस प्रकार प्रकट हुआ है—

अब रहीम मुसकिल पडी गाढे दोऊ काम।
साचे से तो जग नहीं झूठे मिलें न राम ॥ १६

कहने की आवश्यकता नहीं कि भाव एक सा होते हुए भी कोई किसी का ऋणी नहीं है। रहिमन विलास में तुलसी का एक दोहा उद्धृत किया गया है। दोहा भाव साम्य की दृष्टि से तो अप्रत्यक्ष रूप से ही उपयोगी है किन्तु है इतना सुन्दर कि उसे उद्धृत करने का लोभ संवरण करना कठिन है। दोहे का हम शरणागत वत्सलता का आदर्श मानते हैं। मानस के राम विभीषण मिलन प्रसंग का दोहा इस प्रकार है—

---

१ अब्दुर्रहीम खानखाना पृ० ७५८

2 He (Rahim Khanekhanan) was a great friend of Tulsidas and has correspondence with him
—*The Moghal Empire* Dr R L Shrivastava p

जो सम्पति सिव रावनहि दीन्हि दिए दस माथ।
सो सम्पदा विभीषनहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥ —तुलसीदास

रहीम श्रीराम के इसी उदार रूप का चित्रण करते प्रतीत होते हैं—
माँग मुकरि न को गयो केहि न त्यागियो साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो ते रहीम रघुनाथ॥
रहीम रत्ना० ११ १८६

तुलसी और रहीम दोनों की उक्तियों का साम्य भी दर्शनीय है—
तुलसी पावस के समय धरी कोकिला मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं हमहि पूछिहै कौन॥ —दोहावली
पावस देखि रहीम मन कोइल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भये हम को पूछत कौन॥—रहीम रत्नावली

परन्तु यह भाव न रहीम का है और न तुलसी का। दोनों ने संस्कृत से ग्रहण किया है। संस्कृत से समग्रहीत ऐसे कई भाव दोनों के काव्य में प्राप्त होते हैं। संस्कृत प्रसंग में वे भाव देखे जा सकते हैं। कई मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग दोनों कवियों में समान रूप से देखने में आता है—
पात पात को सींचिबो बरी बरी को लोन
तुलसी खोटे चतुरपन, कलि डहके कौ कौन। —दोहावली
पात पात को सींचबो बरी बरी को लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि को कहो बरंगो कौन॥ १२ ११६

विवाह के सम्बन्ध में व्यक्त विचारों में भी अन्तर नहीं प्रतीत होता—
फूले फूले फिरत हैं आज हमारो ब्याव।
तुलसी गाय बजाय के देत काठ में पाँव॥ —तुलसी
रहिमन याह बिआधि है सकहु तो जाहु बचाय।
पायन बेड़ी पड़त है ढोल बजाय बजाय॥ —रहीम

यहाँ दोनों कवियों द्वारा पृथक पृथक मुहावरों का प्रयोग ध्यान देने योग्य है। विश्वास महिमा का वर्णन तुलसी ने कई स्थानों पर किया है। एक दोहा है—
राम भरोसे जे रहें, परवत प हरियाय।
तुलसी बिरवा बाग के सींचे हू मुरझाय॥ —तुलसी

प्रभु पर ऐसा ही विश्वास रहीम का भी था। उन्होंने उक्त भाव को अपने शब्दों में और अधिक सुन्दरता के साथ व्यक्त किया है—
रहिमन बहु भेषज करत ब्याधि न छाड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ॥ २१ २१०

खग मृग-वन आदि शब्दों से वातावरण का जैसा चित्रण रहीम ने उतार दिया है वैसा तुलसी नहीं उतार पाये हैं। हरि अनाथ के नाथ में तो भक्त रहीम का दीन भाव भी व्यक्त है।

चन्द्रमा और नक्षत्रों के कल्पनात्मक भाव पर तुलसी ने निम्नलिखित दोहा लिखा है—

होत बड लघु समय सह तो लघु सकहि न काढि।
चन्द्र दूबरो कूबरो तऊ नखत तें बाढि॥—तुलसी

जन्म जात बड़प्पन सिद्ध करने के लिए रहीम ने भी यह तर्क दिया है—

जे रहीम विधि बड किए को कहि दूषन काढि।
चन्द्र दूबरो कूबरो तऊ नखत तें बाढि॥ ७६४

दोनों दोहों का तृतीय चतुर्थ चरण एकदम एक है।

तुलसीदास ने एक दोहे की वस्तु परिकथन शैली में नारी नृपति आदि के प्रति सावधान रहने को स्पष्ट किया है—

उरग तुरग नारी नृपति, नीच जानि हथियार।
तुलसी परखत रहत नित इनहिं न पलटति बार॥

किंचित परिवर्तित रूप में यही दोहा रहीम के नाम पर भी प्राप्त होता है—

उरग तुरग नारी नृपति नीच जात हथियार।
रहिमन इन्हें सँभारिए पलटत लगे न बार।

नहीं कहा जा सकता कि यह दोहा वास्तव में किसका है? उक्त दोनों ही कवियों का मैत्री भाव यहाँ तक प्रसिद्ध है कि वे एक दूसरे के वचनों को अपना लिया करते थे। कहते हैं कि अपने मैत्री भाव के फलस्वरूप ही गोस्वामी जी ने दोहावली का अन्त रहीम के दोहे से किया था। दोहा इस प्रकार है—

मनि-मानिक महँगो किगो सहगो तृन जल नाज।
तुलसी एते जानिए राम गरीब निवाज॥—दोहावली ४७३

लोक प्रसिद्धि को दुहराने की आवश्यकता नहीं कि बरवै छन्द को राम मय करने का शुभ प्रयत्न तुलसीदास ने रहीम के आग्रह पर ही किया था।

स्वर्गीय श्री याज्ञिक ने रहीम तुलसी के भाव साम्य पर कुछ अन्य छन्द भी उद्धत किये।[1] वे अविकल रूप से उद्धत हैं—

रहीम	पर रहिबो मरिबो भलो सहिबो कठिन कलेस।
	बामन ह्वै बलि को छलो भलो दियो उपदेस॥
तुलसी	बिनु प्रपंच छल भीख भलि लहिय न लिए कलेस।
	बामन ह्वै बलि को छलो भलो दियो उपदेस॥
रहीम	कहु रहीम कस निभै बेर केर को संग।
	वे डोलत रस आपुने उनके फाटत अंग॥
तुलसी	नाच निरादर ही सुखद आदर दुखद बिसाल।
	कदली बदरी बिटप गति पेखहु पनस रसाल॥
रहीम	जब लगि वित्त न आपने तब लगि मित्र न कोय।
	रहिमन अंबुज अंबु बिनु रवि नाहिन हित होय॥

१ रहीम रत्नावली, पं० मायाशंकर याज्ञिक (भूमिका), पृ० ४८

तुलसी आपन छोड़ो साथ जब ता दिन हितू न कोय।
तुलसी अम्बुज अम्बु बिनु तरनि तासु रिपु होय॥

रहीम रहिमन धोखे भाव से मुख तें निकसे राम।
पावत पूरन परम गति कामादिक को धाम।

तुलसी तुलसी जिनके मुखनतें धोखेहु निकसत राम।
तिनके पगकी पगतरी मेरे तनको चाम॥

अन्तिम दोहा का दर्शन से तुलसी और रहीम की भगवान राम के प्रति एक समान श्रद्धा व्यक्त होती है। हम पुष्कर बरवों के प्रसंग में स्पष्ट कर चुके हैं कि गणेश शारदादि देवों के प्रति असीम श्रद्धा भरे कई बरवे रहीम ने रचे थे। श्री याज्ञिक ने दोहा की टिप्पणी में समानार्थी और अनेक दोहे भी इतस्ततः उद्धृत किए हैं। उनमें कई की तो शब्दावली रहीम जैसी ही है। परीक्षा करने पर हमें ज्ञात हुआ है कि वे दोहे तुलसी सतसई के हैं जो कि एक सन्दिग्ध रचना है। ज्ञात कुछ ऐसा होता है कि तुलसी के नाम पर अपने काव्य को प्रचलित करने वाले किसी व्यक्ति ने (चाहे वह कायस्थ तुलसी हो या और कोई) रहीम के अनेक प्रचलित दोहों को तुलसी की छाप देकर बीच में सकलित कर लिया है। हम उनके उद्धृत करने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते। कारण तुलसी और रहीम मित्र थे उनका पारस्परिक साहित्यिक सम्पर्क रहता था। जो लोग यह कहते हैं कि सुदूर दक्षिण में होने के कारण रहीम तुलसी को बरवे इत्यादि नहीं भेज सकते थे वे यह भूल जाते थे कि रहीम बहुत ही वैल इन्फार्म्ड रहते थे। उन्होंने अपनी व्यक्तिगत डाक का इतना उत्तम प्रबंध किया था कि राज दरबार में जो भी कुछ होता था उसकी सूचना उनके पास निरन्तर तथा नियमित रूप से पहुँचती रहती थी और रहीम नित्य रात्रि के एकान्त में उन आगत पत्रों एवं सूचनाओं को पढ़ते तथा तदुपरान्त दीए की लौ में लगाकर जला डालते थे। यह उनके जीवन का दैनिक कार्यक्रम था। जो राजनैतिक आदान प्रदान का इतना उत्तम प्रबन्ध कर सकता है वह क्या अपनी रुचि एवं मित्रता के पत्र व्यवहार अथवा आदान प्रदान का प्रबन्ध नहीं कर सकता? कहने का तात्पर्य यह है कि तुलसी और रहीम के सम्पर्क में सन्देह करने की गुंजाइश नहीं है। एक बात और है तुलसी केवल साहित्यिक या लगोटी मार भक्त ही नहीं थे वे समय गुरु रामदास की भाँति राजनैतिक क्रान्तिदृष्टा भी थे। रहीम जैसे प्रभावशाली राज्याधिकारी की मित्रता उन्हें अपेक्षित भी थी। उधर रहीम जैसे संस्कृत व्यक्ति को भी अपनी मानसिक एवं आध्यात्मिक अभितृप्ति के लिए तुलसी से बढ़कर कोई कवि उन दिनों भाजन पर भी न मिला होगा। आधुनिक क्रान्तिदर्शी महर्षि दयानन्द की भाँति प्रातः स्मरणीय तुलसीदास भी किन्हीं राजा का चाहे वह कितना सुधारक क्यों न हो अच्छा नहीं समझते थे। उधर यह आश्चर्य की बात है कि रहीम भी राजनैतिक सुख की अपेक्षा धर्म को अधिक महत्व देते थे। महाराणा अमरसिंह तथा रहीम में दोहों का आदान प्रदान इस तथ्य का प्रमाण है।

कहने का तात्पर्य यह है कि तुलसी और रहीम के स्वभाव भी एक दूसरे के अनुकूल थे। उनकी वैषम्य में भी साम्य था। एक बाह्य स्थिति से राजा तथा अन्दर

म उदार एव निद्वन्द्व था दूसरा वाह्य दृष्टि स निद्वन्द्व और फक्कड तथा आतरिक प्रतिभा क कारण कोटि कोटि जन मानसा का राजा था। अत एक दूसरे की मित्रता के साथ साथ विचारो और साहित्यिक भावो का भी आदान प्रदान हुआ तथा वे दोना युगपुरुष एक दूसरे से परस्पर प्रभावित हुए हो तो इसम आश्चय की कोई बात नही। सत्य भी यही है कि रहीम और तुलसी दोना ही नीति काव्य के क्षेत्र म एक दूसरे से प्रभावित थ। उनका पारस्परिक प्रभाव न केवल साहित्यिक वरन सामाजिक तथा वयक्तिक क्षेत्रा म भी रहा था। खद है कि उनकी पारस्परिक भेट के सम्ब ध म अधिक एतिहासिक एव निश्चित तथ्य आज तक प्राप्त नही हो सक हैं।

रहीम और श्री व्यास जी

व्यासजी भक्त कवि थ। इनका रचनाकाल स० १६०० स १६६६ तक माना जाता है। अत य भी गोस्वामी जी के समान ही रहीम के समकालीन थ। रहीम तथा व्यास जी के दोहा म कहीं कहीं भाव तथा कहीं कहीं भाषा साम्य दृष्टिगोचर होता है। मुख्य बात यह है कि एक ही शब्दावली का प्रयोग एक ने किसी अन्य विषय के प्रतिपादन के लिए किया है तो उसी शब्दावली (विशेषत मुहावरो) का प्रयोग दूसरे न किसी दूसरे विषय क लिए। अत हम किसी को किसी का प्रभावित नही कह सकते। साम्यसापेक्ष कुछ छ द निम्नाद्धत हैं। व्यास जी क य दोहे, श्री प्रभुदयाल मीतल क ग्रथ भक्तकवि व्यास जी से उद्धृत हैं—

सती सूरमा सत जन, इन समान नहि और।
अगम पथ को पग धर डिग न पाव ठौर॥

रहीम ने इसी से मिलता जुलता चित्रण प्रेम पथ का किया है। उनक विचार म भी प्रेम पथ स डगमगाने वाले का कहीं स्थान नही रहता—

रहिमन मारग प्रेम को, मत मतिहीन मझाव।
जो डिगिहैं तो फिर कहूँ नहीं धरन को पाव॥

दीन और दीनबधु के सम्बन्ध म रहीम तथा व्यास जी क कथना म पर्याप्त साम्य है—

व्यास दीनता के सुखहि कह जान जग म द।
दीन भये ते मिलत हैं दीन बधु सुखकद॥ —व्यास जी
दिव्य दीनता के रसहि का जान जग अधु।
भली बिचारी दीनता दीन बधु से बधु॥ —रहीम

यहा अवलोकनीय रहीम द्वारा प्रयुक्त दीनता का दिव्य विशेषण है। दीनता म यदि दिव्यता है तब तो वास्तव म वहाँ भी अनूठा रस है और यदि टुकडा मांगने की दीनता है तब यह साक्षात नरक है। व्यास जी तथा रहीम के अन्य दोहा म शब्द साम्य देखिए—

श्री राधावर ध्यान क, और ध्याहिये कौन।
व्यास हि देन वन नहीं बरी बरी प्रति लौन॥

पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लोन ।
रहिमन ऐसी बुद्धि को कहो बरैगो कौन ॥
व्यास बचन मीठे कहे, खरबूजा की भांति ।
ऊपर देखो एक सो भीतर तीयो पांति ॥
रहिमन प्रीति न कीजिए जस खीरा ने कीन ।
ऊपर से तो दिल मिला भीतर फांकें तीन ॥

इसी प्रकार कबीर की पंक्तियों का भी दोनों कवियों ने [illegible] का आधार लेते हुए समान प्रयोग किया है । भाव ही नहीं शब्दावली भी लगभग एक ही है । इधर और शब्द परिवर्तन विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं । शब्द एक ही हैं केवल नाम की छाप का अन्तर है—

व्यास बड़ाई लोक की कूकर की पहचानि ।।
प्रीति करे मुख चाटहीं बैर करे तनु हानि ।।[1]
रहिमन जगत बड़ाई की कूकर की पहचानि ।
प्रीति करे मुख चाटई बैर करे तन हानि ॥

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि रहीम तथा व्यास जी के काव्य में अनेक शब्दों, लोकोक्तियों तथा भावों का समान रूप से प्रयोग हुआ है ।

रसखान तथा रहीम

रसखान का नाम चाहे जो भी हो परन्तु इनका काव्य वास्तव में रस की खान है । मुसलमान होने के नाते यदि इन्हें 'रस खाँ' कहा जाय तो काव्य रस तथा खाँ साहब दोनों के साथ न्याय होगा । रसखान भी रहीम के समसामयिक ही थे । विद्वानों का अनुमान है कि रसखान ने जिस एकमात्र ऐतिहासिक तथा अपने जीवन काल की घटनाओं की ओर संकेत किया है, उसका सम्बन्ध शाह मंसूर की फांसी से है । शाह मंसूर को फांसी रहीम के चौबीसवें वर्ष में लगी थी । इस दृष्टि से सबसे बड़ा साम्य दोनों का व्यक्तित्व है । मुसलमान होते हुए भी भगवान कृष्ण पर इतनी प्रगाढ़ श्रद्धा और इतना अधिक विश्वास, धार्मिक संकीर्णता के लिए एक चुनौती है । श्रीकृष्ण विश्वास सम्बन्धी छन्दों को देखने से दोनों का भाव साम्य स्वतः स्पष्ट हो जाता है[2]—

रहिमन को कोउ का करे, ज्वारी चोर लबार ।
जो पत राखन हार है, माखन चाखन हार ॥ १७ १७५
काहे को सोच करे रसखानि, कहा करि है रविनन्द विचारो ।
ताखन जाखन राखय माखन चाखन हारो जो राखन हारो ॥
कहा करे रसखानि को, कोऊ चुगल लबार ।
जो पै राखन हार है माखन चाखन हार ॥

---

१ भक्त कवि व्यासजी प० प्रभुदयाल मीतल (प्र० स० मथुरा), पृ० ४१५ १२
२ रसखान जी के सभी दोहे रसखानि ग्रन्थावली (सुजान रसखानि) सम्पा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (बनारस स० २०१०) से उद्धत हैं ।

वन्दावन म नाथद्वारा म प्रवश न पाने पर रहीम द्वारा निम्नलिखित दोहा कहा जाना प्रसिद्ध है—

हरि रहीम एमी करी ज्यों कमान सर पूर।
खचि आपनी ओर को डारि दयो पुनि दूर॥

धनुप बाण क भाव का एमा ही एक प्रयोग रसखान न भी किया है—

मोहन छवि रसखानि लखि अब दृग आपनि नाहि।
ऍचे आवन धनुष से, छूटे सर से जाँहि॥

वस्तुत रसखान सौन्य और भक्ति के कवि हैं जबकि रहीम सौन्दय तथा नीति के। रहीम के काव्य म भक्ति आनुषगिक है। अत रहीम और रसखान क भाव साम्य की सम्भावना सौन्य क ही क्षत्र म है और उस क्षत्र म रसखान और रहीम म भाव सादृश्य अधिक माना मे देखा भी जाता है। श्री यानिक ने रसखान की बहुत सुन्दर तथा सटीक पक्तिया उद्धत की हैं—

नाहि तो जो रस सो रस नहीं जो गोरस बेचन फेरि न जहौं। × ×
जानत हौं जिय की रसखानि सु काहे को ऐतिक बात बढहौं।
गोरस के मिसि जो रस चाहत सो रस कान्ह जू नकु न पहौ॥

ये पक्तिया नगरशोभा के गूजरी वणन म एकदम अभिन्न भी प्रतीत होती है—

परम ऊजरी गूजरी दह्यो सीस प लेइ।
गोरस के मिसि डोलही सो रस नकु न देइ॥

दोनों की ग्वालिन गोरस देन का तो समुद्यत हैं किन्तु सो ? रस देन का नाम तक नहीं लती। दोनों कवियों न किस कमाल का सयोग-सलाप कराया है, परम प्रत्यक्ष होते हुए भी परम गुह्य। —मरहट्ठनधूकुचाभ

कवि आम्बर अरु तिय सुकुच अध उघरे सुख देत।
अधिक टेक हू मुकच नहि उघरे महा अहेत॥

इस प्रकार शृगारिक सद्काव्य म रहीम तथा रसखान का भाव साम्य अनक स्थलो पर देखन म आता है। प्रसगान्तर क भय म कवल एक ही उदाहरण और प्रस्तुत किया जा रहा है—

पलटि चलो मुसुकाय दुति रहीम उपजाय अति।
बाती सी उसकाय मानो दीनी दीप की॥
—न० सो० ८० ६

कितना सुन्दर भाव है कसी अछूती उपमा तथा अनूठी उत्प्रेक्षा। रसखान को भी यह भाव बहुत अधिक भाया था। उन्होंने एकाधिक पक्तिया म इस अपने प्रकार स सजाया है—

सो हैं तरग अनग की अगनि ओप उरोज उठीं छतिया की।
जोवन जोति सो यों दमके उसकाय दई मानो बाती दिया की॥
एहो मैं आवत काह्न सुन हुलसे तरकीं जु तनी अगिया की।
यों जग जोति उठी तन की उमकाय दई मानो बाती दिया की॥

दोनों के क्षेत्र नीति की दृष्टि से मेल नहीं खाते। फिर भी प्रेम भक्ति में दोनों का विचारसाम्य स्पष्ट है। कहीं कहीं तो वर्ण-योजना शब्द चयन भी एक सा है। किस पर किसका प्रभाव है यह निर्भ्रान्त न होते हुए भी दोनों का भाव साम्य स्पष्ट है।

रहीम और बिहारी

रहीम और बिहारी का परस्पर सम्बन्ध कहाँ तक रहा था, अथवा रहा भी था या नहीं यह निश्चित कहना सरल नहीं है। हाँ इतना अवश्य है कि बिहारी रहीम के जीवन काल में ही अपना काव्य जीवन आरम्भ कर चुके थे। बिहारी का जन्म अकबर के राज्यकाल के अंतिम वर्षों में हुआ था और मृत्यु औरंगजेब के राज्यारोहण के कुछ वर्षों पश्चात्।[1] वृन्दावन में शाहजहाँ के साथ स्वामी चिरसुखानन्द के दर्शन के समय बिहारी की शाहजहाँ से प्रथम भेंट (सं० १६५७) में हुई। उसके पश्चात् जब शाहजहाँ ने बिहारी को आगरा बुलाया तब रहीम ने उनकी कविता की सराहना भी की थी।[2] रहीम की सिफारिश तथा उनके काव्य की सरसता ने ही बिहारी शाहजहाँ सम्पर्क को दृढ़तर किया होगा। रहीम से प्रभावित भाव निम्नलिखित दोहों में देखे जा सकते हैं—

> ज्यों नैना सैना करें उरज उमेठे जायँ। —रहीम
>
> लगा लगी लोयन करें, नाहक मन बंधि जाहिं॥
>
> —वि० रत्ना० ४०७

किन्तु सहृदय स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि यहाँ 'लोयनों की लगालगी अधिक आनन्दप्रद है कि उरज उमेठन।

प्रेमी हृदय रहीम ने प्रेमियों को प्रत्यक्ष चेतावनी दी है कि वे इस भ्रम में न रहें कि उनका प्रेम छिप छिप चलता रहेगा। प्रेम ऐसी वस्तु नहीं जो छिप सके—

> कहि रहीम इक दीप तें प्रगट सबै दुति होय।
>
> तन सनेह कैसे दुरै दृग दीपक जरु दोय॥ रहीम रत्ना० ६ २७

प्रेम पथ के परम पारखी बिहारी ने यही भाव एक दोहे में अपनाया है—

> प्रेम अडोलु डुलै नहीं मुँह बोले अनखाइ।
>
> चित उनकी मूरति बसी चितवनि माहि लखाइ॥
>
> —वि० रत्ना० पृ० ६०१

चित्त में प्रिया की मूर्ति का इस प्रकार बस जाना कि उसकी स्पष्ट भलक पुतलियों में आ जाय—वास्तव में सुन्दर कल्पना है किन्तु रहीम की भाँति सारोपा गौणी का सहायता से दो दग्ध दीपकों की विद्यमानता के कारण अन्तस के सार भाव

---

१ बिहारी मीमांसा डा० रामसागर त्रिपाठी (अशोक प्रकाशन दिल्ली १९६०) पृ० ३

२ सतसई सप्तक डा० श्यामसुन्दरदास (१९३१ इलाहाबाद) पृ० २

प्रकाशित कर देने म कुछ ग्रौर ही स्वाभाविकता है जिसके दर्शन बिहारी की सूक्ष्म किन्तु सुदूरवर्ती कल्पना म नही होत। फिर भी बिहारी को अवकाश था। उनका काव्य साण पर उतरा हुआ काव्य है जबकि बचारे रहीम का इतना अवकाश कहा ? उनकी कविता तो हृदय का स्वाभाविक उच्छवास है। रहीम के काव्य म ग्राम की सभ्य गृह वधू का सहज स्वाभाविक एव अकृत्रिम सौन्दय है तो बिहारी की कविता म आगरा दिल्ली की सजी सँवरी नायिका के शृगार की चमत्कारिता—

करौ कुवत जगु कुटिलता तजौं न दीन दयाल।
दुखी होउगे सरल चित्त बसत त्रिभगी लाल॥

—बिहारी रत्ना० ८२५

टेढी सुभी वस्तु आसानी से बाहर नही जा सकती इस दोह का आधारभूत भाव यह है किन्तु बिहारीलाल कृष्ण की त्रिभगी मुद्रा तक ऐसे पहुँचे ह कि नायक श्रीकृष्ण को भी उनका भाव समझने म देर लग। दूसरी ओर इस भाव का प्रयोग रहीम अपन एक दोह म पहल ही कर गय थ—

वाकी चितवन चित चढी, सूधी तो कछु धीम।
गासी सें बढि होत दुख काढि न सक्त रहीम॥

—रहीम रत्ना० १३ १२८

एक भाव और लीजिए—

कहा करौं बकुण्ठ ल, कल्पवृक्ष की छाह।
रहिमन ढाक सुहावना जो प्रीतम गल बाह॥ —रहीम
जो न जुगति पिय मिलन की धूरि मुकति मुह दीन।
जौ लहिय सग सजन तो धरक नरक हूँ कीन॥

—बिहारी रत्ना० ७८

रहीम उस वकुण्ठ तथा कल्पवृक्ष को भी प्रेम नही करना चाहत जहाँ प्रिय उपलब्ध न हो। यदि उनके गल म बाह डालन का अवसर प्राप्त हो तो (केवल तीन पात वाला) ढाक भी सब विधि सुखद है। इसी प्रकार बिहारी प्रियतम क साथ निधडक नरक म प्रवेश करना उत्तम समझते हैं और प्रिय वियुक्त मुक्ति क मुह पर धूरि फेंकते ह। यहाँ ध्यान दने की बात यह है कि जसी धूरधपार भरी शब्दावली का प्रयोग हमारे बिहारीलाल जी मुक्ति के लिए करते हैं वसी बात रहीम मुसलमान होत हुए भी कही नही करत। दूसरे प्रिय के साहचय का कामप्रद कल्पतरु एव सुख सम्पन्न वकुण्ठ क साथ वणन जितना तरल है उतना मुक्ति के साथ नही। अत स्पष्ट है कि मजमून चुराने म कुशल बिहारी रहीम का भाव लेत हुए भी यहा मूल की सी विदग्धता नही ला पाय ह।

कुछ भी हो इसम इतना तो स्पष्ट है ही कि नीति क क्षेत्र म बिहारी और रहीम के छन्दो म भाव साम्य है अवश्य।

रहीम और बिहारी के क्षेत्रों में भिन्नता है। रहीम प्रधानतः नीति के कवि हैं और बिहारी शृंगार के। बिहारी में नीति गौण है और रहीम में शृंगार। बिहारी यदि नीति के क्षेत्र में रहीम का अनुसरण करते हैं तो कोई विशेष बात नहीं। आश्चर्य तो तब होता है जब हम बिहारी को रहीम के शृंगार वर्णन का अनुसरण करते हुए देखते हैं। क्रिया चतुर नायक के वर्णन से यह तथ्य स्पष्ट हो जायगा—

खेलत जानेसि टोलिया नन्द किसोर।
छुई वृषभानु कुमरिआ भया चोर॥ रहि० भेद १०८

दोऊ चोर मिहीचनी खेलु न खेलि अघात।
दुरत हिये लपटाइ कै छुवत हिये लपटात॥
—बिहारी रत्ना० ३३०

रहीम तथा बिहारी दोनों का भाव एक है प्रसंग भी दोनों का एक ही है। हाँ बिहारी अपनी स्वाभाविक रुचि के अनुसार उस को और अधिक मांसल तथा रोमांटिक बना गए हैं। यहाँ तक कि उसमें अस्वाभाविकता की भी गंध आने लगी है क्योंकि साथ साथ आँख मिचौनी खेलते बालक बालिकाएँ (यदि बालिकाएँ भी खेलने में वर्जित न हों तो) चोर बनाने के लिए एक दूसरे को छूते भर हैं वहाँ प्रगाढ़ आलिंगन करके चोर नहीं बनाया जाता। साथियों के सम्मुख तो यह और भी असम्भव है। अतः छुई वृषभानु कुमरिया भया चोर में जो सहज स्वाभाविकता एवं प्रच्छन्न सुकोमल अनुराग की भावना सन्निहित है वह दुरत हिये लपटाइ कै छुवत हिये लपटात में नहीं है। इसी से दोनों कवियों की प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है परन्तु यहाँ हमारा विवेच्य भाव साम्य तथा भाव ग्रहण है जो कि नीति के अतिरिक्त शृंगार के क्षेत्र में भी मुखरित है।

बिहारी और रहीम में भाव साम्य के [illegible] भाषा साम्य भी कहीं कहीं पर परिलक्षित होता है। बिहारी [illegible] रहीम की [illegible] ग्रहण करना [illegible] का प्रमाण है कि [illegible] रहीम की [illegible] सर्वोत्तम होता था। भाषा साम्य देखिए—

रहिमन [illegible] नहिं [illegible]।
[illegible]॥

अपनी सतसई की नींव रहीम ही के दोहों पर डाली।[1] अभी तो यह कथन अत्युक्ति ही है। सम्भव है रहीम सतसई के शृंगार सम्बन्धी दोहे मिलने पर यह कथन सत्य सिद्ध हो जाय।

रहीम और मतिराम

मतिराम की गणना रीति कालीन आचार्य कवियों में होती है। वस्तुतः रीति की प्रवृत्ति भक्ति काल में भी साथ साथ अप्रमुख रूप से चलती रही थी। नन्ददास तथा रहीम के नायिका भेद विषयक काव्यों का उल्लेख किया ही जा चुका है। गत पृष्ठों में बिहारी और रहीम के साक्षात्कार का उल्लेख भी हो चुका है। बिहारी रीति काल के प्रसिद्ध कवि हैं। अतः स्पष्ट है कि रीति काल रहीम के जीवन में ही आ चुका था। विद्वानों के विभिन्न उद्धरणों तथा तर्कों ने यह सिद्ध भी कर दिया है कि मतिराम महाकवि बिहारी से पर्याप्त रूपेण प्रभावित थे। उधर 'रसराज' के नायिका लक्षणों में वे रहीम के पूरी तरह ऋणी हैं। इस सम्बन्ध में हम पहले ही समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत कर चुके हैं। अतः मतिराम पर रहीम के प्रभाव के प्रसंग में अपनी ओर से और अधिक न कहकर उनके विषय में अन्यतम डा० त्रिभुवनसिंह के शब्द उद्धृत करके इस प्रसंग को समाप्त करते हैं— "मतिराम का मार्मिक ढंग रहीम में ढूंढना व्यर्थ है किन्तु जहाँ तक उनके (रहीम के) बरवै भावों तथा अछूती उक्तियों का सम्बन्ध है मतिराम को उनका ऋणी मानना ही पड़ेगा। इस प्रकार के एक नहीं अनेक दोहे हैं जो मतिराम सतसई से उद्धृत किये जा सकते हैं जिन पर रहीम की रचनाओं का प्रभाव है।"

रसनिधि और रहीम

दतौनी (दतिया) के जागीरदार पृथ्वीसिंह जी 'रसनिधि' वास्तव में रस की अपार निधि थे। इनके काव्य में प्रेम का सागर उमड़ता दिखाई पड़ता है। नीति कवि रहीम से इनका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो नहीं है परन्तु प्रसंगानुसार आई उक्तियों में रहीम के साथ विषय साम्य अवश्य देखा जा सकता है। वस्तुतः ये भी बिहारी एवं मतिराम के समान रहीम के सामने उदीयमान कवि रहे होंगे। डा० श्यामसुन्दरदास ने इनका रचना काल सं० १६६० से १७१७ वि० तक माना है। अंग प्रत्यंग सम्बन्धी वर्णनों में ये रहीम से प्रभावित जान पड़ते हैं। नेत्र सम्बन्धी भाव देखिए—

जो कछु उपजत आइ उर सो वे आख देत।
रसनिधि आखें नाम इन पायो अरथ समेत॥

—सत० सप्तक १६६ ३४४

यहाँ आख शब्द में श्लेष है। नेत्रों के अतिरिक्त पंजाबी भाषा में आख का अर्थ बताना या कहना भी होता है। स्पष्ट है कि इस दोहे में श्लेष का प्रयोग तो रसनिधि

---

१ नागरी प्रचारिणी पत्रिका ग्यारहवां भाग—पं० सूर्यनारायण दीक्षित का लेख—अकबर के राजत्व काल में हिन्दी लेखक, पृ० ६८

का अपना है और मूल भावना रहीम के निम्नलिखित दोहे की—

कहि रहीम इक दीप तें प्रकट सब दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरे, दृग दीपक जरु दोय॥

—रहीम रत्ना० [illegible] २७

यह भी ध्यान देने योग्य है कि दीपक के सम्मुख किसी वस्तु का न छिपना आँखों में हृदय की अपेक्षा रम्यतर है। रसलीन का निम्नलिखित दोहा तो रहीम का मात्र अनुसरण ही है—

रहिमन यों सुख होत है बढ़त देख निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरख अँखियन को सुख होत॥

—रहीम रत्ना० २२ २२०

करत आपुने गोत कैं और सब अनखाय।
सुहृद नैन नना यह देखत हृदय सिहाय॥

—सतसई सप्तक १८० ६०

अनुसरण करते हुए भी रसनिधि रहीम की सी भावात्मक सरलता नहीं ला पाये हैं। रहीम का बड़री शब्द बहुत ही सुन्दर है। यह शब्द बड़ा प्यारा तथा घरू पारिवारिक है जो गाँव के प्रसंग में और भी सजीव है। बड़ी लड़की को आज भी माताएँ बड़ेनिया कहकर पुकारती हैं। बड़री शब्द में बड़ी ध्वनि है। भाव साम्य के कुछ अन्य उदाहरण भी लीजिए—

जलहिं मिलाई रहीम ज्यों कियो आप सम छीर।
अँगवहिं आपहि आप त्यों सकल आँच की भीर॥

—रहीम रत्ना० ६ [illegible]

तोय मान [illegible] देत है छीरहि मरिल बढ़ाइ।
आँच न लागन देत वह आप पहिल जरि जाइ॥

—सतसई सप्तक [illegible]

अनुचित उचित रहीम लघु करहिं बड़न के जोर॥
ज्यों ससि के संयोग तें पचवत आगि चकोर॥—रहीम
प्यार [बिस दर मन है पावक जिनको भाय।
करहिं का [illegible] तो चकोर [illegible] जाय॥

—सतसई सप्तक [illegible]

[illegible] छवि [illegible] धरा पर छवि को समाय।
[illegible]॥—रहीम

अधिक है जो रहीम के मौलिक हैं, संस्कृत प्रभावापन्न नहीं। अतः परिणाम निकलता है कि रहीम ने नीति के क्षेत्र में ही नहीं शृंगारादि के क्षेत्र में भी कवियों को प्रभावित किया था।

अहमद कवि और रहीम

अहमद कवि रहीम की छोटी पीढ़ी के समकालीन हैं। प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इनका रचनाकाल स० १६७० वि० स्वीकृत किया है।[1] खोज रिपोर्ट १६२० के अनुसार इनके गुनसागर ग्रन्थ का रचना काल स० १६७८ वि० ज्ञात होता है। साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध भले ही न हो किन्तु नीति की दृष्टि से इनके काव्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। अहमद रहीम के नीति काव्य से बहुत अधिक प्रभावित जान पड़ते हैं। इस प्रसंग में प० याज्ञिक ने दोहासारसंग्रह तथा गुणगजनामा के आधार पर रहीम रत्नावली में इनके कुछ ऐसे दोहों को भी उद्धृत किया है (जो रहीम के होते हुए भी) इनके नाम पर प्रसिद्ध हैं। जैसे—

अहमद वाहे प्रेम के बूझि बूझि के सिलगाहि।
जो सिलगे ते फिर बुझै बुझ ते सिलग नाहि॥
अहमद तजो अगार ज्यो छोटे को सग साथ।
सीरो पर कारो करे तातो जारे हाथ॥

कहीं-कहीं पर अहमद ने नाममात्र के परिवर्तन कर रहीम के दोहे ज्यों-के-त्यों अपना लिए हैं। यथा—

अहमद गति अवतार की सब कहत ससार।
बिछुरे साथी फिर मिले यहै जान अवतार॥—गुणगजनामा

यहाँ नीचे की पंक्ति पूरी की पूरी रहीम की है। इसी प्रकार रहीम और रीवा नरेश का प्रश्नोत्तर 'जाके सिर अस भार' आदि दोहा प्रसिद्ध ही है। उसी के आधार पर अहमद का दोहा देखिए—

मधिम रहे उरवार, जिन सिर भारी भार ४।
अहमद उतरे पार भार भयो के भार मे।—गुणगजनामा

यहाँ शब्दों में थोड़ा-सी हेर फेर है अन्यथा पूरा का पूरा दोहा रहीम का ही है। स्पष्ट है कि अहमद रहीम से अत्यधिक प्रभावित थे।

वृंद और रहीम

रहीम के पश्चात् नीति-काव्य के निर्माताओं में उनकी टक्कर का एक ही कवि माना जाता है और वह है वृंद। वृंद का जीवन काल स० १७०० से १७८० वि० तक है। कविता वृंद को बपौती में मिली थी। इनके पिता श्री रूपजी जाति के कवि थे। ये अनेक राजा महाराजाओं के दरबार में रहे थे। इनमें औरंगजेब तथा कृष्णगढ़ नरेश

१ हिंदी साहित्य का अतीत (शृंगार काल) आ० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (वाराणसी २०१७ वि०) पृ० ८२३

दुष्ट और सर्प स्वभाव के वर्णन में भी वृन्द रहीम से प्रभावित हैं—

रहिमन लाख भलो करो अगुनी अगुन न जाय।
राम सुनत पय पिअत हूँ साप सहज धरि खाय॥
—रहीम रत्ना० २२ २ ६

दुष्ट न छाड़ दुष्टता पौंखे राखे ओट।
सरपहि केतो हित करो चप चलाव चोट॥
—सतसई सप्तक २०६ ४१

दोनों दोहों पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि वृन्द वह विलक्षता नहीं ला सके हैं जो रहीम के दोहों में है। वृन्द द्वारा किए गए रहीम के अनुकरण का और भी स्पष्ट प्रमाण देखिए—

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन्ह।
ऊपर से तो दिल मिला भीतर फाँकें तीन॥
—रहीम रत्ना० २० २०७

ऊपर दरसे सुमिल सी अन्तर अनमिल आँक।
कपटीजन की प्रीति है, खीरा की सी फाँक॥
—सतसई सप्तक ३२, ४७०

कैसे निबहै निबल जन कर सबलन सों बैर।
जैसे बस सागर विष करत मगर सों बैर॥
—रहीम रत्ना० ८ ६१

अन्तिम दोहा तो अक्षरशः रहीम के दोहे में मिलता है। ज्ञात होता है कि वृन्द ने इसे ज्यों का त्यों रहीम से ग्रहण कर लिया है। इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण लीजिए—

दोनों रहिमन एक से जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक ऋतु बसन्त के माहिं॥
—रहीम रत्ना० १० १०१

भले बुरे सब एक से जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत है काक पिक ऋतु बसन्त के माहिं॥
—सतसई सप्तक ४६० ६१

छन्दोबद्ध किया था। इस प्रकार निर्भ्रान्त रूप से यह क[illegible] है कि [illegible] काव्य रहीम के नीति काव्य से बहुत अधिक प्रभावित है। वृन्द पर रहीम का ऋण ठीक उसी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता जिस प्रकार रहीम पर संस्कृत का।

रसलीन और रहीम

शृंगार के क्षेत्र में सय्यद गुलाब नबी 'रसलीन' बिलग्रामी रहीम के समान ही आदर के पात्र हैं। इनका जन्म अनुमानतः सं० १७६५ वि० के लगभग माना जाता है। सरोजकार ने इन्हें अरबी फारसी का आलिम और ब्रज भाषा का निपुण कवि बताया था। ये शृंगारिक कवि थे। अंगदर्पण तथा रसप्रबोध इनकी काव्य कला के स्पष्ट प्रमाण हैं। इनके दोहे एक से एक बढ़कर हैं—

> चल चलि स्रवन मिल्यो चहत कुच बढ़ि छुवन छवानि।
> कटि निज दरब धरयो चहत वक्षस्थल में आनि॥

यदि उनकी प्रतिभा कहीं नीति की ओर लगती तो महान उपकार कर सकती थी। नीति रचना की सामर्थ्य का प्रमाण निम्नलिखित दोहे में मिलता है—

> धरति न चौकी नग जरि यातें उर में लाइ।
> छाह परे पर पुरुष की, जनि तिय धर्म नसाइ॥

—क० कौमुदी पृ० ६६८

सहृदय जन दोहों की जितनी सराहना करें थोड़ी है। उनके और बरवै नायिका भेद का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। यहाँ हम भाव साम्य का केवल एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

रहीम	मनसिज माली की उपज, कही रहीम नहिं जाय।
	फल स्यामा के उर लगे फूल स्याम उर आय॥ १४१२६
रसलीन	लिखि विरंचि राख्यो हुतो यह संयोग इक अंग।
	कुच उतंग तिय उर चढ़े, पिय उर चढ़े अनंग॥

—क० कौमुदी पृ० ६ ८

गिरधर कविराय और रहीम

गिरधर कविराय का जन्म सं० १७७० वि० में हुआ था। ये नीति कुण्डलिया के महारथी थे। कहीं कहीं रहीम के भावों की छाप गिरधर पर भी दिखाई देती है। एक दो उदाहरण ही पर्याप्त होंगे—

रहीम	जो पुरुषारथ ते कहूँ संपति मिलत रहीम।
	पेट लागि वराट घर तपत रसोई भीम॥

—रहीम रत्ना० ७ ७१

इसी भाव पर गिरधर की कुण्डली देखिए—

> साईं अवसर के पड़े, कौन सहै दुख द्वन्द।
> जाय बिकाने डोम घर वे राजा हरिचन्द॥

वह गिरधर कविराय, तवै वह भीम रसोई ।
को न करै घटि काज, परे अवसर के साईं ॥
—न० कौमुदी ८८६ १४

चिन्ता के सम्बन्ध में रहीम का विचार है—

रहिमन कठिन चितान तें चिन्ता को चित चेत ।
चिता दहति निर्जीव कह चिन्ता जीव समेत ॥—र० रत्ना० १७ १७०

इसी भाव का विस्तार करते हुए गिरधर ने लिखा है—

चिन्ता ज्वाल शरीर बन, दावा लगि लगि जाय ।
प्रगट धुवां नहिं दत हैं उर अन्तर धुंधियाय ॥
उर अन्तर धुंधियाय जरै ज्यों काच की भट्टी ।
जर गयो लोहू मास, रह गई हाड की टट्टी ॥
कह गिरधर कविराय सुनो हो मन के मिता ।
वे नर कैसे जियें जाहि तन व्यापे चिन्ता ॥

अनुभव सिद्ध तथ्य है कि बड़ा आदमी सामान्य स्तर से यदि तनिक ऊँचा काम कर देता है तो उसका यश चारों ओर फैल जाता है। यदि छोटा आदमी उससे कई गुना काम कर जाता है तब भी उसे कोई नहीं पूछता। रहीम ने हनुमान तथा श्रीकृष्ण का उदाहरण देते हुए लिखा है—

थोरो किये बड़ेन की बड़ी बड़ाई होय ।
ज्यों रहीम हनुमत को गिरधर कहत न कोय ॥ र० रत्ना० ६ ६२

गिरधरदास ने इसी भाव को अपनी कुण्डली में व्यक्त किया है—

साईं एक गिरधरयो गिरधर गिरधर होय ।
हनुमान बहु गिरि धरे गिरधर कहै न कोय ॥ × × ×
धारे हा जस होय जैसो पुरषारथ को साईं ॥—गिरधरदास

कुण्डलिया के अतिरिक्त गिरधर के दोहे भी रहीम से विचार साम्य रखते हैं। विपत्ति में साथ देने के प्रसंग में रहीम ने कई दोहे लिखे हैं। इसी से मिलती जुलती भाव व्यंजित—

सुख दुख अरु विपद विपत्ति या में तजत न संग ।
गिरधरदास बखानिये मित्र सोई अरु हग ॥

रहीम	जब लगि जीवन जगत मे सुख दुख मिलन अगोट । रहिमन फटे गोट ज्यों परत दुहुन सिर चोट ॥
गग	फूटे तें नरद उड़िजात बाजी चौसर की, आपुस के फूट कहो कौन को भलो भयो ।
रहीम	कहा करिय बकुण्ठ बसि कल्प तरु की छाह । रहिमन ढाक सराहिये जो पीतम गल बाह ।
रहीम	रहिमन नीच प्रसग ते नित प्रति लाभ विकार । नीर चुरावत सपुटी मार सहतु घरियार ॥
द्विजदेव	पीहे घटी रस कोलौं लला अह घात सहे घरियार बिचारो ।
रहीम	रहिमन इक दिन वे रहे बीच न सोहत हार । वायु जो ऐसी बही, बीचन पड़े पहार ॥
घनानन्द	तब हार पहार से लागत थे, अब बीचन आय पहार परे ॥
रहीम	हरि रहीम ऐसी करि ज्यो कमान सर पूर । खचि आपनी ओर को डारि दियो पुनि दूर ॥
दीनदयाल गिरि	सरल सरल ते होय हित नहीं सरल अरु बक्र । ज्यो सर सूधहि कुटिल धनु डोरें दूर निसक्र ॥
रहीम	ते रहीम पशु ते अधिक रीझहू कछु न देत ॥
श्रीपति	आज के जमाने बीच राजा, राव जान सब, रीझि के साहब को वाह वा उकार है ॥
रहीम	बड़े पेट के भरन को है रहीम दुख बाढ़ि । याते हाथिहि हहरि के, दिये दांत द्वै काढ़ि ॥
निहाल	बड़े पेट को दुख कर मन सतोष 'निहाल । दात काढि हाथिन दये, बड़े पेट के हाल ॥
रहीम	मथत मथत माखन रहे, दही मही बिलगाय । रहिमन सोई मीत है भीर पड़े ठहराय ॥
शकर	मथत मथत माखन रह्यौ, मह्यो गयो महराय । शकर सो वहु मोल जो भीर परे ठहराय ॥
रहीम	रहिमन ओछे नरन सो बर भलो ना प्रीन । काटे चाटे स्वान के दुहों भांति विपरीत ।
वाजिद	बिरचे काटे पाव को राचे चाटे मुक्ख । वाजिद स्वान की दोस्ती दुहु परे है दुक्ख ॥
रहीम	'रहिमन घड़िया रहट की त्या ओछे की दीठ । रीतहि समुख होत है भरे दिखाव पीठ ॥

हरिवंश — हरिवंश अरहट की घरी ज्यों कुमीत की ईठ ॥
जब खाली तब समुरी, जब सभार तब पीठ ॥
रहीम — मनसिज माली की उपज कही रहीम नहिं जाय।
फल स्यामा के उर लगे, फूल स्याम उर आय ॥
जसवंतसिंह जोधपुर महाराज — रोमावलि कोमल लता लागी सिय के गात।
कुच फल देखत पीय के, अंग अंग फूलत जात ॥

आधुनिक कवि और रहीम

रहीम अपने क्षेत्र में सर्वोन्नत शिखर पर आसीन है। पूर्व मध्ययुग तथा उत्तर मध्ययुग के कवि ही नहीं आधुनिक काल के कवि भी उनके नीति काव्य से प्रेरणा ग्रहण करते आये हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने गृह वमत्य पर भाव प्रकट करते हुए कहा है—

खसम जो पूजें देहरा, भूत पूजनी जोय।
एक घर मे द्वै मता कुशल कहाँ ते होय ॥—भारतेन्दु

कहने की आवश्यकता नहीं कि दोहे की प्रेरणा भारतेन्दु जी को रहीम से ही मिली होगी। रहीम का भाव इस प्रकार है—

पुरुष पूजें देवरा, तिय पूजें रघुनाथ।
कहि रहीम दोउन बन पड़ो बल को साथ ॥—रहीम

उनका एक अन्य उदाहरण लीजिए। जो आनीतानटव मया आदि पर आधारित है—

वपु लख चौरासी सजे नट सम रिझवत तोहि।
निरखि रीझ गति देहु खीझ निवरहु मोहि ॥ —भारतेन्दु

लाला भगवानदीन ने लिखा है—

राजी होय न जगत मे को जन भोजन पाय।
मरदगहु मुख लेप लहि मधुर सुरन बताय।

कहने की आवश्यकता नहीं कि संस्कृत आधारित यह भाव रहीम का ही है।

इस प्रकार अनेकानेक उदाहरण आधुनिक काल और विशेषत द्विवेदी युगीन कवियों के काव्य में खोजे जा सकते हैं। आकार वृद्धि के भय से यहाँ उन्हें उद्धृत नहीं किया जा रहा है। किन्तु इतना अवश्य है कि आधुनिक कवि रहीम के नीति काव्य का जाने अनजाने उपयोग अवश्य करते रहे हैं। मथुरा के श्री नवनीतजी चतुर्वेदी की कुण्डलियाँ तो हम यथास्थान उद्धृत कर ही चुके हैं—कृष्णदास का नाम भी लिया जा सकता है। रहीम के दोहों पर उन्होंने उसी प्रकार कुण्डलियाँ लिखीं जिस प्रकार बिहारी के दोहों पर कुछ लोग लिखते थे। उदाहरण के लिए उनकी दो चार कुण्डलियाँ निम्नांकित हैं—

१ निज कर क्रिया कहि सुधि भावी के हाथ।
पासे अपने हाथ मे दाँव न अपने हाथ ॥

दाव न अपने हाथ जदपि है हाथ पराये।
प बिनु करम किये शुभाशुभ फल नहिं पाये॥
भाग्य भरोसे भूलि समय जनि चूके रे नर।
हानी होय सु होय करो कर्त्तव्य जु निज कर॥[1]

२ दुर्दिन पर रहीम प्रभु दुरथल जयें भाग।
जसे जयत घूर पर जब घर लागत आग॥
जब घर लागत आग सब मरजाद भुलावे।
समुझि समय को फेर सभी सहत बनिआवे॥
जसो समयो देख रहें तसो ह्वं तू छिन।
मौन होइ सहु दास पर जो कबहुं दुदिन॥[2]

३ कमला थिर न रहीम कहि साच कहत सब कोय।
पुन्य पुरातन की बधू क्यों न चचला होय॥
क्यो न चचला होय सिंधु तनया चचल मति।
एकन को करि तुष्ट वेग तजि सहज चपल गति॥
बढ़न गिराव दास घर छोटन सिर समला।
कोटि जतन किन करो रहे नाहिन थिर कमला॥[3]

८ हित अनहित सब कोउ कहे को सलाम को राम।
हित रहीम जब जानिये जेहि बिन अटके काम॥
जहि बिन अटके काम ता दिना मुखहि छिपावे।
आप सहे दुख कोटि मित्र के काम बनावे॥
विपति देह जो साथ मीत जानिय तेहि नित चित।
सम्पद मे तो धाइ बनत सहज ही सब हित॥[4]

प्रभाव की विशेषताएँ

भाव साम्य की दृष्टि से रहीम तथा रहीमेतर मध्य युगीन साहित्य का अध्ययन कर लेने के पश्चात हम देखते हैं कि रहीम हिन्दी कवियों की अपेक्षा अपने पूर्ववर्ती संस्कृत साहित्यकारों से कहीं अधिक प्रभावित दीखते हैं। समकालीनों[5] में उनका

१ मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोय।
जा तन की झाइं परे स्याम हरित दुति होय॥
स्याम हरित दुति होय, कटें सब कलुस कलेसा।
मिटे चित्त को भरम रहे नहिं कछुक अदेसा॥
कह 'पठान सुलतान' काटि भो दुख की बेरी।
राधा बाधा हरो हहा बिनती सुनि मेरी॥—पठान सुलतान

२ से ४ सरस्वती हीरक जयन्ती अक सम्पा० श्रीनारायण चतुर्वेदी (इलाहाबाद १९६१) कविता गद पृ० ८

५ रहीम के समकालीन कवियों के लिए देखिए—नवम्बर १९८६ के विशाल भारत में श्री शम्भुप्रसाद बहुगुणा का रसखान जीवन प्रवधि सम्बन्धी लेख।

सर्वाधिक भाव साम्य तुलसी से है। साथ ही उन्होंने अपने समसामयिक तथा उत्तरवर्ती कवियों को प्रभावित भी बहुत दूर तक किया है। बिहारी हों या मतिराम वृन्द हों या गिरधर सभी रीति-कालीन कवि उनके काव्य से प्रभावित हैं। अतः हमारे निष्कर्ष हैं कि—

१ रहीम साहित्य के प्रभाव की सीमाएं विस्तृत हैं।
२ उनका प्रभाव न केवल वृन्द गिरधरादि नीति के कवियों पर वरन मतिराम बिहारी रसनिधि आदि शृंगारिक कवियों पर भी है।
३ व्यापक प्रभाव के अतिरिक्त यदि केवल भाव साम्य की दृष्टि से अध्ययन किया जाय तब तो शायद ही कोई कवि ऐसा निकलेगा जिसके साथ उनके विचारों की समता स्थापित न हो सकती हो।
४ विचार साम्य का एक प्रमुख आधार संस्कृत है। संस्कृत में प्रसिद्ध कुछ सामान्य मान्यताओं को जब कवि प्रयुक्त करते हैं, तब उनमें स्वाभाविक रूप से भावैक्य आ जाता है।
५ भावों के साथ ही रहीम की शब्द रचना तथा वर्णन शैली को भी अनेक उत्तरवर्ती कवियों ने ज्यों-का त्यों अपना लिया है। भाव साम्य की यही स्थिति उनका प्रभाव है।
६ रहीम के संस्कृत मूलक भावों को तो कवियों ने अपनाया ही है उनके मौलिक भावों को भी परवर्ती साहित्य में जमकर अपनाया गया है।
७ किसी किसी कवि ने रहीम के छन्दों का सामान्य परिवर्तित रूप तथा किसी ने उन्हें एकदम अपरिवर्तित रूप में ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है।
८ वे न केवल समसामयिक तथा उत्तर मध्यकालीन कवियों के प्रेरणा स्रोत हैं वरन आधुनिक कवि भी उनसे प्रेरणा लेते रहे हैं।
९ साहित्य जगत् से उन्होंने जितना लिया उसे कई गुना करके लौटाया है।

१२

उपसंहार

नीति, नीति-काव्य तथा परम्परा

नी धातु तथा क्तिन प्रत्यय के संयोग से बना नीति शब्द भारतीय वाङ्मय में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रयुक्त होता चला आ रहा है। प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में नीति का प्रयोग सु, ऋजु, 'वामादि' विशेषणों के साथ कई बार हुआ है। वेद तथा उसके अनुवर्ती साहित्य से लेकर लौकिक संस्कृत, पालि तथा प्राकृतादि प्राचीन भाषाओं में होता हुआ यह शब्द भारत की आधुनिक भाषाओं तक आ गया है और हिन्दी, मराठी आदि वर्तमान भारतीय भाषाओं के साहित्य में अपने अविकृत रूप में प्रयुक्त हो रहा है। श्रुतियों, स्मृतियों, महाकाव्यों, खण्डकाव्यों, मुक्तकों तथा संग्रह ग्रन्थों के विभिन्न प्रयोगों तथा कोशों के आधार पर नीति के अनेक अर्थ किये जाते हैं जिनका वास्तविक तात्पर्य उस मार्ग से है जिस पर चलकर हम बिना किसी अन्य प्राणी का अहित किए अपना हित साधन कर सकते हैं।

इस प्रकार नीति में एक पक्ष तो मार्ग निर्धारण या चिन्तन का है तथा दूसरा आचरण अथवा अभ्यास का। चिन्तन-पक्ष नीति को धर्म, दर्शन, मनोविज्ञानादि से सम्बद्ध करता है तथा आचरण पक्ष कला से। इस प्रकार नीति को विज्ञान भी कहा जा सकता है तथा कला भी। विद्वानों का इस विषय में मतैक्य नहीं है। हम नीति को व्यवहार मानते हैं। अतः हमारे विचार से नीति सफल जीवन-यापन की चिन्तन प्रधान कला है। इसके व्यावहारिक स्वरूप तथा अन्य स्वभावों को देख हम इसे विज्ञानाधारित कला कह सकते हैं। चिन्तनशील प्राणी जब अपने अनुभवों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है तब वे साहित्य का अंग बन जाते हैं। यदि अभिव्यक्ति कर्ता की वाणी में कविजनोचित विदग्धता हुई तो वही कथन नीति काव्य का पद ग्रहण कर लेता है। सफल तथा सक्षम कवि उसी को कहा जा सकता है जो नीति जैसे शुष्क तथा अप्रिय विषय को भी सरस तथा प्रियंकर ढंग से छन्दोबद्ध करने में समर्थ हो। कवि जितना ही प्रतिभावान होगा उसका नीति-काव्य भी उतना ही उपयोगी तथा प्रभावशाली सिद्ध हो सकेगा। अतः जिस प्रकार शैली की दृष्टि से गद्य को कुशल कवि की कसौटी माना जाता है उसी प्रकार विषय की दृष्टि से नीति को काव्य कौशल की कसौटी माना जाना चाहिए।

नीति-काव्य का सृजन भारतीय कविता की अपनी विशेषता है। वह इस दृष्टि से विश्व साहित्य में अद्वितीय है। इस प्रकार की कविता का आरम्भ वेदों से ही हो जाता है। भारतीय चिन्तन की अन्य धाराओं के समान ही नीति के अध्ययन के लिए वैदिक वाङ्मय का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है।[1] पुनीत आरण्यकों तथा ब्राह्मणों में नीति-तत्व अत्यन्त गौण, उपनिषदों तथा स्तोत्रों में सामान्य तथा (वैष्णवी एवं अवैष्णवी) पुराणों एवं स्मृतियों में सर्वाधिक है। उत्तरकालीन प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में नीति काव्य की दृष्टि से महाभारत सर्वोपरि है। वह भारतीय नीति का प्रतिनिधि विश्वकोश है। चाणक्य तथा क्षेमेन्द्रादि का साहित्य इस दृष्टि से विशेष दर्शनीय है। महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, नाटक आदि समस्त काव्य विधाओं में ऐसा कोई भी ग्रन्थ नहीं खोजा जा सकता जिसमें न्यूनाधिक मात्रा में नीति तत्व विद्यमान न हो। केवल नीति निर्माण की दृष्टि से एक ऐसी पृथक् तथा समृद्ध काव्य धारा भारत में प्रवाहित रही है जिसे नीति काव्य अथवा उपदेशात्मक कविता की संज्ञा दी जा सकती है। इस प्रकार से संस्कृत काव्य विश्व वाङ्मय में अद्वितीय है। इस साहित्य धारा में जितनी अधिक प्रसिद्धि तथा काव्यात्मकता भर्तृहरि के तीनों शतकों में है उतनी अन्यत्र नहीं। अतः हम भर्तृहरि को प्राचीन भारतीय नीति काव्य का सम्राट समझते हैं।

हिन्दी नीति काव्य : पूर्व पीठिका तथा रहीम

संस्कृतेतर साहित्य में भी नीति काव्य की परम्परा अविच्छिन्न रूप से विद्यमान रही है। पालि के धम्मपद, प्राकृत के वज्जालग्ग तथा अपभ्रंश के चरित काव्य इस परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ियाँ हैं। इन ग्रन्थों में वैराग्य नीति की प्रधानता है। हिन्दी की पूर्व पीठिका में वैराग्य का यही स्वर प्रधान था। इसका सर्वाधिक मुखरित रूप सिद्ध सरहपा तथा गोरखनाथ की वाणी में प्राप्त होता है। वस्तुतः गोरख अपने युग के सर्वाधिक प्रभावशाली नाथ साधु थे किन्तु भक्ति के प्रचार के कारण उनका प्रभाव शनैः शनैः न्यून से न्यूनतर होता गया। हिन्दी के सन्तों ने इस स्वर को अपने ही प्रकार से मुखरित किया। वैसे तो सन्त साहित्य ईसा की १ वीं शताब्दी से ही रचा जाने लगा था किन्तु कबीर के समय तक उसकी कोई सुव्यवस्थित काव्य-पद्धति नहीं थी। गोरख के स्वर का संरक्षण भी सर्वाधिक रूप में कबीर की ही नीति-साखी में हुआ है। यद्यपि नारी निन्दा, गुरु भक्ति, विषय त्याग आदि सन्त काव्य के आधारभूत नीति विषय नाथ साहित्य में ही लिए गए थे किन्तु कबीर वहाँ तक। नाथों में पूर्व के सिद्ध

१ जब तक ऋग्वेद की पृष्ठभूमि न स्वीकार की जाय तब तक कालिदास की परिष्कृत रचना, भवभूति की दार्शनिक शक्ति, जयदेव की आनन्दमयी रहस्यात्मक प्रवृत्ति, व्यास तथा वाल्मीकि की असाधारण गुण पूर्ण शैली, ये सब जो कि अपने में पूर्ण और मूल्यवान हैं, रेगिस्तान की हरी भरी टुकड़ियों के रूप में बिखर जायेंगे।
—विन्टरनित्ज : डा० रामस्वरूप त्रिपाठी की 'पुराण काव्य परम्परा और हिन्दी' में पृष्ठ ८ पर उद्धृत।

सरहपा से भी प्रभावित प्रतीत होते हैं। सामान्यत सम्पूर्ण संत साहित्य वैराग्य नीति का ही आख्यान है किन्तु फिर भी सिद्ध सरहपा के सहज भाव और सामान्य जनोचित नीति के दर्शन भी संत काव्य में किए जा सकते हैं।[1] उन दिनों जन सामान्य में सामान्य प्रचार प्रसार सगुण वैष्णवी भक्ति का था किन्तु कबीर ने निर्गुण भक्ति के प्रचार में विशेष योग दिया। डा० सरनामसिंह जी का अभिमत है कि कबीर ने वैष्णवी भक्ति की शृखला को सुरक्षित रखते हुए भी एक कड़ी को बदल कर दूसरी को लगा दिया और वह है निराकार और निर्गुण की उपासना।[2] यद्यपि उनकी कविता में डाट फटकार, खण्डन मण्डन तथा नानोपदेश का स्वर प्रधान है किन्तु फिर भी कबीर की वाणी अपने मूल में कविता न होते हुए भी कविता से बहुत दूर नहीं है।[3] नीति के लिए तो यह कथन एकदम सत्य है। कहीं कहीं नीति-काव्य के ऐसे सुन्दर छन्द कबीर के काव्य में प्राप्त होते हैं कि उनकी प्रतिभा के सम्मुख झुकते ही बनता है—

माली आवत देखि कै, कलियन करी पुकार।
फूले फूल चुन लिये काल हमारी बार॥

झूठे सुख को सुख कहें मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद॥

ये दोहे विश्व की भगुरता पर कही गई वैराग्य-नीति का अत्यन्त सरस उदाहरण हैं। उनका तथा उनके परवर्ती संतो का साहित्य भारतीय नीति तथा हिन्दी नीति-काव्य की दृष्टि से किसी प्रकार भी उपेक्षणीय नहीं है। हिन्दी नीति काव्य में निर्गुण संत साहित्य का अध्ययन उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि भारतीय ग्रंथ तथा राज्य व्यवस्था में कौटिल्य के अर्थशास्त्र का। यद्यपि इसी प्रकार के नैतिक सिद्धान्तो का आकलन सूफी काव्य में भी हुआ है किन्तु निर्गुण नीति काव्य के सम्मुख उसका महत्व नगण्य-सा है। कारण यह है कि उन कवियों की अधिकांश शक्ति लौकिक प्रेम कथाओं के माध्यम से सूफी दर्शन को प्रगट करने में ही लगी रही थी। कृष्ण भक्ति के सगुण कवियों में यद्यपि आध्यात्मिक नीति प्रचुर मात्रा में है किन्तु फिर भी व्यावहारिक नीति की दृष्टि से कृष्ण भक्ति-काव्य का महत्व उल्लेखनीय नहीं है। कहीं-कहीं तो उन्होंने अत्यधिक कृष्णनिष्ठता के प्रचारार्थ सामाजिक तथा पारिवारिक मर्यादाओं एवं आरज (आर्य)—पथ त्याग तक का भी फतवा दे दिया है। राम भक्ति शाखा के कवियों विशेषत तुलसी ने यह कमी पूरी की है। तुलसी के काल ही में कविता के

---

१ भूखे भगति न कीजे यह अपनी माला लीजे।
दुई सेर माँगउँ चून पाउ घीउ सागे लोन।
आधा सेर मागउ दालें मोकूं दोऊ वखत जिवाले।
खाट माँगउँ चउपाई सिरहाना अवर तुलाई॥
—कबीर ग्रंथावली पारसनाथ तिवारी पृ० २०/३४

२ तथा ३ 'कबीर एक विवेचन —डा० सरनामसिंह पृ० ४१७ २११

विषयों में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया था। अब तक हिन्दी काव्य भक्ति-माधुरी, धार्मिक उक्ति तथा वैराग्य भाव का समृद्ध कोष (सनुराग माधुर्य) बन चुका था। अब कविता में अन्यान्य विषय भी खोजे जाने आवश्यक थे। इस परिवर्तन में नरहरि गंग ब्रह्म इत्यादि अकबरी दरबार के साहित्य सृष्टाओं ने अत्यधिक योग दिया। इस दृष्टि से मध्य युगीन साहित्य की तीन प्रेरणा (भूमियाँ) मानी जाती हैं—राज्य धर्म और लोक।[1] उधर मुसलमान शासकों ने १२वीं शताब्दी से ही हिन्दी को प्रश्रय देना आरम्भ कर दिया था, ये न केवल भाषा कवियों को आश्रय देते वरन स्वयं भी कविता करते तथा अपने सिक्कों पर हिन्दी अक्षरों में नाम खुदवाया करते थे।[2] इसमें से नीति कविता में उक्त तीनों का हाथ होते हुए भी राज्य का योग कुछ अधिक है। नीति-काव्य की ओर तो कवियों का इतना ध्यान आकृष्ट होने लगा था कि न केवल गंग नरहरि इत्यादि दरबारी तथा बीरबल (ब्रह्म) टोडरमल एवं रहीम आदि उच्चाधिकारी अपितु स्वयं सम्राट अकबर तक नीति विषयक कविता करने लगे थे —

जाको जस है जगत मे, जगत सराहै जाहि।
ताको जीवन सफल है कहत अकब्बर साहि॥[3]

इस प्रकार की कविता करने वाला में सर्वाधिक समादर रहीम का था। आ० चतुरसेन ने लिखा है—तुलसी काल में और काल से भी अधिक साहित्य उत्पन्न हो रहा था और धार्मिक विषयों को छोड़कर लोग विविध विषयों की कविता करने लगे थे जिनमें रहीम सर्वोपरि हैं जिन्होंने नीति के अनमोल दोहे कहे हैं।[4] विद्वान लेखक के इस उद्धरण में तीन शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण हैं—(१) विविध विषय (२) सर्वोपरि तथा (३) अनमोल दोहे। विविध विषय तथा अनमोल दोहों का ही अनिवार्य परिणाम सर्वोपरि स्थान है।

विविध विषयों पर लिखने वाले कवि उस युग में थोड़े ही थे। यद्यपि तुलसी का साहित्य ज्ञान का महार्णव है किन्तु उन्होंने प्रमुखतया एक ही विषय पर रचना की है और वह है राम भक्ति। जिस प्रकार सूर ने कृष्ण के वात्सल्य भाव को पूर्णता की सीमा तक पहुँचाया, उसी प्रकार तुलसी ने राम की मर्यादा शीलता को चरमाभिव्यक्ति प्रदान की। तुलसी की एक अन्य विशेषता यह है कि उन्होंने शैली की विविधता को अपनाया था। अपने युग की ऐसी कोई भी प्रचलित काव्य शैली नहीं जिसे तुलसी ने राममयी न किया हो। किन्तु विषय की विविधता वहाँ भी इतनी नहीं है। यह यदि कहीं मिलती है तो थोड़ी बहुत नन्ददास में। उन्होंने व्याकरण

---

१ मध्ययुगीन काव्य साधना ले० रामचन्द्र तिवारी (प्र० स० १९६२), पृ० ३

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, रा० च० शुक्ल (१४वां संस्क०) पृ० १९० पर उद्धृत

३ विशेष विवरण के लिए देखिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के द्वितीय कार्य विवरण (द्वि० स० १९७१) में छपा अमीर अलीमीर का लेख हिन्दी और मुसलमान पृ० ७०

४ हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, आचार्य चतुरसेन, पृ० २६८

नायिका न रण, भक्ति प्रेम आदि विविध विषयों पर लिखा किन्तु नीति का क्षेत्र वहा भी रिक्त था। कुछ कवि स्वतन्त्र धारा के रूप में भी नीति की कविता कर रहे थे। इन में अकबरी दरबार के कवियों का योगदान महत्वपूर्ण है किन्तु रहीम के अतिरिक्त और कोई भी कवि उसे सुगमतापूर्वक ग्रहण नहीं कर सका था। सच तो यह है कि जिस प्रकार तुलसी ने अपने युग की सभी शैलियों पर विधिवत् काव्य सृजन किया उसी प्रकार रहीम ने अपने युग के समस्त प्रचलित विषयों पर रचना की। ज्योतिष राम भक्ति कृष्ण भक्ति संयोग शृंगार, वियोग शृंगार नायिका भेद तथा नीति आदि में ऐसा कोई विषय नहीं जिसे उन्होंने पूर्ण दक्षता तथा महत्ता के साथ संक्षेप में वर्णित न किया हो।

रहीम के व्यक्तित्व कृतित्व तथा सूर तुलसी एवं विहारी आदि के उस महत्वपूर्ण युग का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनकी सी बहुज्ञता तथा सर्वतामुखी प्रतिभा तुलसी को छोड़ उस युग के किसी अन्य कवि में नहीं थी। काश सम्राट अकबर उस महान प्रतिभा सम्पन्न सुधी साहित्यिक एवं भाषाविद् को राजनीति एवं युद्ध के पचड़ों से मुक्त रख केवल काव्य-सृजन में ही लग रहने देते। यदि ऐसा हो जाता तो यह सुनिश्चित था कि सूर सागर रामचरितमानस तथा बिहारी सतसई जैसी कोई चौथी काव्य निधि हिन्दी संसार में अवश्य विद्यमान होती। अपने सीमित अवकाश में उन्होंने जितना भी लिखा वह प्रतिशय महान है। हम नीति के उस क्षेत्र की चर्चा नहीं करते जो रहीम का अपना है वरन शृंगार भक्ति आदि की दृष्टि से भी रहीम की प्रतिभा का लोहा मानना ही पड़ता है। समर्थ से समर्थ परवर्ती कवि भी रहीम का अनुकरण करते प्रतीत होते है।[1] कतिपय क्षेत्रों में तो न केवल रहीम के भावों का वरन शब्दों तक का अनुसरण किया गया है। शृंगार की मधुर अभिव्यक्ति के लिए सुप्रसिद्ध, महाकवि मतिराम[2] तो हम अपने रसराज के बहुत बड़े भाग के पग पग पर रहीम के बरवनायिका भेद के उदाहरणों के शतप्रतिशत ऋणी जान पड़ते हैं।[3] अन्य शृंगारी कवियों के लिए भी

१ रहीम सूक्तियों के सम्राट हैं इनकी सूक्तियाँ इतनी महत्वपूर्ण हैं कि परवर्ती बड़े-बड़े कवियों ने भी भावों के लिए इनकी ओर हाथ पसारा है। इनकी दोहावली या सतसई सूक्ति साहित्य का सिरमौर है।
—भारतीय मुक्तक काव्य परम्परा डा० रामसागर त्रिपाठी पृ० १७६

२ हिन्दी में सर्वसम्मति से माधुर्य और लालित्य गुण प्रधान है। इन सद्गुणों की नींव मतिराम के द्वारा पड़ी। —हिन्दी नवरत्न (द्वि० सं०), पृ० ३६६

३ 'रसराज में शृंगार रसान्तर्गत नायिका भेद का वर्णन है। रसराज का नायिका भेद रहीम के बरवै नायिका भेद पढ़ने के पश्चात् वरन यह कहना उचित होगा कि उसके आधार पर रचा गया है। हमारे ऐसा कहने का कारण यह है कि रसराज में जो उदाहरण नायिका भेद के लिए गये हैं, उनमें से बहुतों के भाव बरवै नायिका भेद से लिए गये हैं। कहीं-कहीं तो मुख्य मुख्य शब्द भी रहीम के ही प्रयोग किये हैं।' —रहीम रत्नावली पृ० ५२

यह बात बहुत कुछ सत्य है। भक्ति के क्षेत्र में भी स्थिति कुछ भिन्न नहीं है। गो० तुलसीदास जी को सामान्यतः कृष्ण भक्त और सूरदास को राम भक्त स्वीकार नहीं किया जाता किन्तु रहीम की गणना उभय पक्षों में समान होती है। राम भक्ति परम्परा में भी उनका विवेचन आवश्यक माना जाता है तथा कृष्ण भक्ति परम्परा में भी।[1] मिश्र बन्धु तो यहाँ तक स्वीकार करते हैं कि उन्हें कृष्ण भगवान का इष्ट था।[2] मुसलमान कवि के लिए इससे बड़ी सफलता और क्या हो सकती है ?

हमारे विचार से इस सफलता तथा प्रतिष्ठा का रहस्य उनका हिन्दुत्व प्रेम है। उनके समस्त काव्य से एक भी भाव अथवा एक भी शब्द ऐसा नहीं खोजा जा सकता जिससे उनके मुसलमान होने का अनुमान लग सके। वे नूर तूर के जलवे पर फिदा नहीं मोहनलाल की सलोनी साँवरी छवि पर आसक्त हैं। उन्हें गुलोबुलबुल नहीं चन्द्र चकोर कोयल कमल और भ्रमर याद आते हैं। हदीस और कुरान से उदाहरण न ढूँढकर वे रामायण महाभारत और पुराणों की अन्तर्कथाएँ उद्धृत करते हैं। न हजरत सुलेमान याद किये जाते हैं और न तलवार जुल्फिकार या करबला का युद्ध। उन्हें भाते हैं गाण्डीव सुदर्शन तथा धनुष। वे कावा के गवार खजूरों की शीरी तथा ऊँटनी के दूध की नहीं वरन वासन्ती मनयज आम्र मंजरी तथा सुर तरु छाया की प्रशंसा करते हैं। कहाँ तक गिनाया जाय। केवल इतना ही कथन पर्याप्त है कि अब्दुर्रहीम खानखाना हिन्दू हिन्दी तथा हिन्दुस्तान की परम्पराओं के सच्चे निष्ठावान कवि हैं। प्रत्येक हिन्दी भाषी उनका ऋणी है। उसे रहीम के शृंगार वर्णन भक्ति निरूपण तथा नीति निदर्शन पर गर्व है। मुसलमान रहीम का हिन्दी काव्य भारत की कोटि कोटि हिन्दू जनता का कण्ठहार है। हिन्दुओं की वाणी पर रहीम के दोहे उसी प्रकार चढ़े हुए हैं जिस प्रकार सूर के पद तथा तुलसी की चौपाइयाँ। धर्मनिरपेक्ष स्वतन्त्र भारत के लिए रहीम एक आदर्श साहित्यकार हैं। उन्हें यथोचित राष्ट्रीय गौरव मिलना ही चाहिए।

उनका काव्य इस बात का प्रमाण है कि तलवार के जोर पर इस्लाम फैलाने मंदिर तोड़ने तथा कत्लेआम कराने के लिए इतिहास में बदनाम तथाकथित मुसलमान जाति के कुछ सदस्य भी उचित शिक्षा मिलने पर आजीवन मुसलमान रहते हुए भी अत्यन्त उदार महान तथा सर्वमानव राष्ट्रोन्नायक आचरण कर माँ भारती की सेवा कर सकते हैं। सौहार्दपूर्ण वातावरण में दी हुई उचित तथा उदार शिक्षा वह जादू है जो प० ब्रजनारायण चकबस्त जैसे ब्राह्मणों से ऐसी कविता लिखा सकती है जो उर्दू तथा उर्दू प्रिय मुसलमानों का कण्ठहार हो तथा रहीम और रसखान से वह सत्काव्य सृजन करा सकती है जिस पर हिन्दू तथा हिन्दुत्व सौ जान से कुर्बान हो।

रहीम उस युग के कवि हैं जो राजनैतिक दृष्टि से मुगल-गौरव का तथा साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी का स्वर्ण युग था। उन्होंने सन १५५६ से १६२७ ई० तक के

---

१ देखिए, राम भक्ति शाखा राम निरंजन पाण्डेय (हैदराबाद १९६०) पृ० ४३०

२ मिश्रबन्धु विनोद (पंचम संस्क०) सं० २०१२ वि० पृ० २८५

७१ वर्षीय दीर्घजीवन में हिन्दी के महानतम एवं दिव्यतम कवियों से भेंट करने, मित्रता प्राप्त करने का तथा आश्रय देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। निजी दरबार के कवियों के अतिरिक्त सूर, तुलसी, रसदास, रसखान, व्यासजी, आलम, गंग, होलराय, नरहरि, ब्रह्म, केशवदास, गंग, बिहारी, मतिराम आदि सभी कवि उनके काल में न्यूनाधिक समय के लिए विद्यमान थे। इनके अधिकांश में से किसी से उनकी मित्रता, किसी से परिचय, किसी से निकट सम्पर्क तथा किसी से आश्रयदाता का सम्बन्ध था। आश्रयदायित्व का तो कहना ही क्या? कलयुगी कर्ण रहीम, हिन्दी फारसी कवियों के कल्पतरू थे।

रहीम ने अपने जीवन में न केवल राज्य तथा राजाओं का उत्थानास्त देखा वरन साहित्यिक युगों की उत्पत्ति तथा प्रलय भी देखी थी। सूर काल तथा तुलसी-काल के सुप्रसिद्ध कलान्तर ही नहीं साहित्य के पूर्ण युग परिवर्तन भी उनके जीवन काल में ही हुए अथवा होना निश्चित हो गये थे। सूरसागर और मानस के भक्ति भाव भरे छन्दों के अतिरिक्त रसिकप्रिया तथा सतसइयों के छन्द भी उनके कानों में पड चुके थे। अतः एक ओर भक्ति युग का यौवन रहीम के जीवन काल में व्यतीत हुआ था तो दूसरी ओर रीति युग का शैशव। साहित्य के इतने अधिक उतार चढ़ावों को अपनी आँखों से देखने वाले महाकवि हिन्दी में उंगली पर ही गिने जा सकते हैं। हमें तो राष्ट्रकवि स्वर्गीय श्री मैथिलीशरण गुप्त के अतिरिक्त दूसरा नाम ही याद नहीं आता।

भक्तिकालीन काव्य से आगे बढ़कर यदि हम रीतिकालीन कविता की बातें सोचें तो ज्ञात होता है कि परवर्ती रीतिकाल में पल्लवित पुष्पित एवं फलित रीति बद्ध (नायिका भेद) तथा रीति मुक्त (नगर शोभा) आदि काव्य के बीज भी मूल रूप से क्रान्तिदर्शी रहीम के द्वारा ही बोए गए थे। इनके अतिरिक्त वे हिन्दी की कई साहित्य रूढ़ियों के संस्थापक, उन्नायक तथा उद्धारक भी थे। सतसई परम्परा, नायिका भेद, नीति के दोहे क्रमशः इसके उदाहरण हैं। नगर शोभा के समान जाति परक ढंग से शृंगार वर्णन की प्रवृत्ति के जन्मदाता, बरवै छन्द के साहित्यिक पिता, अवधी में रीति ग्रंथ के आदि सृष्टा होने का श्रेय भी रहीम का ही है। शृंगार के कर्णधार द्वय—मतिराम, बिहारी आदि द्वारा किये गये उनके अनुकरण भी किसी से छिपे नहीं हैं। शुक्ल जी के शब्दों में उनकी उक्तियाँ इतनी सुभावनी हैं कि बिहारी आदि परवर्ती कवि भी बहुतों के अपहरण करने का लोभ न रोक सके।[1] नीति का क्षेत्र तो उनका अपना था ही। आगे चलकर वृन्द तथा गिरधरादि ने जो विपुल नीति काव्य निर्मित किया उसके आधार रहीम के दोहे ही हैं। ये हिन्दी नीति काव्य के प्रेरणा-स्रोत ही नहीं वरन अद्वितीय आदर्श भी हैं।

कहा जा सकता है कि नीति काव्य की अविच्छिन्न परम्परा हिन्दी के प्रारम्भिक काल से ही चली आ रही थी। संत कवियों ने तो नीति मुक्तकों की पृथक्तः रचना भी की थी। अतः नीति काव्य प्रणयन की प्रेरणा का श्रेय कबीर, नानक तथा दादू आदि

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास १४वां संस्क० २०६

सत कवियो को मिलना चाहिए। इस तथ्य को हम अस्वीकार नही करत कि सत कवियो न नीति के दोहो की स्वतन्त्र सर्जना रहीम से बहुत पहले ही की थी किन्तु हमारा विनम्र निवदन है कि सतो तथा रहीम के नीति काव्य म मौलिक अतर भावना का है। सतो का प्रधान स्वर उपदेश और भक्ति है नीति नही है, जबकि रहीम का उद्देश्य ही नीति काव्य सृजन था। कबीर, दादू आदि ने समाज सुधार गुरु-गोविन्द महिमा गान तथा सम्प्रदाय सम्बन्धी प्रचार के लिए अपना साहित्य रचा था। उनका उद्देश्य काव्य सृजन नही था राम (निगुण) का स्मरण था—

सकल कवित्त का अथ है सकल बात की बात।
दरिया सुमिरन राम का कर लेना दिन रात॥

अत सतो की वाणी को नीति स आपूरित मानते हुए भी उन्हे मूलत नीति का कवि स्वीकार नही किया जा सकता। सत कवि होने म ही उसका गौरव है मात्र नीति का कवि होन म नही। व नीति क लौकिक कवियो स कुछ ऊपर थ कुछ अधिक थ और यही कुछ उनके काव्य का सब कुछ है। अत स्पष्ट है कबीर अथवा अन्य सत रहीम की भाति कवल नीति कवि नही थ। रहीम ही हिन्दी नीति काव्य क मुख्य प्रतिस्थापक थ। कृष्ण भक्ति म जो योगदान सूरदास जी का राम भक्ति म जो योगदान तुलसी दास का है वही योगदान नीति काव्य म रहीम का है।

नीति काव्य परम्परा म उनके दोहो क साथ वृन्द का अध्ययन किया जाता है किन्तु यह कुछ-कुछ वसा ही होगा जसा कि सुरसरि की तुलना म यमुना का। कारण स्पष्ट है। यद्यपि वृन्द-सतसई के अनेक दोहो म भी उच्च काव्यत्व है किन्तु मूलत वृन्द सूक्तिकार हैं जब कि रहीम कवि। आचाय शुक्ल न परवर्ती काल के नीति सूक्तियो क साथ तुलना करत हुए लिखा है 'रहीम के दोहे' वृन्द और गिरधर क पद्यो क समान कोरी नीति क पद्य नही हैं। उनम मार्मिकता है उनके भीतर स एक सच्चा हृदय झाक रहा है।[1] वृन्दादि नीति-कवियो तथा रहीम म कुछ इस प्रकार का अन्तर है जस साधक और सिद्ध म। एक उस काव्यत्व प्राप्त करन का प्रयत्न कर रहा था दूसरा उस पा चुका था।

एक ही युग के दो युग-पुरुष

वस्तुत उस समय दो युग-कवि थ—रहीम तथा तुलसी। हिन्दी क समस्त

काव्य में दोनों तत्वों को पूरा पूरा स्थान मिला है। दोनों ही भारत तथा भारतीयता पर प्राणपण से न्यौछावर हैं। दोनों का अवधी और ब्रज पर समान अधिकार प्राप्त है। दोनों की कृतियाँ कविता कामिनी का सम्पन्न शृंगार तथा माँ भारती का उज्ज्वल-कंठहार है। उत्तर भारत की कुटिया से लेकर महलों तथा प्रारम्भिक विद्यार्थियों से लेकर महान साहित्यिकों तक में दोनों का साहित्य समान भावन समादृत है। दोनों की वाणी समान रूप से जनता के कण्ठ में विराजमान रहती है। हिन्दी को दोनों महाकवियों पर गर्व है।

इतना होते हुए भी तुलसी, तुलसी ही हैं और रहीम, रहीम ही। दोनों का व्यक्तित्व और स्थिति पृथक् पृथक् है। एक वीतरागी साधु है तो दूसरा गृहस्थ तथा राजनीति की पंकिलता में आपाद मस्तक आकंठित सांसारिक जीव। एक को राजदरबार की गंध भी नहीं भाती किन्तु दूसरे का सम्पूर्ण जीवन राजा और नवाबों के साथ व्यतीत हुआ था। एक निपट अकिंचन है तो दूसरा सर्वथा सर्वसम्पन्न। एक साक्षात् त्याग है और दूसरा धर्म धुरीण। एक सर्वथा भार मुक्त है तो दूसरा अनवरत सैनिक संग्राम, दुर्गों तथा प्रान्तों के सतत प्रशासन में दबा हुआ शासक। एक केवल हिन्दी-संस्कृत का पंडित है तो दूसरा हिन्दी संस्कृत अरबी फारसी तुर्की पश्तो तथा अंग्रेजी आदि का भाषाविज्ञ। एक अपनी कुटिया की निर्जनता में साहित्य सृजन करता है तो दूसरे का वातावरण रसिकों रसज्ञों तथा कलाविदों के जमघट से भरा है। एक के पास काव्य सृजन के लिए अवकाश ही अवकाश है तो दूसरे के पास इस अवकाश का नितान्त अभाव है। काव्य सृजन में एक पर धार्मिकता का कोई बन्धन नहीं तो दूसरे के लिए संस्कार समाज तथा सम्प्रदायों की ऐसी टोक सर्वथा विद्यमान है जिसकी उसने कभी चिंता नहीं की।

बात को अधिक न बढ़ाते हुए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि एक ही युग में उत्पन्न इन दो युग पुरुषों तथा महाकवियों के व्यक्तित्व एवं काव्य में पर्याप्त साम्य-वैषम्य है। दोनों ही अपने अपने क्षेत्र में अतिशय महान् हैं। न तुलसी के बिना उत्तरी भारत की राम भक्ति धारा पल्लवित एवं पुष्पित हो सकती थी और न रहीम के बिना नीति-काव्य की परम्परा ही चल सकती थी। तुलसी के बिना बनारस के पुनीत घाट सून थे तो रहीम के बिना भारत सम्राट का दरबार। तुलसी ने घर घर में राम का परमोद्धारक गीत गा सुनाया उधर रहीम ने परम कल्याणकारी नीति का संदेश जन जन के द्वार तक पहुँचा दिया। वैसे तो दोनों महाकवि सर्वसक्षम तथा महान् प्रतिभा सम्पन्न थे किन्तु फिर भी तुलसी न तो नगरशोभा का सा शृंगार तथा सतसई का सा धर्मसंग्रह मुक्त नीति काव्य लिख सकते थे और न रहीम मानस का सा महाकाव्य। रहीम तुलसीदास के समान भग्नहृदय हिन्दू समाज में आशा का मन्त्र नहीं फूंक सकते थे और तुलसी रहीम के समान कवि याचकों के कल्पतरु नहीं बन सकते थे। संस्कृत प्रेमी काशी के उद्भट पंडितों के बीच गम्भीर धार्मिक क्षेत्र में हिन्दी स्थापना करना रहीम के बस की बात नहीं थी, उधर वैभवशाली अकबरी दरबार में नीति काव्य की गौरव स्थापना तुलसी भी नहीं कर सकते थे। उस वातावरण में

। ही तुलसी के स्वभाव एवं संस्कार के विरुद्ध था। रहीम उनसे किसी प्रकार भी पृथक नहीं हो सकते थे। यस्तुतः पद भार तथा संस्कार के कारण ही रहीम नीति को प्रबन्ध काव्य के माध्यम से व्यक्त करने में न्यून रहे किन्तु धर्माग्रह मुक्त सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक नीति का मुक्तकों के माध्यम से आख्यान करने में वे तुलसी से कहीं आगे बढ़ गये हैं।

का य क्षेत्रीय बहुत सी बातों में तुलसी और रहीम एक-दूसरे के परिपूरक हैं। यदि कोई व्यक्ति लौकिक हित पर आघात आये बिना परलोक सुधारने की कामना करता है तो उसे तुलसी का अध्ययन करना होगा और यदि कोई पारलौकिक हित में बाधा पहुँचाये बिना लौकिक हित साधन अथवा सफल सांसारिक जीवन की कला में दक्ष होना चाहता है तो उसे रहीम के नीति काव्य का चितक बनना होगा। यदि कोई सदा के लिए लौकिक वैभव तथा पारलौकिक सुख समान रूप से सुरक्षित रखने तथा धर्मार्थादि पुरुषार्थ चतुष्टय की सम्प्राप्ति का मार्ग हिन्दी काव्य के कलित माध्यम से जानना चाहता है तो उसे तुलसी तथा रहीम दोनों के नीति काव्यों का समान रूप से अध्ययन करना होगा। स्पष्ट है दोनों के का य का समान अध्ययन पाठक के ज्ञान में संतुलन तथा पूर्णता लाता है।

मध्य युगीन नीति-काव्य परम्परा में रहीम का स्थान

तुलसी और रहीम की अपनी अपनी महत्ता के समान ही मध्य युग के अन्य महाकवि भी अपने अपने क्षेत्र में गौरव हैं। जायसी निर्गुण प्रेममार्गी धारा और सूफी काव्य परम्परा के सिरमौर हैं और कबीर निर्गुण मार्गी ज्ञान शाखा तथा संत का य परम्परा के अद्वितीय अधिनायक। सगुण मार्गी कृष्णभक्त कवियों में सूर सर्वश्रेष्ठ हैं और रामभक्त कवियों में तुलसी। प्रारम्भिक रीति आचार्यों में केशव सर्वोन्नत हैं और रीति सिद्ध शृंगारिक का य रचना में बिहारी। जिस प्रकार ये सब महाकवि अपने अपने क्षेत्र में अद्वितीय हैं उसी प्रकार नीति का य के क्षेत्र में रहीम का स्थान सर्वोपरि है। रहीम हिन्दी नीति का य के सम्राट हैं। जिस प्रकार प्रेमचंद को हिन्दी का उपन्यास सम्राट तथा प्रसाद को नाटक सम्राट कहकर पुकारा जाता है उसी प्रकार रहीम को यदि हिन्दी-नीति काव्य का सम्राट कहा जाय तो किसी प्रकार की अत्युक्ति न होगी। जो स्थान संस्कृत में महाराज भर्तृहरि का है वही हिन्दी नीति काव्य में नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना को प्राप्त है। रहीम हिन्दी के भर्तृहरि हैं। आइए इसी निश्चय के साथ हम इस प्रबन्ध का रहीम के दो दोहे गाते हुए समाप्त करें—

> रहिमन रिस को छाँडि के करो गरीबी भेस।
> मीठो बोलो नय चलो सब तुम्हारो देस॥ रहीम रत्ना० २२ २२६
> रीति प्रीति सब सों भली बर न हित मित गोत।
> रहिमन याही जनम की बहुरि न संगति होत॥ रहीम रत्ना० २३ २४०

★★★

परिशिष्ट

अकबर का शासनकाल (१४ फरवरी, सन १५५६ से १६०८ तक) साहित्य धारा का सबल आश्रय केन्द्र था। उसके दरबार में अनेकानेक फारसी कवि थे। वस्तुतः भी (बाबर को छोड़) हुमायूं अकबर जहाँगीर की मातृभाषा भले ही तुर्की हो पर राजभाषा उन सभी के काल में फारसी ही थी। जहाँगीर के बाद तो तुर्की का चिराग ही गुल हो गया था। भारत के फारसीदाँ ही नहीं फारस के प्रसिद्ध विद्वान तथा कवि भी मुगल दरबार की शोभा बढ़ाते थे। सौभाग्य से ईरानी शाह अब्बास सफवी (१५८७ १६२८) का दरबार भी फारसी रससिद्ध कवियों तथा विद्वानों का अखाड़ा था। मुगल शासनकाल में कवियों को इतना सम्मान इतना प्रश्रय तथा धन मिला कि प्राय उच्चतम काव्य मेधा आकर्षित होकर भारत चली आई और फारसी काव्य का केन्द्र स्थल फारिस नहीं भारत हो गया। सफवी राजाओं के शासन का आधार इस्लाम धर्म (शिया) पर निर्भर था। अत उन्होंने धर्मकाव्य को ही प्रश्रय दिया शुद्ध काव्य को नहीं। इसलिए उस समय ईरान में उच्चकोटि के कवियों का अकाल सा पड़ गया था। इधर दूसरी ओर अकबर और अकबर ही क्यों रहीम के दरबार में एक से एक महान कवि विद्यमान थे। बुखारा के गीतकार मुश्फिकी (मृ० १५८६) शीराज के महान कवि उर्फी (मृ० १५९८) तुर्शीन के महान मस्नवीकार जहूरी (मृ० १६१६) इत्यादि महान कवियों के ससर्ग में रहने वाले अब्दुर्रहीम खानखाना पर फारसी काव्य का प्रभाव होने की संभावनाओं से इनकार नहीं किया जा सकता। अतः फारसी की कृतियों और विवेचन उसकी नीति काव्य का सामान्य ऐतिहासिक विहगावलोकन यहाँ असगत न होगा।

फारसी काव्य सभी प्राचीन देशों के काव्य की भांति धर्म से विशेषत प्रभावित रहा है। फारिस का धार्मिक इतिहास (भारत से भिन्न) राजनीति के साथ बदलता रहा है। इस दृष्टि से वहाँ के धार्मिक साहित्य के दो विशेष विभाग किए जा सकते हैं

(१) पूर्व इस्लामी साहित्य
(२) पश्चात इस्लामी साहित्य

इन्हीं को प्रकारान्तर से साहित्यिक इतिहास के दृष्टिकोण से तीन भागों में विभाजित किया गया है

(१) सबके खुरासानी
(२) सबके इराकी
(३) सबके हिन्दी।

पूर्व इस्लामी साहित्य

फारसी शब्द फार्स या पार्स से निकला है। फार्स या पार्स ईरान के एक प्रदेश विशेष का नाम है। इसलिए संस्कृत में ईरानियों को पारसीक कहा जाता था। यह ईरान और आर्य शब्द भी भाषा-शास्त्र की दृष्टि से एक ही माने गए हैं। इसी को यूनानियों ने पर्शिया कहकर पुकारा है। इसी पर्शिया का आधुनिक रूप पर्शिया अथवा पर्शिया है। इसी पर्शिया की भाषा को अंग्रेजी में पर्शियन कहा गया था।

अतः नाम से भी भारत के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध स्पष्ट है। पारसियों का प्राचीनतम ग्रन्थ है जेन्द अवेस्ता। इस ग्रन्थ के अध्ययन से स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि उसकी भाषा, हमारे वैदिक की संस्कृत भाषा की एक उपभाषा ही है। भाषा वैज्ञानिकों ने इसमें से कुछ ऐसे भी शब्द खोज निकाले हैं जो ऋग्वेद की ऋचाओं के सामान्य अपभ्रंश या परिवर्तित रूप हैं। अतः स्पष्ट है कि पर्शिया के आदि पुरुषों तथा भारत के आदि पुरुषों का कभी अभिन्न सम्बन्ध अवश्य ही रहा होगा। ऋग्वेद तथा जेन्द दोनों के धर्म अग्नि या होम प्रधान हैं यह तथ्य भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है।

जो भी हो यह निश्चित है कि फार्स का प्राचीनतम ग्रन्थ जेन्द है। यही उनका आदि काव्य भी है। अवेस्ता भाषा में—जरदुश्त द्वारा निर्मित जेन्द का धर्म ही पारस का आदि धर्म था जिसे आजकल भारत में पारसी कहकर पुकारते हैं।

ईरान में युगों युगों तक अवेस्ता और उसके द्वारा पोषित साहित्य सर्जित होता रहा था। सिकन्दर महान जब अपनी दिग्विजय को निकला तब उसने ३३१ ई० पू० में ईरान के महाराज दारा तृतीय को परास्त किया। उसके ५०० सौ वर्ष पश्चात् तक ईरान साम्राज्य सर न उठा सका। आगे चलकर सासानी कुल के समय में स्थिति कुछ सुधरी। इस बीच उसकी आदि भाषा समाप्त हो चुकी थी और उसका स्थान पहलवी ले चुकी थी। अवेस्ता की व्याख्या जो पाज्यन्द कहलाती है इसी पहलवी भाषा में है। अन्त में इस सासानी कुल को भी अरबों ने परास्त कर दिया और उनकी सर्वभक्षी प्रवृत्ति ने उस काल के साहित्य को भी समाप्त सा कर दिया। आज हम निश्चित रूप से उस काल अर्थात् पूर्व इस्लामी पारस साहित्य के सम्बन्ध में कुछ अधिक नहीं कह सकते।

ईरान पर इस्लाम विजय से वहाँ के इतिहास का दूसरा युग आरम्भ होता है। प्रायः प्रत्येक विजेता अपनी भाषा को अपनी विजित प्रजा पर लादना चाहा करता है। अरबों ने यह काम और भी कट्टरता से किया और चूंकि अरबी इस्लाम की मजहबी जबान थी। अतः ईरान के बुद्धिजीवियों की भाषा भी अरबी हो गई। और चूंकि ईरानी मेधावी थे अतः उन्होंने आश्चर्यजनक शीघ्रता के साथ अरबी साहित्य पर भी अधिकार कर लिया और वे अरबी के मूल कवियों एवं लेखकों से कई अर्थों में आगे निकल गये। उस युग के अनेक महत्त्वपूर्ण अरबी ग्रंथ ईरानियों द्वारा

नहीं ईरानियों द्वारा लिखे गये थे।[1] इन ग्रंथों में भी अरबी के साथ फारसी शब्दों का सम्मिश्रण अवश्य उत्पन्न हो होता है। वस्तुस्थिति यह थी कि अरबी सत्ता के पोषण के कारण ही फारसी विद्वान्, अरबी पठन निरत थे। उनका अनुराग फारसी से ही था। वे मन ही मन घुटन अनुभव करते थे। ई० बरथल्स महोदय लिखते हैं कि वे अरबी ही नहीं अरब राज्य का अंकुश अपने सर से उतार फेंकने के चक्कर में थे।[2] परन्तु पराधीन थे। कट्टर अरबी खिलाफत शासन की शृंखलाओं में जकड़ी ईरानी मेधा अपनी भाषा के लिए कुछ न कर सकी और यही कारण है कि इस्लामी विजय के दो शताब्दी पश्चात् का फारसी साहित्य प्राय अंधकारमय है। आत्मविस्मरण के लिए बेचारे फारसी कवि छुट पुट कविता रचते रहे थे। हां इतना अवश्य है कि इस काल में कतिपय इस्लाम पूर्व अतिप्राचीन ईरानी कथाओं को सुरक्षित रखने की दृष्टि से कविता में अवश्य उतारा जाता रहा था।

धीरे धीरे परिस्थिति बदली। अरबों में फूट पड़ी। रूढ़िवादी इस्लामी शासन ने ईरानियों को भटका दिया। बगावत हुई और सफल होकर रही। अरब खलीफाओं की शक्ति मिली और मुस्लिम साम्राज्य की राजधानी अब दमिश्क से बगदाद में आई। बगदाद दमिश्क की अपेक्षा ईरान के अधिक निकट है। आत्म प्रदर्शन का अवसर मिला। खलीफा हारून रशीद की रानियों में से एक ईरानी भी थी और वाद में बरमकी वंश के एक सदस्य जाफर बरमकी को हारून रशीद के जमाने में महामन्त्री बनने का अवसर भी प्राप्त हुआ। जाफर पहला ईरानी मुस्लिम था जो अरबों के शासन में इतने ऊंचे पद पर पहुंचा था। यहीं से ईरानियों को बढ़ने का मौका मिला। जाफर का खलीफा के खानदान से इतना गहरा सम्पर्क था कि खलीफा की बहन अब्बासा उसके साथ प्रणय-सूत्र में बंध गई। इससे भी ईरान शासन-नीति में परिवर्तन आया। उधर हारून रशीद का एक पुत्र मामून ईरानी बीबी से था। इसके शासन काल में ईरानियों को वृद्धि का और भी अवसर प्राप्त हुआ। उधर बगदाद के खलीफाओं का भी अनुशासन ढीला हुआ और उनके दूरवर्ती सरदार स्वतन्त्र होने लगे। ताहिर बिन हुसैन ने मौके का फायदा उठाकर ८२० ई० में ताहिरी कुल के नाम एक स्वतन्त्र शासन स्थापित कर लिया। ताहिरियों के पश्चात् सफ्फारी (नवीं शताब्दी का अन्त) और पुनः सफ्फारियों को खुरासान विजेता समानी कुल वालों ने परास्त किया। इन्हीं समानी राजाओं के शासन में फारसी भाषा के कवियों को अभूतपूर्व संरक्षण मिला।

1 The conquerors imposed their language and literary conventions on the vanquished alongwith their religion the subject people proved themselves complacent to conform and quick to learn and many of the most eminent Arabic scholars and authors during the first centuries of Islam were men of Persian blood and birth A J Arberry

Classical Persian Literature (*London* 19‍58) P 8

2 E Berthels quoted by Arberry *Ibid* P 8

फारसी काव्य का जनक कहलाये जाने वाला जन्मान्ध कवि अबू अब्दुल्ला जाफर इब्न मुहम्मद रूदकी (म० ६४० के लगभग) नस्र बिन अहमद (६१४—६४३ ई०) का दरबारी कवि था। अपनी खुरासान विजय के पश्चात् जब अमीर नस्र को हिरात क्षेत्र के फल फूल (अंगूर) इतने सुन्दर लगे कि वह चार वर्ष तक अपनी राजधानी बुखारा न लौटा तब दरबारी तंग आ गये और उन्हें कुछ न सूझा। अन्त में सब ने मिलकर रूदकी से प्रार्थना की कि यदि वह राजा के हृदय में घर की याद जगा दे और उसे वापस चलने में सफल हो जाय तो वे उसको पाँच हजार दीनार इनाम में देंगे। रूदकी ने ऐसा कोमल-ध्वनित जादू भरा कसीदा राजा के सम्मुख उपस्थित किया कि वह बिना जीन कसे तथा बिना जूते पहने ही बुखारे को भागता नजर आया। इस कसीदे में बुखारे को आकाश तथा नस्र बिन अहमद को चन्द्रमणि की उपमाओं से विभूषित किया गया था।

मीर माहस्तो बुखारा आसेमान
माह सूए आसेमान आयद हमी।
मीर सव अस्त तो बुखारा बूस्तान
सव सूए बूस्तान आयद हमी।[1]

दरबारियों ने प्रसन्न होकर रूदकी को पाँच हजार दीनारों के स्थान पर उसके दुगने अर्थात् दस हजार दीनार दिये। ऐसा प्रभावशाली था यह कवि। शराब पर भी इसने काफी लिखा है। कहते हैं कि इसकी उपमाओं इत्यादि का उमर खय्याम तक ने उड़ाया है और (५०० वर्ष पश्चात्) उसके जरावणन का अनुकरण 'जामी' जैसे महाकवि ने भी किया है। इन्होंने तीन एनिहासिक का या का सृजन किया था। दुर्भाग्य से वे अब अप्राप्य हैं। हाँ उनके पद्यांश बहुत से फारसी दीवानों में सुरक्षित अवश्य हैं।

सामानियों ने अपने दम फारस में राष्ट्रीय चेतना का भी विकास किया। काव्य को तो इन्होंने बहुत ही प्रश्रय दिया। फलतः रूदकी के आश्रयदाताओं की संरक्षता में ही दूसरे प्रख्यात कवि 'दकीकी' ने भी अपना काव्य सृजन किया। सुरा सुन्दरी संगीत तथा जरदुश्त में विश्वास[2] करने वाले इस कवि ने ही सर्वप्रथम शाहनामे का समारम्भ किया था। सुप्रसिद्ध कवि फिरदौसी ने अपने शाहनामे की नींव दकीकी के शाहनामे (जिसे प्राचीन पहलवी से सामग्री लेकर लिखा गया था और केवल १००० शेर लिख पाया था कि एक गुलाम ने उसकी हत्या कर दी) के आधार पर ही रखी थी। उसकी (फिरदौसी) और दकीकी की रचना की शैली तथा शब्द चयन में कोई अंतर न था। यदि उसने दकीकी की रचना अपने शाहनामे में मिला लेने की बात स्वयं न लिख दी होती तो हम उसका गुमान भी न होता।[3] इन सामानी राजाओं के

---

१ बहार मकाला तहरान प्रकाशन (१९६२) पृ० ८३
2 *Classical Persian Literature* (London) 1958 P 41
३ हिन्दी साहित्य की रूपरेखा श्री भगवतशरण उपाध्याय (हिन्दी द्वितीय सं० १९८९) पृ० ३५०

ही, अली (८६४—६८० ई०) तथा जयारी (६२८—१०४२ ई०) घराना ने तथा महमूद गजनवी ने उन्सूरी (लगभग १०५० ई०) को आश्रय देकर फारसी साहित्य की पर्याप्त श्रीवृद्धि की और इसके पश्चात् तो यह पुष्ट फारसी साहित्य वृक्ष अधिकाधिक विस्तृत, अधिकाधिक पुष्पित एव अधिकाधिक पल्लवित होता गया और (हमारे चरित नायक अब्दुरहीम खानखाना के जीवनान्त के समय तक) फारसी शाह अब्बास सफवी महान (सिंहासनारूढ १५८७ तथा म० १६२६) तक अगणित कवि फारसी को ही नही अपितु विश्व साहित्य को बहुत कुछ प्रदान कर चुके थे। उनकी रचनाओ के उल्लेख का अवसर यहाँ नही है।

जिस प्रकार मध्यकाल तक की प्रमुख हिन्दी काव्य धाराओ को हम वीरगाथा भक्तिगान इत्यादि प्रमुख शीर्षको म विभाजित करते हैं उसी प्रकार शाह अब्बास (जिसका सम्बन्ध भारतीयो तथा यूरोपीयो से बहुत ही घनिष्ठ था और जिसके मन्त्रियो म से एक अग्रेज सर एन्थोनी शरली भी था) के काल तक फारसी काव्य की प्रमुख प्रमुख धाराओ को बहुत ही मोटे तौर पर निम्नलिखित शीर्षों म विभाजित कर सकते हैं—

१ आश्रयदाताओ के प्रशस्ति-गान
२ वीर काव्य तथा ऐतिहासिक चरित काव्य
३ सूफी काव्य धारा
४ प्रेम परक प्रबन्ध काव्य धारा
५ गीति काव्य
६ नीति काव्य
७ फुटकर काव्य

इन समस्त काव्य धाराओ को आगे बढाने म अगणित महान कवियो ने योगदान दिया। श्री उपाध्याय जी ने जामी की प्रशसा करते हुए फारसी के सात प्रतिनिधि कवियो का उल्लेख बडे सतुलित रूप म इस प्रकार किया है—ईरानियो के प्रधान सात कवियो म वह (जामी) गिना जाता है। ईरानियो के दानिस्त म फिरदौसी वीर काव्य म बेजोड है निजामी रोमास म, रूमी रहस्यवादी काव्यायन म, सादी नीति आचार के प्रसगो म हाफिज लिपि म, पर जामी की महारत इन सारी विशेषताओ म एक सी है।[1]

फारसी का नीति काव्य

यो तो फारसी म नीति काव्य आरम्भ से ही लिखा जाने लगा था। लिखा भी क्यो न जाय ? प्रत्येक जाति अपने जीवनोन्नति प्रदान करने वाले जीवन सम्बन्धी नियमो तथा महान जीवनानुभवो को काव्य की सरस भाषा मे चित्रित करने की उपयोगिता समझती ही है। यही कारण है कि फारसी काव्य के जनक रूदकी के भी

१ विश्व साहित्य की रूपरेखा भगवत शरण उपाध्याय (दिल्ली १९५६) पृ० ३६४

पूव पुरपो के नीति सम्बन्धी काव्य-कथन खोजने पर प्राप्त हो सकते हैं। अब्दुल्लाह इब्न ताहिर (म० ८४४ ई०) के राज्यकालीन कवि 'हनजला' की आदर तथा आत्म सम्मान पर लिखी पक्तिया द्रष्टव्य हैं—

"यदि महत्ता शेर के मुख मे भी मिले तो भी उसे प्राप्त करने म चूको मत, वहाँ भी उसे प्राप्त करने के लिए जाओ। आत्मसम्मान, ऐश्वय आराम प्रशसा आदि प्राप्त करने के लिए या तो सघप करो या फिर काल सकट का सम्मुख होकर सामना करो।"[1] अरबी और फारसी पर समान अधिकार रखने वाले बलख निवासी महाकवि शहीद (६०० ई०) की भारतीय सरस्वती एव लक्ष्मी सम्बन्धी धारणाओ से मेल खाती निम्न पक्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं—

'ज्ञान और धन नरगिस तथा गुलाब के समान हैं। वे दोना एक स्थान पर तथा एक साथ विकसित नही होत। ज्ञानवाना के पास धन नही होता और धनवाना के पास ज्ञान अत्यल्प रहता है।[2]

'यदि कही कष्टो से भी अग्नि (शिखा) के समान धुआ निकला करता तो ससार सदव अधकारपूण रहा करता। यदि तुम ससार के एक कोने से दूसरे कोने तक कभी गये हो तो तुम्ह एक (भी) बुद्धिमान व्यक्ति सुखी नही मिला होगा।[3]

हिरात के बादशाह शाहरुख के राज्याधीन किन्तु शाह से भी अधिक समादृत कवि कासिम अनवार हाफिज के भाग्य के सम्बन्ध म कहे वचन कितने सटीक हैं—

भाग्य हाथ के पज के समान, पाँच उँगलियाँ रखता है। जब वह किसी स अपना हुक्म मनवाना चाहता है तब वह दो उगली तो आखा पर रख लेता है और दो काना पर एक होठा पर और फिर कहता है—खामोश।[4]

इसी प्रकार स प्राय अगणित कविया के काव्य से नीति-काव्य विषयक अगणित उदाहरण सकलित किय जा सकते हैं।

जहाँ तक नीति-कविया का सम्बन्ध है फारसी म सस्कृत नीति-काव्य के समान ऐसी कोई अलग काव्य धारा तो नहीं रही परन्तु जीवनोपयोगी नीति सिखाने वाले शेर फारसी काव्य म अगण्य हैं। इस प्रकार के शेर रचयिताओ म निम्नलिखित कविया के नाम निःसकोच लिये जा सकते हैं—

१ नासिर खुसरो (हमारे अमीर खुसरो से भिन्न)
२ नाम गार्गी

---

१ महतरी गर बकामे शेर दर अस्त।
दर शो खतर कुन ज कामे शेर बेजुइ
यो बुज़ुर्गीय अरजो नमतो जह
या चु मर्दी सु मग रोयार्ई॥ चारमकाना प०—६२
२ तथा ३ कम्पानियन पर० लिट० आफ इण्डिया एण्ड ईरान, ए० ज० आरबरी (सन् १९५८) पृ० ३१ म उद्धृत।
४ काट पोइट्स आफ ईरान एण्ड इण्डिया आर० पी० मसानी (सन् १९३८), पृ० ११८

३ इब्ने यामीन

४ हाफिज

इनमें भी सम्भवत शेख सादी सर्वाधिक प्रसिद्ध है। शेख सादी की तीन अमर कृतियाँ हैं

१ गुलिस्ता

२ बोस्ता

३ दीवान (काव्य सकलन)

गुलिस्ता को समस्त फारसी साहित्य म महोच्च स्थान प्राप्त है। यह गद्य की पुस्तक है जिसके बीच-बीच म पद्य भी व्यवहार म लाया गया है। फारसी के साथ-साथ अरबी भाषा और अरबी शेरों का भी प्रयोग किया गया है। सारे ग्रथ के अध्यायो के नाम को देखन म ही ज्ञात हो जाता है कि पुस्तक नीति-काव्य के विद्यार्थी के लिए कितनी उपयोगी है। पहला अध्याय है 'राजाओं का स्वभाव' दूसरा सन्तो का स्वभाव', तीसरा 'सन्तोष का महत्व', चौथा 'मौन के लाभ' पाचवा यौवन और प्रेम छठा है जरावस्था के कष्ट सातवाँ जीवन व्यवहार और आठवा है पारस्परिक सम्पर्क के ढग। राजनीति के सम्बन्ध में गुलिस्ता के दो सुन्दर शेर इस प्रकार हैं

न कुनद जौर पेशा सुलतानी
कि नयायद ज़ गुर्ग चौपानी॥
पादशाही कि तरहे जुल्म फिगनद
पाए दीवारे मुल्के खेश बेकनद[1]

अर्थात् किसी राजा को अपना राज-काज जुल्म पर आधारित होकर नही करना चाहिए। भेड़िया कभी भी रेवड का रखवाला नही बन सकता। जो राजा जुल्म करता है वह अपने राज्य की बुनियाद को खोखला करता है। विश्व मानवता के धरातल पर पहुँचते हुए एक अन्य शेर म कवि कहता है—

बनी आदम आज़ाए यक दिगरन,
कि दर आफरीनिश ज यक जौहर अन्द।
चु अज़ूवे बदद आवरद रोज़गार,
दिगर अज़ूहारा न मानद करार।
तो कज़ मेहनते दीगरा बे ग़मो
न शायद कि नामत निहन्द आदमी॥[2]

'अर्थात् सब मनुष्य शरीर के अगो की भाँति है क्योकि अपने जन्म के मूल म सबके अन्दर एक ही प्राण विद्यमान है। जब एक अग म दर्द होता है तब दूसरे अग भी बेचैन हो उठते हैं। अत दूसरो के दुख दर्द से बेखबर रहने वाला तू ! मनुष्य कहलाने का अधिकारी कदापि नहीं है।

---

१ गुलिस्ता (मुफीदे आम प्रेस लौहार १९१२ इ०) पृ० ५३

२ वही पृ० ५३

सत्य की प्रशंसा में कवि का कथन है कि, सच्चाई भगवान के निकट होने का साधन है। मैंने कभी ऐसा नहीं देखा कि, सीधे रास्ते पर चलने वाला मनुष्य कभी भटका हो।[1] मैत्री के प्रसंग में एक सुन्दर कथन इस प्रकार है—

दोस्त मशुमार आंके दरनेमत जनद,
लाफे यारी व बिरादर खान्दगी।
दोस्त आं दानम कि गीरद दस्ते दोस्त
दर परेशा हालीओ दर मांदगी॥

अर्थात् उसको मित्र न समझो जो खुशहाली में ही दोस्ती और भाईचारे का दम भरता हो। मेरे अनुसार दोस्त वह है जो दोस्त का हाथ विपत्तियों के समय में पकड़ता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये भाव संस्कृत श्लोकों में प्रसिद्ध हैं।

शेख ने संस्कृत ग्रन्थों को चाहे न देखा हो पर उसने जीवन को निकट से अवश्य देखा था—

बस कामते खुश कि जेरे चादर बाशद
चुन बाजकुनी मादरे मा दर बाशद।[2]

अर्थात् चादर के अन्दर छुपा हुआ स्वरूप सुन्दर प्रतीत हुआ करता है। शायद चादर हटाकर देखने पर वह हमारी मां ही न निकले कितनी बड़ी व्यंजना है?

संस्कृत साहित्य की चिर परिचित एक उपमा द्वारा कवि विद्या को व्यवहार में लाने की शिक्षा देते हुए बड़े काव्यात्मक ढंग से कहता है कि—

इल्म चन्दा के बेश्तर खानी
चुन अमल दरतो नीस्त नादानी।
न मोहक्किक बुवद न दानिशमन्द,
चारपाये बर किताबे चन्द॥
आं तही मग्ज राव च इल्म व हुनर
के बरु हेजोमस्तो या दफ्तर॥[3]

अर्थात् विद्या जितनी चाहो प्राप्त कर लो परन्तु यदि वह व्यवहार में नहीं लाई जाती तो सब व्यर्थ है। न तो तुम बहुत बड़े विद्वान और न बुद्धिमान हो पाओगे वरन उस जानवर पर कुछ पुस्तकें लदी हों, ऐसे ही हो जाओगे। उस कूढ़मग्ज को इस बात की क्या खबर कि उस पर किताबें लदी हैं या ईंधन। इस प्रकार और कितने ही शेर प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

वास्तव उनका अपना पद्यमय जीवन चरित्र है जिसमें उस महाकवि के जीवन सम्बन्धी अनुभव तथा तत्कालीन रीति नीति का वर्णन करने वाली सुन्दर मसनवियां हैं। यों तो शेख सादी ने गद्य भी लिखा और पद्य भी, परन्तु मूलतः वे कवि ही हैं। जैसे जयशंकर प्रसाद चाहे नाटक लिखें चाहे निबन्ध चाहे आलोचना या उपन्यास

१ तथा २ गुलिस्तां (मुफीद आम प्रेस, लाहौर १९१२ ई०) पृ० १८३
३ वही, पृ० ४२४

उनका कवि छिपाये नही छिपता। ठीक यही स्थिति सादी की भी है। एक और वात जस कि प्रसाद के काव्य म कुछ एसे रत्न विद्यमान हैं जो अयत्र समस्त हिन्दी-साहित्य मे दुलभ हैं ठीक उसी प्रकार के उत्कृष्टतम काव्यांश सादी क काव्य म विद्यमान हैं। मसानी महोदय लिखते हैं कि जो व्यक्ति काव्य के रत्नो की खोज करना चाहत हैं उनके लिए तो सादी अगाध खान है। काव्य के साथ साथ गद्य मे भी फारसी के किसी अन्य कवि के ग्रन्थ आज उतने याद नही किये जात जितने कि इस (सादी) सुकवि के। वस्तुत सादी उस युग के ही नही अपितु सम्पूण फारसी काव्य के अद्वितीय रत्न थे।[1] इस कथा म एक दो स अधिक अपवाद नही है।

इस विवचन से स्पष्ट है कि फारसी साहित्य नीति-काव्य की दृष्टि मे बहुत ही सम्पन्न एव उपयोगी है। हाँ इतना अवश्य है कि अभिव्यजना-शली और विषय-विवचन का क्षेत्र उसका अपना है। रहीम के नीति-काव्य से पूण परिचित हा जाने के पश्चात्, हम इस निष्कष पर पहुँचत हैं कि रहीम का नीति काव्य अनुभूति एव अभिव्यक्ति आदि किसी भी क्षेत्र म फारसी काव्य से प्रभावित नही है। हाँ सस्कृत नीति-काव्य क प्रभाव से इनकार नही किया जा सकता।

---

1 In this short introduction Farughi writes "Perhaps one can say that this Book has no parallel either in Persian or any other language in history of persian literature with the exception of Firdausi s Shahnama and Masnawi of Maulana Jalal ul Din' Quoted by A J Arberry in this *Classical Persian Literature* *London* 1958 Page 1967

नामानुक्रमणिका



सहायक ग्रंथ

१ अकबर—राहुल सांकृत्यायन (इलाहाबाद, प्र० स)
२ अकबर—लॉरेन्स बिनयन, अनु० राजेन्द्र यादव, (१९३३, दिल्ली)
३ अकबर द ग्रेट मुग़ल—विन्सेंट स्मिथ (१९५८)
४ अकबरी दरबार—मोहम्मद हुसैन आज़ाद, अनु० रामचन्द्र वर्मा (१९६३)
५ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि—डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल (लखनऊ, २००७ वि०)
६ अकबरनामा—अबुल फज़ल अल्लामी (अंग्रेज़ी अनुवाद, १९०७)
७ अग्नि पुराण—(काव्य शास्त्र भाग) रामलाल वर्मा (दिल्ली, प्र० स)
८ अब्दुर्रहीम खानखाना—डॉ० समर बहादुर सिंह (झांसी, २०१८ वि०)
९ अमीर खुसरो की हिन्दी कविता—डा० ब्रजरत्नदास (ना० प्र० सभा वाराणसी)
१० अलबरूनी कृत भारत—(प्रथम भाग) अनु० सतराम (द्वि० स०)
११ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डॉ० दीनदयाल गुप्त (प्र० स०)
१२ आइने अकबरी—अबुल फज़ल अल्लामी (ब्लाकमन कृत अंग्रेज़ी अनुवाद १८७७)
१३ इकबालनामा जहांगीरी—मातमिद खां (रा० ए० सुसायटी बंगाल)
१४ इन्फ्लूएन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर—डा० ताराचन्द (प्र० स)
१५ उर्दू कवियों की कविताएँ—विश्वनाथ शाण्डिल्य (मेरठ १९२८)
१६ ऋग्वेद (खण्ड ४) संस्कृति संस्थान बरेली
१७ एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका—भाग ६
१८ एन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम—भाग १
१९ एल्फिन्स्टन हिस्ट्री आफ इण्डिया (लन्दन १९०५)
२० ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ परशिया—इ० जी० ब्रान—(१९२८ तहरान)
२१ ए हिस्ट्री आफ परशियन लिटरेचर अण्डर टर्क डोमीनियन
२२ ए हिस्ट्री आफ परशियन लग्वेज एण्ड लिट्रेचर एट द मुग़ल कोर्ट—मौ० ग़नी
२३ कबीर ग्रन्थावली—डा० पारसनाथ (प्र० स०)
२४ कन्ट्रीब्यूशन आफ मुस्लिम्स टु संस्कृत लर्निंग (भाग २)—जतीन्द्र विमल चौधरी
२५ कल्याण – भक्ति विशेषांक—गी० प्रे० गोरखपुर
२६ कविता कौमुदी—(भाग १)—रामनरेश त्रिपाठी (१९४६)
२७ कविवर बिहारी—जगन्नाथदास रत्नाकर (प्र० स०)
२८ कहावत कोश—डा० माधव (प्र० स०)
२९. कामायनी—जयशंकर प्रसाद (इलाहाबाद)
३० काव्य प्रकाश—मम्मट आ० विश्वेश्वर-व्याख्या सम्पा० डा० नगेन्द्र (त० स०)
३१ काव्य मीमांसा—डा० गंगासागर राय (प्र० स०)
३२ काव्य निर्णय—आ० भिखारीदास सम्पादक जवाहरलाल चतुर्वेदी (द्वि० स०)
३३ काव्यालोचन—डा० ओमप्रकाश शास्त्री (प्र० स०, दिल्ली)
३४ कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया (खण्ड ६), सम्पा० रिचर्ड बर्न (१९३९)

३५ कम्ब्रिज शाटर हिस्ट्री ग्राफ इण्डिया—जे० एलन, (द्वि० स०)
३६ कोट पोइटस ग्राफ इण्डिया एण्ड ईरान—ग्रार० पी० मसानी (१६३८, बम्बई)
३७ खानखानानामा—मु० देवीप्रसाद (ना० प्र० स० काशी-पुस्तकालय की प्रति)
३८ खोज रिपोर्ट—ना० प्र० स० वाराणसी
३६ गग कवित्त—सम्पा० बटेकृष्ण – (ना० प्र० सभा वाराणसी, प्र० स०)
४० गोरखबानी—डा० बड़थ्वाल (हि० सा० सम्मेलन प्रयाग)
४१ गोस्वामी तुलसीदास—डा० रामदत्त भारद्वाज (प्र० स०)
४२ चन्दायन—सम्पा० परमेश्वरीलाल गुप्त (प्र० स०)
४३ चन्द्रबरदायी और उनका काव्य—डा० त्रिवेदी (प्र० स०)
४४ चहारमक़ाला—(तेहरान, १६६२)
४५ चिन्तामणि (भाग २)—ग्रा० रामचन्द्र शुक्ल (इलाहाबाद प्र० स०)
४६ चाणक्य नीति—कालीचरण अग्रवाल (मथुरा)
४७ जुब्दतुत्तवारीख़—नूरुल हक़ (इलियट भाग ६)
४८ जहांगीर का ग्रात्मचरित—अनुवादक ब्रजरत्नदास (प्र० स०)
४६ तारीखे फरिश्ता—जान ब्रिग्स कृत अंग्रेजी अनुवाद (प्र० स०)
५० तुलसीदास—डा० माता प्रसाद (प्रयाग १६४८)
५१ तुलसीदास ग्रन्थावली—ना० प्र० सभा वाराणसी
५२ तुलसी साहित्य रत्नाकर—पं० रामचन्द्र द्विवेदी (१६८६, वि०)
५३ देव और उनकी कविता—डा० नगेन्द्र (नै० प० हा० दिल्ली)
५४ ध्वन्यालोक—ग्रा० विश्वेश्वर व्याख्या (ज्ञा० म० वाराणसी)
५५ ध्वनि सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त (भाग १) डा० भोलाशंकर व्यास (प्र०स०)
५६ नन्ददास ग्रंथावली—स० ब्रजरत्नदास (ना० प्र० स० काशी, २०१४ वि०)
५७ नीति काव्य का विकास—डा० रामस्वरूप रसिकेश (दिल्ली, प्र० स०)
५८ पंचतन्त्र—सम्पादक मोतीचन्द्र (राजकमल प्रकाशन)
५६ पदमावत—सम्पा० वासुदेवशरण अग्रवाल (प्र० स०)
६० पल्लव—सुमित्रानन्दन पंत (राजकमल प्रकाशन)
६१ प्रिय प्रवास—अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध (११ वां सस्क०)
६२ बिहारी रत्नाकर—जगन्नाथदास रत्नाकर
६३ ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन—डा० सत्येन्द्र (प्र०स०)
६४ भक्तमाल-नाभादास, सम्पादक—रूपकला (लखनऊ, प्र० स०)
६५ भारतीय काव्यांग—डा० सत्यदेव चौधरी, (दिल्ली प्र० स०)
६६ भारतीय दर्शन—वाचस्पति गरोला (इलाहाबाद १६६२)
६७ भारतीय संस्कृति के चार अध्याय—डा० रामधारी सिंह दिनकर (प्र० स०)
६८ भारतीय साहित्य शास्त्र (प्रथम खंड)—बलदेव उपाध्याय (वाराणसी १६६३)
६६. भाषा विज्ञान—डा० श्यामसुन्दरदास (त० स०)
७० मग्रासिर उल उमरा (भाग २)—शाहनवाजखां, (अनु० ब्रजरत्नदास १६६५ वि०)

७१ मआसिरे रहीमी—अब्दुल बाकी नहावन्दी (रा० एशिया० मु० आफ बंगाल)
७२ मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति—डा० मदनगोपाल गुप्त (१९६४)
७३ मनुस्मृति—स० स्वामी दशानान्द (लखनऊ)
७४ मनोविश्लेषण—सर एडमंड फ्राइड अनु० देवेन्द्र वेदालंकार (प्र० स०)
७५ महाभारत (शान्ति पर्व)—गीता प्रेस गोरखपुर (हिन्दी अनुवाद)
७६ मिश्रबंधु विनोद (भाग १ २)—(स० १९१४)
७७ मुक्तक काव्य परम्परा—डा० रामसागर त्रिपाठी (१९६०, दिल्ली)
७८ मेडीवियल इण्डिया—डा० ईश्वरी प्रसाद (१९४२ ई०)
७९ मुग़ल साम्राज्य का उत्थान पतन—डा० रामप्रसाद त्रिपाठी (अनु० कालिदास कपूर)
८० मुग़ल बादशाहों की हिन्दी—प० चन्द्रबाल पांडे (१९९७ वि०)
८१ मुग़ल कालीन भारत—तुजुक बाबरी का स० अतहर अब्बास रिजवी कृत अनुवाद
८२ मुण्डकोपनिषद—शांकर भाष्य (गीता प्रेस गोरखपुर)
८३ यजुर्वेद—स्वा० दयानन्द भाष्य (भारतीय प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान)
८४ योग वाशिष्ट (ख २) सम्पा० श्यामलाल
८५ रहिमन चन्द्रिका—रामनाथ सुमन (प्र० स०)
८६ रहीम रत्नावली—प० मायाशंकर याज्ञिक (त० स०)
८७ रहीम शतक—प० सूर्यनारायण दीक्षित (प्र० स०)
८८ रहीम रत्नाकर—उमराव सिंह त्रिपाठी (प्र० स०)
८९ रहिमन विलास—सम्पा० बाबू व्रजरत्नदास (इलाहाबाद, द्वि० स०)
९० रहिमन शतक—ला० भगवान दीन (प्र० स०)
९१ रीति कालीन कवियों की प्रेम व्यंजना—डा० बच्चन सिंह (प्र० स०)
९२ रीति कालीन अलंकार साहित्य का शास्त्रीय विवेचन—डा० ओमप्रकाश शास्त्री
९३ रीति काव्य की भूमिका—डा० नगेन्द्र (दिल्ली १९५३)
९४ राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य—डा० विजयेन्द्र स्नातक(द्वि० स०)
९५ रघुवंश—कालिदास, व्याख्या देवदत्त शास्त्री (किताबमहल इलाहाबाद)
९६ रस सिद्धान्त—डा० नगेन्द्र (दिल्ली, प्र० स०)
९७ रस सिद्धान्त की दार्शनिक और नैतिक व्याख्या, डा० तारकनाथ बाली (१९६४)
९८ राधाकृष्ण ग्रंथावली—सम्पादक डा० श्यामसुन्दरदास (१९३०)
९९. रामचरितमानस (मझला साइज) गीता प्रेस गोरखपुर
१०० वाल्मीकीय रामायण—आचार्य विश्वबंधु व्याख्या (खंड ६)
१०१ वाङ्मय विमर्श—आ० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (छठा स०, वाराणसी)
१०२ शतकत्रयम—(मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद)
१०३ शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (भाग १) डा० गोविन्द त्रिगुणायत (प्र० स०)
१०४ शिवसिंह सरोज—श्री सेंगर (१९२३ ई०)
१०५ शुक्र राजनीति—श्यामलाल पांडेय (लखनऊ, प्र० स०)
१०६ शेरुल अजम—मौ० शिबली (अलीगढ़, १९२०)